महाकवि श्रीमन्मित्रमिश्र विरचित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आनन्द-कन्द चम्पूः

डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5778

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओरछा राज्याश्रित महाकवि श्रीमन्मित्रमिश्र विरचित-

आनन्दकन्दचम्पूः

सम्पादक :

सप्ताचार्य

डॉ० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच. डी., डी. लिट्.,

रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

प्राच्यदर्शनमहाविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा)

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण सत्संग भवन प्रकाशन

मथुरा (उ० प्र०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पादक :

डॉ0 वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

★

प्रकाशक :

श्रीकृष्ण सत्संग भवन प्रकाशन

६६६-गतश्रम टीला, मथुरा (उ० प्र०)

★

प्रथम संस्करण ११०० प्रतियाँ

★

सन् १९८४

★

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

★

मूल्य : १३०-०० रुपये

★

मुद्रक :

मयूर प्रेस ३७१/५ बद्रीनगर

डीग गेट, मथुरा.

क्रम 5778

State Museum,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ANAND KAND CHAMPU

by

Shri Man Mitra Mishra

[Court-poet of King Veersing Maharaj of Odchha Kingdom.]

★

Edited by :

Saptacharya

Dr. V. K. Chaturvedi

M. A. (Hindi, Sanskrit) Ph. D., D. Litt.

Reader and Head of the Sanskrit Department

INSTITUTE OF ORIENTAL PHILOSOPHY

Vrindaban (Mathura)

★

Publisher :

SHREE KRISHNA SATSANG BHAWAN PRAKASHAN

MATHURA (U. P.) INDIA

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

by :

Dr. V. K. Chaturvedi

★

Publisher :

Shree Krishna Satsang Bhawan Prakashan

966-Gatashram Tila

Mathura (U. P.)

★

First Edition : 1100 Copies

★

Year : 1984

★

Copy Right : Publisher

★

Price-130 Rupees

क्रम-5778
प्रति
State Museum, Library, Lko.

★

Printed by :

Mayur Press, 371/5 Badri Nagar

Deeg gate Mathura (U. P.) INDIA

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
सर्वतन्त्रस्वतन्त्र अनन्तश्रीविभूषित स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

महाराजानामाशीर्वचनम्

शुभाशीराशयः सन्तु

१

आनन्दकन्दहृदया तदेकविषया तदीयरसगात्री ।
राधेव कापि चम्पूर्ललितालङ्कृतिरलं लसति ॥

२

आनन्दमन्थर - मुकुन्द - पदारविन्द
द्वन्द्वावदात - मकरन्द - घनेऽत्र काव्ये ।
को वा न तृप्यति चमत्कृतिचारुपूर-
सर्वस्वसार मधुरे रुचिरे रसज्ञः ॥

३

दोषापसारि गुणकारि रसानुसारि
शब्दार्थकान्ति कमनीय कला प्रसारि ।
विस्तारि कृष्ण यशसामनुरागधारि
काव्यं मुदेऽस्तु विदुषां हृदये विहारि ॥

४

श्रीवासुदेव कृष्ण - प्रतिभा - भासा - वभासिता भाषा ।
व्याकृतिरिव तद्धित गुण - वृद्ध्यागमदेशिनी भूयात् ॥

—अखण्डानन्द सरस्वती स्वामिनः

'विपुल'
२८।१६ बी. जो. खेर मार्ग
मालाबारहिल
बम्बई—४००००६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

किञ्चित् प्रास्ताविकम्

टटिया स्थान राजन्तं शान्तं दान्तं तपोनिधिम्
गुरुं वै हृदये वन्दे राधाचरणदासकम् ॥

नन्दाग्नि - शून्य - कर सम्मित विक्रमाब्दे-
जन्माष्टमी शुभदिने गुरुवासरे च ।
चम्पूमिमां सकल वेद्यतरां विधातुं
टीकामिमां वितनुते वसुदेवकृष्णः ॥

'श्रीवरानन्दिनी' नाम्नी भाषा टीका विलिख्यते ।
सर्वेषामस्तु सौख्याय 'कृष्ण' भक्तिजुषां नृणाम् ॥

मित्रमिश्र का संक्षिप्त परिचय—आनन्दकन्दचम्पूके रचयिता **श्रीमित्रमिश्रके** आश्रयदाता **श्रीवीरसिंह** देव थे। **श्रीवीरसिंह** देव बुन्देला क्षत्रिय वंशके कुल दीप थे, तथा संस्कृत भाषाके बड़े प्रेमी थे। यवन सम्राट् **जहाँगीरकी** पूर्ण-कृपाके पात्र **श्रीवीरसिंह** देव महाराजका शासनकाल १६०५–१६२७ ईस्वी रहा है। **मित्रमिश्र** भी **वीरसिंह** देवके आश्रयमें अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन करते रहे थे। **'वीरमित्रोदय'** नामक ग्रन्थका प्रणयनकर कविने महाराजका नाम भी अमरकर दिया, क्योंकि यह ग्रन्थ धर्मशास्त्रमें अद्भुत ग्रन्थोंकी कोटिमें सम्मानित है।

श्रीवीरसिंहदेवने अनेक तुलादान किये थे। एक तुलादान (सुवर्ण) का मथुराके विश्राम घाटपर भी किया, किन्तु अभिमानपूर्वक दानके कारण पुरोहित चौबेजीने उसका परित्यागकर दिया था, यह जनश्रुति सर्वविदित है। तुलाओंमें कुल मिलाकर इक्यासी मन सुवर्ण दान **वीरसिंह** देवजीने किया था[१]।

मन्दिर निर्माण—आपने अनेक मन्दिर बनवाये। उनमें एक तो 'ओरछा' नगरमें ही विद्यमान है, जिसे चतुर्भुज भगवान्का मन्दिर कहते हैं।

केशव-मन्दिर—दूसरा श्रीकृष्ण जन्म स्थानपर **केशव** भगवान्का मन्दिर बनवाया। इसके निर्माणमें उस समय ३३ लाख रुपया व्यय पड़ा था[२]। किन्तु

---

(१) नागरी प्रचारिणी पत्रिका ३, ४ अङ्क बुन्देलों का इतिहास पृष्ठ, २७

(२) आ० क–च० उपो० पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१६६१ ईस्वीमें **औरङ्गजेब** ने इसे नष्टकर दिया और 'जुम्मा-मस्जिद' का निर्माण कर दिया। यह बात जुम्मा-मस्जिदके भीतर फारसीके लेखसे भी सुस्पष्ट है।[1]

जन्मस्थान—**मित्रमिश्र** का जन्म ग्वालियरके दूरवार सनाढ्य ब्राह्मण वंशमें हुआ था। **हंस** नामक पण्डित आपके पितामह थे और आपके पिताका नाम **'परशुराम'** था। **श्रीपरशुरामने** काशीवासी **'श्रीचण्डीश्वर'** गुरुसे विद्याध्ययन किया था।

वीरेश्वर—**चक्रपाणि** ज्येष्ठ भ्राता थे और **योगादित्य** कनिष्ठ थे, फलतः **मित्रमिश्र** मध्यम पुत्र थे। इनकी एक बहिन थी, उसका नाम 'सुनीति' था।

मित्रमिश्र का समय—अनेक बाह्य एवं अन्तः साक्ष्योंके आधारपर निश्चित है कि मित्रमिश्र सत्रहवीं शतीके द्वितीय भागमें विद्यमान थे। चम्पूकी रचना वि० १६८८ है।

मित्रमिश्रकी कृतियाँ—मित्रमिश्रके ४ ग्रन्थ माने जाते हैं—

१—**वीरमित्रोदय**—इसमें २२ प्रकाश हैं, यह धर्मशास्त्रका ग्रन्थ है।

२—**याज्ञवल्क्य स्मृति टीका**—

३—**वीर** नाम से एक **गणितका** भी ग्रन्थ सम्पूर्णानन्द सं० विश्वविद्यालय वाराणसीमें विद्यमान है।

४—**आनन्दकन्द चम्पूः**—यह हिन्दी टीका सहित प्रस्तुत है, मित्रमिश्रने पण्डितोंसे भी ग्रन्थ निर्माणमें सहायता ली है जैसे कि संस्कार प्रकाशका निर्माता—**'रामज्योर्तिविद्'** माना गया है, स्मृति टीका **श्रीसदानन्द** विद्वान्‌ने मित्रमिश्रके नामसे रची है, तथापि यह चम्पू कविकी कृति है।

इस संसारमें अनेक काव्य, प्रहसन, चम्पू, नाटक, पठन-पाठनमें प्रचलित हैं, किन्तु वे प्राकृत नायक-नायिका भावसे युक्त हैं, अतः श्रीप्रभुके चरणोंमें भावना वर्द्धनमें असमर्थ हैं। श्रीकृष्ण जन्मस्थानके दर्शन करनेके प्रभावसे पुण्यात्मा श्रीमित्रमिश्रने इस ग्रन्थरत्नका प्रणयन किया है। वस्तुतः यह ग्रन्थ अनेकों काव्य शोभाओंको जन्म देनेवाले समुद्रकी भाँति है, भक्ति सिद्धान्तोंकी अमृतधारा बरसानेवाले चन्द्रकी भाँति है, अथवा प्राकृत काव्य विशेष होनेपर भी अप्राकृत

---

(1) आ० क-च० उमो० पृ० १६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काव्य विशेष श्रीभागवत पुराण तरुकी दशमस्कन्ध व्रजलीला मात्र वर्णनपरक शाखाओंका परमोपादेय फल है ।

कविने आठ उल्लासोंमें श्रीकृष्णकी मथुरा तथा ब्रजलीलाओंका वर्णन बड़ा ही अनूठा प्रस्तुत किया है ।

प्रथम उल्लासमें—श्रीमथुरा नगरी, चतुर्वेदी ब्राह्मण एवं अन्य ब्राह्मण तथा श्रीयमुनाजीका वर्णन है ।

द्वितीय उल्लासमें—कंसका वर्णन, तथा कृष्ण जन्मका वर्णन, यमुना पारकर वसुदेवजी द्वारा उनका गोकुल प्रस्थानका वर्णन हैं । यशोदाकी गोदमें श्रीकृष्णको विराजित करके वसुदेवजीका मथुरा लौटना, तथा योगमायाका कंस को दर्शन प्रदानकर विन्ध्याचल-वास वर्णन है ।

तृतीय उल्लासमें—नन्दोत्सव, बाललीला तथा वृन्दावनवास प्रस्ताव तथा गोवर्धनका वर्णन है ।

चतुर्थ उल्लासमें—वृन्दावन - लीला, सूर्योदय - वर्णन, नायिका-वर्णन, मध्याह्न-वर्णन, रात्रि-वर्णन, चन्द्रोदय, अन्धकार-प्रातः वर्णन है और वत्सासुर, बकासुर, अघासुरोद्धारका वर्णन है ।

पंचम उल्लासमें— वनभोजन - लीला, ब्रह्मव्यामोह, बाल - प्रेमादिका वर्णन है ।

षष्ठ उल्लासमें—कृष्णकी अनेकविध लीलाओंका वर्णन है, कालिय नागपर कृपा, इन्द्रमान भङ्गके साथ ऋतुओंका वर्णन है । चीरलीला, राधादशा-वर्णन, रासलीला, जलविहारादिका वर्णन है ।

सप्तम उल्लासमें—राधाभिसार, शङ्खचूड़-वध, केशी-वध, अक्रूरके साथ मथुरा गमन वर्णन, रजक-वध, कुब्जा-लीला, गज-वध, मल्ल-वध, कंस-वध का वर्णन है ।

अष्टम उल्लासमें—देवकी - वसुदेवके हर्षका - वर्णन, द्वारका - निर्माण भूमिभारोद्धार करके वैकुण्ठ गमन करके पुनः महाराजा वीरसिंह (ओडछा नरेश) द्वारा श्रीकृष्णजन्म-स्थानपर निर्मित मन्दिरमें वासका वर्णन है ।

ब्रह्म-नारद संवादके माध्यमसे ब्रह्माजी द्वारा महाराज वीरसिहदेवजू की महिमाका वर्णन है, सुवर्णकी तुलादानका वर्णन है । ओड़छा नगरीमें नाना विप्रोंका वर्णन, प्रासाद निर्माणेच्छाका वर्णन, और जन्मभूमिस्थ प्रासादका बर्णन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, प्रासादकी ध्वजाका वर्णन तथा कविकी आत्म-कथाके वर्णनके साथ चम्पू ग्रन्थ परिपूर्ण हुआ है।

रचना-काल—विक्रम सं० १६८८ में इस चम्पूकी रचना हुई है। जैसाकि उन्होंने स्वयं "शाके शांकगजतुर्भू परिमिते" वाले श्लोकमें संकेत दिया है।

प्रकाशन—मुद्रणाधारीभूत पुस्तक—जयपुर निवासी श्रीनन्दकिशोर शर्मा सा० आ० ने सरस्वती भवन (गवर्नमेंट सं० कालेज) वाराणसीसे प्राप्तकर १९८८ वि० में इसका सम्पादन किया था। वहीं से उपलब्ध कर इसका प्रकाशन किया गया है।

टीका प्रयोजन—श्रीकृष्णजन्म-स्थानपर मन्दिरके शिलान्यासके समय जो इतिहास प्रस्तुत किया गया उसमें कोई संस्कृतका ग्रन्थ साक्ष्य नहीं दे रहा था। मैं भागवतका प्रधान व्यास भी था, मुझसे पुण्य स्मरण श्रद्धेय, कल्याणके यशस्वी संपादक—भाई श्रीहनूमानप्रसादजी पोद्दारने भी इस अभावकी ओर अन्वेषकोंके ध्यानाकृष्ट करनेकी प्रेरणा दी थी मेरे इस प्रयासकी सार्थकता उस समय न हो पाई किन्तु कालान्तरमें श्रद्धेय बन्धुवर डा० विद्यानिवास मिश्रने सर्वप्रथम 'आनन्दकन्द चम्पू' पर कार्य करवानेकी प्रेरणा दी। पर्याप्त प्रयाससे एक प्रति वाराणसीमें सरस्वती भवनमें उपलब्ध हो गई।

ग्रन्थके प्रकाशनमें पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज का शुभाशीर्वाद रहा है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

श्रीकृष्ण सत्संग भवन प्रकाशनने इसका प्रकाशन कार्य पूर्ण किया है एतदर्थ चि. सहदेवकृष्ण चतुर्वेदीको शुभाशीष प्रदान करता हूँ।

विद्वदाश्रवः

—वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ संख्या

(प्रथम उल्लास)

मंगलाचरण १
चम्पू पाठके कल्याणकी कामना ३
गणपति वन्दना ६
सरस्वती वन्दना ७
कूर्म वन्दना ८
श्रीराम वन्दना ८
ग्रन्थके सन्दर्भमें वक्तव्य १०
मथुरानगरी का वर्णन ११
श्रीयमुना वर्णन २०
मथुराके ब्राह्मणोंका वर्णन ३१

(द्वितीय उल्लास) ३७-७७

राजा कंसका वर्णन, कंसकी मृगया वर्णन, कंस प्रताप वर्णन, श्रीकृष्णावतार उपक्रम, वसुदेव वर्णन, वसुदेव विवाह वर्णन, आकाशवाणी, कंससे देवकीकी रक्षा, कृष्णके भाईयोंका वर्णन, हरि का गर्भमें आना, श्रीकृष्ण जन्म वर्णन, वसुदेव कृत स्तुति, देवकीके द्वारा स्तुति, वसुदेव द्वारा अलौकिक रूप छिपानेकी प्रार्थना, श्रीकृष्ण वचन, गोकुल गमन, यमुना पार करना, यशोदाकी शैयापर कृष्णको छोड़ना, कंसको योगमाया समर्पण, नगर निवासियोंकी दशाका वर्णन, भवानी रूप वर्णन, योगमायाकथन, योगमायाका विन्ध्यपर वास।

(तृतीय उल्लास) ७८-१३६

यशोदाकी गोदमें कृष्ण वर्णन, नन्दोत्सव, पूतना वध, तृणावर्त वध, शकटासुर वध, विश्वरूप दर्शन, बाल क्रीड़ा, दामोदर लीला, दधिभाण्ड भञ्जन, श्रीकृष्ण बन्धन, यमलार्जुन उद्धार, नन्द द्वारा कृष्णका दाममोचन, गोपोंकी चिन्ता, वृन्दावन वास प्रस्ताव, गोवर्धन वर्णन।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषय	पृष्ठ संख्या
(चतुर्थ उल्लास)	१३७-१६०
वृन्दावन लीला, सूर्योदयका वर्णन, नायिका वर्णन, नवनीत भाण्ड वर्णन, गो वृन्द वर्णन शकट वृन्द वर्णन, मध्याह्न वर्णन, वृन्दावनमें शकट स्थितिका वर्णन, चन्द्रउदयका वर्णन, अन्धकार वर्णन, प्रातः वर्णन ।	
वत्सचारण लीला	१६१
वत्सासुर वधोपक्रम, बकासुर वध, अघासुर वध, अघासुर रूप वर्णन, श्रीकृष्णका अघासुरके उदरमें जाना ।	१६४-१८०
(पंचम उल्लास)	१८१-२१३
सभीकायमुनातटपर जाना, भूखका वर्णन, मिष्ठान्नादिका वर्णन, हास वर्णन, ब्रह्ममोहन, वत्स अपहरण, श्रीकृष्णका ढूढ़ने जाना, श्रीकृष्णका श्रम वर्णन, गोरूप धारण, बछड़ारूप धारण, गोपियोंकी दशा वर्णन, बाल प्रेम निरूपण, वृन्दावन दूर्वादल महिमा, ब्रह्माजीकी भ्रान्ति, ब्रह्माजीका मोह, ब्रह्म स्तुति।	
(षष्ठ उल्लास)	२१४-२३१
गोप बालकोंके साथ भोजन, कृष्णकी विविध क्रीड़ाओंका वर्णन, ताल वर्णन. तालवृक्ष हिलाना, धेनुकासुर वध, श्रीकृष्ण शोभा ।	
कालियके मस्तकपर नाचना	२३२
कालियनागपर कृपा, कालियकृत स्तुति, अभयदान, गोपोंकी शोकावस्था, गोपोंका हर्ष, ग्रीष्म वर्णन, प्रलम्बासुर वध, मुरली वर्णन, वर्षा वर्णन ।	२३५-२५१
इन्द्रमान भङ्ग	२५२
गोवर्धन धारण, व्रजको जाना, गोपनन्द सम्वाद, गर्गाचार्यके वचनोंका वर्णन, मरुत वर्णन, अलिश्रेणी वर्णन, विभिन्न देशोंकी नायिकाओंका वर्णन, वृक्षोंका वर्णन, पक्षी वर्णन, चीर-लीला, गोपियोंकी उक्ति, सम्वाद, वेणुवादन दशा वर्णन, राधाकी दशाका वर्णन ।	
राधा महिमा	२८८
राधा केश वर्णन, राधा वदन वर्णन, राधा नयन शोभा, राधा अवयव वर्णन, वंशीधुन, गोपियोंका आह्वान, शृङ्गार शोभा वर्णन, दूती संवाद, कृष्ण वचन, विविध क्रीड़ाओंका वर्णन ।	२९०-३०२
रासक्रीड़ा	३०३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषय **पृष्ठ संख्या**

देव दशा, अन्तर्धान वर्णन, राधाके साथ विहार, गोपियोंकी दशाका वर्णन, वनमें खोज, चिह्नोंका अवलोकन, नखछतादि वर्णन, विभिन्न वृक्षोंका वर्णन, तन्मयावस्था, दु:खमें जल विहार। ३०३-३२६

(सप्तम उल्लास) ३२७-३७६

राधा अभिसार, अरिष्ट वध, केशी वध, अक्रूरको कंसका आदेश, अक्रूरके भावका वर्णन, वृन्दावनमें, जाना, नन्द व्रज वर्णन, कृष्ण शोभा वर्णन, नन्द द्वारा सत्कार, कुशल प्रश्न, धनुर्यज्ञोत्सवकी सूचना, कृष्ण गमनका वृत्तान्त सुनकर व्रजकी दशा, कृष्ण प्रस्थान वर्णन, मध्याह्नमें विश्राम, अक्रूरको जलमें दर्शन, अक्रूर स्तुति, अक्रूरका कंसके पास जाना, मालाकार अनुग्रह, कृष्ण दर्शनसे स्त्रियोंकी दशा, कुब्जा लीला, धनुषभङ्ग, रात्रिमें कुब्जाके घर प्रवेश, कुवलिया पीठ वध, रङ्गमें प्रवेश, मल्ल वध, कंस युद्ध चेष्टा, कंस वध।

(अष्टम उल्लास) ३७७-३८३

उग्रसेन सम्वाद, देवकी वसुदेव हर्ष वर्णन, द्वारका निर्माण, भूमिका भार नष्ट करके पुनः मथुराके प्रासादमें वास, नारद कृत प्रासाद वर्णन, ब्रह्मबचन, नारद प्रश्न।

ब्रह्माद्वारा वीरसिंहकी महिमा वर्णन ३८४

सुवर्ण तुलादान वर्णन ३८७

श्रीकृष्ण जन्म स्थानपर प्रासाद वर्णन ३८८

विविध विप्र वर्णन, चतुर्वेदी विप्र वर्णन, सनाढ्यादिका वर्णन, महल निर्माणकी इच्छाका वर्णन, प्रासाद वर्णन, प्रासाद शुभ्रता वर्णन, ध्वज वर्णन, प्रासाद भव्यता निरूपण, चतुर्मुख विराम। ४०१-४११

कविकी आत्मकथा ४१२

भाषा टीकाकार परिचय ४१६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीद्वारकेशोविजयते

॥ श्रीः ॥

महाकवि श्रीमन्मित्रमिश्र विरचिता

आनन्दकन्द चम्पूः

★

प्रथम उल्लासः

मंगलाचरणम्

१भक्ते सद्मयुतामिवाम्बुधिसुतां निक्षेप्तुमभ्यर्हते
दातुं विघ्नघटाभिघाटनमुरीकृत्येव तत्प्रत्ययम् ।
दानाम्भोलहरीभिरार्द्रमुररीकुर्वाणमम्भोरुहं
२ हेरम्बस्य करं भजे भगवतः क्रीडाजुषो मानसे ॥१॥

अनुवाद—अपने योग्य सत्पात्र भक्तके लिये कमलमें निवास करनेवाली समुद्र सुता (लक्ष्मी) को मानों प्रदान करने के लिये, विघ्नों के समूह का विनाश करने के विश्वास को उत्पन्न करने के लिये, गजमद जल की लहरियों से आर्द्र कमल को ग्रहण किये हुए क्रीड़ा में मग्न श्रीगणेश जी की सूँड़ का ध्यान मैं अपने मन मैं करता हूं ॥ १ ॥

विशेष—इस मंगलाचरण में कवि ने प्रथम तो कमल' को भक्तों को प्राप्त कराने की ओर संकेत किया है। कमल सुन्दरता का प्रतीक है और मंगल

---

(१) निष्प्रत्यूहग्रन्थपरिसमाप्तये हेरम्बस्य शुण्डादण्डं स्तौति 'भक्ते" इत्यादिना । सद्मयुतां कमलसदनयुतां पद्मायाः पद्मालयत्वात् । अम्बुधिसुतां लक्ष्मीं भक्ते निक्षेप्तुमिव। तथा विघ्नघटाभिघाटन विघ्नसंघविनाशमुरीकृत्य । अभ्यर्हते योग्याय भक्तायेति यावत् । तत् प्रत्ययं विघ्नघटाभिघाटनविश्वासं दातुमिव । अम्भोरुहं कमलमुररीकुर्वाणं तथा दानाम्भोलहरीभिरार्द्रम् । क्रीडासक्तस्य भगवतो हेरम्बस्य शुण्डादण्डं मानसे ध्यायामि ॥ १ ॥

(२) हे उषसि रम्बते इति स्वामी=गणेशः

'हः शंकरे हरौ हंसे रण रोमाञ्च वाजिषु" इति नानार्थ रत्नमाला ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का भी प्रतोक है अतः भक्तों का मङ्गल होवे एतदर्थ यह स्तुति है। दूसरी बात यह है कि लक्ष्मीजी भक्तोंको प्राप्त होवे और प्राचीन 'लक्ष्मी गणेश' जी की सहचरण परिपाटी की पुष्टिकी है कारण कि 'लक्ष्मी-नारायण' का ही अधिकतम उल्लेख साथ-साथ मिलता है पर दीपावली पर्व पर आज भी गणपति-लक्ष्मी के पूजन की परिपाटी है अतः कवि ने एक ही पद्य में दोनोंका ध्यान विघ्न निवारणार्थ और समृद्ध्यर्थ किया है जो चमत्कार पूर्ण है।

विश्वविख्यात भारतीय संस्कृति में किसी भी ग्रन्थ की रचना में मंगलाचरण आवश्यक है। महर्षि पतञ्जलि ने ग्रन्थारम्भ-ग्रन्थमध्य और ग्रन्थके अन्तमें भी मङ्गलाचरणकी परिपाटी की ओर लक्ष्य किया है। कवि कालिदास आदि ने अपने ग्रन्थों में मङ्गलाचरण की परिपाटीका अनुसरण किया है। यह बात पृथक् है कि वह मङ्गलाचरण कैसा है ? अर्थात् ३ भेदों में से किसी के अन्तर्गत है, मङ्गलाचरण के तीन भेद माने गये हैं—

१—आशीर्वादात्मक

२—नमस्कारात्मक

३—वस्तुनिर्देशात्मक

(१) आशीर्वाद की कामना—जैसे शाकुन्तलं नाटक के आरम्भ में शिवजी द्वारा रक्षा की प्रार्थना।

(२) नमस्कारात्मक—जिसमें नमः पद स्पष्ट हो अथवा आक्षिप्त होकर आता हो—यथा भवानी शङ्करौवन्दे

या

वागर्थाविवसम्पृक्तौ वागर्थः प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ —(रघुवंश १/१)

(३) वस्तुनिर्देशात्मक—जिसमें न आशीर्वाद हो न नमस्कार हो किन्तु कथानककी वस्तुकी ओर ध्यान आकृष्ट किया गया हो यथा—

"अस्त्युत्तरस्यांदिशि देवतात्मा"। —(कुमारसम्भव)

अथ, ओ३म् अथवा वृद्धि, आदिशब्द भी मङ्गलवाची हैं फलतः "अथातोब्रह्मजिज्ञासा" (ब्रह्मसूत्र १।१।१) वृद्धिरादैच् (अष्टाध्यायी १।१।१) आदि में ये मङ्गलाचरण ही माने जाते हैं। उक्त ग्रन्थ में कवि मित्रमिश्र ने नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वंशप्रांशुमहांसविंशति भुजस्तम्भालिरम्भायित-
व्यालोलीकृत शम्भुभूभृति दशग्रीवे सुरा दुद्रुवुः ।।
उद्बुद्धालसलेश - नद्ध - नयनः सन्दोण हिन्दोलिका ।
क्रीडालीढमना दिशन्तधिमनः शं वोऽस्तु लम्बोदरः ।।२ ।

गणेश अपने भक्तोंको कमल प्रदान कर रहे हैं तो कमलमें निवास करने वाली लक्ष्मी भी उन पर कृपा करेगी यह भाव है। मद जल आर्द्र कमल 'आनन्द-मुद्रा' है। इस ग्रन्थके पढ़नेसे आनन्द की भी प्राप्ति होगी, संकेत है।

अम्बुधिसुताम्—लक्ष्मीको समुद्रसुता कहा गया है क्योंकि पौराणिक आख्यानके अनुसार दुर्वासाके शापसे जब देवगण श्री विहीन हो गये तब समुद्र-मन्थन द्वारा लक्ष्मीका दर्शन हुआ और वे पुनः नारायणके समीप विराजित हुईं अतः ये समुद्रसुता हैं।

('लक्ष्मी: पद्मालया पद्मा' अ० को०)

दानाम्भः—मदोन्मत्त गज के कपोल से निकलने वाले मद को दानाम्भः—दान का जल कहा गया है।

छन्द—इस पद्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। काव्य का आरम्भ कमलसे है जो छन्दःशास्त्रके अनुसार मंगलदायी है।

चम्पू पाठकके कल्याण की कामना--

अनुवाद—दशकन्धरने अपने स्तम्भ पंक्ति जैसे तथा बांससे भी अधिक लम्बे बीस हाथों से युक्त कन्धे पर शिवजी के निवास पर्वत "कैलाश" को धारण कर कदली के पत्र की भाँति कम्पित कर दिया तब भयाक्रान्त देवगण भाग खड़े हुए पर गणपति की मात्र निद्रा खुली, वे आलस भरे अपने नेत्रों को मूँदकर आनन्द-दायक पालने में झूलने की लीला का आनन्द ले रहे थे, ऐसे निर्भय लम्बोदर भगवान् (गजानन) आप सब पाठकों के मन में स्थित होकर कल्याण का प्रकाश करें ।। २ ।।

विशेष—भयका कारण प्राप्त होने पर भी क्रीड़ा मग्न रहना भक्तों के हृदय में उत्साह की अभिव्यक्ति करता है। कारण के होनेपर कार्य का न होना—विशेषोक्ति अलङ्कार होता है—"विशेषोक्ति रखण्डेषु कारणेषु फलावचः।"

(२) कैलाश पर्वतको कदली पत्रवत् बतलाकर कविने रावणके प्रचण्ड बल का स्मरण कराया है साथ ही देवोंके पलायनके समय गणपतिको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१कुम्भीन्द्रोद्भटकुम्भ-कूट-कठिन प्रारम्भ सम्भावित-
प्रालेयाचल-नन्दिनी-स्तनतटे बिम्बात्तनोरात्मनः ।
कः स्तन्यं धयति २स्तनंन्धय, इति क्रोधान्ध-भावोद्धता
हेरम्बस्य गभीरहुङ्कृति-गणा विघ्नान्विनिघ्नन्तु वः । ३।।

क्रीड़ा की ओर संकेत है उससे यह सिद्ध किया है कि विपत्तिके समय भी उत्साह का परित्याग नहीं करना चाहिये । गणपतिका ध्यान उत्साह वर्धक माना है ।

(३) श्रीकृष्ण जन्मस्थानपर निर्मित मन्दिर अनेक बार विधर्मियों ने नष्ट किये हैं । ओरछा नरेशने भी पूर्व स्थानपर मन्दिर बनवाया है, कविने उस मन्दिर के वर्णन हेतु इस काव्यका प्रणयन किया है । जन्मभूमिके मन्दिरका वर्णन अष्टम उल्लास में है । मन्दिर निर्माणके समय वह भाव उदित हुआ और फिर उत्साह की ओर सब का ध्यान आकृष्ट किया है ।

ओड़छा नरेश के मन्दिर के निर्माण के ५७ वें वर्ष ही ओरङ्गजेबकी क्रूर दृष्टि के कारण यह मन्दिर ध्वस्त होगया था । अब इस मन्दिर का पुन-रुद्धार भागवत भवन के रूप में हुआ है इस अवधिमें यह ढेर मात्र ही शेष था जनश्रुति के अनुसार केवल मस्जिद ही एक बनी रही जो मन्दिर पर ही निर्मित है ।

शब्दार्थ--शम्भुभूभृति=कैलाश पर्वत । प्रांशु=लम्बे । रम्भायित=कदली-वत् हिन्दोलिका=पालना । वः=आपका । शम्=कल्याण । व्यालोलीकृत=कंपाये । दुद्रुवु=भाग गये ।। २ ।।

अनुवाद—विशाल गजराजके विकट गण्डस्थल जैसे प्रतीत होनेवाले (प्रलय-कालमें भी जलमें न डूबने वाले) हिमालयकी पुत्री पार्वती मांके स्तन तटपर प्रति-बिम्बित अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को देखकर—"यह कौन मेरी माता के स्तन का पान कर रहा है" इस क्रोध से अंधत्व के कारण उत्पन्न गम्भीर गणेश जी की गर्जनाएं आपके विघ्नों का नाश करें ।।३।।

विशेषः यहां भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ।

वालक की स्वाभाविक मनोवृत्ति के साथ गणपति का तादात्म्य किया गया है । पार्वतीके स्तन तट का उज्ज्वलत्व और उसमें गणपति का प्रतिबिम्ब देखना कविकी उच्च कल्पनाका निदर्शन है ।

---

(१) कमुम्भतीति कुम्भी=गजः ।
(२) स्तनं धयति धे+खश्, मुम् च-स्तन्य पान करने वाला ।

गम्भीराम्भोधिभङ्गोत्तरल-तरतरी-तुल्यभूचक्रवालं
व्यग्रव्यालेन्द्रमिन्द्रे दधति पल [1]भुजामद्भिमुद्धर्त्तुमौग्रम् ।
निद्राभङ्गादपाङ्गावलदलसमटद् भ्रूपुटीभ्रूकुटी-भाक्
शं वो लम्बोदरोऽव्यात्प्रलय - घनघटाटोप नाटी रवेण ॥ ४ ॥
कदाचित्कर्पूरैः कुचकलशयोः सीम्नि हरिणा
विनाकूतं वीणा ललित ललना कापि लिलिखे ।
श्रियस्तां पश्यन्त्या मुकुलित दृगन्तस्मितलवं
चलत्कर्णोत्तंसं जयति शिरसो धूननविधिः ॥ ५ ॥

प्रालेयाचल नन्दिनी—यह पार्वती का नाम है। प्रालेयाचल के नाम से हिमालय प्रसिद्ध है क्योंकि 'प्रलय' शब्द कोषमें पाले के लिये आया है, "प्रलीयन्ते पदार्था अत्रेति प्रलयो हिमाद्रिस्तत आगतं प्रालेयम्" जहां पदार्थ प्रलीन होवें वह हिमाद्रि है—'प्रालेयं महिका चाथ हिमानी हिमसंहतिः ॥' १। ।१८ अ० को०
स्तनन्धय=स्तन पान करने वाला, 'स्तनपा च स्तनन्धयी" (अ० को०) ॥ ३ ॥

पुनः श्रीगणपतिकी वन्दनाः—

अनुवाद—अपने शत्रुराक्षसोंके उग्र समूहको समुद्रके जलसे बाहर निकालनेके लिये - गम्भीर समुद्रकी उत्ताल तरङ्गोंके बीच नौकाके समान डगमगाते भूमण्डल और उसे धारण करनेके लिये व्यग्र शेषको इन्द्रद्वारा धैर्य बँधाकर स्थिर किये जानेपर, निद्रा-भङ्गके कारण नेत्र प्रान्ततक चंचल भौंहसे सुशोभित सरोष-पलकयुक्त भृकुटी धारण किये हुए, प्रलय-कालकी घन-घटाके समान शब्द ध्वनिद्वारा श्रीगणेशजी, समस्त विघ्नोंसे आपकी रक्षा करें। (अथवा प्रलयकालीन घन-घटा शब्दसे निद्राभङ्ग श्रीगणपति रक्षा करें)॥ ४ ॥

विशेष—इन्द्रके शत्रु समुद्रमें छिप गये थे इन्द्रने उन्हें निकालनेका यत्न किया तो समुद्रमें उत्ताल तरङ्गें आईं और उनकी ध्वनि प्रलय-कालीन मेघोंकी घटाके समान बन गई फलतः श्रीगणपतिजीकी निद्राभङ्ग हो गई और उन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ उसकी प्रतिक्रिया भृकुटियों द्वारा व्यक्त हुई है ॥ ४ ॥

मानवती श्रीजीके द्वारा मस्तक हिलाकर किये गये, निषेध के उत्कर्षका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अनुवाद—किसी समय भगवान् श्रीहरिने बिना किसी अभिप्राय विशेषके श्रीजीके कुचकलश युगलकी सीमापर कपूर-परागसे वीणा धारणसे सुन्दर लगने-

---

(१) राक्षसानाम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[1]करांम्भोजे कञ्जी मदन मद-भञ्जी पदजुषां
मनः पुञ्जारञ्जी मुखरमणि-मञ्जीरचरणः ।
कला कूत-व्यञ्जी व्रज युवति-सञ्जी जलमुचां
गभीरा भागञ्जी मम स परमं जीवन धनम् ।।६।।

वाली ललनाको अङ्कितकर दिया जिसे देखकर श्रीजीके नेत्र बन्द हो गये । नेत्र-प्रान्तस्मित (कटाक्ष) रहित होकर प्रणयसे कुपित होकर वे सिर हिलाने लगीं जिससे कानोंके कुण्डल हिलने लगे उनकी इस सिर कम्पन विधिकी जय हो।

विशेष—(१) भगवान्‌के द्वारा प्रणयकुपितकीगई श्रीदेवीका चित्रण है ।

(२) स्तनाग्र भागपर चित्र बनाना प्रमोद है ।

(३) श्रीजीने अन्य स्त्रीके चित्रको भगवान्‌की प्रेयसी समझकर प्रणयकोप किया है ।

(४) शृङ्गार-रसका वर्णन है ।। ५ ।।

श्रीकृष्णकी वन्दना--

अनुवाद--करारविन्दमें कमल धारण करनेवाले कामदेवके गर्वको नष्ट करनेवाले, भक्तोंको आनन्द देनेवाले चरणोंमें शब्दायमान मणि-नूपुर धारण करने वाले, भङ्गिमा (कला विशेषको) प्रकाशित करनेवाले व्रजयुवतियोंके साथ रहनेवाले अपनी कान्तिसे मेघकी नील आभाको तिरस्कृत करनेवाले (श्रीकृष्ण) मेरे परम प्राणधन हैं ।। ६ ।।

विशेष--भगवान्‌को कमल अत्यन्त प्रिय है उनके सर्वावयवोंकी उपमा भी कमलोंसे दीजाती है । कमल उनका आयुध भी है क्योंकि चतुर्भुज रूपमें शख-चक्र-गदा और कमलोंका वर्णन प्रायः सर्वत्र ही वर्णित है । प्रभुकी प्रियतमा लक्ष्मी-जीका तो वास ही कमलमें है अतः उन्हें कमलालया कहा गया है वे कमलजा भी कही गई हैं । भगवान्‌के चरणोंके नूपुर भी सुन्दर शब्द व्यक्तकर रहे हैं और

---

(१) कराम्भोजे कञ्जोऽस्यास्तीति कञ्जी । तथा मदन गर्व विनाशी । भक्तानां मनः पुञ्जमासमन्ताद् रञ्जयतीति तथोक्तः । अत्र सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः । यथा-- 'शरैः शातित पत्रः'' 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्'' इति च भाष्ये । कलया कयापि भङ्ग्याऽऽकूत प्रकाशकः । व्रजयुवति सहितः सञ्जोऽस्यातिति सञ्जी ''षञ्ज सङ्गे'' भौवादिको धातुः तथा तिरस्कृत जलद गम्भीर कान्तिः । स कृष्ण मम परमं जीवन धनम् ।। ६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छन्दः स्वच्छन्दभावः पदमपि च पदं तेऽभिधा चाभिधेयं
शुद्धा रीतिश्च रीतिं रसमपि रसना स्रग्गुणः स्राग्गुणौघम् ।
व्यङ्ग्यं व्यङ्गश्च मध्यो जननि मणिमयालङ्क्रियालंक्रियां च
भ्रूभङ्गी वाग्विभङ्गीं मम वदनदरी-द्वारि दीर्घं प्रसूताम् ॥ ७ ॥

उनकी कलासे अप्रकटित भावोंका भी प्रकाशन हो जाता है । श्रीकृष्णको भंगिमा के संकेत ही तो सर्वस्व हैं जिन्हें व्रजाङ्गना पूर्ण रूपमें समझती हैं, सर्वदा व्रज-गोपिका ही उनके साथ रहती भी तो हैं, उनकी आभा मेघकी कान्तिका भी तिरस्कार करने वाली है और कविके यही परमधन हैं । इस वर्णनसे ज्ञात होता है कि कवि भगवान् श्रीकृष्णका ही परमभक्त है और जिस श्रीकृष्ण-जन्म स्थानपर निर्मित प्रसादके समय वह उपस्थित है और जिसके भव्य मन्दिरका वर्णन अष्टम उल्लास में कवि द्वारा किया जायगा उनके प्रति भक्ति-भावका प्रदर्शन है ॥ ६ ॥

सरस्वतीकी वन्दना :

अनुवाद—हे माँ ! आपका उन्मुक्त कृपा भाव, छन्दः शास्त्रको (प्रकट करे) आपका श्रीचरण पदशास्त्रको, आपका नाम वाच्यार्थको, आपका सूक्ष्म मध्यभाग--व्यङ्गयार्थको, आपकी मणिमय अलंकृति–अलङ्कार शास्त्रको, आपका भ्रू विलास–उक्ति वैचित्र्यको दीर्घकाल तक मेरे मुख विवरक द्वारपर प्रकट करे ।।७

भावार्थ –भाव यह है कि सरस्वतीजीके स्वच्छन्द भावसे कविके छन्द प्रकट होवें अर्थात् छन्दोंके चयनमें कविको प्रयास न करना पड़े वे अपने आपही आवें । सरस्वतीके पद (चरण) कविताके पदोंको या सुप्तिङ् आदि पदोंको प्रकट करनेमें सहायक होवें । माँकी वाणीद्वारा वाच्यार्थ और शुद्ध रीतिसे काव्यगत–गौडी-वैदर्भी-पांचाली आदि रीतियां आवें । माँकी रसनास काव्यमें रस आवे तथा कण्ठमालाके गुण (रज्जु) से काव्यमें गुण आवें, माँके मध्यभाग, मेरी व्यङ्गो-क्तियोंको उत्पन्न करें । उनकी मणिमय अलक्रिया, काव्यमें अलङ्कार-उपमा-श्लेष-उत्प्रेक्षा-रूपक आदिको लावें, भ्रूभङ्गिमासे, उक्ति वैचित्र्य उत्पन्न होवे ।

सरस्वतीकी कृपाके बिना काव्य प्रणयन सम्भव हो नहीं है, अतः जननी सरस्वतीकी वन्दना करना स्वाभाविक ही है । श्रीसरस्वतीके अवयव साम्यसे कविताके अंश किंवा अवयवोंका निरूपण है ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नीलं धाम दधाति नाम मथुरां, तां मूर्द्धिन धत्ते धरा
तां मूर्ध्ना भजते भुजङ्गमपतिस्तेभ्यः किमाचक्ष्महे ।
त्रैलोक्यं तृणवत्तनुस्थमविदन्यस्तं दधन्मोदते
तस्मै भक्ति जडायमानवपुषे, कूर्माय कुर्म्मो नमः ॥ ८ ॥
दोषोद्गारे दशास्यो, गुणगणगणने यः खरो, दूषणाख्यो-
मौखर्य्ये, मेघनादः, परम परशुमाकर्णने कुम्भकर्णः ।
वैभीषण्यं, च भेजे परिषदि यदभूज्जानकी प्रौढबाधा
स्याच्चेत्सोद्यापि जीवी खलप [1]ल भुगहो राघवेन्द्रः सहायः ॥९॥

कूर्म भगवान्‌की वन्दना :

अनुवाद – यह मथुरा नगरी श्रीकृष्ण रूप नील तेजको धारणकर रही है और उस मथुराको पृथ्वी अपने सिरपर धारण किये हुए है, पृथ्वीको शेषनागजी अपने मस्तकपर धारण किये हुए हैं। इनके लिये क्या कहें शरीरपर तिनकेके समान स्थित त्रिलोकीके भारको--जानकर अनायास उसे धारण करनेवाले कूर्म भगवान्‌को हम प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥

विशेष--(१) मथुरामें भगवान्‌का नित्य-निवास है, श्रीमद्भागवत में लिखा है-- "मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः।"

(२) पृथ्वी शेषजीके फणपर स्थित है-- 'पृथ्वीशेषधृता" आदि श्लोकोंमें इसका प्रमाण है।

(३) कूर्मके जड़ीभूत देहकी सुन्दर कल्पना है।

(४) शेषको कूर्म धारण किये हुये है ऐसा पुराणोंमें वर्णन आता है। प्रकटावतारमें भगवान् कूर्म समुद्र-मन्थनके समय दर्शन देते हैं सुरासुर जब समुद्र मथने लगे तब मन्दर पर्वत डूबने लगा--देवगण भयभीत हुए और उन्होंने रक्षाके लिये भगवान्‌की वन्दनाकी फलतः मन्दर धारणके लिये प्रभुने कूर्मका रूप धारण किया। यह वर्णन श्रीमद्भागवत-पुराणमें अष्टम स्कन्धमें वर्णित है—

"कूर्मायतस्मैनमः।" ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीरामकी वन्दना :

अनुवाद—अपने दोष कथनमें दसमुखवाले, दूसरोंके गुण समूहकी गणनामें (खर) नामतीव्र, अपने गुण सुननेमें दूषण=दोष मानने वाले वाग्वैभव

---

(१) खल एव पलभुग् राक्षसः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोषासौन्दर्य्यकृद्यः कुजनुषमपि यः सौमनस्यैः प्रकुर्व-
न्प्रख्यातं क्षोणि[1]चक्रे, सफलयति परिद्वेष्टि चक्रं हठाद्यः ।
यश्चक्रे पङ्कभूतं कुमुदमपि समालम्बमात्रं सदालेः
सोऽन्तः प्रोद्यत्प्रसादो विधुरिव सुजनःस्यान्नु किं सर्वमूर्द्धनि ॥१०॥

मुखरतामें मेघनाद=मेघ गर्जन तुल्य, दूसरोंके सुन्दर उत्कृष्ट गुणोंको सुननेमें कुम्भकर्ण=बड़े-बड़े कानवाले, सभामें भक्तजनकी महती बाधा सुनाई दे तो विभीषणता=भयङ्करता धारण करनेवाले, दुष्टरूपी राक्षसके रक्तको सुखानेवाले, भक्तोंको आज भी जीवित रखनेवाले भगवान् राघवेन्द्र श्रीराम (हमारे) सहायक होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ--(१) दोषोंके उद्‌गिरणमें अनेकों मुखोंद्वारा वर्णन करता हो दूसरेके गुणोंकी गणनामें खर अथवा दूषण नामवाला हो, मुखरतामें मेघके समान गर्जनवाला, दूसरोंके शुभवृत्त सुननेमें कुम्भकर्ण=द्वेष के समान, सभामें भयङ्कर रावण जैसा भी हो जिसके जीवनको जानकी विशेष बाधा बन गई (ऐसा दुष्ट राक्षस भी जीवित हो) तो राघवेन्द्र हमारे सहायक बनें ।

विशेष—(२) इस श्लोकमें मुद्रालङ्कार है ।

(३) अन्यार्थ परक शब्दोंके द्वारा रावणके विशिष्ट योद्धाओंका उल्लेख है । यथा--रावण, खर, दूषण, मेघनाद कुम्भकर्ण, जानकी आदि ॥ ९ ॥

सुजनोंकी चन्द्रमाके समान स्थिति :

अनुवाद—जो सुजन (सज्जन) चन्द्रमाके समान हैं वह क्यों न सबके शिरपर हो । सुजन और चन्द्रमा दोनों ही वन्दनीय होते हैं ।

चन्द्रमा रात्रिका सौन्दर्य बढ़ाता है, तो सुजन दोषोंकी असुन्दरताको प्रकटकर देता है । जिस तरह चन्द्रमा अपने कलङ्कित जीवनको भी भूतलपर दूसरोंका आह्लाद बढ़ाकर सफल बनाता है, उसी तरह सुजन अपने भूतलपर गृहीत जन्मको भी सुन्दर गुणोंके द्वारा विख्यात बनाकर सफल बना देता है । चन्द्रमा हठपूर्वक--अन्धकार मण्डल राहुका द्रोह करता है अथवा चक्रवाक मण्डलको दुःखी बनाता है--वैसे ही सुजन अज्ञानका निवारण करता है, काम-क्रोधसे द्रोह करता है । चन्द्रमा कीचमें उत्पन्न कुमुद (रात्रि विकसित होनेवाला कमल) को भी अलि-समूहका सदा आलम्बन बना देता है वैसे ही सुजन भी कीच तुल्य नीच

---

(१) पृथ्वी—धरा धरित्री धरणो क्षोणीज्या काश्यपी क्षितिः । (इत्यमरः)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रारम्भि मित्रमिश्रेण बिबुधानन्द वर्द्धिनी ।
स्वर्ण सम्पूरिता चम्पूरियं पूरिव[1] भैरवी ।।११।।

कुलमें उत्पन्न, कदिन्द्रिय तर्पण-परायण भोगासक्त जनको भी सत्पुरुषोंकी पक्तिका आलम्ब्रन बना देता है । अन्तःकरणकी स्वाभाविक प्रसन्नतासे मुक्त वह सज्जन आकाशके मध्यमें प्रकाश बिखेरते हुए चन्द्रमाके समान सबके शिरपर स्थित क्यों न हो ? ।।१०।।

विशेष—सुजन सम्मानके भाजन हैं इस तथ्यको चन्द्रमाके द्वारा समझाया है । दोनोंका साम्य बड़े ही चातुर्यके साथ रखा है कलङ्कित जीवन अर्थात् चन्द्रमाके कलङ्क और सुजनके गुणको सङ्गतिसे दूसरेके आनन्दकी चर्चा है । सज्जन अपने हृदयमें सदा प्रसन्न रहता है, अपने गुणोंसे दूसरों को उपकृत करता है । दोषों की अमुन्दग्ताका आशय है दुर्गुणोंको दूर करके सद्गुणोंको भर देना । श्लेषालङ्कारमें जो विशेषण चन्द्रमाके हैं वही सज्जनके हैं प्रस्तुत किया है ।।१०।।

ग्रन्थके सन्दर्भमें वक्तव्य :

अनुवाद—श्रीमित्रमिश्रके द्वारा प्रारम्भकी गई यह सुन्दर वर्णोंसे युक्त तथा विद्वानोंका आनन्द बढ़ानेवाली "आनन्दकन्द-चम्पू" नामक कृति—

देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाली, सुवर्ण तथा धन-धान्यादिसे परिपूर्ण भैरव नगरी (भूतेश्वर क्षेत्र) मथुरापुरीके समान है ।।११।।

विशेष—भैरव नगरीसे 'काशीनगरी' भी गृहीत है । काशी और दोनों ही धन-धान्यपूर्ण और विद्वानोंसे युक्त हैं । कविने इस चम्पू ग्रन्थका आरम्भ जिस नगरके मध्य किया है उससे मथुराका ही वर्णन युक्ति-युक्त होता है क्योंकि— मथुराके वैटुष्यका वर्णन इसी उल्लासमें कविने वर्णित किया है । दूसरे—'भूतेश्वर क्षेत्र' मथुरा है । सङ्कल्पमें "भूतेश्वर क्षेत्रे बौद्धावतारे" बोलनेका विधान है । मथुराके कोतवाल श्रीभूतेश्वरनाथ महादेव हैं जो अति प्राचीन शिवलिंगोंमें मथुरा में पूजित हैं तथा कृष्णजन्म स्थानके समीप भी हैं । मथुराकी यात्रा भूतेश्वरनाथके दर्शनोंसे पूर्ण होती है ।

चम्पू की विशेषतामें यह कविका प्रतिज्ञा वाक्य है वह समुचित ही है क्योंकि इस कृतिमें कविने जिस प्रकारकी समास बहुलाशैली प्रारम्भकी उसका

(१) पूः (स्त्री) पुरी नगर्यौ (वा) पत्तनं पुटभेदनम् । (इत्यमरः)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीमथुरा वर्णनम्

अस्ति किल सकल महीतल तिलकमनाकुलमतुल पदाधिरूढ-गूढ-गरिम-प्रौढ महिम-व्यूढमधुरिम रमणीयतैक विश्राम धाम तामरस[1] जन्मनो निर्माण कौशलैक-साक्षिणी साक्षिणी[2] सफलितवतीह पुण्यजन्मनो, जगदुपरिवरीयसी, परमश्रेयसी सुकृतिकुल प्रेयसी, मथुरानाम नगरी न गरीयसी[3] केषाम् ॥१२॥

या हि मणिरिव परचिन्महामहसः, खनिरिव महनीय हरिनीलमणेः, अविकुण्ठ गरिम निगमदरीव वैकुण्ठकण्ठीरवस्य, अति दीर्घदर्शिदेवर्षि मानसमान-सदीर्घिकेव-शबरी धवधवल-हलायुध-गीर्वाण-कुञ्जरस्य, भुजगपति साभोग-भोग-शय्येव, भोगिराज-बहुवदन जेगीय-

---

निर्वाह ग्रन्थके अन्ततक किया है। कोषोंके शब्द तथा श्लेष, रूपक, अतिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारोंसे परिपूर्ण इस चम्पूको पढ़कर विद्वानोंको अवश्य आनन्द आता है। शब्दालङ्कार योजना तो सर्वत्र ही है।

भाषाप्रौढ़ है, अनेक छन्दः समूहसे उपनिबद्ध है। लालित्य परिपूर्ण है। गोपालचम्पू–वृन्दावनचम्पू जैसे ग्रन्थ 'व्रज' भागपर लिखे गये हैं किन्तु मथुराके सम्बन्धमें श्रीकृष्णजन्म-भूमिके वर्णनमें यह ऐतिहासिक कृतियोंमें अद्यावधि उपलक्ष्य काव्योंमें अनुपम एवं अद्वितीय ही है ॥११॥

मथुरानगरीका वर्णन :

अनुवाद—सम्पूर्ण पृथ्वीका तिलक—स्थिर अतुलपद प्राप्तिके गौरवकी गरिमासे युक्त प्रौढ महिमावाली, समुन्नत मधुर रमणीयताकी विश्रामस्थली, पद्मनाभकी नाभिकमलसे उत्पन्न चतुरानन (ब्रह्मा) के निर्माण चातुर्यकी साक्षिणी भूमण्डलमें पुण्यात्माओंके नेत्रोंको अपने दर्शनसे सफल बनानेवाली जगत्में सर्व-श्रेष्ठ, परम मङ्गलमयी, विद्वत् कुलकी प्रियतमा मथुरा नामकी नगरी किसके लिये गौरवमयी नहीं है, अर्थात् सबकी वन्दनीया है, सबकी प्रिया है ॥१२॥

अनुवाद—जो परम चैतन्य महत्तेजकी मणिके समान है, महनीय हरि नीलमणिको खानके समान है, श्रीवैकुण्ठनाथकी मानों अपार गौरवमयी वेदकी

---

(१) तामरसः–कमलम्—"पकेरुहंतामरसं सारसं सरसीरुहम्।" (इत्यमरः)
(२) सा अक्षिणी इति पदच्छेदः।
(३) गुरु+ईयसुन्, गरादेशः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानमहिमबहुनयन-पेपीयमानमधुरिम-मधुरिपु-निभृतनिवासस्य, चतुरानन [कृतिरि] इव चक्रिरिपु-चक्र, चक्रकमल-कौमोदकी-कम्बु-कमला-कौस्तुभादि विधानस्य, दम्भोलिपाणिरिव बहुविध बिबुध-सम्भार-सम्भावित सु-धर्म्माखर्व्वाकृत शर्म्मावहकर्म्मादिः, अधर्मादि विर्रतिश्च, जम्भभेदिनी राजधानीव, उद्यानवनीवोद्यत्सुमनः प्रद्योतमान सन्तान-परम्पराभिरामा, द्यौरिव नक्षत्र मित्र द्विजपति-चित्र-चरित्र-चित्रिता-भोगा, ज्योतिर्मय मण्डलीव, रुचिरनमामन्द जीव मङ्गलानन्द-कन्द-सुन्दर मन्दिरा, निखिल विराजि-राज कवीनबुध बहुविध भावलीव-लितकेतुश्च, गम्भीर जलधिरिव भुवनाभिराम सम्भृत श्रीः ॥१३॥

कन्दराके समान है, अतिदीर्घदर्शी, तत्वज्ञ देवर्षि नारदजीके मनरूपी मानसरोवर की झीलके समान है जिसमें चन्द्रसे श्वेत श्रीहलधर रूप ऐरावत विहार करते हैं। नागराज शेषजी हजारों मुखोंसे जिसकी महिमाका गान करते हैं, और हजारों नेत्रों द्वारा जिसकी रूपमाधुरीका पान करते हैं ऐसे मधुसूदन भगवान्के एकान्त वासकी जो शेषशय्या के समान मूर्तिमती भोगशय्या है। भगवान् विष्णुके शत्रु समूहके विनाश हेतु चक्र-कमल कौमोदकी गदा, शङ्ख कमला, कौस्तुभमणि आदि के विधानके लिये ब्रह्माकी रचनाके समान है (क्योंकि मथुरामें 'भगवान् विष्णु' शंख, चक्र, गदा, पद्म आदिके साथ ही श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुये थे), अनेक देव समूहोंसे पूजित सुधर्मा देवसभाके उत्तम कल्याणकर कर्मादिको करनेवाले वज्र-पाणि इन्द्रके करके समान, जो (मथुरा) विद्वन् समूहसे पूजित है, सुन्दर धर्मकी वृद्धि करनेवाले कल्याणकारक कर्मसे युक्त है, जम्भासुर विनाशी इन्द्रकी राज-धानीके समान अधर्मादिकी विरतिवाली है ('पापी' इन्द्रकी राजधानीमें नहीं जाते. मथुरामें भी किसीकी अधर्ममें रति नहीं है), सज्जनोंकी प्रकाशमान प्रतापी सन्तान परम्परासे सुन्दर लगनेवाली यह मथुरा है जो खिले हुये फूलोंकी विकास परम्परामें मनको अच्छी लगनेवाली उद्यान भूमिके समान है, आकाश-मण्डल नक्षत्र गणनामें पारंगत ज्योतिषी ब्राह्मणोंके तरह-तरहके चरित्रोंसे चित्रित भूभागयुक्त है, शनि, गुरु, मंगल चन्द्रके सुन्दर निवासवाली ज्योतिर्मय मण्डलीके समान, भाग्यशाली जीवोंके मङ्गल करनेके लिये अवतीर्ण–आनन्दकन्द श्रीकृष्ण-चन्द्र भगवान्के सुन्दर मन्दिरवाली यह मथुरा बहुत ही अच्छी है। समस्त नक्षत्रोंके राजा चन्द्रमा, शुक्र, सूर्य, बुध तथा तरह-तरहके नक्षत्र (तारों) से युक्त केतुवाली ज्योतिर्मय मण्डलीके समान यह मथुरानगरी समस्त शोभमान राजकवीन्द्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यां च कामधेनुमिव कामैकतान मनसः, कल्पलतामिव विगत-विकल्प-जल्पानल्प-संकल्प-निपुणाः, चिन्तामणिमिव चिन्ता - सन्तान-सन्ततसतता-शान्त-सन्तति सीमन्तिनी-सान्त्वनोपायर्जर्जर स्वान्ताः[1], अतिशीतल-सलिल सम्भार-सम्भृत सरसीमिव शुचि[2] समयमध्यदिन-सरसीरुह-रमण-शतकोटि[3]-कोटि-कठिन-किरण कलापाकुल चेतसो, विष-हरण धुरीण महामान्त्रिक [की] मिव कटु भूयिष्ट-कालकूट गरल-गरिष्ट-निष्ठुर-दुष्ट दीर्घ[4] पृष्टदष्टपरिमुष्ट-क्लिष्ट मतयो, मातरमिव

विद्वानोंके अनेकों कान्तियुक्त ध्वजों (झण्डों) से युक्त है। समस्त भुवनोंकी नयना-भिराम महालक्ष्मोको धारण करनेवाले गम्भीर समुद्रके समान यह मथुरा भुवना-भिराम शोभाको धारण करनेवाली है ॥ १३ ॥

अनुवाद—जिस प्रकार भोगासक्त चित्तवाले कामधेनुकी तरह अनेक विकल्पोंकी कल्पना छोड़कर विविध संकल्प करनेवाले लोग, कल्पलताकी तरह, अनेक विघ्न-चिन्ताओंसे निरन्तर अशान्त रहने--स्त्री-पुत्रादिके सान्त्वना देनेमें चिन्तित हृदयवाले लोग--चिन्तामणिकी तरह, ग्रीष्मकालके मध्याह्नके समय कमलोंके साथ क्रीड़ा करनेवाली सूर्यकी किरणोंसे सतप्त चित्तवाले लोग--अत्यन्त शीतल जलसे परिपूर्ण सरसी=झीलकी तरह, अत्यन्त तोखे कालकूट विषसे अति कठोर भयङ्कर सर्पसे दष्ट होनेके कारण नष्ट बुद्धिवाले लोग—विषहरणमें कुशल महामान्त्रिक गारुड़ीकी तरह, अत्यन्त क्षुधासे पीड़ित सुकुमार किशोर—माताकी तरह, यौवनके उन्मादसे धैर्यहीन होकर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका विचार न करनेवाले कायर कामुक लोग—कामके आवेशमें मत्त प्रमदाकी तरह जिस मथुरा नगरी-की 'इन्द्रियोंको वशमें करनेवाले संयमी सदा सेवा करते हैं ॥१४॥

विशेष—भाव यह है कि लोकमें व्यक्तियोंको अनेक इच्छायें उत्पन्न होती हैं और उन्हें पूर्ण करनेके लिये वे विविध प्रयास करते हैं, अनेक उपायोंका अवलम्बन ग्रहण करते हैं उन उपायोंमें जो उत्तमकोटिके उपाय हैं उनकी तालिका इसमें दीगई है। कामधेनु इच्छा पूर्ण करती है, कल्पलता संकल्प पूरा करती है।

(१) स्वन्यते स्मेति स्वान्तम्,—
चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः। [अ० को० १ ५।३१]
(२) शु च् + कि = ग्रीष्म ऋतुः।
(३) शतकोटिः स्वरुःशम्बो दम्भोलि ।
(४) दीर्घपृष्ठ—सर्प।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दुःसहक्षुधातिकातरतयातुर सुकुमार किशोराः, मदन मद-मेदुर प्रमदा-मिव यौवनोन्माद मथित-धैर्यतयाऽविचारित कार्य्याकार्य्यकदर्य्य-काम-परतन्त्राः, यमिनो निषेवन्ते ।।१४।।

यया च शरदेव निशा, निशयेवचन्द्रिका, चन्द्रिकयेव चन्द्र-मण्डली, चन्द्रमण्डल्येव कुमुदपरंपरा, कुमुद परम्परयेव दीर्घिका[1], दीर्घिकयेव राजधानी, राजधान्येव जनधोरणी, जनधोरण्येव धरणि-धवललक्ष्मीः, धरणिधवल लक्ष्म्येव धरणि धवतनूः, अविकल सकल-समुत्तुङ्गमङ्गला-लिङ्गिता शुशुभे वसुन्धरादेवी ।।१५।

चिन्तामणि चिन्ता हरण करती है ये दिव्य उपाय हैं इसी प्रकार भौतिक उपाय जैसे गर्मीमें पीड़ितको ठण्डे जलकी झील मिल जाय तो तृप्ति होती है, विष-व्याप्तको गारुड़ीमन्त्र ज्ञातासे जीवन मिलता है कामुकको कामिनी प्रिय लगती है, ठीक वैसेही अन्य लोग इस मथुरा-नगरीका सेवन करते हैं साथही संयम धन-वाले न हों ऐसा नहीं, कुछ भी कामना न करनेवाले तो यहां निरन्तर बनेही रहते हैं यही तथ्य है ।

'मथुराको' इच्छा-सङ्कल्पोंकी पूर्ण करनेवाली बतलाया गया है ।।१४।।

अनुवाद—जिसप्रकार शरद-ऋतुसे रात्रिशोभित होती है, रात्रिसे चन्द्रिका, चन्द्रिकासे चन्द्रमण्डल, चन्द्रमण्डलसे कुमुदकी पंक्ति, कुमुद-पंक्तिसे वाटिका, वाटिकासे राजधानी, राजधानीसे जनधोरणी=शिविकायान, और शिवकायानसे राजलक्ष्मी और राजलक्ष्मीसे राजाका शरीर शोभित होता है उसी प्रकार इस मथुरानगरीसे-निरन्तर सम्पूर्ण सन्मङ्गलोंसे आलिङ्गित यह वसुन्धरादेवी सुशोभित होती है ।।१५।

विशेष—मथुरामें "नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलम्" की भावना है। भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमि होनेके कारण और व्रजमण्डलके अलौकिकत्वके कारण यहां वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मासमें कोई न कोई उत्सव होता ही रहता है और भूमण्डलका एक विशिष्ट अङ्ग है अतः इससे समस्त पृथ्वीका सुशोभित होना युक्ति-युक्त है।

अलङ्कारकी छटा दर्शनीय है ।।१५।।

---

(१) दीर्घिका—वापी—वेशन्तः पल्वलं चाल्पसरो वापी तु दीर्घिका ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यस्यै च महेन्द्र चन्द्रवरुणहुताशनशमनसमीरण धनपतिसन्नरकिन्नराप्सरोगणगुण गरिम गभीर गर्व्वाखर्व्व गन्धर्व गीर्व्वाणादिभिरपि महासम्पदो नाद्रियन्ते ॥१६॥

यस्याश्च शातकुम्भ[1] कुम्भसुभगाडिम्भ कुम्भीन्द्र कुम्भप्रतिम कुचभारसम्भासित रम्भादि सम्भावित जम्भाराति सुरसम्भार संवाह्यमान चरणाम्भोजानि कान्यपि पदानि तृणीकुर्वाणैः सर्वानिर्वचनीयानि ब्रह्म सुखान्यनुभूयन्तेकृतिभिः ॥१७॥

अनुवाद—महेन्द्र, चन्द्र, वरुण, अग्नि, धर्मराज, कुबेर, सन्नर, किन्नर अप्सरा आदिके गुणोंकी गरिमासे गम्भीर गर्वसे समुन्नत गन्धर्व-देव आदि भी मथुराकी सम्पत्तिको देखकर अपनी सम्पत्तिका आदर नहीं करते हैं ॥१६॥

विशेष--मथुराकी सम्पत्तिके सामने देवोंकी सम्पत्ति भी तुच्छ है और सब कुछ देवोंके पास है तब भी वे मथुराके निवासके लिये सदा लालायित हैं। वे चाहते हैं कि हम मथुरा मण्डलमें सदा निवास करें इस महिमाके वैशिष्ट्यके कारण ही वे अपने दिव्य वैभवको तुच्छ बना रहे हैं--रसखानि भक्तने ठीक ही फिर तो लिखा है--

'कोटिक हौं कलधौतके धाम करीलकी कुञ्जन ऊपर वारों।"

देवगण जिस भूमिको प्राप्त करनेकी उत्कट अभिलाषा रखते हैं तो मनुष्य अपना सर्वस्व छोड़कर यहाँ रहना चाहता है तो क्या बड़ी बात है-- श्रीछीतस्वामीने लिखा है--

एहो विधिना तोसौं अंचरा पसार माँगौं।
जनम जनम दीजौ मोहि याही व्रज बसिवो॥ ॥१६॥

अनुवाद—सोनेके कलशके समान सुन्दर–मत्तगजके गण्डके सदृश स्तनभारसे शोभित रम्भा आदि अप्सराओं द्वारा सुपूजित इन्द्रादि-देव समूहोंके द्वारा समाराधित चरणकमलवाले—"लोकोत्तर स्थल" समस्त अनिर्वचनीय ब्रह्म-सुखोंको तिनकेकी तरह तुच्छ मानकर त्यागनेवाले पुण्यात्माओंके द्वारा सेवन किये जाते हैं ॥१७॥

विशेष--मथुराके ऐसे स्थल हैं जिनकी प्राप्ति होनेपर ब्रह्म-सुखकी भी इच्छा नहीं रहतो। मथुराके निवासी अनिर्वचनीय सुखका अनुभव करते हैं ॥१७॥

---

(१) शतकुम्भे पर्वते भवम्+अण्=सुवर्णम्। अ० को० १।१०।२८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यस्याश्च बहुविधरमणीयतैक विश्राम धामस्वपि बहुविधमहिम-महीयस्यपिभूर्भवः स्वरादिषु भुवनेष्वम्बरकमल - कूर्मलोभ-शशवि-षाम-वन्ध्यातनय समानि खलु साम्यानि काम्यानि ॥१८॥

यत्र च-अगणित गोलोकगरिमाभिकुण्ठित बैकुण्ठ महिमावधी-रित सनिधिपयोनिधि सपदिविवियोजित योगीन्द्र वृन्दमनोमन्दिरमभि-खण्डित-पुण्डरीक पति-मण्डल-मध्यमण्डन लक्ष्मीपतिरपि क्रीड़ामृग इव चिक्रीड ॥१९।

अहो चतुर्दशभुवन-विभावन[1]-चतुरस्यापि चतुराननस्य न च वचसो न चेतसोपि गोचरो महिमा मथुरायाः ॥२०॥

तथा हि

पुराण पुरुषः क्वासीत्पुराणे पुरेषु न ।
पुराणानि प्रमाणानि मथुरैव नवं व्यधात् ॥२१॥

अनुवाद—अनेक प्रकारकी रमणीयताओंके एकमात्र विश्राम-स्थल, विविध महिमाओंके कारण महनीय-भूर्लोक-भुवर्लोक-तथा स्वर्गलोक प्रभृति भुवनोंमें जिस मथुरानगरीकी समताकी कामना-मात्र, आकाशकमल कच्छपरोम, खरगोशके सींग और वन्ध्या पुत्रकी प्राप्तिके समान है ॥१८॥

विशेष--मथुरानगरीके साम्यको पाना कठिन है। आकाशमें कमल पाना--कच्छपके रोम पाना और वन्ध्याके पुत्रके समान है ॥१८॥

अनुवाद--और जहाँपर--गोलोककी गरिमाको न गिनकर, वैकुण्ठकी महिमाको कुण्ठितकर निधिसहित क्षीरनिधिकी उपेक्षाकर, योगिराजोंके मनरूपी मन्दिरोंको त्यागकर, सहस्रदल-कमल मण्डलके सुन्दर मध्य भागकी शोभाको अस्वीकारकर लक्ष्मीपति (भगवान् नारायण) भी कठपुतली (खिलौने) की तरह खेले ॥१९॥

अनुवाद--अहो ! चौदह-भुवनोंके निर्माणमें चतुर ब्रह्माकी वाणी तथा मन मथुराकी महिमा वर्णन करनेमें असमर्थ है क्योंकि--उस महिमाको इस प्रकार प्रमाणित किया जाता है ॥२०॥

अनुवाद—पुराण-पुरुष (भगवान्) कहाँ रहते हैं--पुराणोंमें (पुरोंमें नहीं) इस न्यूनताको दूर करनेके लिये मानों उन्होंने अपना नवीन स्थान मथुरा नगरीको बनाया--इसमें पुराणोंके वचन ही प्रमाण हैं ॥२१॥

---

(१) विभावन—वि+भ+णिच्+ल्युट्=प्रत्यक्ष ज्ञान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुराऽर्ण्ण[1]त्रयी तथ्यं त्रयी[2]तोऽपि गरीयसी ।
अनुधावति सा ब्रह्म ब्रह्मैनामनुधावति ॥२२॥
रंहोभिः संहरन्त्यंहो निर्मात्यवति च श्रियम् ।
मन्ये गुणत्रयी मूर्त्ता मथुरेत्यक्षरत्रयी ॥२३॥
तापत्रयहरी पुंसां पापत्रय - नियामिनी ।
त्रिवर्गा साधिनी धन्या धरण्यां मथुरात्रयी ॥२४॥

अनुवाद—मथुरा यह वर्णत्रयी—वेदत्रयीसे भी श्रेष्ठ है महिमामें अधिक है, क्योंकि वेदत्रयी ब्रह्मका अनुधावन (चिन्तन) करती है और इस मथुरा अक्षरत्रयीका स्वयं परब्रह्म=श्रीकृष्ण अनुसरण करते हैं। अर्थात् क्रीडा करते हैं।

विशेष—भारतीय संस्कृतिमें वेदोंकी अपार महिमा है वे भारतीयोंके सर्वस्व हैं। वेद यद्यपि चार हैं किन्तु एक अथर्ववेदका अन्तर्भाव इन्हींमें होनेसे वेदत्रयी नाम पड़ गया है। अनेक ग्रन्थोंमें 'वेदत्रयी' शब्द व्यवहृत है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तीनों मिलकर वेदत्रयी कहलाते हैं। वेदत्रयीमें परब्रह्मका ही चिन्तन है अनेक देवोंके माध्यमसे उन्हींको किसी न किसी प्रकार समझा, समझाया गया है, यह मथुरानगरीकी अपनी विशेषता है जो परब्रह्म स्वयं मथुरामें क्रीडा करते हैं। एक कविने ठीक ही लिखा है—

शेष महेश गनेश दिनेश सुरेशहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि अखण्ड अनन्त अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से शुक जाहि रटैं पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरको छोहरिया छछियाभरि छाछपै नाच नचावैं॥

भागवतकारने तो स्पष्ट लिख ही दिया कि मथुरामें भगवान् सर्वदा विराजमान रहते हैं—

"मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः॥" ॥२२॥

अनुवाद—मथुरा यह अक्षरत्रयी वास्तवमें मूर्तिमती गुणत्रयी, सत्त्व, रजः, तमः रूपा है यह अपने प्रभाव वेगसे पापका संहार करती है, शोभा सम्पत्ति की रचना और पालन करती है॥२३॥

अनुवाद—इस पृथ्वीपर यह मथुरा नामकी अक्षरत्रयी धन्य है जो जीवोंके दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों तापोंको हर लेती है, मनसे, वाणीसे,

---

(१) अर्णः— ऋ+न "वर्णमालाका अक्षर"।
(२) त्रयी— ऋग्वेद, यजुः साम (वेदत्रयी)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मथुरेति त्रिवर्णीयं त्रिलोकीति प्रतीयते ।
त्रैलोक्याश्चर्य्यमार्य्याणां गोचरः कथमन्यथा ॥२५॥
साकारापि - निराकार कारिणीत्यनुभूयते ।
मथुरायां निगूढेव निराकारस्य नित्यता ॥२६।
मथुरा मथुरैवेति रसज्ञा प्राह साक्षिणी ।
अद्वितीयं द्वितीयं वा मध्येऽक्षरमुदञ्चतु ॥२७॥

अहो ! अनुभव रसिकाः केचन भृशमनुभूत प्रभूत मधुरिमाणो मथुरानामनि मध्येधकारमनुबध्नन्ति । मम तु तत्र स्पृहालवोपि न भवति ॥२८।

कर्मसे किये गये त्रिविध पापोंका नियन्त्रण करनेवाली है तथा धन, धर्म, मोक्ष रूप त्रिवर्गको देनेवाली है ॥२४॥

अनुवाद--मथुरामें समागत तीन अक्षर त्रिलोकी ही प्रतीत होती है, त्रिलोकीके आश्चर्य अद्भुत बालक श्रीकृष्ण (स्वय भगवान्) यहाँ आर्यजनों-पूज्य माता-पिता, देवकी वसुदेव आदिके लिये दृष्टिगोचर कैसे होते ? ॥२५॥

अनुवाद यह मथुरा स्वयं साकार होती हुई भी निराकार कारिणी (निर्गुण ब्रह्म=श्रीकृष्णको जन्म देनेवाली) अनुभवकी जाती है, मथुरामें ही निराकर ब्रह्मकी नित्यता निहित है ॥२६॥

अनुवाद—मथुरा-मथुराही है--इसकी साक्षिणी रसको जाननेवाली यह जिह्वा है जो इसका (मथूराका) उच्चारण करती है। मथुरा=मथुरा है। इसके मध्यके अक्षर 'थ्' के स्थानपर उससे आगेका प्रथम या द्वितीय कोई भी 'द' या 'ध' अक्षर रख दिया जाय तो मथुराकी जगह--'मदुरा' मधुरा पढ़ा जायगा फलत मथुरा मदुरा-मधुराही है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि अद्वितीय अक्षर परब्रह्म द्वितीय होकर अर्थात् राधासहित यहाँ क्रीडा करते हैं ॥२७॥

विशेष—मथुरा मथुरा है, गोपी मधुरा है, ग्वाल मधुर है, यमुना मधुरा ही है, यहाँका तो सब कुछ मधुर है—आचार्य वल्लभने ठीकही लिखा है—

गुञ्जा मधुरा माला मधुरा, यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२७॥

अनुवाद--अहो अनुभव रसके आनन्दमें डूबे रहनेवाले कुछ लोग अत्यधिक मधुरिमाका अनुभव करके मथुरा नामके मध्यमें 'ध' को रखते हैं अर्थात्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथा हि—

मधुरा मधुरैव किं ततो मथुरा कामधुरा हि धीमतः।
मधुरं खलु कामधेनुजं न हि दुग्धं गुरु कामधेनुतः ॥२९॥

अपि खलु जगति विलक्षणैव विचक्षणानां सूक्ष्म समीक्षा। किमिह न साक्षात्कुरुते ॥३०॥

यया ह्यभिमत पदमवगाह्य मथुरानामतो मथुरामेव तुष्टुवुः सुधियः ॥३१॥

तथा हि—

सन्तु नामानि कामानि किं तैस्त्वां मथुरे ! स्तुमः।
आलोकयति या रामपदं तु द्विरुदीरिता ॥३२॥

मथुरा नामका उच्चारण मधुराके रूपमें करते हैं परन्तु मुझ (मित्रमिश्र) को तो ऐसा करनेकी इच्छाका लेशमात्र भी नहीं होता ॥२८॥

अनुवाद--मथुरा-मधुराही है परन्तु इससे क्या ? बुद्धिमान्के लिए तो मथुरा उसके मनोरथोंकी साक्षात् धुरी (कामधुरा) है। निश्चयही कामधेनुसे मिलनेवाला दूध मधुर होता है, परन्तु वह कामधेनुसे बढ़कर (गुरु) नहीं होता ॥

अनुवाद--संसारमें विद्वानोंकी सूक्ष्म-दृष्टि विलक्षण ही है, वह यहाँ क्या साक्षात्कार नहीं कर सकती ? ॥३०॥

अनुवाद--जिस विलक्षण बुद्धिके द्वारा अभिमत पद (शब्द) को प्राप्त=ढूँढकर मथुरा इस नामके द्वाराही विद्वान् विचारकोंने मथुराकी स्तुति-की है--जैसाकि इससे स्पष्ट है ॥३१॥

अनुवाद--अपनी इच्छासे लिये जानेवाले नाम या पद तो अनेक हैं। परन्तु उनसे क्या ? हे मथुरानगरी ! हमतो मथुरा नामसे ही तुम्हारी स्तुति करते हैं मथुरा तुम वह हो जो अपने नामका दोबार--'मथुरा-मथुरा" इस रूपमें उच्चारण करनेके साथही 'राम पद (भगवद् धाम) को प्रकाशितकर देती हो। तुम्हारे इस नामका मात्र, एकसाथ अविलम्ब दोवार उच्चारण करनेसे ही जीवका कल्याण हो जाता है ।.३२॥

विशेष--मथुरामें रामनाम छिपा हुआ है क्योंकि यदि उल्टा पढ़ा जाय और 'थु'कार अक्षर हटा दिया जाय तो 'राम' बन जायगा। यह थुकार अक्षर तो उनके मुखमें जानेके लिये है जिनके मुखसे कभी रामका नाम नहीं निकलता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीयमुनावर्णनम्

यत्र च--अतिचिक्कण दलिताञ्जन-पुञ्जगञ्ज-जगदनुरञ्जन-मञ्जुलवलदिन्द्र - नीलमणि-मद-मञ्जन-दलदिन्दीवर सुन्दर-सुकुमार रुचेश्चामीक[1] र-चारिमभरवामोभवदम्बर संवृत-शम्बर वैरि-सुभगतनो-रानन्दकन्द - सूनोरपघनमवधाय सौदमिनीतल-ललित घनाघन-सुहृद्-

---

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो जब मथुरामें श्रीकृष्णका ही सर्वत्र स्वरूप देखा तो विचार कियाकि क्या व्रजमें भगवान् राघवेन्द्रसे वैर-भाव है न कहीं श्रीरामके मन्दिर और न उनका कीर्त्तन, बस ध्यान करते ही श्रीकृष्ण प्रभुने चित्त-प्रेरित कर उनका ध्यान मथुरापर दिया कि जो 'मथुरा' शब्द है यह स्वयं राम-नामका द्योतक है। और मथुरामें रामही बसे हैं, थुकार तो उनमे बहिर्मुखके लिये है—

तुलसी मथुरा नामके जो कर जाने दोय।
जाके मुखमें सो नहीं ताके मुखमें सोय॥

भले ही किंवदन्ती ही हो पर कविका अभिप्राय मथुरामें राम--शब्द ढूँढनेका है जो युक्ति-युक्त ही है ॥३८॥

अनुवाद—और जहाँ (मथुरामें) श्रीयमुना बहती है। वे कैसी हैं— अत्यन्त चिकने पिसे हुए कज्जल समूहको तिरस्कृत करनेवाले, जगत्को आनन्दित करनेवाले, मञ्जुलतायुक्त इन्द्र नीलमणि (नीलमरत्न) के मदको नष्ट करनेवाले तथा खिले हुए नीलकमलके समान सुन्दर सुकुमार कान्तिवाले, सुवर्णकी सुन्दरताके भारको अपनी प्रतिभासे भुलानेवाले, पीताम्बरसे आवृत शम्बर नामक असुरके शत्रु आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र श्रीप्रद्युम्नके अवतार (अपघन) का निश्चयकर उसकी प्रभाके समान है। (अर्थात् प्रद्युम्नके अङ्गोंकी शोभा धारण करके यमुना बहती है और वह विद्युतसे शोभित घनके सुहृदकी आशङ्का करके निःशङ्क पृथ्वीकी गोदमें आई हुई घन परम्पराके समान है), अत्यन्त प्रसन्न होकर धर्म, अर्थ, काम मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टयको मथुरामें जन्म लेनेवाले भाग्यशाली जनके लिए प्रदान करने हेतु अमरपुरी (देवपुरी अमरावती) नगरीसे अवतीर्ण कल्पलताके समान है, स्नान करनेवालेके पाप-समूह रूपमत्स्यको अनायास विनष्ट करनेके लिये-ब्रह्माजीके द्वारा संसार-सागरमें भली-भाँति फैलाये गये अत्यन्त भयङ्कर काल जालकी मालाके समान है, निरन्तर

---

(१) चामीकर—चमीकर+अण्=सुवर्ण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गणशङ्कया निःशङ्कमङ्कमवनेरागता घनपरम्परेव, अति परितुष्टतया वितार्थ पुरुषार्थ चतुष्टय, मधुपुरी शरीरभाजेऽमरपुरीतो वितरीतुमवतीर्णा कल्पलतेव, मज्जज्जन किल्विष गणमीनमनायासेन विनाशयितुमम्बुजभुवा[1] भवार्णवे सुनिहितातिकराल-कालजालमालेव, निरवधि-निरवद्यविद्योतक - विद्योतमानसरूप - मानसमवगाह्याति गम्भीरमपि

निष्पाप रूपमें प्रकाशित तेजसे प्रकाशमान मानसरूप मानसरोवरमें अवगाहनकर अत्यन्त गम्भीर मोहमय जलको पूर्णरूपसे पीनेवाले, विवेक द्वारा अनेक उत्पल (कुमुद) समूहकी तरह यथेच्छ बढते हुए कामरूपी कमल कुलका समूल उन्मूलन करनेवाले, अत्यन्त क्षुब्ध लोभरूपी ग्राहका मर्दन करनेवाले, अत्यधिक वर्धमान मदरूपी महान् वन्यवराहका दलन (विदारण) करनेवाले अतिमात्सर्यरूपी महामत्स्य समूहको दूर निकालनेवाले, अत्यधिक अनुरक्त रूपमें अभिव्यक्त होती हुई भगवद्-भक्तिरूप ध्वनियोंसे सेवित सुन्दर कल्याणप्रद उदार कर्मोंसे प्रकाशमान धर्मरूपी गजराजके बिहारका आचरण करनेवाले सूर्यकी--प्रचण्ड विचरण चतुर चारों पैरोंकी बन्धन रज्जुके समान (आकारवाली) पुत्री यमुनाजी बहती हैं ॥३३

विशेष--इस गद्यांशमें प्रथम तो श्रीयमुनाजीको प्रद्युम्नकी शोभावाली बतलाया है, प्रद्युम्नके विशेषण द्रष्टव्य हैं, दूसरे इसे मेघमालाके समान कहा है क्योंकि मेघमाला और श्रीयमुनाका वर्ण साम्य है। श्रीयमुनाको कल्पलताके समान भी बतलाया है, कल्पलता चारों पुरुषार्थ देती है, श्रीयमुनाजी भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करती हैं। काल-जालमें मत्स्य पड़ जाता है मारा जाता है--श्रीयमुनामें पापरूपी मत्स्य फँसकर मारा जाता है अर्थात् ये पापोंका नाश करती है। आगेके विशेषण भगवान् सूर्यनारायणके हैं, वे मोहमय जलका पान करते हैं, कामका विनाश करते हैं, लोभरूपी ग्राहका मर्दन करनेवाले आदिके रूपोंमें चित्रितकिये हैं साथ ही भगवद्-भक्तिरूप हयनियोंसे उन्हें सेवित लिखा है। वे स्वय धर्मरूपी गज हैं सबका कल्याण करते हैं और धर्मराजके चारों पैरोंका बन्धन करनेमें समर्थ श्रीयमुना हैं सिद्ध किया है।

सभी आचार्योंने श्रीयमुनाजीका स्तवन किया है। मथुराकी भक्तिसे परिपूर्ण मित्रमिश्र जैसा कवि मथुराके गौरवकी वर्धिनी श्रीयमुनाजीके माहात्म्यके

(१) अम्बुज भुवा – ब्रह्मा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोहमयमम्भो-निरवशेषमापिबतो विवेकानेकशालूक[1] -निकट-निकाम-वर्द्धमान - कामकमलकुलमामूलमुन्मूलयतोऽतिनिक्षोभलोभग्राहमाम-र्दयतोऽप्यतिमात्र विग्राह मानमद-महोदार-भूदारवाटमुद्दारयतोऽप्य-तिमत्सरतुच्छेतर-मत्स्य निकरमुत्सारयतो भृशमनुरक्त-व्यक्त-हरिभक्ति-संसक्त करेणुभिर्ललित-शर्म्मनर्म्म कर्म्मोद्दाम धर्म्म द्विरदपते[2] विहार-माचरतोऽति चण्ड - चंक्रमण चतुर चतुःपद बन्धनीव, नन्दिनो सवितुः ॥३२॥

गानसे कैसे विराम लेते अतः बड़े ही सुन्दर ढङ्गसे मथुराका वर्णन अपनी कृतिमें प्रस्तुत किया है। आचार्य शङ्करने इन्हें मनोमल दूर करनेवाली कहा है—

"धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा।"

आचार्य वल्लभने इन्हें सकल सिद्धि प्रदात्री कहा है—

नमामि यमुनामहं सकल सिद्धि हेतुं मुदा
मुरारि पद पंकज स्फुरदमन्द रेणूत्कटाम्।
तटस्थ नव कानन प्रकट मोद पुष्पाम्वुना
सुरासुर सुपूजितस्मरपितुः श्रियं विभ्रतीम्॥

श्रीयमुनाको ही सूर्य–पुत्री कहा गया है—भागवतमें जब भगवान् श्री-कृष्ण-अर्जुनके साथ हस्तिनापुरमें विहरण करते यमुना तटपर गये तब तपस्या-रत श्रीजीने कहा —

"कालिन्दीति समाख्याता वसामियमुनाजले।"
"निर्मिते भवने पित्रा।"

मेरे पिता सूर्यके द्वारा निर्मित भवनमें मैं रहती हूं, सूर्यकी पुत्री हूं। वैवस्वत यम और यमीकी जन्मकथा नवम-स्कन्धमें वर्णित है। ऋग्वेदका यम-यमी सूक्त तो प्रसिद्ध ही है। 'इमंगे गंगे यमुने सरस्वति' मन्त्रमें श्रीयमुनाजीका नाम है। श्रीयमुनाजी भक्तोंकी कामनापूर्ण करनेवाली हैं सकल-सिद्धियोंको प्रदान करती हैं और श्रीकृष्णके वेषको धारण करती हैं। आगे कविने इनकी श्यामतापर अच्छी कल्पनायें व पौराणिक तथ्य प्रस्तुत किये हैं ॥३३॥

---

(१) उत्पलकन्दः।

(२) दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः (अ० को० २।८।३४)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चण्डांशोर्दण्ड पाणिः समजनि स पुनर्दण्डयत्येव चण्डं
रंहःसंहाभिधावद् भट मखिलमभूत्तथ्यमित्थं स कालः ।
तज्जातायाश्च तस्य स्वसुरपि सकलं घोरमंहोहरन्त्याः
कालिन्द्याः काममिन्दीवर रुचिर रुचिर्युज्यते कालिमैव ॥३४॥

भृशं भवत नन्दिनी दिनमणेस्तमोग्रासिनः
स्वकारण गुण ग्रहा त्रिभुवनो तमोग्रासिनी ।
उपाभिबलसाधिनी पुनरसौ तमः पाकजा-
च्छयात्तु विशदं[1] महो रुचिमहो सुनीलां विना ॥३५॥

अनुवाद—प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यसे दण्डपाणि धर्मराजका जन्म हुआ, वह पाप पुञ्जके साथ दौड़कर पापी लोगोंको दण्ड देते हैं यह तथ्य है कि इस कारण ही वह काल (काले रङ्गके) हैं। उन्हीं सूर्यसे उत्पन्न हुई तथा उन धर्मराजकी अखिल पाप हारिणी बहिन श्रीयमुनाजोकी सुन्दर नीलकमलकी सो कान्तिवाली कालिमा (श्यामता) युक्त ही है ॥३४॥

विशेष—काल (यम) की बहिन होनेके कारण यमुनाका रङ्ग काला है जो ठीक है ॥३४॥

अनुवाद—जगत्के अन्धकारको हरनेवाले दिनमणि भगवान् सूर्यकी पुत्री श्रीयमुना अपने कारणके गुणोंको ग्रहण करनेवाली होवें। अर्थात् जिस प्रकार उनके पिता भगवान् सूर्य नारायण अंधकारको ग्रस लेते हैं उसी प्रकार यह यमुना भी अंधकार रूप नीलिमाको धारण करनेवाली हो (तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?) यह यमुना अपने जलमें श्यामताकी प्रतीतिके लिए उपाधिके बलको सिद्ध करनेवाली है। अन्यथा शुक्ल गुणवाले जलमें नीलिमाके बिना श्यामताकी सिद्धि कैसे हो ? ॥ ५॥

विशेष—सूर्यका गुण है तमोनाशक, उस गुणको ग्रहण करनेके कारण यमुना तीनों लोकोंका अन्धकार नष्ट करनेमें समर्थ है। यद्यपि यमुनाका जल स्वच्छ है नीलापन नहीं है क्योंकि न्याय-मुक्तावलीमें यमुना जलको स्वच्छ बतलाया है। ३५॥

(१) कालिन्दीजले विशद रुचिरिति निर्णीतम्, न्याय सिद्धान्त मुक्तावल्याम्। यथा-'ननु शुक्ल रूपत्वमेवेति कुतः कालिन्दीजलादौ नीलमोपलब्धेरिति चेन्न। नील जनकतावच्छेदिकायाः पृथिवीत्व जातेरभावाज्जले नीलरूपाऽसम्भवात्। कालिन्दी जले नीलत्व प्रतीतिस्त्वाश्रयौपाधिकी। अत एव वियति विक्षेपे धवलिमोपलब्धेः" इति "वर्णो शुक्लः ३९ कारिका व्याख्यायाम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुरंजित कृष्णचञ्चरीकं मथुरामञ्जुल-मञ्जुपुण्डरीकम्
निजलक्ष्म्य दधाति मोक्षलक्ष्मीर्यमुनानालविलासलीलयैव ।।३६।।
अलमप्रतिपक्ष मोक्ष लक्ष्म्या मथराक्ष्मासु विहारमात्रहन्त्याः ।
वशयत्यचिरेण तां गृहीता यमुना वेणिलता परिच्युतासौ ।।३७।।
परिशीलित माथुरोपकंठा यमुनानील निचोल सावगुण्ठा ।
समुमुक्षु-पतिर्विहर्तु कामात्यभिरामा विरराज मुक्ति रामा ।।३८।।
सुरकुंजर-दान-वारि लोभाद् भ्रमरालो रभसेन बंभ्रमीति ।
कृतझङ्कृति नन्वनीचवीचीचयवाचाल कलिन्दनन्दिनीयम् ।।३९।।

अनुवाद—श्रीकृष्णरूपी भ्रमरको आनन्दित करनेवाले मथुरारूपी मनोहर सुन्दर कमलको यमुनारूपी नालके विलासकी लीलाद्वारा अपने चिह्न (ध्वज) के रूपमें मोक्ष लक्ष्मी धारण करती है ।।३६।।

विशेष—व्रजको समुद्र और मथुराको कमलकी मान्यता व्रजमें इस प्रकार है—

व्रज समुद्र मथुरा कमल वृन्दावन मकरन्द ।
व्रज ललना सब पुष्प हैं मधुकर गोकुलकन्द ।।

अनुवाद—मथुराभूमिमें विहार करते हुए मोक्ष लक्ष्मीका कोई प्रतिपक्षी नहीं है और उससे कोई प्रयोजन भी नहीं है क्योंकि यदि वह मोक्ष लक्ष्मी यमुनाकी वेणी रूपलतासे छूट भी जाती है तो भी मथुराका आश्रय लेकर मोक्षार्थी उसे शीघ्र ही ग्रहणकर लेता है ।।३७।।

अनुवाद—मथुरा भूखण्डके समीप विचरण करनेवाली (बहनेवाली) घूँघट निकाले हुए नीली चोली धारण करनेवाली अति सुन्दरी मुक्तिरमणी यमुना, मुमुक्षु जनोंके पति श्रीकृष्ण सहित विहार करनेकी कामनासे युक्त सुशोभित हो रही है ।।३८।।

अनुवाद—देवलोकमें गजेन्द्रके कपोलमे बहती हुई मद-जलकी धाराके पानके लोभसे हठात् पुनः-पुनः भ्रमण करती हुई भ्रमर पंक्तिके समान, मानों अपनी उच्चतरङ्गोंके समूहसे युक्त कलकल निनाद करती हुई यह कलिन्द पर्वतसे प्रकट हुई श्रीयमुना झङ्कार करती हुई (बह रही है) ।।३९।।

विशेष—श्रीवल्लभाचार्यजीने लिखा है—कि ये सूर्यलोकसे आकर कलिन्द पर्वतसे बहती हैं अतः कलिन्दनन्दिनी कहलाती हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथुरापुरमत्तकुम्भिनोऽमल - रम्भातरुभङ्ग - रङ्गिणः ।
अतिवेलमुदेति दान - धारा यमुनाम्भःकपटेन दुर्निवारा ॥४०॥
हरिनीलमणि - प्रणीतमध्या यमुना नील - गुणेन गाढबद्धा ।
पृथुवक्षस एव मोक्ष - लक्ष्म्या मथुराभूरनुभूयते विभूषा ॥४१॥
रचयन्नघ-रोगनिग्रहं, द्रढयन्नेव च धर्म्म - विग्रहम् ।
सकलोपरि साधयन्गतिं, यमुनाकृष्ण रसोऽनुभूयते ॥४२॥

कलिन्द गिरि मस्तके पतदमन्द पूरोज्ज्वला,
विलास गमनोल्लसत् प्रकट गण्डशैलोन्नता ।
सघोष गति दन्तुरा समधिरूढ दोलोत्तमा,
मुकुन्द रति वर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता ॥ ॥३९॥

अनुवाद—मथुरानगरी रूप मतवाले तथा कदली वृक्षको तोड़नेवाले और उसमे आनन्द लेनेवाले हाथीके मद जलकी धारा यमुना जलके बहाने अनिवार्य रूपसे प्रवाहित हो रही है ॥४०॥

विशेष--मथुरा नगरके गज सिद्ध किया है और यमुनाको मदजल धारा कहा गया है । अपन्हुति अलङ्कार है ॥४०॥

अनुवाद--जिसका मध्यभाग हरिरूपी नीलमणिमे शोभित है, तथा कृष्णवर्ण रूपी नीलगुणसे हठतर आबद्ध है ऐसी मथुरामें वर्तमान 'यमुना' मोक्ष लक्ष्मीके पृथुल वक्षस्थलका अलङ्कार है ॥४१।

विशेष--मथुराके मध्य श्रीयमुना बहरही है, यमुनाजीका वर्ण नील है । नीलवर्णका आभूषण भी होता है मथुरानगर नीलवर्णमे सुशोभित है ।

"नीलं तन्महसोज्ज्वलं किमपि सद् रूपं सदोपास्महे ।"

[पं० श्रीव्रजी कृत यमुना०]

अनुवाद--पापरूप रोगोंको नष्ट करते हुए, धर्मके स्वरूपको दृढ़ करते हुए सबके ऊपर गतिको सिद्ध करते हुए यमुनाका नीलजल अथवा यमुना समीपवर्ती श्रीकृष्णका आनन्द अनुभूत हो रहा है ॥४२॥

विशेष--श्रीयमुनाका जल--पाप नाशक है, धर्म बढ़ानेवाला है। बैकुण्ठ गति ही सबसे ऊपर है, उसे प्रदान करनेवाला है । यमुना-कृष्ण युगलानन्द का अनुभव भक्तोंद्वारा किया जाता है ॥४२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधुरीतिमधिगत्य माधुरी, मातुरी भवति सा तु चातुरी ।
कातरी भवदघैण - लोचना, लोचनाम्बु यमुनां वितेनिरे ॥४३॥
[1]केलिमन्दिरमिहारुरुक्षवे, मोक्षपक्ष्मलदृशे मुमुक्षवे ।
इन्द्रनीलमणिनाधिरोहणी[2], वेधसाक्रियत भानु-नन्दिनी ॥४४॥

अनुवाद--मथुरा-मातासे सम्बन्ध रखनेवाली, 'यमुना' सरल रीति स्वीकार करके भी (पापके नष्ट करनेमें) चतुर बन जाती है (अतएव) घबड़ाई हुई 'पाप-पत्नीरूपी' मृगलोचनाओंने अपने कज्जलयुक्त नेत्र जलको अर्पणकर यमुनाजीको बढ़ाया है ॥४३॥

विशेष--वे नेत्र जलसे यमुनाजोकी मानों पूजाकर उनके हृदयमें दया उत्पन्न करना चाहती है, जिससे अपने पति (पाप) की रक्षा होतो रहे ।

दूसरा भाव यह है कि वे अपने पतिके सद्यः विनाश-जन्य दुःखसे रो रही हैं उनके आंसुओंकी धार पनालेके रूपमें यमुनामें जब गिरती है तो यमुनाक पानो बढ़ जाता है । क्योंकि पापकी बहुत-सी पत्नी निरन्तर दिन-रात रुदन करती रहती हैं । कवियोंने गोपियोंके रुदनसे भी यमुना-जल बढ़नेकी भावना व्यक्तकी है--

'किन्त्वेका यमुना कुरंगनयना नेत्राम्बुभिर्वर्धते ।"

सूरदासने लिखा है कि--

"निसदिन बरसत नैन हमारे ।"

\+ + + +

'सूरदास प्रभु अंबु बढ्यो है गोकुल लेहु उबारे ।" ॥४३॥

अनुवाद—इस संसारमें मोक्ष लक्ष्मीके क्रीडा मन्दिरमें आरूढ़ होनेके इच्छुक, मुमुक्षु जनके लिये ब्रह्माने इन्द्र नीलमणिसे रचित नसेनो (आरोहण काष्ठ पोठिका) श्रोयमुना प्रकटकर रखी है ॥४४॥

विशेष--श्रीकृष्णका केलि-मन्दिर बहुत ऊँचा है या पुण्यद्वारा प्राप्तव्य है उसके लिये निःश्रेणीकी आवश्यकता है वह नीलमणिरूपा ही नसेनी है इसका आश्रय लेकर मोक्षफल प्राप्ति सहज है ॥४४॥

---

(१) केलि--केलनं केलि. केलरिति वा-
''द्रव केलि परीहासाः क्रीडा खेला च नर्म च ।
केलिमन्दिरम्--आमाद भवनम् । १।७।३२
(२) सीढी आरोहणं स्यात् सोपानं निश्रेणिस्त्वधिरोहणी अ०को० २।२।१८

कृतकाय - कदम्बडम्बरा[1], विहरन्त्येव वृषा निरंकुशाः ।
कलि चौर भयेन वेधसा, यमुनाऽयोमयदाम निर्ममे ।।४५।।

सहेलं येनालं कृतमधुपुरी दुर्ग शरणं
गृहीतः कालिन्दीविलसदसिरिन्दीवररुचिः ।
करस्याग्रे मोक्षः फलमपि भविष्यत्यविकलं
किमस्या वै रंहो विकट भट रंहः प्रकटितैः ।।४६।।

अनुवाद—अपने शरीरके सुविपुल आडम्बरको व्यक्त करते हुए वृषभ (यहाँ) स्वच्छन्द विहार करते रहते हैं । कलियुगरूपी चोरके भयसे ब्रह्माने लोह-निर्मित अच्छेद्य एवं अभेद सांकलके रूपमें मानों यमुनाका निर्माण किया है ।।४५।।

विशेष—धर्मका वृषरूपत्व शास्त्रोंमें वर्णित है—"धर्मोऽयं वृषरूपधृक्" श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें धर्मका वृषभरूप और पृथ्वीका धेनुरूप दिखलाते हुए राजा परिक्षितका उनसे संवाद प्रस्तुतकर दिया है । वृषभके ४ पाद, त्याग, तपादि मेंसे केवल सत्य ही शेष रह गया था, शेष तीन पाद नष्ट हो चुके थे । राजाने उनके चारों पाद सुस्थिर किये और कलियुगको ललकारा था । यहाँ मित्र-मिश्रने कल्पनाकी है कि कहीं धर्मको कलियुगरूपी चोर न लेजावें । अतः उसे लौह-शृङ्खलासे बाँध देना उचित है धर्मको बाँधनेके लिये श्रीयमुनाकी नीलधारा-रूपी शृङ्खलासे बढ़कर कोई शृङ्खला हो नहीं सकती अतः ऐसा वर्णन किया है । अथवा—यमुना ही धर्म रक्षिका है, यह मानना चाहिये ।।४५।।

अनुवाद—बड़े उत्साहसे जिसने मथुरा-नगर रूप दुर्गका आश्रयले लिया है और नीलकमल जैसी कान्तिवाली चमचमाती यमुनारूपी तलवार धारणकर ली है, उसके लिये मोक्षफल पूर्णरूपेण हाथके अग्रभागमें ही स्थिति है । फिर इस यमुनाके वेगवाले भयानक वेग प्रकट करनेसे क्या प्रयोजन ? (जबकि मोक्ष प्राप्ति तो पहले ही हो चुकी है) ।।४६।।

विशेष—दुर्गका आश्रय सुखद माना जाता है और यदि योद्धाके हाथमें तलवार हो तब हताश होना ही नहीं है । अतः यमुनाके भयानक वेगका भी प्रयो-जन नहीं रह जाता क्योंकि तलवारसे मोक्षरूप फल तो पहले ही दुर्गमें प्रवेश करते ही प्राप्त हो गया है ।

(१) धनुषका शब्द—"पटहाडम्बरौ समौ" । २।८।१०८

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दुरमीव समीरणाशना-लसकालाजगरी गरीयसी ।
कलिभेकभयंकरी बभौ, मधुपुर्यां शमनस्वसैव सा ॥४७॥
यस्य क्षणं मधुपुरी क्षणगोचरीस्या
न्मुक्तिस्तु तत्सहचरी विजरीहरीति ।
धात्रेत्यतानि धरणौ यमुनाच्छलेन
द्राघीयसो लिपिरसीममषीरसेन ॥४८॥
यमुनातनुरुह राजि-र्मथुरा राजीवनेत्रायाः ।
स्फुटयत्यनु विलासानि - तिलोचन गोचरीभूय ॥४९॥
संभ्राम्यन्भ्रान्तियोगान्मधुर मधुपुरी प्राप्य पापैर्दुरापां
निस्तापः कृष्णवर्त्मा[2] समजनि तदनु प्राप निर्वाणमेव ।

अनुवाद--दुष्टरोग-रूपी वायुके भक्षणसे उत्पन्न आलस्ययुक्त बहुत बड़ी काली अजगरी जैसी यह यमुना कलियुगरूप मेढकको भयभीत करनेवाली है, यमुना, यमराजकी बहिन है और वह मथुरामें सुशोभित है ॥४७॥

विशेष—अजगर सर्प वायुका भक्षण करता है एक स्थानपर पड़ा हुआ ही श्वासाकृष्टसे जीवको मुखमें धारण करता है । श्रीयमुनाको भी अजगरी बतलानेका यही आशय है कि यह पापरूपी या योगरूपी वायुका भक्षण करती है। सर्पका अहार मेढक होता है यह यमुना कलियुग रूप मेढकको नष्ट करनेमें समर्थ मानी गई है क्योंकि नष्ट करनेका कार्य यमका है तो यमुना भी तो उसकी भगिनो है। यहाँ कलियुग नाशका तात्पर्य दुष्कर्मोंका नाश समझना चाहिये ॥४७॥

अनुवाद—क्षणभरके लिये भी मथुरा जिसकी दृष्टिके सामने आ जाय तो मुक्ति उसके साथ विहार करती है। ब्रह्माजीने पृथ्वीपर यमुनाके बहाने असीम स्याहीके रससे बहुत बड़ी लिपि बनादी है ॥४८॥

विशेष--यमुनाकी धार नील रङ्गकी है अतः स्याहीसे साम्य सिद्ध करते हुए उसे लिपि सिद्ध किया है ॥४८॥

अनुवाद--कमलके समान नेत्रवाली तो मथुरानगरी है, श्रीयमुना उसके नेत्रोंकी पलक है वह जब नेत्रोंके सामने आती है अर्थात् जब श्रीयमुनाके दर्शन होते हैं अनेक प्रकारके विलास उसके सामने प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं ॥४९॥

[यमुनाका श्याम रङ्ग कैसे हुआ]

---

(१) अमो रोगः ।
(२) अग्निः । कृष्णो धूमो वर्त्मास्येति कृष्णवर्त्मा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्वाणात्कृष्णभावानलभत पदवी स्पष्टयत्यस्य कृष्णा
निर्वाणं कृष्णवर्त्मन्युदयति वलते किं पुनः कृष्णतैव ॥५०॥
वेदो वेद न यस्य वर्त्म यमिनां चेतोऽपि नेतः परं
किञ्चिद् ध्यायाति कःप्रयाति तदपि प्रायः प्रयासेन यम् ।
स प्रादुर्भवितेह देहसहितो ध्यात्वेति धाता ददौ
कालिन्दी - कपटेन माथुरभुवे दामेदमैन्दीवरम् ॥५१॥
तालाङ्को[1] मयि मङ्क्ष्यति स्वयमहो देवो हरिर्मङ्क्ष्यति
प्रेमार्द्रा ससखी च मङ्क्ष्यति मुदा राधाप्यसाधारणी ।

अनुवाद - पापियोंसे दुष्प्राप्य सुन्दर मधुपुरीको भ्रान्तिसे अग्निने प्राप्त कर लिया। (वह इसे दग्ध करना चाहता था) किन्तु वह स्वयं तेजहीन हो गया (बुझ गया) बुझकर काले रङ्गके कोयलेके रूपमें अग्नि हो गया। और यमुना उसके संसर्गसे कृष्णा हो गई। अग्निने यमुनामें अपनेको मिला दिया तबसे ही मानों यमुना कृष्णवर्णा बन गई ॥५०॥

विशेष--यमुनाका कृष्ण-जल है अथवा कृष्णा नाम है, अतः कविने उत्प्रेक्षाकी है ॥५०॥

अनुवाद—वेद भी जिनके मार्गको नहीं जान सकता, संयमीका चित्त भी इससे अधिक कुछ नहीं जान सकता, कुछ ध्यान करके भी बड़े प्रयाससे जिसको प्रायः नहीं समझा जा सकता वह ही यहाँ अपने देहके साथ प्रकट होगा, यही ध्यान करके ब्रह्माजीने कालिन्दीके बहाने मथुरा-भूमिके लिये यह नीलकमलकी माला समर्पणकी है ॥५१॥

विशेष --रसखानने ठीक ही लिखा है--

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौ पुराणन वेदन।
भेद सुन्यौ नित चौगुने चायन॥

अर्थात् यह तो ब्रह्मकी भूमि है। ब्रह्माजीने कहा है—

अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।

व्रजवासी परब्रह्मके परममित्र हैं। यमुना नहीं, मानों ब्रह्मा द्वारा अर्पित नीलकमल है। (उत्प्रेक्षा) ॥५१॥

---

(१) तालाङ्को बलरामः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यायन्तीति चिरं निवेद्य च पुरस्तातस्य चण्डद्युतेः
कालिन्दी किल मेदुरा मृग-मदैरद्यापि विद्योतते ।।५२।।
हित्वा हन्त हठेन कैटभ-रिपुः[1] कृत्वा महत्कैतवं
भेजे धाम तदेव नाम स निजं दत्वा रुजं भूयसीम् ।
कालिन्दी किल कालिमानमियता लेभे शुचं बिभ्रती
सार्द्धं खण्डितमण्डलैर्मधुपुरी वाम - भ्रुवां मण्डलैः ।।५३।।
वैदग्धीरस - रङ्गरूप - गतिगीश्चातुर्य्य - वर्य्याकुल—
श्रीमत्कोटिमनोभवे निज-भुवं प्राप्ते हठान्माधवे ।
शून्या वीक्ष्य दिशो दशैव सुदृशो वार्य्युज्ज्वलं प्रोज्जहुः
कालिन्दी-जलमिन्द्रनील शकल-श्यामं निकामं ततः ।।५४।।

अनुवाद—श्रीबलराम मुझमें स्नान करेंगे और श्रीकृष्ण भी स्नान करेंगे तथा प्रेमसे आर्द्र होकर सखियोंके साथ श्रीराधारानी भी मुझमें स्नान करेंगी, वे देरतक ध्यान भी करेंगी। इसलिये अपने पिता सूर्यके सम्मुख कलिन्द-कन्या मृगमदसे पूर्ण होकर आज भी प्रसन्न चित्त है ।।५२।।

विशेष—यमुनाको देखकर भगवान् कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न होते थे—भागवतकारने लिखा है—

वृन्दावन गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च ।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ।। (भा० १०)

अनुवाद—कैटभ दैत्यके हन्ता भगवान् कृष्ण बहुत बड़ा कपट करके हठपूर्वक मथुरा-नगरको छोड़कर सबको महादुःख देकर अपने पवित्र धामको चले गये। इस शोकसे सन्तप्त यमुनाका मुखमण्डल फीका पड़गया और कालिमाको प्राप्त हो गया (इसलिये श्रीयमुना श्यामा है)। गोपियोंके मुखमण्डल श्याम पड़े, साथही यमुनाका भी ।।५३।।

अनुवाद—रसिकोंके रस-रङ्गरूप गति-वाणी आदि चातुर्यवाली शोभासे युक्त करोड़ों कामदेवों जैसी कान्तिवाले श्रीकृष्ण भगवान्के हठ करके अपने धाममें चले जानेपर, सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियाँ रुदन करने लगीं। उन्हें दश-दिशायें शून्य लगने लगीं, उनके अश्रुपातका उज्वल जल जब यमुनामें मिला तो यमुनाका जल नीला हो गया ।।५४।।

---

(१) विश्वम्भरः कैटभजिद्विधुः श्रीवत्सलाञ्छनः। (अ० को० १।१।२२)।
कैटभ नामक असुरको मारनेके कारण भगवान्को कैटभरिपु कहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यत्र च— माथुर विप्रवर्णनम्

रेजुर्द्विजाः क्षतरुजा भृशयायजूका[1]
भूकामपूरण भुवोऽखिल सिद्धिभूकाः।
ब्रह्मानुचिन्तन - निरन्तर - जागरूका
मूकायितद्विषदहं कृत - वावदूकाः[2] ॥५५॥

आप्रातः प्रभृति प्रतिक्षण पुराणेशान पौराणिक–
व्यासङ्गाः कृत-मज्जनादि मुरजिद्यागा विरागा गृहे।
त्रैलोक्य श्रुति - विश्रुत-श्रुति गणालङ्कार-झङ्कारतो
मूर्छन्मत्सरमूर्जितश्रि - मुखरीकुर्वन्ति सर्वं जगत् ॥५६॥

ऋगुच्चरण चातुरीचय - चमत्कृतैः कुत्रचित्
क्वचिद्यजुरुदीरिभिः क्वचन सामझङ्कारिभिः।

मथुराके ब्राह्मणोंका वर्णन

अनुवाद—और जहाँपर सब दुःख नष्ट किये हुए, यज्ञोंमें मन लगाने-वाले, पृथ्वीपर समस्त इच्छापूर्ण करनेवाले, सिद्धियोंको प्राप्त करनेवाले, ब्रह्म-चिन्तनमें रत, शत्रुओंकी अहङ्कारपूर्ण वाणीको शान्त करनेवाले सब ब्राह्मण प्रसन्न रहा करते थे ॥५५॥

विशेष—मथुराके ब्राह्मण याज्ञिक थे, उनकी कोई इच्छा नहीं थी और ये सभी सिद्ध मूर्ति थे, शत्रुओंको परास्त करनेमें निपुण एवं प्रसन्न चित्त थे ॥५५॥

अनुवाद—प्रातःकालसे लेकर प्रतिक्षण पुराण ज्ञानमें लीन रहते। पुराण प्रतिपादित कृत्योंमें संलग्न रहते थे। प्रातःस्नानादि क्रियासे निवृत्त होकर विष्णु भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते थे। गृह-कार्यमें आसक्ति - शून्य थे। वैदिक ज्ञानमें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे। वेद मन्त्रोंके सस्वर पाठकी झङ्कारसे शोभा बढ़ानेवाले थे। मात्सर्य शून्य थे। उन्होंने अपने वैदुष्यसे संसारको चमत्कृत किया था ॥५६॥

विशेष—मथुराके ब्राह्मणोंके वैदुष्यकी प्रशंसा है, उनका सस्वर वेदपाठ और धार्मिक कृत्योंमें संलग्न रहकर संसारका ध्यान आकृष्ट करनेका भव्य-चित्रण है।

अनुवाद—कहींपर ऋग्वेदका पाठहो रहा है तो कहींपर यजुर्वेदके

---

(१) यायजूका—यज्+यङ्+अक्=बार-बार यज्ञानुष्ठान करनेवाला।
(२) वावदूकाः—मुखर (पुनः पुनरतिशयेन वा वदति। वद+यङ्लुक् द्वित्वम् वावद+ऊकम्)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथर्व गुण गर्वितैः क्वचिदपूर्व मुर्वीसुरै-
रहो मधुपुरीमहो भुवि महोदयं गाहते ।।५७।।

अविरलतर होम-धूम-धोरणी[1] भिरूर्ध्वं प्रवाहिनीरिव वाहनीः सहस्रशाऽजस्रमश्रमेणवं सृजतोनिर्म्मितैकनिम्न प्रवाहिनोकस्य मण्डलं चण्डमहसोऽपि मलीमसयन्तो निरन्तरमियतैव मृगाङ्कशङ्काकुलित-चेतसोऽपि द्विजराजस्य मैत्रीमत्यर्थमुत्पादयन्तः, श्रवण-मनन-निदिध्या-सन-ध्यान-धारणा-समाधि साधारण योग-साधन-शम-दम-नियम-समा-पितकाम-क्रोध-लोभ-मोह-मद मत्सरा जिह्मेतरा[2] चार - भृतो ब्रह्माण इव ब्राह्मणा, ब्रह्म-साक्षात्कुर्वन्ति । तेषां पुनस्त एव, प्रतिनवजल-वाह पुञ्ज सञ्जुष्ट विनिविडतमास्तमाल भासोदिशो दशापि श्यामा-भिरामयन्तो, भूर्भुवःस्वः प्रमुख भुवन मूर्धानमनुस्पृशन्तो धूमाः सोमादि धाम वासिभिरन्यथैव वर्ण्यन्ते ।।५८।।

मन्त्रोंकी ध्वनि तो कहीं सामवेदका पाठ तो कहीं अथर्ववेदका पाठ होता था। वेदकी गरिमासे ब्राह्मणोंने मथुरा नगरके गौरवकी वृद्धिकी थी। मथुरा नगरका नाम जगत्‌में प्रसिद्धकर दिया था ।।५७।।

विशेष—कविके समय मथुरा नगरमें चारों वेदोंका विधिवत् अध्ययन अध्यापन होता था यह स्पष्ट है और पुराण-ज्ञानमें भी यहाँके ब्राह्मण अपना साम्य नहीं रखते थे यह भी स्पष्ट है ।।५७।।

अनुवाद—निरन्तर हवन धूमको धारण करनेवाली, ऊपरकी ओर बहनेवाली नदियोंको प्रवाहित करानेवाले और नीचे यमुनाको प्रवाहित करनेवाले श्रीसूर्यके तेजको यहाँके ब्राह्मणोंने मलिनकर दिया था। (अर्थात् वे सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी थे)। (ब्राह्मणोंके यज्ञसे उठी धूम-धाराओंसे अनेक नदियां उत्पन्न हुईं थीं। किन्तु सूर्यसे यमुना बही तो धूमका सम्बन्ध सूर्यमें फिर यमुनामें उपनिबद्ध हुआ)। इससे ही मृगके लाञ्छनकी शङ्का करनेवाले चन्द्रमाके साथ सादृश्य उत्पादन करनेवाले इन मथुराके ब्राह्मणोंने—श्रवण, मनन निदिध्यासन, ध्यान, धारणा, समाधिके साधारण योगके साधन—शम, दम नियमोंसे काम-क्रोध और मद नष्टकर दिये थे। वे सरल आचार धारण करते थे और ब्रह्मके साक्षात्-

---

(१) धोरणी—धोर+अनि, धोरणि+ङीप् (परम्परा)।
(२) सरल (जिह्म=कुटिल, इतर=विपरीत)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तथाहि—यज्ञवर्णनम्

दुर्वाराभून्महेन्द्रोपल-पटु-घटितोद्घाटिताम्भोधर-श्री-
निःश्रेणि - श्रेणिरेषानवरतमुदयद्धोम - धूमच्छलेन ।
अर्वागुर्वीसु[1]राणां मधुरमधु - पुरी वास भाजाममीषां
[2]जम्भार्य्यम्भोजयोनि[3]द्युमणि[4] मुखमहीमण्डलारोहणाय ॥५९॥
साङ्की कृत्याशुपङ्करुह - पतिमकरोत्कोकमस्तोकशोकं
कालिन्दीकृत्य गङ्गां स्वरपि सुरपतिं मन्दचेतीचकार ।
मूढी चक्रेऽलिचक्रं सुरतरु-सुमनो मूर्द्ध समृद्ध-वीचिः
श्यामोद्यद्धोम धूमः शिखिनमसुखयत्केवलं पूरिताशः ॥६०॥

कार करनेमें निपुण थे । ऐसे ब्राह्मणोंके द्वारा यज्ञ अग्निके "धूम"--नवीन जलको धारण करनेवाले मेघ समूहसे युक्त, तमालकी आभावाले, दस-दिशाओंमें श्याम आभाको विस्तीर्ण करनेवाले थे । और (वे यज्ञ धूम) भू भुवः स्वः आदि लोकोंके ऊर्ध्वभागका स्पर्श करते थे । चन्द्रादि लोकवासी उनका अन्यथा ही वर्णन करते हैं ॥५८॥

अनुवाद--निरन्तर उठते हुए होमके धूमके बहाने महेन्द्र-उपलसे मानों सुन्दर बनाई हुई, बादलोंके समान इस मधुपुरीमें निवास करनेवाले ब्राह्मणोंको इन्द्रलोक-ब्रह्मलोक सूर्यलोकपर चढ़नेके लिये बिना पंक्तिके ऊपर-नीचे उतार चढ़ाववाली ये सीढी बनी है ॥५९॥

विशेष- धूम नहीं है अपितु बिना डण्डेवाली नसेनी है । जिसपर चढ़कर किसी भी लोकमें जाना सरल है ॥५९॥

अनुवाद--उसी धूम लेखाने सूर्यको ढँक दिया फलतः रात्रिकी भ्रान्तिसे चकवा-चकवी अशान्त हो गये (रात्रिमें दोनों पृथक् रहते हैं) । स्वर्ग गङ्गा भी धूमसे काली हुई तो यमुनाकी भ्रान्तिसे स्वर्गने इन्द्रदेवको भी आलस्य-युक्त बना दिया वह धूम जब कल्पवृक्षके पुष्पोंके ऊपर पहुँचा तो भ्रमर समुदायको भी

---

(१) उर्वीसुरः —उर्वी पृथ्वी, सुर=देव=ब्राह्मण । ऊर्णौति ऊर्णूयते वेत्युर्वी ।
(२) जम्भारि=इन्द्रः—'जम्भभेदी हरिहय (अ० को० १।१।४३) ।
जम्भ नामक असुरका हन्ता ।
(३) अम्भोज योनि=ब्रह्मा "धाताब्जयोनिद्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः ।" (अ० को० १।१।१७) ।
(४) द्युमणिः=सूर्यः । द्युमणिस्तरणिर्मित्रश्चित्रभानुर्विरोचनः । अ०को०१।३।३०)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अध्वरेण निरघा द्विजवर्य्यास्तन्निषेवण रसादपरेऽपि ।
इत्यनाकलित धाम तमोगाच्छून्य एव मख-धूम मिषेण ।।६१।।
रत्न - ज्योत्स्ना - चय-चकितयोः यत्र पुर्य्यां न सूर्य्यो
भेदायालं दिवस - निशयोर्न श्रिया पूर्णचन्द्रः ।
योषिल्लीला - ललितसरसी - मण्डले पद्मिनीनां
निद्रोन्निद्रे नियतमभितः शंसतो व्यक्तमेते ।।६२।।

मुग्धकर दिया (वे सोचने लगे कि ये भ्रमर कहाँसे आगये । दिशाओं में यज्ञ-धूम जब छागया तो मयूर प्रसन्न हो गये । क्योंकि उनको ऐसा लगाकि बादलोंकी घटा उमड़ती आरही है जो कि मयूरको प्रिय लगती है ।।६०।।

विशेष—अतिशयोक्ति अलङ्कार है। मयूरको घन देखकर प्रसन्नता होती है। "सारङ्गा घनगर्जितं वनगजा ध्यायन्ति रेवाजलम्" ।।६०।।

अनुवाद—'ब्राह्मण' यज्ञकेद्वारा निष्पाप होगये तथा यज्ञके धूमके सेवनसे अन्य मानव भी पाप-रहित होगये । इस प्रकार यज्ञके बहाने मानों बिना तेजका स्पर्श किये अज्ञानरूपी अन्धकार भी दूर होगया ।।६१।।

विशेष—यज्ञका धूम तेज इतना महत्वशाली है जिससे अन्धकार भी दूर हो गया। देखा जाय तो 'धूम' अंधकार ही है और अज्ञान भी अन्धकार तो है श्याम है, पर यज्ञके प्रभावसे अज्ञानके अंधकारका विनाश है। अन्यथा विरोधाभास है, यज्ञसे पाप दूर होता है । अन्धकार भी दूर हुआ है क्योंकि वह अज्ञानरूप बतलाया है ।।६१।।

अनुवाद—रत्नोंके प्रकाश समूहके कारण सूर्य और चन्द्रमा दोनोंही मथुरानगरीमें रात्री और दिनका भेद बतलानेमें समर्थ नहीं थे । रत्नोंके प्रकाशसे रात्री भी दिन प्रतीत होती थी, परन्तु स्त्रियोंको लीलासे सुन्दर-सरसीमें जो कमलिनी विकसित होतीं वे दिनमें मुकुलित होतीं उससे रात्रिका बोध होता था ।।६२।।

विशेष—मथुरा नगरकी समृद्धिका वर्णन है, अतिशयोक्ति अलङ्कार है, भ्रान्तिमान भी है । श्रीकृष्णके समयकी मथुराका वर्णन श्रीमद्भागवत पुराणमें है जिसके अनुसार इस नगरीमें सुवर्णके कपाट थे और हीरे, पन्ने, पुखराज, माणिककी कीलें जटित थीं—

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्ग गोपुर।
द्वारांबृहद्धेम कपाट तोरणाम् ।। भा० १०।४१।२० ।।६२।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बद्धोपान्ताः कनकनिकरैः पद्मरागानविद्धै-
रिद्धैर्नाना मणिभिरधिकोन्नद्ध सोपान-वीथीः ।
वापी रम्भोरुह[1]-वलयिता यत्र हंसाः सवंशाः
संवीक्षन्ते हुतवह[2] धिया सन्निधौ न प्रयान्ति ॥६३॥
ग्रीवामम्भोरुह-दल-दृशां बीक्ष्य चारु-त्रिरेखा-
मेकावल्या समधिक-रुचिं शङ्खकारस्य हीणाः ।
स्वीकुर्वन्ति क्रकच-निकरैश्छेद-खेदं च शङ्खाः
को नामोच्चैः परिभवविधिर्जीवने साभिलाषः ॥६४॥
यस्यामिन्दीवरदल-दृशामङ्गभासाभिभूत-
ज्योतिर्ज्वालामपि हुतभुजः काञ्चनं साधुमेने ।

अनुवाद--स्वर्ण समूह एवं पद्म रागके द्वारा जिनके स्थल शोभित हैं, चमकती मणियोकी जिनमें सीढी बनी हुई हैं, कमलोंसे सुशोभित वापियोंको हंस देखते हैं, परन्तु अग्नि समझकर उनके पास नहीं जाते ॥६३॥

विशेष—भ्रान्तिमान अलङ्कार है । वापियोंका निर्माण रत्नजटित सुवर्ण खण्ड से है ॥६३॥

अनुवाद--कमलकेसे नेत्रवाली स्त्रियोंकी सुन्दर तीन रेखाओंसे भूषित तथा शङ्खोंकी एकावलीके समान अधिक शोभा देनेवाली ग्रीवाको देखकर शङ्खोंने लज्जाका अनुभव किया और शस्त्रके द्वारा अपने अङ्गमें छेद करानेके कष्टको भी स्वीकार कर लिया, अपने तिरस्कारको देखकर कौन जीवित रहना चाहता है ॥

विशेष--ग्रीवाकी सुन्दरताका वर्णन है । शङ्खोंने अंगमें छेद कराना चाहा है जिससे वे सुन्दर अङ्गके आभूषण बनें, दूसरे अपनी उपमावाले अङ्गमें वे अपने महत्वको उससे तुच्छ समझ रहे हैं ! 'कम्बुग्रीव' शङ्खसी ग्रीवा अच्छी मानी जाती है पर यहाँ तो शङ्खही ग्रीवासे पराजित है अतः व्यतिरेक अलङ्कार है ॥६४।

अनुवाद--जिस मथुरा नगरीमें नीलकमलके समान नेत्रवाली स्त्रियोंके

---

(१) अम्भोरुह--"विस प्रसून राजीव पुष्कराम्भोरुहाणि च" (अ०को० १।१०।४१) अम्भसि रोहत्यम्भोरुहम्=कमलम् ।

(२) हुतवह=अग्निः । "हिरण्यरेता हुतभुग् दहनो हव्यवाहनः" (अ०को०१।१।५५) हुतं वहतीति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अङ्गैराविधृतमपि सदा भूषणीकृत्य साधुः
प्राणान्मुञ्चत्यपि परिभवैः श्लाघते गौरवं न ।।६५।।

अहो-अचिन्तनीयाभिराम रामणीयक सम्पच्छालिनी हि मथुरावनी ।।६६

तथाहि—मथुरानगर-कुरङ्गी[1] नयना-भङ्गी न वाग्-विषया ।
[2]कमला-पतिमपि कुब्जा यत्र निरब्जालया स्मृतिं चक्रे ।।६७।

इति श्रीमन्मित्रमिश्र कृतावानन्दकन्द चम्पू काव्ये प्रथमोयमुल्लासः ।।१

अङ्गोंकी कान्तिसे सुवर्णकी महत्ता भी कम हो गई। फलतः स्वर्णने अग्निमें ज्वालाका आलिङ्गन करना ही उचित समझा। अर्थात् उनके अङ्गकी कान्तिसे तिरस्कृत होकर जलकर मर जाना ही उसने अच्छा समझा। अङ्गोंके द्वारा धारण किया हुआ होनेपर भी स्वयं आभूषण बनकर तिरस्कारके कारण 'सज्जन' व्यक्ति प्राणोंका त्यागकर देता है और अपने गौरवकी प्रशंसा नहीं करता है ।।६ ।।

विशेष--सज्जनके सम्बन्धमें यह सूक्ति है। सज्जन व्यक्ति अपमान कभी सहन नहीं करता, भले हो मृत्युका आलिङ्गन करना पड़े ।।६५।।

अनुवाद--आहा, अचिन्तनीय शोभासे अत्यन्त रमणीय सम्पत्तिसे मथुरा-की भूमि शोभित है ।।६६।।

अनुवाद—मथुरा नगरकी स्त्रियोंकी भाङ्गमाका वाणीसे वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल कमलवासिनी कमलालक्ष्मी ही कमलापतिका स्मरण करती है परन्तु अब्जालया=(कमलवासिनी) न होते हुए भी कुब्जा=कूबरी कृष्णकी स्मृतिकर रही है ।।६७।।

विशेष--कुब्जा भगवान् कृष्णका ध्यान मथुरामें करती है। श्रीमद्भाग-वतमें वर्णन आता है कि इसका नाम त्रिवक्रा था, यह राजाकंसकी दासी थी और श्रीकृष्णने इसका कूब सीधाकर दिया था--

दास्यस्म्यहं सुन्दर कंस सम्मता। त्रिवक्रनामा ह्यनुलेप कर्मणि ।।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं। युवां बिना कोऽन्यतमस्तदर्हति ।।भा.१०।४२।३

इति सप्ताचार्य डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद शास्त्रि विरचिते श्री श्रीवरानन्दिनी
भाषा टीका सहिते श्री आनन्द कन्द चम्पू काव्ये
मथुरानगरमहिमावर्णनं नाम प्रथम उल्लासः।

---

(१) कुरङ्गी--कौरङ्गति, कौरङ्गोऽस्त्येतिवा कुरङ्ग+ङीप्+मृगी।
(२) कमलापतिम्=कृष्णम्। (कमला=लक्ष्मी तस्याः पतिम्)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ द्वितीय उल्लासः

मथुराधिप कंसवर्णनम्

गर्वी दर्वीकर[1]पतिरिवाखर्व[2] दुर्वार वीर्य्यो–
यस्यासुर्वीपति कुलपतिर्मातुलो माधवस्य ।
भ्रूभङ्गेन त्वरितमजयत्कं स नेति प्रसिद्धे–
[3]रिद्धो नाम्ना जगतिकृतिभिर्गीयते यस्तु कंसः ॥ १ ॥

स खलु निखिलमेदिनी[4]पालमालाग्रणीरुग्रनीति-प्रतिनियत शासिताऽशेषदेशो नरपतिकुल-कुहना[5]नुबन्धी बल-बहल-मदान्धीकृत चेता,

---

अनुवाद—(उस मथुरा नगरीमें) सर्पराजकी तरह महा अभिमानी अत्यन्त असह्य पराक्रमवाला, भगवान् श्रीकृष्णका मामा (कंस) था। जिसने भ्रूभङ्ग मात्रमे तत्काल सबको जीत लिया था इस नाममात्रसे ही प्रसिद्ध जिसको लोग कंस नामसे कहते हैं ॥ १ ॥

अनुवाद—वह सब राजाओंकी गणनामें अग्रणी था। उग्रनीतिके आश्रय से सब देशोंपर शासन करनेवाला था। अधिक बलके मदसे अन्धे हृदयवाला था। कन्या विवाहके प्रेम-बन्धनमे राजा जरासन्धको भी अपने अधीनकर लिया था। (आशय यह है कि राजा जरासन्ध उसमे शक्तिमें अधिक था। किन्तु उसकी कन्या अस्ति-प्राप्ति नामकी कंसकी पत्नी थी। अतः सम्बन्धके कारण वह वशमें कर लिया था) जैसे अगस्तजीने चुल्लू भरकर समुद्रके जलका पानकर लिया था. वैसेही राजा कसने अपने भाईयोंकी सम्पत्तिका पानकर लिया था। यह अत्यन्त उग्र स्वभाववाला था। बिना क्षोभके राजाओंके अनेकों पक्षोंको तक्षण करनेमें तथा असि सदृश कठोर कर्ममें प्रख्यात था। इन्द्रकी भाँति शत्रुओंपर वज्र चलानेमें

---

(1) दर्वीकरः—सर्प । "दर्वीकरो दीर्घपृष्ठो दन्दशूकोबिलेशयः।" अ०को० १।८।८
दर्व्यकारः फण एव करो यस्य दर्वीकरः तस्य पतिः शेषः ।
(2) अखर्व=विशाल ।
(3) इद्धः—इन्ध+क्त=प्रकाशित ।
(4) मेदिनी=पृथिवी ।
(5) कुहना—(कुह+यु+टाप्) =दंभ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुहितृपरिणयादि प्रणयानुबन्ध बन्धीकृत जरासन्धो, बन्धोरपि सकल सम्पदं, सिन्धोरिव [1]कूम्भभूरहह महाप्रचण्डशीलो गण्डूषीकृत-वानवार[2] एव, अक्षोभ-क्षिति धवलक्ष, पक्ष तक्षण - कौक्षेयक - कर्म्म-प्रख्यात जम्भाराति - कराम्भोरुह दम्भारम्भिदम्भोलि[3]-निष्ठुर-सुर-मुनि-मनुजैकहिंसा नैष्ठिक चाणूर-मुष्टिक प्रभृति महामल्ल गोष्ठी-गरिष्ठो, भूयिष्ठोद्धतबक - पूतना - प्रलम्ब-धेनुक-तृणावर्त्त-दुर्वृत्ताघ-दुर्मद-द्विविदबलो - मुख प्रमुख महाबलोयो, बल-वेष्टितोऽविरतमहा-मदान्ध-गन्धसिन्धुर-प्रकराग्रणी महामदबलकुवलयापीड दुष्करापीड पुरा-धिष्ठितो मनसि न मेने कमप्येव ॥ २ ॥

कंस मृगया वर्णनम्

चलति सति कदाचिदाखेटक - खेलाय सखेल कण्ठीरवलील-गमन शीले यस्मिन्नतिगरिम तिरोहित गभीराम्भोधि-भीम-ध्वनिभर-गभीर-

---

निपुण था। देवता-मुनि तथा मनुष्योंकी हिंसामें तत्पर था। चाणूर, मुष्टिक आदि महा-मल्लोंसे युक्त होनेके कारण दुर्जेय था। अत्यन्त उद्धत बकासुर, पूतना, प्रलम्बासुर, धेनुकासुर तृणावर्त्त, दुर्वृत्त अघासुर, दुमद द्विविद, बलीमुखादि महा बलवानोंके बलसे युक्त था और निरन्तर महा मदान्ध गन्ध गज समूहमें अग्रणी महामदयुक्त बलवाले कुवलयापीड आदिसे सुरक्षित स्थानपर निवास करनेवाला वह कंस किसीको भी मनमें कुछ नहीं समझता था ॥२॥

विशेष—कंसकी बल-शीलताका बर्णन है, और उसके परिकरका वर्णन है जिसमें—चाणूर, मुष्टिक, शल तोषल आदि मल्ल हैं और कुवलयापीड नामक हाथी है, द्विविद एक वानर है यह श्रीरामावतारमें भी था। बलीमुख भी वानर था। कंसका सामना करनेवाला केवल जरासन्ध था वह कंसका श्वसुर था अतः कस देव, दनुज, मनुज किसीको भी अपने सामने बलशाली नहीं समझता था ॥ २ ॥

अनुवाद—राजा कस जब मृगया (शिकार) खेलने चलता था तब क्रीडापूर्वक सिंह जैसी चाल चलता था। अत्यन्त गरिमासे गम्भीर समुद्रकी भयंकर

---

(1) कुम्भभू—अगस्त्यः।
(2) अवार एव—नवार्यते जलेन वृ+घञ्
(3) दम्भोलि=वज्र।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भेरी-भयङ्कर-भाङ्कार-दुन्दुभि निवह-[1]दुन्दुङ्कार-प्रचण्डतरढक्काढकार पटुचण्डिम डिण्डिमाडम्बर-प्रकरकटु-झर्झर-झल्लक-झिङ्कार प्रकटतरा-हङ्कारभट-हुंकार गर्भगुरु-चाप-टङ्कार-घटोद्घाटित खण्ड ब्रह्माण्डभित्ति [2]परिणाहम्, प्रचलित मलय हिमालयमेरु-कैलास मन्दरविन्ध्य-सह्य-दर्दुर प्रभृति पूर्वा-पर—दक्षिणोत्तर—धरणिधर—दिग् दिगन्तर—दन्तावल प्रकर—प्रलय घन-घटायमानस्फुटकरटीन्द्र—कोटिकमठ—कठोर—कुम्भ—कूटकोटि-प्रकटित-मद-जलवाहिनी पूरितावनो वलयम्, अविरलहय-निवह सावहेल—हेषा—व्यतिकरसाटोपचाप—टङ्कार — भार मुखरित दिगाभोग—नभोभर—भूगोल—गोलोक मुखास्तोक—लोक—चक्रम्, गिरि—गुरुगजराज राजिव्रज-व्रजदति विततरथौघदुर्वहानोगणस्फुट-परिपुष्ट-

ध्वनिको तिरोहित करनेवाली गम्भीर भेरीकी भयङ्कर भांकार तथा दुन्दुभि समूहकी दुन्दुङ्कार तथा प्रचण्डतर ढक्काकी ढंकारको भी उसकी गर्जनाको पीछे छोड़ देती थी। पटु और उग्र डिण्डिम जैसे उग्रवाद्य समूह तथा झर्झर झल्लकीको झङ्कारसे प्रकट होनेवाला योद्धाओंकी अहङ्कार हुङ्कार होनेसे गम्भीर धनुषोंकी टङ्कारसे अखण्ड ब्रह्माण्डको भित्तियोंका विस्तार भी जिसकी ध्वनिसे फट जाता था। हिमालय, सुमेरु, कैलास, मन्दर, विन्ध्य, सह्य, दर्दुर आदि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तरके पर्वत मद जलकी धारारूपी नदीसे व्याप्त हो गये जो दिशाओंके हाथियोंकी प्रलय घन-घटाके समान प्रत्यक्ष हो मत्तगज समूह तथा कमठके समान कठोर अनेकों कुम्भोंसे प्रकटित हुई थीं। अश्व निर्भीकतासे हिनहिनाते उनके आरोपके साथ धनुषकी टङ्कार भारसे दिङ् मण्डलके मुखरित होनेसे सम्पूर्ण आकाश, भूगोल गोलोक आदि सब लोकचक्र व्याप्त हो गये थे। पर्वतसे बड़े-बड़े गजराजोंके चलते हुए तथा अत्यन्त विशाल रथ समुदाय एवं दुर्वह शकट समूह तथा प्रत्यक्ष पुष्ट-दुष्ट स्थूल उष्ट्र समूह इनसे युक्त उद्भट योद्धा उससे विकट उत्कट अत्यन्त भार उससे झुकानेवाला तथा नम्र करानेवाला जो पृथिवीका दुर्वह भार उससे शेषनागजीका गौरव नष्ट हो गया, कूर्मकुल श्रेष्ठ कच्छपजी भयसे चकित हुए आँख डबडबाने लगे, मानों अपनी रक्षा करनेको अपनी ग्रीवाको शरीरमें छिपा लेते हैं ॥ ३ ॥

विशेष—कसके उद्धत पराक्रम वर्णनकी शृङ्खलामें यह उसके अनुरूप

(1) दुन्दुङ्कार=दुन्दुभी।
(2) परि+नह+घञ्,=परिधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुष्ट-पीवरोष्ट्र-कुल भूयिष्ठोद्भट भट-विकटतरोत्कट-भूरिभार-भुग्न-मिव दानमदुर्बोदुर्वह-दुर्वार-भर-व्यग्रीकृत दर्वीकरपति-गरिम विखर्वीकृत गर्वतया कूर्म्म-कुल सार्वभौमो, भयचकित निमीलित नयनो, गोपायितु मिव निजवपुरन्तर्दधे स्व-मूर्द्धानम् ।। ३ ।।

द्वीपानद्रीन्समुद्रान्द्रुममनुजनदी दिग्गजान् बिभ्रदेकं
भूचक्रं चक्रिराजस्तदपि तमसकौ[1] कूर्म्मभू सार्वभौमः ।
कंसे विश्वावतंसे प्रचलति चलति द्राकि[2] कथञ्चित्रमेतद्
यस्माद् विश्वम्भरोभूत्फणिपति[3] शयने सोऽपि निद्रादरिद्रः ।। ४ ।।

वर्णन है। वाद्योंकी ध्वनि, घोड़े आदिकी ध्वनिका सजीव वर्णन है. सेनाके भारसे पृथिवी ही नहीं झुकी अपितु शेषजी भी झुक गये और कच्छप जो शेषको भी धारण करते हैं अपनी ग्रीवाको शरीरमें भीतर ले गये। कच्छपका यह स्वभाव है वह जब भयाक्रान्त होता है तो अपनी लम्बी गर्दनको शरीरके भीतर ले जाता है अतिशयोक्तिका वर्णन है।। ३ ।।

अनुवाद—द्वीप, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, मनुष्य, नदी, दिग्गज आदिको पृथ्वीचक्रने धारण किया है तथा पृथ्वीको शेषनागने धारण किया है, शेषजीको पृथ्वीपर प्रसिद्ध कूर्मराजने धारण किया है किन्तु विश्वभूषण राजा कंसके चलने-पर यह कैसी विचित्रता है कि ये सब तो कम्पित होते हैं साथ ही 'विश्वम्भर-भगवान्' शेषनाग पर शयन नहीं कर सकते, क्योंकि जब शेषजी हिलते हैं तो उन्हें निद्रा नहीं आती ।। ४ ।।

विशेष--कविने भगवान्को निद्रा दरिद्र बना दिया है। प्रभु सबका पालन-पोषण करते हैं पर उन्हींके आशीषसे उद्धत वर प्राप्त कंस जब सबको पीडित करता है तो शेषजीका पीडित होना स्वाभाविक है और जब शेषजी स्वयं कम्पित हैं तो उनपर शयन करनेवाले भगवान्की निद्राका भङ्ग होना स्वाभाविक ही है। उत्प्रेक्षालङ्कार है। सुन्दर कल्पना है ।। ४ ।।

---

(1) तम्+असच्
(2) द्रा+कु=शीघ्र (अव्यय)
(3) शेषः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कंसप्रताप वर्णनम्

यस्य कृते खलु दिशि दिशि द्वीपे द्वीपे पुरि पुरि गेहे गेहे पथि पथि द्वारे द्वारे नरि नरि चिन्ता सन्ताप कारिणो ववृधे ॥ ५ ॥

किमपरमहो प्रातः पूर्वाह्न-मध्याह्न-पराण्ह-संध्या-यामिनीष्वपि वर्णानामकर्णाकर्णिकमेकक्षणोऽपि न ययौ ॥ ६ ॥

न हि खलु केवल मुनिमनुज गणानां मनोऽनुतापदीपनाय स्नेह इवासीदपि तु सुराणामपि सुराणां भूसार्वभौमस्य ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णावतारोपक्रमः

तथा हि—

स्वयञ्जम्भाराति प्रभृति सुरसम्भारगमना—
गमारम्भैरम्भो-निधिरयमसम्भूतविरतिः ।

कंस प्रताप वर्णन

अनुवाद—इस कारण दिशा-दिशाओंमें, द्वीप-द्वीपमें, नगर-नगरमें घर-घरमें द्वार-द्वारपर मनुष्य-मनुष्यमें दुःख देनेवाली चिन्ता बढ़ने लगी ॥ ५ ॥

अनुवाद—अधिक क्या ? प्रातः पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न कालमें तथा सायंकालके समय और रात्रीमें भी यही चर्चा कानमें पड़ती थी । एकक्षण भी तो ऐसा नहीं जिसमें इस नृपतिकी चर्चा न हो ॥ ६ ॥

अनुवाद—केवल मुनियों अथवा मनुष्योंका ही मन, दुःखरूपी दीपक जलानेको तेलकी तरह नहीं था, देवदेवोंका मन भी उस पृथ्वीके ईश्वर कंससे भयभीत था ॥ ७ ॥

विशेष—सब समय लोगोंमें एकही चर्चा रहती अब कंसने क्या किया किसे मारा या पटका और अब किस लोकमें गया या किसके साथ उसका द्वन्द्व चल रहा है । अतः देवाधिदेव भी उसके भयके कारण चिन्तित रहते थे भागवत-में भी वर्णन आता है कि पृथ्वीपर जब घोर अत्याचार बढ़गये तब वह गौका रूप धारणकर ब्रह्माजीकी शरणमें गई थी और अपना वृत्तान्त सुनाया था तथा कंसके अत्याचारोंकी चर्चाकी थी—

भूमिर्दृप्तनृपव्याज दैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरेभारेण ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ भा० १०।१ ।

श्रीकृष्णावतारोपक्रम

अनुवाद—स्वयं इन्द्रादि देवोंके आने-जानेसे समुद्र स्थिर नहीं रहता था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न तेषामास्येषु स्तुतिविरतिरासीत्क्षणमहो
समीपे शेषाङ्कोपरिशयितपङ्केरुहदृशः[1] ॥ ८ ॥

किमपरं यस्य कृतेऽति बहलवर्द्धमान - मुग्ध - दुग्धवीचीनिचयानीचीकृतसमीचीना प्राचीन प्रचुरतरान्तरोदञ्चदतिमन्द्रसान्द्र-मधुर-ध्वनि-धोरणी मधुरिपुधामनीह दुग्ध-नीरधौ कुसुमसुकुमार चामर-ग्राहिणीनाम् मृदुकर-कोमल कमल-विचालितचारु-चामरोच्चयमसृण समीरण-सेवितोऽपि वदनविजितेन्दु सिन्धु-नन्दिनी कराम्बुज संवाह्यमानचरणाम्बुजोऽपि मलयज विस्तर कस्तूरिकानिकर-निवेशचारुवेष-सुललित मालती-निर्विशेष निःशेष सुरभीकृतशेषभोग-पर्यङ्कनिःशङ्क-शयितोऽपि स्तुतिमुखराननचतुरानन - पाकशासन[2]-शमन[3] हुताशन[4] प्रभृति गीर्वाण-गीर्वाहिनी बहलकालाहलकौशलादचिरेणैव जातजागरो दरकुञ्चित वक्रीकृत लोचनाञ्चलवक्रीकृत मन्दोन्नत भ्रूलतम्, मणि-मयकुण्डल-मण्डल परिपीडितांस-फलकम्, अलक-कुलाकुलालिकम्, आमोटित[5] मृदुल-कलेवरम्, अतिशिथिलीकृत वचन मनोहर-लघु लघु-

---

देवोंके मुखपर स्तुति-पाठ अनवरत चलता था। शेषनागकी शय्यापर विश्वात्मा भगवान् कमलनयन शयनकर रहे थे ॥ ८ ॥

अनुवाद—जिनके लिये, अत्यन्त बढ़ती हुई दुग्धकी तरङ्ग समूहसे बढ़ी हुई सुन्दर, नवीन, बीच-बीचमें उठती हुई अत्यन्त चिकनी मधुर ध्वनि देवगणकर रहे थे, मधुरिपु भगवान् जब क्षीरसागरमें शयनकर रहे थे तब—कुसुमके सदृश सुकुमार चामर ग्राहिणियोंके कोमल करकमल द्वारा चलाये हुए, सुन्दर चंवरकी सुन्दर मन्द पवनसे सेवित थे, और अपने मुखद्वारा चन्द्रमाको भी जीतनेवाली श्रीलक्ष्मीजीके हस्तकमलसे उनके पैर दवाये जा रहे थे। चन्दन चर्चित कस्तूरी चूर्णके संसर्गसे सुन्दर वेषवाली, सुललित मालती सदृश गन्धसे सम्पूर्ण सुगन्धित शेष शैय्यापर प्रभु निःशङ्क शयनकर रहे थे उस समय ब्रह्मा, इन्द्र, यम, अग्नि

---

(1) कृष्णावतारोपक्रमकथा भा० १० स्कं १–२ अध्याययोर्वर्त्तते।
(2) इन्द्रः
(3) यमः
(4) अग्नि
(5) आ+मुट+ल्युट्। कुचलना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जृम्भारम्भ सम्भासितार्ध वदनाम्भोज - मधुरम्, आलोकयन्नभितः सविस्मय इव नारायणः समुत्तस्थौ ॥ ९ ॥

वचनमवकलय्य च देवतानामजानन्निव ससंभ्रम-भ्रमित-भ्रू वि-भ्रममाधूनयामास मूर्द्धानम्, प्रतीकारोपायमपि सहायान्तरमपि चिन्त-यामास माधवः श्रीमान्; समुचितमेव सहायान्तर चिन्तनं मह-तोऽपि ॥१०॥

तथा हि—

अधिगच्छतु को लक्ष्यं गुणप्रौढोऽपि सायकः ।
सहायः स्यान्नचेदेको धनुर्द्धरधुरन्धरः ॥११॥

आदि देव जो स्तुति करनेमें निपुण थे स्तुतिके शब्द करने लगे तो उसके कोला-हलसे भगवान्‌की निद्रा भङ्ग हुई और वे तिरछी चितवनसे, टेढी भ्रूलता करके, मणिमय कुण्डलोंसे व्याप्त स्कन्धवाले, केश समूहसे भरे मस्तकवाले, कोमल शरीरसे अङ्गड़ाई लेते हुए, अत्यन्त हलके वचन होनेके कारण तथा सुन्दर हलकी जंभाई लेनेके कारण आधे खुले मुख-कमलवाले, मधुर आश्चर्यके साथ चारों ओर देखते हुएकी तरह नारायण भगवान् उठ बैठे ॥ ९ ॥

अनुवाद—श्रीवैकुण्ठनाथ भगवान्‌ने देवोंकी स्तुतिके वचनोंपर विचार किया और विलासपूर्वक घूमे और भृकुटियोंको घुमाया तथा गर्दन हिलाई। प्रतीकारके उपायको अन्य सहायकको भी भगवान्‌ने विचार किया। सचमुच बड़ोंको भी दूसरे सहायकको सोचना ही पड़ता है ॥१०॥

विशेष—भगवान् क्षीर समुद्रशायी हैं। भागवतकारने भी सब देव क्षीर-सागरमें भेजे हैं। भागवतमें भी देवस्तुति है--वहाँ देवोंने पुरुषसूक्तसे स्तुतिकी है। पुरुषसूक्त ऋग्वेदमें है जिसका प्रथम मन्त्र यह है--

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
स भूमिं विश्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

विष्णु भगवान्‌ने ब्रह्माजीको अपना रहस्य बतला दिया। ब्रह्माने समस्त देवोंको आज्ञा दी कि आप लोग व्रजमें मथुरामें यादवों एवं गोपोंके घरोंमें जन्म ग्रहण करो ॥१०॥

अनुवाद—प्रत्यंचासे युक्त भी कोई बाण लक्ष्यका वेध नहीं कर सकता जब तक धुरन्धर धनुर्धारी सहायक न हो ॥११॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वसुदेववर्णनम्

अगणित दिन-यामिनीक नारायणसेवा - परायणः प्रल्हाद इव, अनुगतपरिपालनैकनिष्ठो युधिष्ठिर इव, प्रतिनियतमजात-प्रतिज्ञाभङ्गो गाङ्गेय[1] इव, निरवधि समधिकसावधानतया पितुरनुशासनैकसेवने निपुणो राम इवाविरतपरमार्थभावभागी, विभाण्डक-कुल-मण्डनो भगवानृष्यश्रृङ्ग इवानवरतमवार्यधैर्यशीलो, जलधिरिव गाम्भीर्य्यवितरण-शौर्य-प्राचुर्य्यैकपदम्, अचल इवजगदुपरिमहास्थैर्यैक साम्राज्यभूः कर्ण इव जगदाश्चर्य्यौदार्यैकनिधिः, दधीचिरिव प्रतिनियतमपर्याप्तमर्यादिक कन्दो, हरिश्चन्द्र इवातिथिजनप्रतिपालनैकतत्परः, स्वतनुज मधुसूदन प्रतिमो, यदुवंशकेसरी जगदवतंसो[2], नियतमदूर-महानुभाव-महनीय-शूरसेनान्महा जलधेरिव कल्पमहीरुहो[3], हृदि संवासित वासुदेव-[चरण] द्वयी धर्म्मवत्तया वसुदेवो नाम तत्र प्रादुरासीत् ।।१२।।

विशेष--यद्यपि बाण ही लक्ष्यका वेध करता है तथापि धनुर्धारीके अभावमें वह किसीको मारनेमें या भेदनमें समर्थ नहीं हो सकता। भगवान् भी किसीका उपकार या अपकार करते हैं, निमित्त बनाते हैं—गीतामें जब कौरवोंके विनाशकी बात आई तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि ये सब मेरे द्वारा मरे हुए ही समझो तुम केवल निमित्त हो जाओ–"निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।" (गीता)

सर्व समर्थ होते हुए भी ईश्वर किसी न किसी व्यक्ति विशेषका अवलम्ब लेकर अपनी कथा वस्तुको आगे बढाते हैं ।।११।।

वसुदेव वर्णन

अनुवाद—दिन-रात नारायणकी सेवामें संलग्न प्रह्लादकी भाँति, सर्वदा सावधानीपूर्वक पितृ आज्ञा-पालक रामकी भाँति निरन्तर परमार्थ भावमें लगे रहनेवाले विभाण्डक कुलभूषण अटूट धैर्यधारी भगवान् ऋष्यश्रृङ्गकी भाँति, गंभीरतामें सर्वोत्कृष्ट शूर समुद्रकी भाँति, जगत्में अत्यन्त स्थिरताका साम्राज्य स्थापित करनेवाले पर्वतकी भाँति, संसारमें आश्चर्यपूर्वक उदारताके निधि कर्ण की भाँति, निश्चयपूर्वक उच्च-मर्यादाके संस्थापक दधीचिकी भाँति, अतिथिजन

---

(1) भीष्मः।
(2) अवतंसः=भूषणः।
(3) कल्पवृक्षः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स खलु सकलानुरञ्जनैक - शीलसीमा परमवशीकृत निखिल-मनीषी परिणतरमणीयशीत किरण[1] इव निज-कुल-कुमुदानि मोदयन् शुशुभे ॥१३॥

वसुदेव विवाहवर्णनम्

गुणगरिम-महिम-निकामधामतया निरवद्यशुद्धकुलीनतया परम-विचार-चातुरीधुरीणो धरणिपतिरुग्रसेनः सबहुमानपुरःसरं दुहितरं नाम देवकीमदात्तस्मै ॥१४॥

सेवक हरिश्चन्द्रकी भाँति अपने पुत्र मधुसूदनके समान प्रतिभावाले यदुवंश केसरी संसारके भूषण महाजलधिसे उत्पन्न कल्पवृक्षकी तरह अत्यन्त प्रशंसनीय महानुभाव शूरसेनसे उत्पन्न हृदय, धर्मबुद्धिकी भावनावाले भगवान् कृष्णके चरणद्वय स्थापित करनेवाले वसुदेव वहाँ उत्पन्न हुए ॥१२॥

अनुवाद—वे सबको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाले, सभी विद्वानोंको अपने सरल स्वभावसे वशमें करनेमें समर्थ थे मानों शीत किरणवाला चन्द्रमा ही इस रूपमें आकर कुमुद समूहको प्रसन्नकर रहा हो, उसी तरह अपने कुलको प्रसन्न करते हुए शोभित होते थे ॥१३॥

वसुदेव विवाह वर्णन

अनुवाद--अत्यन्त गुणी होनेके कारण और तेजस्वी होनेके कारण साथ ही इनका कुल निष्कलंक था इसलिये परम विचारक एवं चतुर राजा उग्रसेनने बड़े आदरपूर्वक अपनी कन्याका विवाह वसुदेवके साथकर दिया था ॥१४॥

विशेष—श्रीमद्भागवत पुराणके अनुसार देवक राजाकी कन्याका नाम देवकी था। इसका पालन पुत्रीवत् करनेके कारण इसे उग्रसेनकी कन्या समझा जाता था। श्रीवसुदेवके पिता भी इसी भूमिके पास (आजकल जिसे बटेश्वर कहते हैं।) नृपति थे। इनके पिताका नाम शूर था और यह देश शूरसेन देशके नामसे विख्यात था। वसुदेवका द्वितीय नाम आनकदुन्दुभी था--क्योंकि इनके जन्मके समय आकाशमें आनन्द और दुन्दुभी नामके वाद्य बजे थे। विवाहके समय देवकी अवस्थामें वसुदेवसे बहुत छोटी थी क्योंकि उनका यह आठवाँ विवाह था ॥१४॥

---

(1) चन्द्रः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स खलु तया गुणनिकर-निधानया विहिताखिल भाविकविधानया निखिल-प्रकृति-गण समुचित-शुश्रूषण-सावधानयाऽप्रतिरूपरूपस्तूपया त्रिभुवनकमनीयसुकोमल शोलया तुलितनिःसीमकलाकौशलया, महा-वैदिक मन्त्रोपनीतहविराहुत्येव हुताशनः[1], सुवितत सुकृतकृतार्थो कृता-खिल-कार्तिक राकयेव नायको निशायाः, शरदुपचितप्रभातवेलयेव पद्मिनीरमणः[2], सुविततगुणघोषया निर्दोषया कवितयेव सारस्वत प्रपञ्चः, कञ्चनकान्तिकलापमवाप ।।१५।।

आकाशवाणी

कंसः पुनरनुरागभागपि तयोरुपायनीकृत-तपनीयो[3]पकरणरमणीय-परभाग-नाग[4]तुरग-रथयानवाहिनीगणबहुगुणभासमान समानाभरण-

---

अनुवाद—देवकी अनेक गुणोंसे युक्त थी, भव्य विधानों को जाननेवाली थी। समस्त प्रजाकी उचित सेवामें सावधान थी और अद्वितीय रूपसे सम्पन्न थी; यहाँ तक कि तीनों लोकोंमें वह श्रेष्ठ सुन्दरी थी, कोमल स्वभाव वाली थी साथ ही अनेक कलाओंमें निपुण थो। उस देवकीको प्राप्तकर श्रीवसुदेवकी शोभा ऐसी हुई जैसे वैदिक मन्त्रोंके द्वारा डाली गई आहुतिसे अग्निको शोभा होती है अथवा बड़े-बड़े पुण्योंके द्वारा कार्तिकी पूर्णिमासे कृतार्थ किये हुए चन्द्रमाकी शरद ऋतुकी प्रभातवेलासे शोभित सूर्यकी, कविताके द्वारा सरस्वतीके प्रवाह रूप काव्यकी शोभा होती है, वैसेही अनेक गुणवाली निर्दोष देवकीसे वसुदेवकी शोभा हुई ।।१५

आकाशवाणी

अनुवाद—देवकीसे कंस अधिक स्नेह करता था, जब इनको भेंट आदि दे दीगई जिसमें सुवर्णके अनेक अलङ्कार थे, हाथी, घोड़े, सेना समूह तथा अनेक गुणवाले चमकते हुए सुन्दर साज सामान दास-दासी भी थीं। इन्हें लेकर देवकी वसुदेव चलनेको उद्यत ही हुये थे, उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'कंस ! इस भगिनका पुत्र ही तुम्हारा विनाश करेगा।' इसे सुनते ही अत्यन्त दुःखित होकर बहिनको मार देना चाहिये ऐसा निश्चय करके कंसने मारनेका बार-बार उद्योग किया क्योंकि किसीकी सामर्थ्य उसे ऐसा करनेसे रोक नहीं सकती थी ।।१६।।

---

(1) अग्निः ।
(2) सूर्यः ।
(3) सुवर्णम्—तप+अनीयर् ।
(4) गजः ।

विलासी भवदसीम दासी दास-राशिरपि स्वविनाशि भगिनेयभावि-नीत्यकस्मादाकाशवाणीप्रणीतकर्णज्वरनीतितया विमनीभूय भृशमभि-दूयमानो भगिनी हननीयेति निर्णीय दुर्निवारो वारं वारं महोद्यमं व्यतानीत ॥१६॥

कंसाद् देवकी रक्षणम्

अथ कथमपि बुद्धिकौशल बहुविधसामाचरणतया भाविनोऽर्थ-स्यावश्यम्भावितयोत्पत्तिसम-समय-समस्तापत्यार्पणैकनियमतया च मद-

---

विशेष—भागवतमें आता है कि—आकाशवाणीने यह सुनाया कि इसका आठवां गर्भ तेरा काल होगा—

> अस्यास्त्वामष्टमोगर्भो हन्तायां वहसेऽबुध,
> इत्युक्तः सखलापापो भोजानां कुलपांसनः।
> भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ भा० १०।१

भागवतमें कन्याको सत्कारकर दिये गये दानका भी उल्लेख है ४०० हाथी थे, २०० दासी थी, १२०० रथ, १५०० घोड़े—

> अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च द्विषट् शतम्।
> चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेम - मालिनां।
> दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते।
> दुहित्रे देवकः प्रादाद् याने दुहितृवत्सलः॥ भा० १०।१

कंससे देवकीको रक्षा

अनुवाद--तदुपरान्त वसुदेवजीने बड़ी चतुरतासे और अपने शान्त आचरणसे, 'होनहार होकर ही रहती है' यह समझाते हुए प्रतिज्ञा करके—कि इस देवकीके गर्भसे उत्पन्न सभी सन्तानोंको जन्म लेते ही अर्पणकर दूँगा—विश्वास दिलाया तथा (देवकीको) मदमत्त गजके दाँतसे पद्मिनीकी तरह, जलती हुई अग्निकी लपटके बीचमें पड़ी हुई हव्यकी आहुतिकी तरह, कुपित यमराजके मुख-रूपी गुहाकी तरह अत्यन्त धैर्यका नाश करनेवाले उस कंससे वसुदेवने देवकीको छुड़ाया ॥१७॥

विशेष--श्रीमद्भागवतमें वसुदेवने चार प्रकारकी नीतियोंका स्मरण किया और निर्णय किया कि साम, दान, दण्ड, भेदमें से या तो इस समय भेद-नीति उपयुक्त है या साम क्योंकि न तो मैं दण्ड देनेमें समर्थ हूं और न दान देनेमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल-दन्तावल[1] दन्तादिव पद्मिनीम्, ज्वलदनलशिखान्तरालसम्भृतामिव हव्याहुतिम्, सुचिरस्वपोषितकण्ठीरव कण्ठा दिव बालमृगीम्, कुपित-कृतान्तानन-गह्वरादिव निर्भरजनित - धैर्य्य - ध्वंसादपि कंसाद्वसुदेवो देवकीमावर्त्तयामास ॥१७॥

श्रीकृष्णभ्रातृणांवर्णनम्

अथ समयक्रमेण यथा [2]स्वीकारमर्पयामासषडेव शावकान्देवक-दयितः ॥१८॥

अहो त्रिजगदगोचरैव देवकीमाया, यदनायासेन देवकीगर्भात् सप्त-मगर्भाविर्भूतभूधात्रीधरण धुरन्धरा - चिन्त्यानन्तमहिमानन्तोऽनन्तसी-मन्तिनीसीमन्तमणिरमणीयतातिरोहि[3]णीरोहिणीकरोहिणीरमण[4] सुख-रोहिणीगर्भमध्युवास ॥१९॥

ही सक्षम हूं. अतः सामका ही अवलम्बन लिया और कंसको शान्त किया थ ॥ वसुदेवने विचार किया कि जब तक मनुष्यमें बुद्धि और बल हो अवश्य मृत्युका निवारण करना चाहिये यदि निवृत्त न हो तो मनुष्यका कोई दोष नहीं है—

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद् बुद्धिबलादयम् ।
यद्यसौ न न्यवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ भा० १०।१।४८

श्रीकृष्णके भाईयोंका वर्णन

अनुवाद--इसके पश्चात् कंसने जब देवकीको छोड़ दिया तो कालान्तर में छः बालक वसुदेवजीने कंसको समर्पित किये ॥१८॥

अनुवाद--अहो देवकीकी माया तीनों लोकोंसे अगोचर है जो अनायास ही देवकीके सातवें गर्भसे पृथिवीरूप धात्रीके धारण करनेमें धुरन्धर अचिन्त्य और अनन्त महिमावाले अनन्त भगवान्, अनन्त सीमन्तिनियों (स्त्रियों) की अनन्त केशपाशोंकी मणियोंकी सुन्दरताको तिरोहित करनेवाली 'रोहिणी रमण वसुदेवजीको' आनन्दित करनेवाली रोहिणीके गर्भमें आगये ॥१९॥

विशेष—देवकीका सातवां गर्भ नष्ट हो गया यह मथुरामें समाचार फैल गया । लोग तरह तरहकी शंकायेंकर रहे हैं, पर वह प्रभुकी माया थी इसे

(1) गजः ।
(2) शावक्ः—शाव+कन् [शिशुः]
(3) अतिक्रमण करनेवाली ।
(4) चन्द्रः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकस्मादेवं विध विबुध विधान कौशले सति सपदि निर्भर निर्भ्रान्त प्रतीतयो 'देवकीगर्भोनिपतित' इति निरूचिरे पौराः। समुदितबुद्धिभ्रंशेन कंसेनापि तथा प्रतीतम् ॥२०॥

श्रीकृष्णस्य गर्भवास निरूपणम्

अथ सुरनिकर-निकाम-कामनापूरणाय धन-जन यौवन भौवनाधिपत्थापत्य प्रत्यहवर्द्धमान करितुरगादिकयान-पानप्रचुरीकृताभिमान-दानवानवरत मद-मेदुर-मेदस्वि मेदिनी खर-विसर[1]-स्वरूपमुर्वीदुर्वह भूमिभारमपनेतुकामो–निरपेक्षितशर्म्मनर्म्मापरधर्म कर्म निर्मितात्म–

नहीं जान सके थे। भगवान् विष्णुने योगमायाको आदेश दिया था कि तुम मथुरामें जाओ और देवकीके गर्भको खींचकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित करदो––मैं देवकीके गर्भसे जन्म ग्रहण करूँगा, और तुम यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण करना—

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते।
तत् सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥१०।२।५

रोहिणी भी वसुदेवकी पत्नी थी जो नन्दगोकुलमें जाकर बसगई थी ॥१९॥

अनुवाद—अकस्मात् इस प्रकार चतुरताका दैवी विधान होनेपर, तत्काल निर्भ्रान्त प्रतीति करानेवाले रक्षकोंने 'देवकीका गर्भ गिर गया", इस प्रकारकी घोषणाकर दी। बुद्धि भ्रंश कसने भी इस बातको स्वीकारकर लिया।

हरिका गर्भमें आना

अनुवाद––इसके पश्चात् देवताओंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेके लिये धन, जन, यौवन लोकाधिपत्य–सन्तान तथा प्रतिदिन बढ़नेवाले हाथी-घोड़े आदि यान-पानसे बढ़े अभिमानवाले दानवोंके निरन्तर मदसे पृथिवीके दुर्वह भारको दूर करनेकी इच्छावाले, कल्याण तथा आनन्दसे शून्य अत्यन्त कष्ट दशामें विद्यमान, और समस्त धर्म-कर्मों द्वारा भगवान्‌की चरणसेवामें संलग्न देवको और वसुदेवकी अभीष्ट पुत्र प्राप्तिकी कामनाको पूर्ण करनेकी अभिलाषावाले, अपनी भक्तवश्यताको प्रकाशित करते हुए भी भगवान्‌के चरणकमलोंकी निकलनेवाली मकरन्दमें मनरूपी भ्रमरको लगानेवाले, बढ़े हुए आनन्दको और भी बढ़ानेकी

---

(1) [वि+सृ+अप्] विस्तार।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदपद्मपरिचर्ययोर्देवकीवसुदेवयोरभिमतसुतवासनावसानमानिनीपुरा - त्मनोऽपि भक्तैकमात्रवश्यम्भावं प्रकाशयन्नपिनिजचरणारविंदमस्पन्द-मानमकरन्दमन्दिरीकृतमानसमैलिन्दयोर्यशोदानन्दयोरतिशयमानन्द वृन्द मतितुन्दिलो[1] भावयितुमपि सुन्दराभीर - कुलेन्दीवर लोचनाहृदय-गन्ध गजेन्द्र-बन्दीकरण कौतुकी देवकी जठर-पिठरी[2] निवासमेवोररी-चक्रे चिरं चक्री ।।२१।।

तस्मिन्पुनरन्तराविर्भाविभवतिरोभाविनिशरदभिनव-रवि-गर्भदुर्वह-दुर्वारद्युति-भर वारितान्धकार परम्परा पौरुहिती हरिदिव हरिदेवतो-द्दिदीपे ।।२२।।

इच्छासे, सुन्दर आभीर कुलकी इन्दीवर लोचना स्त्रीके हृदयरूपी गन्ध गजके बन्दीकरणके कौतुकवाले अर्थात् गर्भमें प्रविष्ट होनेकी इच्छावाले देवकी जठर-पिठरमें भगवान्ने अपना निवास स्वीकार किया ।।२१।।

अनुवाद – फिर जठर मध्यमें प्रकट होनेवाले भावोंसे उनके न छिपनेपर शरद-ऋतुके प्रातःकालके नवीन सूर्यके धवल मेघसे आच्छादित होनेपर भी कान्तिमान् होनेके कारण आच्छादित सूर्यकी तरह गर्भगत भगवान्की दुर्वह और दुर्वार द्युति भारसे अन्धकार परम्पराको हटाकर पूर्व दिशामें प्रकट होनेवाले सूर्यदेवकी तरह चमकने लगे ।।२२।।

विशेष—भागवतमें भी देवकीके गर्भावस्थाके तेजका विशिष्ट वर्णन है। कंस बार-बार देवकीको देखने कारागारमें आया करता था। प्रभु श्रीकृष्णके गर्भगत होनेपर जब वह आया और उसने देवकीका शरीर देखा तो शंकित हो गया। क्योंकि उसके गर्भमें विष्णु भगवान् थे--

आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवश्रितो यन्नपुरेयमीदृशी ।। भा० १०।२।२०

वह कहता है कि यह पहले ऐसी नहीं थी, अवश्य ही मेरे प्राण लेनेवाला इसके गर्भमें विष्णु बैठा है। उसका तेज दिव्य था—

सादेवकी सर्व जगन्निवास निवासभूतानितरांन रेजे।
भोजेन्द्र गेहेऽग्नि शिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथासती ।। भा० १०।१

(1 तुन्द+इलच्
(2) पिठ+करन् [पात्र]।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीकृष्णजन्मवर्णनम्

अपि च यशोदा यशो-दान-दाक्षिण्य-शोभिनी दुर्घटनैक-पटीयस्यां तस्यां जठर पिठरीमासेदुष्यामभिबोधित सकलसमृद्धि-सिद्धि बहुविध-शुद्धि परमब्रह्माजिह्म-प्रकाश गर्भोपनिषदिव गोकुलधामाभिरामयन्ती जगदुपरि कयापि शोभयोज्जज्वाल नभसि ॥२३॥

घन घना घनान्धकारे, नभसि निशार्द्धं वृषार्द्धभाजिचन्द्रे, समजनि यदुसिन्धु रोहिणीशोऽष्टमतिथिबन्धुर रोहिणीविहारे[1] ॥२४॥

पुष्पवृष्टि वर्णनम्

जगदिदमखिलमनंहोकृत्य दैत्यसङ्घ-संहार-रंहोजुषि स्फुरदम्भो-

श्रीकृष्णजन्म वर्णन

अनुवाद—उस समय यश और दान आदिसे अधिक शोभा देनेवाली—यशोदा, दुर्घटनाओंमें पटु अपने उदरमें योगमायाके आ जानेपर शोभित हुई। समस्त सिद्धियोंकी यह अधिष्ठात्री थी और इसे अनेक प्रकारकी शुद्धियां बतलाई गई थी प्रब्रह्मके सहज प्रकाशको अपने अन्तर्में लिये थी। अतः उपनिषद्की भाँति [उपनिषद्में ब्रह्मका विचार होता है] गोकुलधामको प्रकाशित करती हुई विचित्र शोभासे आकाशमें सबसे अधिक शोभाको प्राप्त हुई ॥२३॥

विशेष—योगमाया, यशोदाके गर्भमें जबआई तबका वर्णन है, यशोदाकी पुत्री योगमाया देवकीके पास पहुँचेगी और श्रीकृष्णको वसुदेव यशोदाकी शय्यापर लावेंगे। भागवतमें यह वर्णन है ॥२३॥

अनुवाद—आकाशमें बादल घिर आये थे, अर्धरात्रीका समय था, यदुकुलरूपी समुद्रमें चन्द्रमाके समान भगवान् श्रीकृष्ण अष्टमी तिथिमें रोहिणी नामक नक्षत्रमें देवकीके गर्भसे प्रकट हुए ॥२४॥

विशेष—भागवतमें ८६ श्लोकोंमें श्रीकृष्णके जन्मका वर्णन है—

निशीथेतम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्व गुहाशयः।
आविरासीत् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥ भा० १०।३।८

पुष्प वृष्टि वर्णन

अनुवाद—इस संसारको निष्कलंक करनेको दैत्य समुदायका संहार

---

(1) चन्द्रः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर-दम्भावसारणारम्भिशोभासम्भारिवपुषि परमतेजसि दिशि दिशि के के त्रिदशा न तेनिरे कुसुमवर्षणानि हर्षातिशयेन ॥२५॥

पुरुहूत[1]हुतवह-यमयामिनी चर[2]-चक्रवर्त्ति वरुण-समीरण - धनद-धूर्जटीनाम्[3] धामधोरणीषु दुन्दुभीनां जम्भारिमुक्तजलधर-गम्भीर-जलनिधि संभूत घन रवगर्व चर्विणो जर्जरित वैरि-नारीमर्मणः समुज्जजृम्भिरे नादाः ॥२६॥

जम्भारिर्दुन्दुभीनां ध्वनिभिरमुखरीकृत्यनासीज्जगद् द्राक्
नाजाग्रद्रोमरुद्रो विधिरपि सहसा ना चमत्कार मूढः ।
नावर्षत् पुष्पवर्षं दिशि दिशि समुनिर्देवर्तार्षिर्महर्षिः
लक्ष्मीशे वैरिलक्ष्मीमभिसरति पुरे माथुरे कौतुकेन ॥२७॥

तस्मिन्नाविर्भवति मथुरायां, मथुरामेव के न महात्मानो बहु प्रशंशसुः ॥२८॥

करनेवाले तेजको धारण किये हुए, उठते हुए बादल जैसे पाखण्डको दूर करनेवाली शोभाको धारण किये हुए परम तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रकट होनेपर हर्षकी अधिकता से सभी देवोंने पुष्पवृष्टिकी ॥२५॥

अनुवाद—इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षसोंके राजा वरुण, वायु, कुवेर शङ्कर आदि सब देवताओंके स्थानपर नगाड़ोंके शब्द तथा इन्द्रके द्वारा छोड़े हुए बादलोंकी तरह गम्भीर समुद्रसे होनेवाले अत्यन्त शब्दसे भी उग्र शत्रुओंकी तरह नारियों के मर्म स्थलको पोडित करनेवाले नाद उत्पन्न होने लगे ॥२६॥

अनुवाद—जिस समय कौतुकमें ही लक्ष्मीपति भगवान् कृष्णने मथुरानगरीमें शत्रुओंकी लक्ष्मीपर अभिसार किया। अर्थात् जब मथुरामें जन्म लिया तव नगाड़ोंके शब्दसे तत्काल ही संसारको गुञ्जित करनेमें इन्द्र रुका नहीं और बिना रोमांचके रुद्र भी न रह सके, ब्रह्मा भी बिना चमत्कारके मूढ नहीं रह सके, दशों-दिशाओंमें बिना पुष्पवर्षा किये हुए मुनि, देवता, ऋषि, महर्षि भी न रह सके ॥२७॥

अनुवाद—मथुरामें श्रीकृष्णके जन्म लेनेपर कोई महात्मा मथुराकी इस प्रकार प्रशंसा करते हैं ॥२८॥

---

(1) इन्द्रः
(2) चन्द्रः
(3) शिवः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथाहि—

आः पुण्यं मथुरापुरस्य परम ब्रह्मापि कर्म्माचरद्
यत्राहो निजजन्म साधु मनुते पित्रोः समुद्धारतः।

केचन पुनरद्यापि तमेवार्थं युक्त्या समर्थयन्ते—

आत्मानं विततार चारु मथुरोतंसस्तु कंसः कथं
तन्नो चेत्पुरुषोत्तमाय बहुधा दोषान्विचिन्वन्नपि ॥२६॥

महोद्यमेन निरवद्यवाद्य-घोषमिव, मृदु-मधुरसान्द्रमन्द्र-घोषं वितेनिरे, परितोऽति - परिपुष्टवारि·वृष्टिं मुक्तावृष्टिमिव भृशमारभिरे, जगतिहरिजन्म महामहोत्सवेन कौतुकतरलाः सौदामिनीं नाम नर्त्तकीमानर्त्तयामासुराशु, रसमेदुराः पयोधर परम्पराः ॥३०॥

अथोद्भट - किरण-जटाल-हाटक-घटित मणिपदुतुला कोटिपादकटक-कटिमेखलोत्कटकान्त-कङ्कण-केयूर ग्रैवेयकावस्थ-कौस्तुभमहाहेमहार हसित-हरि हारि-कुण्डल किरीट-कोटीरकोटि मणिमण्डने, नासा शिखर विलम्बिविक स्वर सुवर्त्तुलपृथुलमुक्ताफलधवलमयूखमांसलकपोलतले, करकमलालङ्कृत·कमल-कम्बु कौमोदकी चक्रे चक्रिणि[1]

अनुवाद—आहा ! मथुरा नगरीका कैसा पुण्य है। परब्रह्मने भी कर्मका आचरण करते हुए, माता-पिताका उद्धार करनेके लिये जहाँ जन्म लेना अच्छा माना। कोई-कोई आज भी इसी अर्थको इस युक्तिसे समर्थित करते हैं। अगर यह न होता तो दोषोंको धारण करते हुए भी मथुरापुरीका राजा कंस अपने आपको कृष्णके लिये समर्पण क्यों कर देता ॥२६॥

अनुवाद—उस समय भगवान् कृष्णके जन्म समयपर कौतुकसे तरल होकर पयोधर परम्पराने सुन्दर वाद्य-घोषकी तरह मृदु-मधुर-मन्द-मन्द गर्जन प्रारम्भ किया, चारों ओर मुक्तावृष्टिकी तरह तीव्र जलवर्षा प्रारम्भ हुई। हरिजन्मके उत्सवमें चञ्चल-चित्त होकर सौदामिनी नाम नर्तकीका नृत्य तत्काल प्रारम्भकर दिया ॥३०॥

अनुवाद—इसके पश्चात् उद्भट किरणोंके निकलनेसे जटाओंकी तरह प्रतीत होनेवाली सुवर्ण घटित मणियोंसे सुन्दर तुलाकोटि पादकटक-कटि मेखला उत्कट और सुन्दर कंकण केयूर ग्रैवेयक ग्रीवालङ्कारकी तरह कौस्तुभमणिको

(1) कृष्णः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोचन-पथमण्डिनि पुण्डरीकलोचने, यदुकुल-कमल विरोचि-विरोचना-गौर-वाससि नाभीस्थित-स्तुति मुखरित ब्रह्मणि परमब्रह्मणि हृदयानन्दिनि नन्दनीभावविनितदङ्गाम्बु-वाहच्छवि-धारोपलम्भन - प्रोद्भिन्न-कलमाङ्कुर-निकरेणेव विपुलपूलकोत्करेण कलितकलेवर केदारौ वहदानन्द नयनजलमन्दाकिनीमेदुरौ[1] बहुकृताकैत वसुदेवदेवकी वसुदेवौ नहि केषां केषां फलानां भाजनीभवतः ॥३१॥

धारण किये हुए, बड़े सुवर्णके हारको तथा चमकनेवालो किरणोंसे युक्त कुण्डल, किरीट, कोटीरादि अनेक मणिभूषित (कृष्णको देखा) जिनके नासा शिखरपर गोल-मोटा और चमकयुक्त मुक्ताफल था। मुक्ताफलकी श्वेत आभासे कपोल शोभायमान थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म थे। नेत्र पथको शोभित करनेवाले उनके कमल जैसे नेत्र थे। यदुकुलरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्यसे चमकीले वस्त्र धारण किये हुए थे। नाभिमें स्थित ब्रह्मा जिनकी स्तुतिकर रहा था। जिनको देखकर हृदय प्रसन्न होता था, जो चक्र धारणकिये हुए थे। पुत्रत्वको प्राप्तकर जो बालकृष्ण बनकर उत्पन्न हुए थे। उन कृष्णकी शरीरकी मेघरूप छविकी धारा पड़नेसे मानों कलमके अंकुर उत्पन्न हुए हों ऐसे रोम समुदायसे क्षेत्ररूपी शरीरसे सुशोभित (देवकी-वसुदेव) नेत्रोंसे आनन्दके अश्रु बहानेवाले (अश्रुधार नहीं मानों मंदाकिनी थी) छल-रहित थे, देवोंके समान थे, उस समय उन्हें कौन-सा फल प्राप्त नहीं हुआ ॥३१॥

विशेष—कृष्णके जन्मके समय बादल मन्द-मन्द गर्जनकर रहे थे—

"मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जु रनुसागरम् ।" भा० १०।३

ऐसा भागवतमें भी वर्णित है। वे अनेक मणि तथा आभूषण धारण किये थे--चतुर्भुज थे और शङ्ख-चक्रादि धारण किये थे—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुज शङ्ख गदायुदायुधम् ।
श्रीवत्स लक्ष्मंगलशोभि - कौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्र पयोद सौभगम् ॥ भा० १०।३।९
महार्ह वैदूर्य किरीट कुण्डल
त्विषा परिस्वक्त सहस्र कुन्तलं ।

---

(१) स्थूल ।

वसुदेव कृता श्रीकृष्णस्तुतिः

अथ सम्भ्रमचकित-विलोचनो दण्ड वद्भुविनिपत्य वसुदेवो देवकी च स्तोतु मारेभे ॥३२॥

जय जय जगन्नाथ यदुवंशोत्तंस हंसवास हंसासन[1] नुतचरण परमहंस मानसकेलिकलहंस मणिमयावतंस प्रभामांसल कपोलांस संसारा पार पारावारोत्तरण[2] कर्णधार, धरणितलोत्तार धुरन्धरावतार प्रतिनवधाराधर जलधारायित मणिहारावलि घनताराङ्कितघनसाराञ्चित समुदारोरःस्थल सुरासुरकुलभाराकुल जगदाराधित पद नारायण नयपारायणमय धीरावलिभववारां निधिसुखपारासादन-पारातीतक्षीरा-

उद्दाम काञ्च्यंगद कंकणादिभि–
विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ भा० १०।३।१०

कविने यहां केवल सूचना दी है कि ब्रह्मा स्तुति संलग्न थे। जबकि भागवतकारने गर्भमें ही देवों द्वारा स्तुति कराई है—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्ययोनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना: ॥ भा.१०।२।२६

आदि श्लोकों द्वारा देवोंकी स्तुति प्रसिद्ध है ॥३१॥

वसुदेवकृत स्तुति—

अनुवाद—बड़े सम्भ्रमसे चकित नेत्रवाले वसुदेव और देवकीने स्तुति प्रारम्भ की ॥३२॥

अनुवाद—हे जगन्नाथ! आपकी जय हो जय हो। हे यदुवंशके भूषण ब्रह्माको उत्पन्न करनेवाले, ब्रह्मा द्वारा चरणोंको स्तुति किये जानेवाले, परमहंस महात्माओंके मनमें हंसके समान क्रीड़ा करनेवाले, मणिमय भूषणोंकी कान्तिमे मांसयुक्त कपोल व कन्धेवाले, संसाररूपी अपार समुद्रसे पार उतारनेमें कर्णधारके समान, धरणिपर उतरे हुए धुरन्धर अवतार, प्रत्येक नये बादलोंकी जलधारासे युक्तमणि हारोंके घने तारोंमे अङ्कित तथा कपूरसे शोभितकी तरह उदार हृदयवाले, सुरों व असुरोंके कुलके भारसे आकुल जगतसे पूजे हुए चरणवाले, हे नारायण! तथा नीतिमें परायण! धीरोंके लिये संसाररूपी समुद्रसे पार लगानेवाले, अगाध क्षीरसागरकी भाँति अगाध हृदयवाले, विहार करनेवाले, वैदिक तत्त्वो-

1) ब्रह्मा। (2) समुद्रः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

म्भोनिधिगम्भोराशय विहितविहारश्रुतिकुलसार क्षपितनिकार ब्रह्मा-कार प्रशमित पृथ्वी पृथुतरभारप्रकटित निरुपधिजगदुपकार स्फार-विलोचन विगति विमोचन दानवकैरव कुलसङ्कोचन मुनिगणमानस-कमल विरोचन या [स्त्रो] कृत तिलकमनोहर नीलपयोधर पुञ्ज सहोदरमञ्जमहोभर विबुधपुरन्दर इन्दीवरमाला सुन्दर मन्दरावलि वलयितकन्धर बन्धुरबन्धूकाधरसुमधुर वन्दनविनमद्वृन्दारकपति वृन्द प्रशिथिलकुन्तल बन्धभ्रमदिन्दिरमन्दिर चरणस्फुरदर विन्दद्युतिमक-रन्दस्कन्धास्कन्दित सुजन द्वन्द्व[1] ब्रह्मानन्द सुरद्रुम कन्दस्मित सुमकरन्द स्नपितामन्दमुखेन्दो जय जय जगदानन्द व्याससनन्दसनातन सनक ब्रह्म महेश पुरोगमसुरनरकिन्नर निषेवित पीठद्वय देव जय शमय ममाधि निधिमिव दर्शय भक्ति लवं तव दीन दयामथ कृपण कृपालय सदयो भव मयि विनय विहीने ॥३३॥

पदेशसे पाखण्डको दूर करनेवाले, ब्रह्मके आकारवाले, पृथिवीके बड़े भारको दूर करके छल-रहित प्रकटमें संसारका उपकार करनेवाले, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, दुर्दशासे छुटानेवाले, दानवरूप कैरव कुलका नाश करनेवाले. मुनियोंके मनरूपी कमलको सूर्यके समान खिलानेवाले, सुन्दर तिलक लगानेवाले, नीलजलद समूहके समान सुन्दर शोभा धारण करनेवाले, देवताओंमें इन्द्रके समान श्रेष्ठ–नीलकमलों की मालाके समान सुन्दर मन्दारके समान सुन्दर कन्धरावाले, सुन्दर बन्धूक पुष्पके समान लाल अधरवाले, बन्दन करनेके लिये झुके जो देवगण उनके शिथिल जो केशबन्ध उनमें भ्रमण करनेवाले भ्रमरोंके चरणोंसे युक्त कमलोंकी गन्धवाले कन्धोंसे सत्पुरुषोंका आलिङ्गन करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप आनन्दसे युक्त, मन्दहासकी सुन्दर मकरन्दरूप गन्धसे मुखचन्द्रको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाले, जगत्को आनन्द देनेवाले, आपकी जय हो जय हो।

व्यास, सनन्द, सनातन, सनक, ब्रह्मा और महेश आदि देवों तथा नर-किन्नर आदि द्वारा सेवित चरणवाले हे देव! आपकी जय हो जय हो। आप हमारे दुःखको दूर कोजिये, निधिरूप भक्तिको दीजिये, हे दीनोंपर दया करनेवाले, कृपणपर कृपा करनेवाले, विनय-विहीन मेरे ऊपर दया कीजिये ॥३३॥

रहस्यम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवकीकृता कृष्णस्तुतिः

देवकीप्राह-- मुरमर्द्दन विष्णो !
त्रिभुवनजिष्णो !
परमसहिष्णो !
वृष्णिपते !
त्वं करमाली त्वं वनमाली,
त्वं भयदाली विश्वगते ॥
तव चरणं देवा दधति न के वा,
चेतसि सेवा निपुणतराः ।
स्फुटमित्थमहं का विगतातङ्का,
नियतमनङ्का बभुरमराः ॥३४॥
असि मीनाकारो जलधिविहारो,
वेदोद्धारोल्लसितमते ।
दामोदर सामस्तुतपद काम-
प्रद हतवाम श्रीवसते ॥

देवकीके द्वारा स्तुति

अनुवाद—देवकीने कहा—हे मुरका मर्दन करनेवाले विष्णु ! आप तीनों लोकोंको जीतनेवाले हो, सहिष्णु तथा वृष्णियोंके स्वामी हो। हे त्रिश्वको गति देनेवाले, आप करमाला, व वनमाला धारण करनेवाले हो। सेवामें निपुण देव अपने चित्तमें आपके चरणोंको धारण करते हैं। भय छोड़कर वे शोभाको प्राप्त करते हैं ॥३४॥

विशेष—मुरमर्दन=एक मुर नामका असुर था, उसका वध श्रीकृष्णने किया, तबसे उनका नाम मुरारि पड़ा। वृष्णि=यह यादवोंकी जाति है—

'वृष्णीनां प्रवरोमन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।'' भा० १०।४६ ॥३४॥

अनुवाद—वेदोंके उद्धारमें बुद्धि लगाकर मीनका आकार धारणकरके हे समुद्रमें विहार करनेवाले ! हे दामोदर ! सामवेदके द्वारा चरणोंकी स्तुति करानेवाले ! हे इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, प्रतिकूलताको नष्ट करनेवाले, हे लक्ष्मी-निवास ! कच्छपका शरीर धारण करनेवाले, मायाको हटानेवाले संसारका शुभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कमठीकृतकायो विघटितमायो,
विहितभावायो[1] वहसि भुवं ।
परिपालय कृपया त्रुटितत्रपया,
भवभयमपयापयसि शिवं ।।३५।।
भीमार्णवलीनामतिशयदीनां,
महिम - विहीनां वीक्ष्य धरां ।
कोलाकृतिधारी सलिलविहारी,
तामुदधारो रति - विधुराम् ।।
आरोहितदन्तामतनुमनन्तां,
दधदपि हन्तासुरमवधीः ।

करनेवाले, पृथ्वीको धारण करनेवाले, कृपाकर मेरी रक्षा कीजिये । त्रपा=लज्जा हटाकर कल्याण कीजिये, समस्त संसारके भयको दूर कीजिये ।।३५।।

विशेष—हयग्रीव नामक असुर ब्रह्माजीके हाथसे वेदोंको लेकर समुद्रमें कूदगया और छिपगया था । ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने मीनका आकार धारणकर लिया और दैत्यका वध किया था । जयदेवने गीतगोविन्दमें भी लिखा है— प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशवधृत मीन शरीर, जय जगदीश हरे ।। [गीतगोविन्द]

भगवान्‌को सामवेदकी ध्वनि अत्यन्त प्रिय है । वैसे गीतामें सामवेदको कृष्णने अपना ही रूप कहा है --"वेदानां सामवेदोऽस्मि" ।

हतवाम=भगवान्‌का स्मरण अमङ्गलका नाशक है—
"प्रसन्न वदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशान्तये ।" ।।३५।।

अनुवाद—हे प्रभो ! आपने जब महिमासे हीन, अत्यन्त दीन तथा भयङ्कर समुद्रमें डूबी पृथ्वीको देखा तो वाराहका रूप धारणकर जलमें विहार करते हुए उसका उद्धार किया । अनन्त पृथ्वीको अपने दाँतपर रखकर ही उस असुरका आपने वधकर दिया था । इस असुरने इन्द्रको बड़े दुःख दिये थे, बड़ा ही कुटिल था, पर आपने हाथीको सतानेवालेकी तरह उसका वधकर डाला ।।३६।।

विशेष—इस श्लोकमें उस असुरका नाम नहीं लिखा है, किन्तु भागवत-आदि पुराणोंमें प्रसिद्ध है कि वह 'हिरण्याक्ष' नामक असुर था । दितिके दो पुत्र

---

(1) अयः शुभावहो विधिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अवधीरित शक्रं दारुणवक्रं,
गज इव नक्रं सकुतुकधीः ॥३६॥
नरकेसरिरूपी नखरस्तूपी,
दानव भूपो भवदसुरं ।
हतवानसि जम्भ द्विष दुरु दम्भ,
प्रचुरारम्भ भ्रंश परम् ॥
वज्राधिकमुखरैर्भीषण नखरैं,
रस्थिषु मुखरैर्दैत्यतनो ।
रुद्वह्निभिरुदितै रविकरविदितैः,
शोणितमृदितैर्मोक्षम[1] नो ॥३७॥
बलिनामनहेतोः खगपतिकेतो
तरलितचेतोऽमर सुख भूः ।

थे, उनमें बड़ा था । इस असुरने पृथ्वीका हरण किया था । श्रीवाराह भगवान्‌ने इसका वध किया था । हिरण्यकशिपु नामक असुरका वध श्रीनृसिंहजीने किया था ॥३६॥

अनुवाद—इन्द्रके बड़े-बड़े कार्योंको नष्टकर देनेवाले उस हिरण्यकशिपु दैत्यराजको—नृसिंहावतार लेकर आपने ही नखोंसे विदीर्णकर डाला था । आपके नख वज्रसे भी अधिक उग्र थे जब वे दैत्यकी अस्थियोंमें लगे तो रगड़से चटचट आवाज आई मानों अग्निसे स्फुलिंगकण निकल रहे हों, आपके नख सूर्य-किरण जैसे लाल थे उन्हींसे उसको आपने मारा था ॥३७॥

विशेष—श्रीनृसिंहने हिरण्यकशिपुका वध किया था । कारण यह है कि इस असुरने ब्रह्माजीसे वरदान माँगा था कि मेरी मृत्यु किसी भी जीवधारीसे न हो और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे हो, दिनमें और रात्रीमें भी मेरी मृत्यु न होवे । फलतः भगवान्‌ने नखोंसे इसका वध किया था और सायंकालके समय अपने गोदमें रखकर इसका विनाश किया था । भागवतमें लिखा है—

"नभूमौ नाम्बरेमृत्युर्न नरैर्नमृगैरपि ।" भा० ७।३।३६ ॥३७।

अनुवाद—हे गरुडध्वज ! बलिको नम्र करनेके लिये चंचल चित्तवाले देवोंको सुख देनेवाले आपने 'वामन' का रूप धारण किया था । अखिल ग्रासी

---

(1) मनुर्मन्त्र ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वामनवपुरासीरखिलग्रासी
करपदभासी द्रुतमुद भूः ।।
तापत्रय - नोदच्छन्न - विनोद
प्रकटित - मोद त्रिभुवनकं ।
मनुते शुभवतं शमितभवं तं
को न भवन्तं ननु जनकम् ।।३८।।
सुखभूयिष्ठारं कलितकुठारं
दनुजहठारं विश्वधरं ।
परिपूरितकामं त्वामभिरामं
कथयति रामं को न परम ।।
क्षितिभारभ्रंशी भवशुभशंसी
क्षत्रध्वंसी पुनरुदभूः ।
करुणारसवाही सदनुग्राही
पातकदाही द्विजकुल भूः ।।३९।।

होते हुए भी सुन्दर हाथ-पैर धारणकर उत्पन्न हो गये थे। आप तीनों तापोंको नष्ट करनेवाले हैं, छिपे हुए विनोदवाले हैं, त्रिभुवनमें आनन्द प्रकट करनेवाले हैं, आप पिताके समान सबका कल्याण करनेवाले हैं, सुख देनेवाले हैं, कौन आपको ऐसा नहीं मानता ; अर्थात् सभी मानते हैं ।।३८।।

विशेष--राजा बलिका राज्य तीनों लोकोंमें हो गया था। देवगण पृथ्वी में विभिन्न रूप धारणकर विचरणकर रहे थे, तब उनके दुःख निवृत्त करनेके लिये 'अदिति कश्यप' के पुत्रके रूपमें श्रीवामनके रूपमें प्रभु प्रकट हुये थे आपने तीन चरणोंसे तीनों लोकोंको नाप लिया और राजा बलिको भी आधीनकर लिया था ।।३८।।

अनुवाद—अत्यन्त सुख देनेवाले, कुठार धारण किये हुए, दुष्टोंको हठ-पूर्वक नष्ट करनेवाले, विश्वको रक्षा करनेवाले, कामनाओंको पूर्ण करनेवाले आपको सब परशुराम कहते हैं। आपने पृथ्वीके भारको हटाया, संसारको सुख प्रदान किया, क्षत्रियोंका विनाश किया, आपने करुण रसकी सृष्टिकी और द्विज कुलमें उत्पन्न हुये थे ।।३९।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरकामुर्कखण्डी[1] कौणपदण्डी,
रविकुलमण्डी दशरथतः ।
कृतदेहारम्भः पृथुलस्तम्भ,
कमभुजजम्भ-द्विषदुरुतः ॥
रावणहतिहेतो रुदधौ सेतो,
रन्तक केतोरिव विजयं ।
हेलाहतवाली व्यतनोराली,
कृतगुरुताली वन विलयम् ॥४०॥
गुरुकरुणावन्तं भुवन भवं तं,
वदति भवन्तं शुद्धमिति ।
प्रथिताभयदानं परमज्ञानं,
मोक्षनिदानं शुद्धमतिः ॥
अखिलं न सदालोकयितुमिवा,
लोडितमितिकालोपचितभटै ।
स्त्वानवतीर्णं स्मरति विशीर्णं,
मायाजीर्णं हृद् विकटैः ॥४१॥

अनुवाद—रामावतार लेकर आपने शङ्करजीके धनुषको तोड़ा था, राक्षसोंको दण्ड दिया था, आप दशरथके पुत्र बने थे, और सूर्य कुलमें भी आप पृथुल स्तम्भके समान भुजावाले इन्द्रके महान् कार्य करने हेतु देह धारण करनेवाले बने थे, रावणका वध करनेके लिये यमराजकी ध्वजाके समान समुद्रमें पुल बनाया था, आपने खेल ही खेलमें बालीका वध किया था तथा पंक्तिबद्ध तालके वनका विनाशकर दिया था ।४०॥

अनुवाद—आप करुणायुक्त हैं, भुवनका कल्याण करनेवाले हैं अतः आप शुद्ध हैं । अभयदान देना आपका स्वभाव है, परम ज्ञानवान् मोक्ष प्रदाता शुद्ध-बुद्ध हैं, योद्धाओंने भी दर्शन करनेकी इच्छासे सर्वदा आपका ध्यान किया, माया शवलित आपके अवतारका सदा ध्यान करते हैं ।४१॥

(1) राक्षस ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

म्लेच्छाहिततापं खण्डितपापं,
सशरं चापं दधतिरमे ।
त्वयि कल्किनि वेदागोचर भेदा,
विष्कृत खेदानपनय[1] मे ।।
इह को महिमानं वदतु च मानं,
किमपि समानं जगति न ते ।
मुनि रतनोद्ध्यानं सुदृढज्ञानं,
तव संस्थानं न हि लभते ।।४२।।

त्वं पारे वचसो बहिश्च मनसस्त्वं निष्कलो निर्गुण-
स्त्वं पूर्णस्त्वमहो नभोवदखिल व्यापी न लिप्तः क्वचित् ।
अभ्यर्णप्रकृति प्रसन्नमुकुरव्यालम्बि बिम्बं तु ते
जीवं केऽपि जगुर्नमोस्तु भवते त्वं योऽसि सोऽसि प्रभो ।।४३।।
नान्तो नादिर्न मध्यो न च कर चरणं नाननं नापि चक्षु-
र्न श्रोत्रं नापि नासा न च तव रसना त्वक्च नो वा न चेतः

अनुवाद—म्लेच्छोंको ताप देनेवाले पाप नष्ट करनेवाले, धनुष-बाण धारण करनेवाले, वेदोंसे अगोचर कल्कि रूपमें मैं रमण करती हूं, मेरे भेद बुद्धिसे हानेवाले खेदको आप दूर करें। आपको महिमा कहनेमें कौन समर्थ है, आपके समान संसारमें कोई नहीं है, मुनि लोग ज्ञानपूर्वक ध्यान लगाते हैं, फिर भी आपको प्राप्त नहीं करते ।।४२।।

अनुवाद—(देवकीने कहा)—आप वचनसे अगोचर हैं और मनसे भी परे हैं, निष्कल निर्गुण और पूर्ण हैं। आप आकाशकी तरह सर्व-व्यापक हैं, कहीं लिप्त भी नहीं है। प्रकृतिका विलय आपमें ही होता है। आपका बिम्ब स्वच्छ दर्पणकी तरह सर्वत्र व्याप्त है, कोई-कोई तो आपको जीव ही कहते हैं, आप जो हैं सो हैं आपको नमस्कार है ।।४३।।

अनुवाद—आपका आदि, मध्य, अन्त नहीं है, आपके हाथ-पैर मुख और आँख भी नहीं, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा, चित्त भी नहीं। हे सर्वात्मन् ! फिर भी आप सर्वत्र व्याप्त हो। ससारको उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो, नष्ट करते

---

(1) दूरीकुरु ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सर्वात्मन्सर्वगस्त्वं जगदपि कुरुषे पासि चात्सीक्षसे च ।
श्रोता घ्राताऽसि सर्वं रसमुपलभसे संस्पृशस्येव वेत्सि ॥४४॥
जन्म मे सकलशर्म भाजनं भाजने त्वयि दृशोरजायत ।
शृङ्खलापि पदयोरनाकुला मुक्तिमापमहमापदां बहिः ॥४५॥
एकदोदयति मोदवाहिनो वाहिनीव हृदि भोजभूपतेः ।
दर्शने तव तपोनिदर्शने कौतुकं भवति भीरपि प्रभो ॥४६॥

वसुदेव द्वारा कृष्णस्यालौकिक रूप गोपन प्रार्थनम्

प्रभुवर परमेश निवेदयामि ते पदयो "गोपय गोपयालौकिकं रूपं" इति वचनमवधाय देवक्याः स्मित मधुर मुखेन्दुदन्त दीधिति-निकर निवारितान्धाकारपरम्परपरम पुरुषो मधुपीयूष - माधुरी मय-माह मातरं पितरं च किमपि प्राचीनम् ॥४७॥

हो और देखते हो, सुनते हो, सूँघते हो, सर्व रसोंको चखते भी हो, स्पर्श भी करते हो, और जानते भी हो ॥४४॥

विशेष—"विनु पद चलहि सुनहि बिनु काना ।"
तथा—"केशव कहि न जाहि का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ।

की बात ही सत्य है । भगवान्‌को इदमित्थं कह दियाजाय कि वे ऐसे हैं तो उनका परिच्छिन्नत्व सिद्ध होगा अतः अनन्तको महिमाका वर्णन कोई कैसे कर सकता है ॥४४॥

अनुवाद—मेरी आँखोंको आपका दर्शन होनेपर मेरा जन्म कल्याणका पात्र होगया । मेरे पैरोंकी शृङ्खला भी टूटगई, मेरी सम्पूर्ण आपत्तियाँ दूरहो गईं और मैं मुक्त हूं ॥४५॥

अनुवाद—एक ओर भोजराज कंसके हृदयमें भयकी लहर उदित हो रही है, तपस्याको प्रकट करनेवाले आपके दर्शनसे एक ओर आनन्द दायिनी प्रसन्नताकी लहर उदित हो रही है ॥४६॥

वसुदेव द्वारा अलौकिक रूप छिपानेकी प्रार्थना

अनुवाद—हे प्रभुवर ! हे परमेश ! आपके चरणोंमें मेरा यही निवेदन है कि अपने इस अलौकिक रूपको छिपाइये-छिपाइये । देवकीके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर प्रभुने मन्दहास किया । मन्दहासके द्वारा दाँतकी किरणोंसे अन्धकारकी परम्पराको नष्ट करते हुए बालरूप भगवान् कृष्ण मधु-अमृत जैसी मधुरतासे पूर्ण वचनों द्वारा माता-पिताके पूर्ववृत्तका वर्णन करने लगे ॥४७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीकृष्णवचनम्

पूर्वेषु बहुषु जन्मसु भवद्भ्यामद्भुतमिदमेव मे रूपं मनसि निरूप्य मय्यवसित पुत्रभावाभ्यां भूयर्येवाजि दुर्जयं सुतपो दीर्घमिति पुनरहमृणमार्जनाय पर्जन्य पर्याकुलीकरणमभि-हर्षित महर्षि देवर्षिमानसमदर्शयमात्मनो रूपम् । ४८॥

तदिदानीमपनीयतामात्मीयता तापत्रय शङ्का ॥४९॥

परन्तु ममैव माया भगवती जगती सर्व निर्वाह सामग्री समग्रैरभिपूजिता नन्द दयितायां गोकुले यशोदायां जनितामिहानयतु, मां नयतु तदङ्कमशङ्कमना विनाविलम्बमम्ब ? जनकोयम् । अहमपि भवतो राज्ञामेव पालयन्नात्मानं गोपयामीदमभिधाय तद्रूपमहाय माधवः साधारण इव शैशवं भेजे ॥५०॥

अन्धकार वर्णनम्

तदनु वसुदेवोऽपि तनुजीभूत वासुदेव वचनमवधाय तमादायागणित घनघोर गर्जदुर्जयान्धकार निविडतरा सार सौदामनी स्फुर-

---

श्रीकृष्ण वचन

अनुवाद—पहले अनेक जन्मोंमें आप दोनोंने मेरे इस अद्भुत रूपको मनमें धारण करके मुझमें पुत्रभाव रखते हुए बहुत कठोर तप किया था, उस ऋण को दूर करनेके लिये मैंने अपने उसी रूपको दिखलाया है ॥४८॥

अनुवाद—जो महर्षियों देवर्षियोंके मनको प्रसन्न करनेवाला है मेघको भी विलज्जित करनेवाला है, सो आप तापत्रयकी शङ्का न करें ॥४९॥

अनुवाद—परन्तु पृथ्वीका सब निर्वाह करनेवाली, सबके द्वारा पूजी जानेवाली, मेरी भगवतीमायाने गोकुलमें नन्दपत्नी यशोदाके यहां जन्म लिया है उसको यहाँ ले आइये और मुझे यशोदाकी गोदमें निश्शंक मन होकर बिना विलम्बके ये मेरे पिता पहुँचा देवें। मैं भी आप दोनोंकी आज्ञाका पालन करके अपने आपको छिपाता हूँ यह कहकर अपने रूपको छोड़कर माधव, साधारण बालककी तरह हो गये ॥५०॥

अन्धकार वर्णन

अनुवाद—इसके अनन्तर वसुदेव भी पुत्र बने हुए वासुदेवके वचनको मानकर उनको लेकर अति घने बादलोंकी घोर गर्जन तथा अत्यन्त अन्धकार,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दर्शनि चमत्कार दुर्वारोद्वेल्ल दुल्लोल कोलाहल वहल वाहिनीविलङ्घ नादि तथैव संविधातुमारेभे ।।५१।।

गोकुलगमनम्

अथ चलति सुतमशङ्कमङ्के निधाय वसुदेवे समजनि विघटित निगडबन्धयन्त्रणश्चरणो, द्रुत गलदर्गल कपाट कूटानि नगरद्वाराणि, मरुदपि विरताखण्ड चण्डिमारम्भो, द्रुतमम्बरमध्यगत गम्भोर तरा-

---

वर्षा, बिजलीकी घोर गर्जना वज्रपात सदृश घोर कोलाहल - पूर्ण बहती हुई यमुनाको पार करनेके लिये तैयार हो गये ।।५१।।

विशेष—श्रीकृष्णने यह रहस्योद्‌घाटन किया कि देवकी - वसुदेवने तपस्याकी थी, अतः मैंने प्रभुके रूपको दिखलाया । भागवतमें उन्होंने माता-पिताके तीन जन्मोंका उल्लेख किया है—

प्रथममें—देवकी प्रश्नि—वसुदेव 'सुतपा' (भा० १०।३।३२) ।

द्वितीयमें—देवकी अदिति—वसुदेव 'कश्यप' (भा० १०।३।४२) ।

तृतीयमें—अब देवकी—'वसुदेव' और मेरा नाम प्रथममें प्रश्निगर्भ—द्वितीयमें वामन अब कृष्ण है । कृष्णके जन्मके समय बेड़ी खुलगई थी और कपाट भी खुल गये, जो द्वारपाल रक्षाके लिये नियुक्त थे वे भी घोर निद्राके वशीभूत हो गये थे । वर्षा होने लगी थी—

ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः ।
शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः ।। (भा० १०।३।४९)

शेषजीने कृष्णपर अपने फणोंका छत्र लगाया है, ताकि वर्षासे उनकी रक्षा हो सके । यमुनातो यमकी बहिन सी थी ही —

मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा
गम्भीरतोयौघ जवोर्मि फेनिला ।
भयानकावर्त शताकुला नदी
मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ।। भा० १०।३।५० ।।५१।।

गोकुल गमन उपक्रम

अनुवाद—इसके पश्चात् जब वसुदेव श्रीकृष्णको लेकर चलने लगे तो चरणोंके कठोर बन्धन टूट गये थे, अर्गला नष्ट हो गई थी, द्वारोंके किवाड़ खुल गये थे, वायुके प्रवाहका वेग भी शान्त हो गया था । गम्भीर मेघ तथा बिजली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डम्बर दम्भोलि[1]परम्परम्, परितः समुदयदवार्यपर्जन्यगणोऽपि रचिता-मन्द-जलबिन्दु वृष्टिसृष्टिर्दुर्जनानेव तर्जयन्निव गर्जन्नासीत् ॥५२॥

दर्वीकर पतिरपि दुर्वारदर्वीदर्शितातपत्रमनुसेवतेस्म वसुदेवम् ॥५३

यमुनोल्लङ्घनम्

अथ विगततरानीचवीचीर्वाचालीकृत दिङ्‌मण्डलीकतया दुरित चमूरिव तर्जयन्ती, जगति जनार्दनजन्ममहामहोत्सवमिव विख्यापयन्ती हरि सम्भवसम्भूतसम्मोदमेदुरा बहललहरी बाहुमा - स्फोट्य नाट्य-मिवाचरन्ती, 'व्रजभुवन सम्प्रयाण मङ्गलाधानदुन्दुभिध्वानानि च कुर्वती, सर्वतो निर्भरोद्भ्रान्तावर्त्त सन्तान शालिनी स्फुटगम्भीर नीरनीलिमाकुलतया कुटिलमनोवृत्तिरिव, भीषणापि, दीनजन धन मनोराज्य परम्परेव दुष्पारापि, शमन सहोदरा[2] जानुदघ्न जलैव सावहेलमुदलंघि वसुदेवेन ॥५४॥

आदि भी नष्ट हो गई थीं, आकाश स्वच्छ हो गया था। कुछ बादल चारों ओर दुर्जनोंको डराते हुएसे उठ रहे थे, मन्द गर्जनाके साथ उनसे वर्षा बिन्दु भी गिर रहीं थीं ॥५२॥

अनुवाद—शेषनाग भी छत्रकी तरह अपने फणोंका आकार बनाकर वसुदेवकी सेव्य करने लगे ॥५३॥

यमुनापार करना

अनुवाद—यमुना भी बड़ी-बड़ी लहरोंसे दिङ् मण्डलको गुञ्जित करना छोड़कर मानों पाप समूहको डराती हुई संसारमें भगवान्‌के जन्म-महोत्सवको प्रसिद्ध करती, भगवान्‌के जन्मको प्रसन्नतासे फूली हुई लहररूपी भुजाओंके आस्फोटनसे नाटक-सी करती व्रजमें भगवान्‌के आनेके मङ्गलका मानों वाद्य बजाती हुई सब ओर निर्भ्रान्त होकर भ्रमण करते हुए सैकड़ों आवर्तसे शोभित-सी स्वच्छ और गम्भीर जलकी नीलिमासे युक्त होती हुई कुटिल मनोवृत्तिकी तरह भयङ्कर, दीनोंके धन सम्बन्धी मनोराज्यकी परम्पराकी तरह पार न पा सकने योग्य होती हुई। शमन=शान्तिकी बहिन अथवा शमन=यमराजकी बहिन यमुना घुटनों तक जलवाली होगई और वसुदेवने उसे खेलमें ही पारकर लिया ॥५४॥

---

(1) वज्र।
(2) यमुना।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साङ्केतिकं यदभिधानमजामिलोऽपि
वक्त्रे निधाय भवसागरमुत्ततार।
अङ्के तमेव वसुदेवकृती दधानो
भानोः सुतामतरदित्यपि किं विचित्रम् ॥५५॥

यशोदाङ्के कृष्ण स्थापनम्

वसुवदसुवदङ्के नन्द पङ्केरुहाक्ष्या-
स्तुमुरसि वसुदेवो वासुदेवं निधाय।
तदुदरभुवमाद्यामाद धन्मोघमाद्य-
न्मति पुरमनुलेभे प्राप्ततद्वाक् प्रतीतिः ॥५६॥

रूपं गोपय गोपयेति पितरौ प्रागेव यत्प्रोचतु-
स्तामाज्ञामतिगौरवादिव तयोराधाय मूर्ध्नि द्रुतम्।

विशेष—श्रीकृष्णके जन्मकी प्रसन्नतायुक्त श्रीयमुनाका बड़ा ही मनोहारी वर्णन है ॥५४॥

अनुवाद—संकेत द्वारा पुत्र नारायणका नाम मुखमें लेकर अजामिल भवसागरको पारकर गया। वसुदेवने उन्हीं नारायणको जब अपने गोदमें ही कर लिया और भानुसुता यमुनाको पारकर गये, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥५५॥

विशेष—'अजामिल' कान्यकुब्जका रहनेवाला ब्राह्मण था। यह बाल्यावस्थामें बड़ा ही पितृ-भक्त था। एक वेश्यागामी पुरुषके आचरणके प्रभावसे यह महान् कुकर्मी हो गया। और वेश्यागामी हो जानेपर बाल, वृद्धोंकी हत्या पशुओंके मांससे जीविका चलानेवाला बन गया। महात्माओंके प्रसादसे अपने पुत्रका नारायण नाम रख दिया, और मरते समय उसी पुत्र नारायणका नाम लेनेसे वैकुण्ठ लोकको चलागया था ॥५५॥

यशोदाकी शैयापर कृष्णको छोड़ना

अनुवाद—वसुदेवजी नन्द पत्नी यशोदाके समीप गये और बालकृष्णको वहाँ रखकर, उनके उदरसे उत्पन्न आद्यमायाको उठाकर बालकृष्णकी वाणीपर विश्वास करके अपने स्थानको चले आये ॥५६॥

विशेष—भागवतमें श्रीकृष्णने कहा था—"यदि कंसाद् विभेषित्वं तर्हि मां गोकूलंनय।" यदि तुम्हें कंससे भय है तो मुझे गोकुलमें पहुँचा दो ॥५६॥

अनुवाद—माता-पिताने जो कृष्णको देखकर कहा था कि रूप छिपाओ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तादृग्भीमतमस्विनीमगणयन्मेघान्नदीलङ्घनं
रूपं गोपयितुं जगाम भगवान् गोपाकुलं गोकुलम् ॥५७॥

कंसाय योगमायार्पणम्

अथ वसुदेवे दैवके क्रोडे कुमारीमर्पयत्येव कंस दैत्यानुचारिणस्तदनु सन्धान कारिणः किमजनि किमजनीति व्याह[1]रन्तो दूराद् दुरात्मानः परिवव्रिरेन्तःपुरं परितः ॥५८॥

द्रुतमवधीर्य धैर्यैक महोदधिं वसुदेवं कुररीमिव विक्रोशन्तीमहह तीव्र बाधया देवकीमपि नव शावकीं तामवरुन्धानामनामादरेण ताम पर्वाय तर्जनगर्जजर्जरित दिग्दिगन्तरास्तस्याः क्रोडात्क्रीडन्त इव तामादाय श्येना इव कपोतिकापोतीम्, शार्दूला इव सुरभिकिशोरीम्, पारीन्द्रा[2] इव दम्भादिभीकल[3] भीम् व्याधा इव मृगीबालिकाम्,

---

अतः उन्हें गौरव प्रदान करनेके लिये उन दोनोंकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मेघके कारण अँधेरी रात्रीमें नदी-लङ्घनकी चिन्ता न करते हुए रूप छिपानेको गोपोंसे भरे गोकुलमें भगवान् चले गये ॥५७॥

कंसको योगमाया समर्पण

अनुवाद—इसके पश्चात् वसुदेवने उस बालिकाको देवकीकी गोदमें रखा कंसके द्वार रक्षकोंने बालकका जन्म सुनकर क्या हुआ, कैसा हुआ ? आदि शकपूर्वक उन दुष्टोंने चारों ओरसे अन्तःपुरको घेर लिया ।।५८।।

अनुवाद– उन्होंने वसुदेवको वहाँसे हटा दिया—यद्यपि वसुदेव धैर्यके समुद्र थे तथापि उनके बलसे थोड़ा विचलित हुए और हटे, उग्र बाधाके कारण कुररी गायकी तरह विलाप करनेवाली उस देवकीको भी हटा दिया, जब नवजात बालिकाको देवकीने छिपानेकी चेष्टाकी तो तर्जन गर्जन करके दिशाओंको गुञ्जित करनेवाले उन रक्षकोंने देवकीकी गोदसे खेलते हुएकी तरह ले लिया । जिस तरह कबूतरीके बच्चेको बाज उठाता है. अथवा जिस प्रकार गायकी बछियाको सिंह उठाता है अथवा दम्भ आदि भयसे भीति उत्पन्नकर शावकीको गजेन्द्र अपने साथले जाता है अथवा जैसे मृग शिशुको व्याधले जाता है या कामान्ध पुरुष जैसे

---

(1) कथयन्तः ।
(2) पारीन्द्रः, [पृषो० ह्रस्वः] सिंहः ।
(3) गजशावकीम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कामान्धा इव मतिधैर्य सम्पदं व्याधूयेव सुकुमार तनुकान्तिम्, झंझा इव वल्लरीशोभाम्, निदाघवासरा इव कोकिलाकाकलीम्, अवग्रहा इव कादम्बिनीजलधाराम्, कीनाशकिङ्करा इव पाञ्चभौतिकाकृतेर्जीवात्मनो मूर्त्तिम्, हेमन्तदिवसा इव सरोजिनीलक्ष्मीम्, अक्षीणबल शालिनो निर्ययुस्त्वरितं त्वरितगति विजृम्भमाण निःश्वासपरम्पराः श्रमजलमेदुरमेदस्विवर्ष्माणो जलधरजलधोरणीपिच्छिले पथि प्रस्खलन्तोऽपि कृतकृत्या इव धावन्तो भोजेन्द्र[1] कराम्भोजेषुकुमारीमिव केवलं कुमारीमारोपयामासुः ॥५९॥

योगमायायाः मारणोपक्रमः

स पुनरविचारितपूर्वापरः पामरो भगिन्या इति भागिनेयीमिति स्त्रियमिति बालिकामित्यविचिन्तयन्नेव मर्यादामतिवर्त्तमानो जीवैकलोलुपः शिलायां पातयितुमारेभे ॥६०॥

अपनी बुद्धिकी धैर्य सम्पत्तिको खो देता है या सुकुमार शरीरकी शोभाको नष्टकर के झंझावात जैसे लताओंकी शोभा नष्टकर देता है, ग्रीष्म-कालका दिन जैसे कोयलकी वाणीको नष्टकर देता है, वर्षाका अभाव जैसे मेघकी जल-धाराको नष्टकर देता है, यमके दूत जैसे जीवके पाँच भौतिक शरीरकी मूर्त्तिको नष्टकर देते हैं, शीत कालके दिन जैसे कमलिनीकी शोभाको नष्टकर देते हैं, वैसेही अक्षीण बलशाली, तत्काल निकले और त्वरित गतिके कारण बड़े-बड़े श्वांस लेते हुए श्रमके स्वेद-बिन्दुओंसे बड़े आकारवाले शरीरको शोभित करते हुए बादलोंके जल प्रवाह पंकयुक्त मार्गोंमें, गिरते हुए भी, अपनेको कृतकृत्य मानते हुएकी तरह दौड़ते हुए उस बालिकाको देवकीकी गोदसे लेकर कंसके हाथोंमें दे दिया ॥५९॥

विशेष--बालिकाको कंसने देवकीके हाथोंसे लिया और शिलापर पटक दिया था ऐसा भागवतमें उल्लेख है। कारागारके द्वारपर एक बड़े आकारकी शिलापर वसुदेवजीके कई बालक पटककर मार दिये थे उसीपर इस कन्याको मारना चाहा परन्तु वह कन्या साधारण बालिका नहीं थी वह थी प्रभुकी अचिन्त्य शक्ति अतः कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गई थी ॥५९॥

अनुवाद—उस दुष्ट कंसने पूर्वापरका विचार न करके कि यह लड़की है बहिनकी है मेरी भानजी है। मर्यादाका उल्लंघन करते हुए अपने जीवनके लोलुप उसने उसको शिलापर पटकना चाहा ॥६०॥

---

(1) भोजेन्द्रः=कंसः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दिशि दिशि जलदा रुदन्त इव नर्दन्तो मुमुचुरजस्रमस्रूणीवाम्बुपूराणि ॥६१॥

तदनुतापमसहमाना इव सौदामन्योऽपि जज्वलुस्तरलाः ॥६२॥

करुणार्द्रा इव भित्तयो निपेतुस्तत्क्षण बहलझंझानिलव्याजात् । प्राणानिव दिग्वाम-लोचना मुमुचुरक्षेमं तद्दीक्षितुमिवाक्षमाः ॥६३॥

क्षमारुहैः सह गृहा आत्मन एवोररी चक्रिरे भङ्गम् ॥६४॥

अतिचण्डमान-पवमान-जव निवह-निपात्यमान धरणीतल-धूयमान पङ्कपूर-परिपूर्य माणपुरुभवनमूर्द्ध बद्ध ध्वज पट-कपटेन कीर्त्तयो निपत्य मलीमसायन्तेस्म ॥६५॥

नगरनिवासिनां दशा वर्णनम्

पौराः केचन दुर्मनोभूय भेजिरे दूरम्, केचन चोलाञ्चलेनाननमाच्छाद्य रुरुदुरेव दीर्घकालम् ॥६६॥

काश्चन पौराङ्गनाः पुनरात्मनो रसनाग्रं दशनाग्रेण सन्दश्य पाणिभिरुत्ताडयामासुरुरांसि ॥६७॥

अनुवाद—दिशाओंमें रोते हुएकी तरह गरजते हुए बादलोंने आँसुओंकी तरह जल-धाराओंकी झड़ी लगादी ॥६१॥

अनुवाद—इस दुःखको सहन न करते हुएकी तरह बिजली चञ्चल होकर चमकने लगी ॥६२॥

अनुवाद—तत्काल झंझावातके बहाने मानों करुणासे आर्द्र होकर ही दीवारें गिरने लगीं। दिशारूप स्त्रियाँ मानों इस कठोरताको देखनेमें असमर्थ होती हुई अपने प्राणोंको छोड़ने लगीं ॥६३॥

अनुवाद—वृक्षोंके साथ गृहोंने भी अपने विनाशको स्वीकारकर लिया।

अनुवाद—अति वेगसे चलते हुए पवनके वेगसे पृथ्वीपर गिरे हुए और उड़ते हुए तथा कीचड़से सने हुए बड़े-बड़े भवनोंपर बँधे हुए ध्वजाओंके वस्त्रोंके बहाने मानों कीर्ति मलिन होती हुई दीख रही थी ॥६५॥

नगर-निवासियोंकी दशाका वर्णन

अनुवाद—कोई नगरके लोग उन्मत्त होकर दूर चले गये, कोई वस्त्रके अञ्चलसे मुँहको ढँककर देरतक रोते रहे ॥६६॥

कोई-कोई स्त्रीतो अपने जिह्वाके अग्रभागको दाँतोंसे काटकर हाथोंसे छाती पीटने लगी ॥६७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काश्चन जनित विलापाः कुलपांशुलः कुलपांशुलोऽयमिति निनिन्दुरेव निभृतेष्वसदवतंसस्य कंसस्य निजवंशस्यापि । ६८॥

किमपि कर्तुं व्याहर्तुमप्यशक्नुवाना उग्रसेनादयोऽपि सनिःश्वासमभिदधुर्मुहुरपि हाहेति ॥६९॥

द्रुतमुपचीयमान-निर्वापित प्रदीप - परम्परा व्याजेनराजतेजांसीव सर्वतः प्रशान्तानि ॥७०॥

अति संरम्भाकुलजम्भाराति प्रमुख गीर्वाणैः क्षिप्तास्तप्तायःपिण्डा इव दम्भोलयो ददृशिरे लोकैः ॥७१॥

अनुचितमेतादृशानुचितकर्मावलोकनमिति भुविदिवि चान्तर्दधिरे नक्षत्रमण्डलानि निबिड घनचयोपचीयमान तिमिरमिषेण ॥७२॥

दिशः पुपूरिरे दुर्यशोभिरसुरराजस्य ॥७३॥

असदवलोकन वर्धमाना स्तोक शोकैरिव कोकैः करुणमुदीरितं पुरदीर्घिकासु ॥७४॥

अनुवाद—कोई स्त्रियाँ विलाप करती हुई 'कुल कलंक है, कुल कलंक है" यह इस प्रकार कुल दूषण कंसकी तरह तथा अपने वंशकी निन्दा करने लगीं ॥६८॥

अनुवाद—कुछ करनेको अथवा कहनेको असमर्थ होते हुए उग्रसेन आदि भी लम्बी-लम्बी साँसें लेकर हा-हाकरने लगे ॥६९॥

अनुवाद—तेजीसे बढ़े हुए तथा शान्त किये हुए दीपकोंके बहाने मानों राजाओंके तेज शान्त हो गये ॥७०॥

विशेष--दुःखित नागरिकोंकी ललनाओंका सजीव चित्रण है और कवि की समुचित कल्पना है ॥७०॥

अनुवाद—अति क्रोधमें भरे हुए इन्द्र आदि देवताओंके द्वारा फेंके हुए तप्त लौह पिण्डकी तरह 'वज्र' लोगोंके द्वारा देखे गये ॥७१॥

अनुवाद—ऐसे अनुचित कर्मका देखना भी अनुचित है इसलिये पृथ्वी और आकाशमें अत्यन्त बादलोंके बढ़े हुए अन्धकारके बहाने मानों नक्षत्र मण्डल भी छिप गया ॥७२॥

अनुवाद—उस असुर राज कंसके अपयशसे सब दिशायें भरगईं ॥७३॥

अनुवाद—उस कंसके अनौचित्यके अवलोकनसे बढ़े हुए अत्यन्त शोकसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करिवर-कर-पुष्करादिव पुष्करिणी समीरणो[1]पनीयमाना भुजग-पति-भोग-पीवराद् भोजभूपतेर्भीम भुजदण्डाग्रतो मनुज - किशोरी कपट-पटीयसी राजश्रीरिव नभसि रंहसोत्पतन्ती त्रिभुवन-भवन-विभाविनी भव-भाविनी व्यलोकि राजलोकेन ।।७५।।

भवानीरूप वर्णनम्

अथ तस्याः पदकमलनाभिकमलकरकमलानन-कमलायत दृक्कमलस्रक्कमलादि समुल्लासैरम्बरतलमखिलमलोकत कमलमयं सकल-राजलोकः ।।७६।।

व्योम्नि स्यन्दन[2] चारिणी, चरणयोः शिञ्जानमञ्जीरिणी
मध्ये मेखलिनी करे वलयिनी, बाहौ च केयूरिणी ।
ग्रीवायां मणिहारिणी, श्रवणयोरत्नोत्तमोत्तंसिनी
चार्वङ्गेऽरुण चोलिनी, मुकुटिनी, मौलौ[3] भवानी बभौ ।।७७।।

मानों चकवा चकवीकी तरह करुणतापूर्वक पुरकी वावलियोंमें कोलाहल किया गयाहो ।।७४।।

अनुवाद—हाथीकी सूँड़के कमलसे हिलाई गई पुष्करिणीके सुगन्धित पवनके समान, सर्पके स्थूल देहके समान स्थूल काय भयङ्कर राजा कंसके अग्र-भागसे, मनुजकुमारी कपट कला निपुणा, राज्यलक्ष्मीकी तरह आकाशमें वेगपूर्वक, तीनों भुवनोंके भवनोंको चमत्कृत करती हुई उछलकर जाती. राज लोगोंने देखी ।।७५।।

भवानी रूपका वर्णन

अनुवाद—इसके अनन्तर उस योगमायाके चरण, नाभि, कर तथा मुख-कमल देखे, और उसके नेत्रकमल, मालाके कमल देखकर सम्पूर्ण आकाशको कमलमय ही देखा ।।७६।।

अनुवाद—आकाशमें रथपर चलनेवाली, चरणोंमें शब्द करते हुए घुंघरूवाली, मध्यमें केयूर पहने हुए, ग्रीवामें मणियोंका हार पहने हुए, कानोंमें रत्नोंका उत्तम भूषण धारण किये हुए, सुन्दर शरीरपर लाल चोला पहने हुए, मस्तकपर मुकुट धारण किये हुए भवानी शोभित हो रही थी ।।७७।।

---

(1) वायुः ।
(2) रथः ।
(3) शिरसि ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यायद्वीरमनस्विनी पदतले चन्द्रानने हासिनी
हस्ताग्रेषु महास्त्रिणी त्रिगुणिनी नेत्रोत्पलेषु त्रिषु ।
सर्वाङ्गेऽसित रूपिणी हृदि पुनर्वैशद्य सम्भारिणी
कंसध्वंसनशंसिनीश - गृहिणी कैर्नैक्षि नैकक्षणम् ॥७८॥
निर्यातेऽपि पयोधरे घनमय व्योमत्विषा कुर्वती
विश्रान्तास्वपि चञ्चलासु सतडिद्भासा विभूषावलेः ।
एकेन्दोर्विरहेऽपि पूर्ण विधुना वक्त्रेण विद्योतिता
नैरन्त्येऽपि निरन्तरं दिविषदां[1] वृन्दैर्बभौ पार्वती ॥७९॥

अनुवाद—चरणोंका ध्यान करते हुए वीरपुरुषोंके मनको प्रसन्न करनेवाली हाथोंमें महास्त्रोंको धारण किये हुए तीनों नेत्ररूपी कमलोंमें तीनों गुण धारणकिये हुए सब अङ्गोंमें कृष्ण रूपवाली हृदयमें विशद सुन्दर भाव धारणकिये हुए, कंसके विनाशकी सूचना देनेवाली वह शङ्करकी पत्नी एक क्षणभर किसने नहीं देखी, अर्थात् सभीने उसको देखा ॥७८॥

विशेष—श्रीमद्भागवतमें उसके आयुध, 'धनुष, शूल, चक्र, बाण, चर्म, तलवार, शङ्ख, चक्र, गदा' आठ लिखे हैं—अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्ट महाभुजा ॥ ९ ॥

"दिव्यस्त्रगम्बरा लेपरत्नाभरण भूषिता ।
धनुः - शूलेषु - चर्मासि - शंख-चक्र-गदा-धरा ॥
सिद्धचारण गन्धर्वैरप्सरः किन्नरोरगैः ।
उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत्" ॥ भा. १०।४।११

अनुवाद—बादल न होनेपर भी अपनी कृष्ण कान्तिसे आकाशको बादलों से युक्त-सा बनाती हुई, बिजली शान्त होनेपर भी भूषणोंकी कान्तिसे बिजलीकी प्रतीति-सी कराती हुई, एक चन्द्रमाके न होते हुए भी मुख रूपके द्वारा पूर्ण चन्द्रकी शोभा करती हुई, कोई समीपमें नहीं था फिर भी देवोंके समूहसे वह पार्वती अत्यन्त शोभित हुई ॥७९॥

विशेष—योगमायाका स्वरूप श्यामवर्णका था, उसके भूषण बिजलीकी-सी चमकवाले थे और स्वयं पूर्ण चन्द्रानना थी ॥७९॥

(1) देवाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नमज्जम्भाराति स्तुति मुखरिताम्भोरुहजनुः
पतन्मूर्द्धा बद्धाञ्जलि हुतवहाम्भः पतितनु ।
घृताचीसध्रीचीगणकृत समीचीन नटनं
बभौ व्योम स्वर्गादधिकमपि दुर्गाहित पदम् ॥८०॥

किमपरमाहो महीलोकेऽतस्त्रयोदशलोकवासिभिरेव कामचारिभिरासिषेवे नभः प्रतोली[1] ॥८१॥

भूलोकैरपि निजरूपाणि तेषामेव रथदर्पणार्पणान्नि सभूचक्राण्यदृश्यन्तेति चतुर्द्दशभुवनमयमभूदेव-तत्क्षणं व्योम ॥८२॥

तदिदं चरण रजसोपपादित कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड घटनायानापूर्वं मन्यते मुनिभिः ॥८३॥

धनेशः कीनाशो नयन पथलेशोदयकृते
कृत प्रादक्षिण्यं पदयुगदिदृक्षाकुलमती ।
परिभ्रामं भ्रामं गमितबहुयामं व्यचरतां
न लेभाते भाते नभसिपुरजाते न तदपि ॥८४॥

अनुवाद—उस समय, इन्द्र प्रणाम करने लगा, ब्रह्मा-स्तुति करने लगे, अग्निने मस्तकपर अंजलि बाँधकर प्रणाम किया, वरुण भी उपस्थित थे इनसे आकाश सुशोभित था, घृताची आदि अप्सराओंका नाट्य हो रहा था। ऐसा वह आकाश दुर्गाके चरण रखते ही स्वर्गसे भी अधिक शोभायमान हो गया था ॥८०॥

अनुवाद—अधिक क्या, इस भूलोकसे पृथक् तेरह लोकोंके रहनेवाले तथा इच्छानुसार विहरण करनेवालोंने उस समय आकाशरूपी प्रतोलीका सेवन किया ॥८१॥

अनुवाद—तथा भूलोकने भी अपने रूपोंको रथरूपी दर्पणोंको अर्पितकर रखा था अर्थात् रथके दर्पणमें भूलोक वासियोंका प्रतिबिम्ब पड़ता था इस कारण भूचक्र सहित सब दिखलाई पड़ता था, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों चौदह भुवन यहीं हैं ॥८२॥

अनुवाद—इनके चरणोंकी रजसे करोड़ों ब्रह्माण्ड निर्मित हैं ऐसा सभी मुनियोंने स्वीकार किया ॥८३॥

अनुवाद—उनके चरण युगलके दर्शनोंके लिये आकुल बुद्धिवाले कुबेर

(1) वीथी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरक्षोयक्षोडु ग्रह निवह गन्धर्व परिष-
त्स्वयम्भूजम्भारि प्रणुत चरणाम्भोरुह युगाम् ।
स तां दृष्ट्वा कंसो विगलदवतंसश्रुतिमुहु-
र्धुनानो मूर्द्धानं मनसि गणयामास विपदम् ॥८५॥

योगमाया वचनम्

अथ भयमवधाय भोजभूपतेर्भगवती भ्रूभङ्गस्फुरदखिल सृष्टि-स्थिति प्रलयकेलिरट्टाट्टहास मुखरिताकाशदिङ्मुखालिरभाषत सोपहासम् ॥८६॥

मा भैषीः कंस नासि त्वमिह स महिषो नो निशुम्भो न शुम्भो
नो वा त्वं रक्तबीजो रणभुवि विजयी नापि चण्डो न मुण्डः ॥
उद्दण्डो युद्धशौण्डः पुनरपि भविता कोऽपि शुम्भो निशुम्भः
संभूतिर्मे तदर्था व्रज[1] भुवि समभूत्तेऽभ्रकालः स कालः ॥८७॥

और यमराज भी चाहते थे कि हमें नेत्रोंके द्वारा दर्शनोंका लेश ही प्राप्त हो जाय अतः वे घूम-घूमकर बहुत समय व्यतीतकर रहे थे परन्तु भीड़ में वे भी असमर्थसे घूम रहे थे ।८४॥

अनुवाद—राक्षस, यक्ष, नक्षत्र, ग्रह समूह, गन्धर्वगण, ब्रह्मा - इन्द्र आदि द्वारा पूजित चरण उस महामायाको कंसने देखा । कंसके कानोंका आभूषण खिसककर गिर गया था । बार-बार मस्तकको कम्पित करके भावी विपत्तिका ज्ञान उसे हो गया था ।।८५॥

योगमाया कथन

अनुवाद—इसके पश्चात् भगवतीने ताड़ लिया कि कंस भयभीत है, वह भृकुटीके भङ्गमात्रसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रक्षा करती है, प्रलय करती है, उसने अपने अट्टहास द्वारा सभी दिशायें गुञ्जितकर दीं थीं, हँसती उस देवीने कंससे कहा ॥८६॥

अनुवाद—हे कंस ! तुम मत डरो, तुम न तो महिषासुर हो, और न शुम्भ या निशुम्भ हो, न तुम रक्त बीज ही हो, रणभूमिमें विजय प्राप्त करनेवाले चण्ड-मुण्ड भी तुम नहीं हो । भविष्यमें युद्धमें कुशल शुम्भ-निशुम्भ कोई फिर भी होगा उसीके लिये मेरी उत्पत्ति हुई है । ब्रजभूमिमें अब तुम्हारा काल उत्पन्न हो गया ॥८७॥

---

(1) इयं कथा भा० १० स्कं ४ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योगमायायाः—विन्ध्याचलवासनिरूपणम्

अथ सगणहंसहंसवाहन-पुरुहूत-हव्यवाहन-काल-कौणप-कुल-पाल-वरुण-गन्धवाहन-धनद-महेशानैरपि रथ मण्डल मण्डनी - कृतमणि-मुकुर - कोटि बिम्बस्व प्रतिबिम्ब कोटि - कपट - कलित - कलेवरकदम्बैरनुगम्यमाना ससध्रीचीगण - घृताची - रम्भोर्वशीवशीकृत-निखिल-तिलोत्तमा-मदन मदालस-मदालसादिसुरवार सीमन्तिनी-वार-दर्शित परमहर्षित-महर्षि-देव-दानव-यक्ष-रक्षो-मानव-प्रतिनव-नृत्यकृत्य-कौशलारम्भा, अथ गणताड्यमान-पटु पटह-कोटि डमरु-डिण्डिम-भूरि-भेरी-गभीर-दुन्दुभि-बहुल-झल्लकी-निकर-झर्झर-मुरज-वेणु-मर्दल-ध्वान मर्दिताखण्ड ब्रह्माण्ड भाण्डोदराति मधुर-गान गुण-गर्व-दुर्वार-गन्धर्व-गन्धर्ववदन गणगीय मान चरणाम्भोजमहिमपरम्परा रथनिकर निकाम-वर्द्धमान मधुरमन्द्रतार-तरध्वनि-धोरणो भरितचतुर्दश भुवनावनी-

---

योगमायाका विन्ध्यपर वास

अनुवाद—इसके उपरान्त गण सहित विष्णु भगवान् इन्द्रदेव, अग्नि-देव, काल, कौणप, कुलपाल, वरुण, पवन, कुबेर एवं महेशसे अनुगत वह देवी हो गई, ये सभी देव, रथ मण्डलमें भूषित अनेक मणि-मुकुटके बिम्बोंके द्वारा अपने शरीरको स्वयं ही विभूषितकर रहे थे।

सध्रीचीगण सहित घृताची, अप्सरा, रम्भा, उर्वशीके द्वारा वशकी हुई तिलोत्तमा तथा मदनके मदसे अलसित मदालसा, आदि देवोंकी स्त्रियोंके दिखाये हुए तथा परमहर्षित महर्षि, देव, दानव, यक्ष, राक्षस मनुष्योंको नये-नये नृत्य-कृत्यको सुन्दर कौशलके रूपमें उस देवीने दिखाया। उस समय सुन्दर नगाड़े बजाये जाने लगे। डमरू, डिंडिम तथा बहुत भेरी गम्भीर दुन्दुभी बहुत-सी झल्लकी, झर्झर, मुरज, वेणु, मर्दलसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल व्याप्त होगया था।

मधुर गुणगानके गर्वसे युक्त गन्धर्व अपने मुखोंसे देवीके चरणोंकी महिमाका गान करने लगे थे। रथोंकी बढ़ी हुई मधुर सुन्दर क्रमबद्ध ध्वनि भारसे चौदह भुवनभर गये थे। वह देवी विन्ध्याचलके ऊपर विराजमान हुई मानों त्रिलोकीके मध्यभागमें स्थित प्रासादपर ही वह यशोदानन्दिनी महामाया विराज-मान हुई हो ॥८८॥

विशेष—भागवतमें योगमायाने कहा है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विंध्यावनी धरमूर्धानं त्रिभुवनैक पुरमध्य-प्रासादमिवाध्युवास, नन्दिनी यशोदायाः ॥८८॥

यद्वन्ध्यतमं विन्ध्योर्विधायाज्ञां दधेगुरोः ।
तदभूत्पार्वती धाम गुर्वधीना हि सिद्धयः[1] ॥८९॥

इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्दकन्द चम्पू काव्ये
द्वितीयोऽयमुल्लासः ॥ २ ॥

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।
यत्र क्व वा पूर्व शत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥
इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।
बहुनाम निकेतेषु बहुनामा बभूवह ॥ भा. १०।४।१३

जब योगमायाको श्रीकृष्णने बुलवाया था तब ये बतला दिया था कि भूमिमें तुम्हारी अनेक प्रकारसे लोग पूजा करेंगे और अनेक स्थानोंमें तुम पूजा प्राप्त करोगी उन नामोंमें—दुर्गा, चण्डिका, भद्रकाली आदि नाम तथा विन्ध्याचल नामका संकेत स्पष्ट है—

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।
दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।
माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ भा. १०।२।१२

अनुवाद—विन्ध्याचल-पर्वतने अपने गुरुकी आज्ञा मानकर जिस वन्दनीय उद्यमको किया है उसीके फलस्वरूप उसके शिखरपर पार्वतीजीका परमधाम निश्चित हुआ ! सिद्धियां गुरुओंके ही आधीन होती हैं ॥८९॥

विशेष—विन्ध्यने गुरुके उपदेशको माना था अतः उसे पूज्य पार्वतीके प्रासाद ग्रहणका फल मिला है । अन्तिम वाक्य सूक्ति है ॥८९॥

इति सप्ताचार्य डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद शास्त्रि विरचिते-श्रीवरानन्दिनी
नाम्नी भाषाटीका सहिते श्रीआनन्दकन्द चम्पू काव्ये
कृष्णजन्मवर्णननामद्वितीय उल्लासः ॥ २ ॥

---

(1) सूक्ति ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ तृतीय उल्लासः

यशोदाङ्के कृष्णवर्णनम्

अथ कुमारीमादाय गच्छत्येव वसुदेवे परिणत शरदिन्दुमण्डलः क्रोडे क्रीडतीति स्वप्नमनुपश्यन्ती द्रुतमुप जातजागरा काचमन्वेषमाणा काञ्चनमिव कौप सलिल-मनुगवेषमाणा गङ्गाप्रवाहमिव, सा कोट-तरुमर्थयमाना कल्पतरुमिव; शम्बूकमनुसन्दधाना दक्षिणावर्त्त शङ्ख मिव; इन्धनमनुधावमाना चन्दनमिव; [1]कर्कन्धूफलमन्विच्छन्ती द्राक्षा-

---

यशोदाको गोदमें कृष्ण-वर्णन

अनुवाद—जब वसुदेव कुमारी कन्याको लेकर गोकुलसे चल दिये उसके उपरान्त (यशोदाने श्रीकृष्णका दर्शन किया) "पूर्ण शरद-ऋतुका चन्द्रमा गोदमें खेल रहा है" स्वप्न देखा और तत्काल शय्यासे उठी और कांच ढूँढनेवालेको जैसे कांचन मिल जाय अथवा कूपके जल ढूँढनेवालेको गङ्गाजल मिल जाय अथवा कोटवृक्षको चाहनेवालीको मानों कल्पवृक्ष मिलगया हो, अथवा सीप ढूँढनेवालेको मानों दक्षिणावर्ती शङ्ख मिलगया हो, इन्धन चाहनेवालीको मानों चन्दन मिलगया हो बेर ढूँढनेवालीको मानों द्राक्षाफल (मुनक्का) मिलगया हो, अथवा किसी गायको चाहनेवालीको मानों कामधेनु मिलगई हो, कुटीर (झोंपड़ो) चाहनेवाली को मानों महाप्रासाद मिलगया हो, नीवार (संवां) चाहनेवालीको मानों तण्डुल राशि मिलगई हो पाषाण पर्वतको चाहनेवालीको मानों सुमेरु (सोनेका पर्वत) मिला हो, नौका बुलानेवालीको मानों नदीका पार मिलगया हो, जन्मसे जो बकरे को ढूँढ रही हो उसे मानो महागज मिलगया हो, सहारेको अन्धा व्यक्ति लकड़ी चाहता है किन्तु उसे दिव्य दृष्टि मिलगई हो, धूपसे रक्षाके लिये पत्तोंको चाहने-वालीको मानों दिव्य छत्र मिलगया हो, स्नानके लिये क्षार-समुद्र चाहनेवालीको मानों सुधासागर मिलगया हो, लोष्ठ (मिट्टीका पिण्ड) चाहनेवालीको मानों श्रेष्ठ निधि मिलगई हो, बहुत दिनसे किसी भी कुमारको गोदमें खिलानेकी यशोदाने इच्छाकी थी आज वेदसे भी न समझमें आनेवाले हरि भगवान्‌को हठ-पूर्वक अपनी गोदमें बैठे देखा ॥ १ ॥

---

(1) बदरीफलम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलमिव; कामपि धेनुं कामयमाना कामधेनुमिव; कुटीरमभिकाङ्-क्षन्ती महाप्रासादमिव, नीवार कणमनुचिन्तयन्ती तण्डुलराशिमिव; दृषद्दुर्वीधरमभीष्टयन्ती सुमेरुमिव; औषधमनुमार्गन्ती नैरुज्यमिव; नौकामाकारयन्ती स्रवन्तीपारमिव; अजमाजन्म मृगयमाना महागज-मिव, अन्धयष्टिमुद्दिश्ययन्ती दिव्यदृष्टिमिव, आतपत्राणाय पत्रमभिलिप्सन्ती दिव्यातपत्रमिव, अवगाहनाय क्षाराम्भोधि मोह-माना सुधाम्भोधिमिव, लोष्टमनुचेष्टमाना श्रेष्ठनिधिमिव, कमपि कुमारं सुचिरमासाधिरूढयन्ती निगमनिगूढं हठान्निजाङ्कमधिरूढं हरि-मुपलेभे व्रजेन्द्र सुन्दरी यशोदैव ।। १ ।।

अथ सपदि समुत्तिष्ठन्त्या गृहान्तरालमनन्धकारमनुभवन्त्याः सर्वानिर्वचनीयाभिरामाभिरपि श्यामलाभिरभिभावयन्तीभिरपि प्रदीप-शोभाः शोभमाने कमनीय कौमार वपुषि सुदिनप्रभातभात-कमल-कोष - कन्दरे सुचिरमुपोषित चञ्चरीकीव[1], परिणत सुधाधामनि

विशेष—(१) गम्य उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। (२) यशोदाको कृष्ण कैसे मिले उसकी सुन्दर उत्प्रेक्षायें विभिन्न वाक्योंमेंकी गई हैं। कविने कल्पनाकी है कि यशोदाने स्वप्नमें कृष्ण-शिशुको गोदमें क्रीड़ा करते देखा। साहित्यमें नन्दद्वारा देखे गये स्वप्नकी चर्चा है—

"श्यामं कोमलगात्रमिन्दुवदनं वालंस्तवांकेमया हृष्टः।" ।। १ ।।

अनुवाद—इसके अनन्तर यशोदा उठी और उसने अन्तर्ग्रहमें प्रकाश देखा--सभीमें अनिर्वचनीय अत्यन्त सुन्दर श्यामल शोभासे दीपकोंकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले कमनीय कुमारके शोभित होनेपर, प्रातःकाल अच्छे दिन कमल-कोषके भीतर देरतक उपोषित भ्रमर पत्नीकी तरह पूर्ण चन्द्रमे बड़े-बड़े दिनवाले जेठ मासमें सूर्यकी कठिन किरणोंसे विकल चकोरीकी तरह, अकस्मात् प्राप्त हुई सुवर्ण राशिमें धनहीन मनुष्यकी चित्त वृद्धिकी तरह, नवीन सुन्दर शस्य कन्दलिकाओंसे शोभित क्षेत्र (खेत) में क्षुधित मृग शावकीकी तरह, अत्यन्त रम-णीय शोभा सौन्दर्यमें विषयोंमें लिप्त बुद्धिकी तरह (अत्यधिक सुन्दरताको देख-कर बुद्धि पथसे विचलित हो जाती है और वह विषयोंमें ग्रस जाती है) अधिक गहरे दलदलमें फँसी हुई वृद्ध गौकी तरह, हठपूर्वक यशोदाकी बाणी रुक गई ।। २

---

(1) पुत्तलिकेव।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्राघीयो दिवस कठोरज्यैष्ठनिष्ठुरारुणकठिनमयूख हूयमाना चकोरीव अकस्मादुपचितहैमभूमनि दरिद्रचित्तवृत्तिरिव, अभिनवकल मकन्दल शालिनी केदारे क्षुधितकुरंगकिशोरीव, अतिरमणीयरामणीय लवणिमनि विषयावेश-वशीकृतशेमुषीव, अधिक जरत्तर-गौरिवागाधसुधापङ्कसंकटे हठेन निपतन्ती निर्ममज्ज गौर्यशोदायाः ॥ २ ॥

नन्दोत्सवः

स्वलोकमाकारयितुं रयेण,
चिरं विवक्षोरपि पक्ष्मलाक्ष्याः ।
प्रियं परिज्ञाय ह्रियेव वाणी,
नासीत्तदानीं बहिरास्यगेहात् ॥ ३ ॥
समं तदा गोकुलचक्रमासी,
दुन्निद्रमाशीर्ष तनूरुहेण ।

विशेष—भगवान् श्रीकृष्णके श्यामल पूर्णचन्द्र कान्तिवाले स्वरूपको देखकर यशोदाका गला भर आया और उसकी दशा हो गई जो दशा ऊपरलिखित अवस्थाओंमें, भ्रमरी, चकोरी, धनहीनको चित्तवृत्ति, भूखी मृगशावकी विषय-लिप्त बुद्धि, और दलदलमें फँसी गौकी होती है अर्थात् उसे यह स्वप्नमें भी कल्पना नहीं थी कि उसके अङ्कमें इस वृद्धावस्थामें कुमार क्रीड़ा करेगा और उसमें भी इतना सुन्दर अनिर्वचनीय कुमार जिसे देखकर वह स्वयं मुग्ध है जड़ हो गई है ॥ २ ॥

नन्दोत्सव

अनुवाद—उस समय यशोदा अपने प्रियजनोंको टेरना चाहती थी पर वह नहीं बोल सकी, वाणी (सरस्वती) ने अपने प्रिय (भगवान् विष्णु) को पहचान लिया था उस लज्जाके कारण मानों वह मुखसे बाहर नहीं निकली ॥ ३

विशेष—यशोदाके मुखसे वाणीके न निकलनेपर कविने उत्प्रेक्षाकी है क्योंकि वाणीके पति हैं भगवान् ! वे भगवान् वंकुण्ठ छोड़कर आज गोकुलमें गोप पत्नीके अङ्कमें उसने देखे तो देखते ही लज्जित होगई । यही कारण था जो यशोदाके मुखसे वचन नहीं निकले थे ॥ ३ ॥

अनुवाद—उस समय समस्त गोकुल-निवासी जनसमुदाय रोमाञ्चित होगया था और जाग गया था, पुण्यशालिनी यशोदाके स्तनोंसे भी निरन्तर दुग्धामृत प्रवाहित होने लगा ॥ ४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्तन्येन पुण्यैक - निकेतनाया,
मुदस्रमामादचिरादजस्रम् ॥ ४ ॥

नन्दारविन्दायत लोचनायाः
पुरस्तनूजे सति जायमाने ।
सोदर्य्य भावादिव वीक्षणार्थं,
मभ्युत्त्थितं तैरपि तत्तनूजैः ॥ ५ ॥

आनन्दकन्दे सति नन्दनेन्दौ,
ननन्द नन्दाम्बुधिरुत्सवेन ।
मुदस्रवीची बवृधे विशाला,
दृक्कूल मुल्लङ्घ्य च रंहसैव ॥ ६ ॥

अन्तर्गते कर्णपथेन दूरात्,
सुतो जनीति ध्वनि सिद्ध मन्त्रे ।

विशेष—गोकुलके निवासी बिना किसीके जगाये ही जाग गये । स्वाभाविक है जिस धाममें समस्त इन्द्रियों एवं प्राणके आराध्य प्रभु अवतरित हुए हों तो उनके दिव्य तेजसे सभी इन्द्रियां और प्राण प्रफुल्लित हो गये थे अतः निद्रा भी खुल गई थी ॥ ४ ॥

अनुवाद—उस समय नन्दपत्नी यशोदाके पुत्र उत्पन्न होनेपर भ्रातृ-भाव के कारण देखनेके लिये मानों रोमांच भी तत्काल उत्पन्न हो गये ॥ ५ ॥

विशेष--यहाँ कविने यह सिद्ध किया है कि कृष्ण-भगवान् भी तनूज हैं=तनुसे उत्पन्न हैं और रोमांच भी तनूज हैं तो भाई-भाई हुए । भ्राताको=कृष्णको देखनेके लिये ही रोमांच प्रकट हुए । सुन्दर उत्प्रेक्षा है ॥ ५ ॥

अनुवाद—आनन्दकन्द-नन्दनन्दनके उत्पन्न होनेपर उस समय नन्दरूपी समुद्र आनन्दित होने लगा । उठे हुए हर्षाश्रुकी विशाल तरङ्गें नेत्र-सीमाका लङ्घन करके वेगसे बढ़ गईं ॥ ६ ॥

विशेष—नन्द मानों समुद्र हैं और अश्रुधारा तरङ्ग हैं । नेत्र किनारे हैं उनका लङ्घन करके हर्षाश्रु बाहर निकल रहे हैं । श्रीमद्भागवतमें भी इस हर्षका वर्णन है—"नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः ।" भा० १०।५।१ आत्मजके साथ आह्लादका भी जन्म हो गया ॥ ६ ॥

अनुवाद—नन्दने जब सुना कि "पुत्र उत्पन्न हुआ है" तो इस ध्वनि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाग्रत्तनूजालिमिषेण तस्य,
हृच्छल्य जालानि बहिर्गतानि ।। ७ ।।
आशंसते वंशवतंस जन्म
शर्माकुलोऽसूनददद् व्रजेन्द्रः ।
[1]वसूनि दत्वा पुनराददेऽसौ
तस्मात्स्वसूनोरवलोकनाय ।। ८ ।।
पश्यन्नपि श्यामलधाम सूनो-
र्न रूप भेदं पुनरेष वेद ।
निःस्पन्द दृक्केवल शालभञ्जी[2]-
गञ्जी मुदासीदवशीकृतात्मा ।। ९ ।।
प्राणैःसहात्मानमदत्त तस्मै,
तच्छ्यामधाम्नेक्षि वसु द्विजेभ्यः ।

रूपी मन्त्रके दूरसे ही कानोंके द्वारा अन्दर आनेपर निकले हुए रोमपंक्तिके बहाने मानों हृदयमें स्थित दुःखरूपी शल्य (कील) बाहर आगई ।। ७ ।।

विशेष—मन्त्र पासमे सुना जाता है पर नन्दने 'पुत्र हुआ है' यह मंत्र दूरसे सुना । मन्त्रसे दुःख दूर होते हैं—पुत्र संवादसे हृदयका सब कष्ट दूर हो गया । रोमांचपंक्ति शल्यकी प्रतीक हैं, स्पष्ट प्रमाणके रूपमें इन्हें रखा गया है ।।७

अनुवाद—वंशभूषण बालकका जन्म सवाद कहनेवालेको प्रसन्न होकर व्रजेन्द्र नन्दबाबाने अपने प्राण भी दे दिये, फिर धन देकर प्राण वापिस ले लिये । प्राण युक्त होकर ही वे अपने पुत्रका दर्शनकर सकते थे अत उन्होंने धन देकर प्राण वापिस ले लिये थे ।। ८ ।।

अनुवाद—पुत्रका वर्ण श्याम था परन्तु वह तो श्याम तेजका दर्शनकर रहे थे अतः रूप भेदको वे न समझ सके । उनकी दृष्टि निश्चल (टकटकी युक्त) थी प्रसन्नताके कारण आत्मा वशमें नहीं थी । केवल निस्पन्द भावसे वे स्थित थे ।। ९ ।।

विशेष—नन्दने बालकका रूप नहीं भगवानूका रूपही समझा ।। ९ ।।

अनुवाद—प्राणोंके साथ अपनी आत्माको उस श्याम तेजवाले बालकको (दिया) तथा धन ब्राह्मणोंको (दिया) शरीर जड़ताको (दिया) अपना हर्ष

(1) धनानि । (2) पुत्तलिकेव ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वपुर्जडिम्ने प्रमदाय चेतो,
नन्दस्य नासीदथ देयमेव ॥१०॥
सर्वस्वानि ददे द्विजाय सहसा नन्दोमहानन्दितो ।
विश्वानन्दिनि नन्दने पुनरधात्प्राणात्मनः सेन्द्रियान् ॥
कस्मैचिद्विवशोकृतेन मनसा दास्यत्यथाङ्गं हठा-
दुद्दण्डायितमित्थमङ्गजकुलैरात्याकुलैः सर्वतः ॥११॥
स्खलन्तमात्मानयथाक्षिपन्त,
मन्यं च वासः स्खलदङ्गतोऽपि ।
पतङ्गमङ्गेष्वपरं दहन्त-
मग्नि च किञ्चिन्न विवेद नन्दः ॥१२॥
मनोऽपि नेतुं न मुनिः शशाक,
हविर्लवं ग्राहयितुं न होता ।

को दे दिया । उस समय नन्दको कोई पदार्थ अदेय नहीं था ॥१०॥

अनुवाद—ब्राह्मणोंके लिये प्रसन्नतासे नन्दने एक साथ सब कुछ दे डाला । विश्वको आनन्द देनेवाले अपने पुत्रमें इन्द्रियोंके सहित प्राण और आत्मा-का स्थिरकर दिया । विवश हुए मनसे हठपूर्वक ये अपने अङ्गको किसीके लिये दे देंगे, इसलिये अत्याकुल होकर सब ओरसे अङ्ग रोमाकुल होकर उठ पड़े, अर्थात् सारा शरीर रोमाञ्चित होगया ॥११॥

विशेष—श्रीमद्भागवतमें नन्दद्वारा अनेक प्रकारके दानोंका उल्लेख है—"आहूय विप्रान् दैवज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ।" धनकी शुद्धि दानसे ही होती है । यहाँ रोमाञ्चके लिये कविने सुन्दर उत्प्रेक्षाकी है, नन्दबाबा विवश हुए मनसे बलात् अपने अङ्ग भी किसीको दे देवेंगे अतः सब रोम व्याकुल होगये और शरीर में खड़े होगये पहले प्राण और धनकी वापिसीकी कल्पनासे प्राणकी चर्चा और यहाँ अङ्ग दानसे रोमाञ्चकी कल्पना है । नन्द अपनी प्रत्येक वस्तु दान देनेपर तुले हैं ।.११॥

अनुवाद—उस समय अपने आपको गिरते हुए भी उन्होंने नहीं देखा, किसीके द्वारा आक्षेपको भी नहीं सुना । शरीरसे गिरनेवाले वस्त्र भी नहीं देखे और तो क्या अङ्गपर पतङ्गा जलाते अग्निको भी नहीं देखा । नन्दबाबा पुत्रोत्पत्ति के हर्षसे इतने बेसुध थे कि उन्हें किसीका कुछ भी ज्ञान नहीं था ॥१२॥

अनुवाद—जहाँपर मुनि अपने मनको नहीं लेजा सकता, होता हविके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तमङ्कमारोप्य चिरं यशोदा,
स्नेहस्रुतं स्तन्यमदत्त तस्मै ॥१३॥
पङ्कापहारी हरिराविरास,
पङ्कान्न शङ्का किल काचिदेव ।
इतीव चक्रेऽखिलगोपचक्रं,
पङ्कैरनातङ्क कुतूहलानि ॥१४॥
द्रागेव दूरात्सति नन्दसूनौ,
पलायितं पंक परम्पराभिः ।
काश्मीरकर्पूरपटीरपूर-
क्षीरैरकारीति धरासु पङ्कः ॥१५॥
इयं धरित्री हरिणा भवित्री
परिच्युता निर्भरतापभारैः ।

अंशको जिन्हें ग्रहण नहीं करा सकता उसीको गोदमें बिठाकर यशोदा प्रेमपूर्ण दुग्धको पिला रही है ॥१३॥

विशेष –'यन्मनसा न मनुते" जो तत्त्व मनसे परे है, वाणीसे परे है, इन्द्रियोंसे भी परे है वही तो श्रीकृष्ण है। हविका अंश अग्निमें डाल दिया जाता है साक्षात् ब्रह्मके मुखमें पड़ते किसने देखा है पर यहाँ तो यशोदा साक्षात् ब्रह्मको स्तन्य पान करा रही है ॥१३॥

अनुवाद –पापोंका नाश करनेवाले हरि उत्पन्न हो गये हैं इसलिये किसीको अब पापकी शङ्का तो करनी ही नहीं चाहिये इसीलिये गोप मानों पंक-का आतङ्क छोड़कर कुतूहल करने लगे ॥१४॥

विशेष—गोपने दूध-दहीकी कीचकी क्योंकि वे जान गये कि भगवान् चराचरात्मा ही प्रकट हुए हैं। पंकका भय भी उन्हें नहीं था ॥१४॥

अनुवाद—नन्दपुत्रके दूर रहते हुए भी सब पंक परम्परा अर्थात् पाप समूह नष्ट होगया था। परन्तु उस समय केसर कपूर मिश्रित दुग्धसे पृथ्वीपर पंक अर्थात् कीचड़ बहुत होगई थी। हर्षोत्सवमें दुग्धादिके द्वारा पंक स्वाभाविक है ॥१५॥

अनुवाद—यह पृथ्वी अब हरिके द्वारा अत्यन्त तापके भारसे रहित हो जायगी इस विश्वासको हरिने इस पृथ्वीके हृदयमें दधिसे क्रीड़ा करके उत्पन्नकर कर दिया ॥१६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विश्वासमस्या हृदि वल्लवेन्द्रो
बध्नाति दध्ना स्म विधाय सेकम् ॥१६॥

पंकापसाराय कथा मुरारे–
रास्तां विदूरे विदिते हि तस्मिन् ।

उत्सारयामास विगाढपंकं
न गोकुले कः पदलीलयापिः ॥१७॥

शिशोरमुष्यामलकीर्ति पूर्णा
स्यादेव भूर्नाम बिना विलम्बैः ।

अपूरि सा गोकुल पूरितीव
क्षीरोल्लसत्पाण्डुरकीर्तिपूरैः ॥१८॥

भारापसाराय हरिर्ममासौ,
क्षीराम्बुधेरेव समाजगाम ।

विजानती भूरिति सा बभूव,
पंकच्छलक्षीरमयी क्षणेन ॥१९॥

पात्रीकृत्य धरित्रीं चन्दनकर्पूरकुङ्कुमैर्गोपाः ।
विदधुः पंकमहोत्सवमुत्साहानाम् च दुष्करं जगति ॥२०॥

विशेष—पृथ्वी गौका रूप धारण करके भगवान्‌की शरणमें गई थी और अपना ताप सुनाया था। आज भगवान् प्रकट होकर दधि क्रीड़ाके द्वारा मानों उसके तापको शान्तकर रहे हैं विश्वास दृढ़करा रहे हैं कि पृथ्वी ! अब तेरा ताप दूर ही है ॥१६॥

अनुवाद—पाप नाशके लिये मुरारिकी कथाकी बात तो दूर रही दूरसे ही उसके विदित होनेपर गोकुलमें पदलीलासे ही गहरी पंकको किसने नहीं हटाया ॥१७॥

अनुवाद—इस बालककी निर्मल कीर्तिसे पूर्ण पृथ्वी शीघ्र ही होगई इसीलिये मानों गोकुल नगरी भी क्षीरके समान शोभित कीर्तिके प्रवाहसे भर गई ॥१८॥

अनुवाद—मेरे भारको दूर करनेके लिये हरि भगवान् क्षीरसागरसे आये हैं यह जानकर पृथ्वी भी मानों पंकके बहाने क्षीरयुक्त क्षणभरमें होगई ॥१९

अनुवाद—पृथ्वीको पात्र बनाकर गोपोंने चन्दन, कपूर, कुंकुमसे संसार में दुष्कर उत्साहके योग्य पंकका उत्सव मनाया ॥२०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतिमाद[1]मोदमत्ताभीर बहलकोलाहल मदकलमहिलाकुल कौतुहलाकुल कलकलकलबहुल तरोलू[2]लूमलङ्गलाचारैः, अतिमधुरमृदङ्गमर्द्दलविविधवर्धमानसुरमुनिमनुजमनोनुकूल काहलाकुलवर्जितकलध्वानधाराभिः, मुखरितदिङ्मुखमङ्गलाधानधुरीणासंख्येयशंख निध्वानैः निर्धूत सुघनघना[3] घनानां घनानां घनाघोषैः, भृशमधरीकृत मधुमाधुरीकानां पीयूषादपि शिशिराणाम् सुषिराणाम् च निःस्वनप्रकरैः, अतिगम्भीर दुन्दुभीनामप्यदभ्रनिर्भरध्वनिभिरपि चण्डीशाद्रिगम्भीर गह्वर गर्भारब्ध प्रतिध्वनिमुखरचण्डिमडिण्डिमाडम्बरैरपि, रुचिरो-

---

अनुवाद - अत्यन्त मद और मोदसे मत्त आभीरोंके अत्यन्त कोलाहल था मदवाली महिलाओंके कौतूहलसे आकुल कल कल शब्दवाले उलूलू क्रीडा मङ्गलके द्वारा अति सुन्दर मृदङ्ग मर्दल अनेक विध बढ़े हुए मनके अनुकूल सुन्दर ध्वनिकी धाराओंसे बजते हुए दिशाओंमें, मङ्गलाधान करनेवाले शङ्खकी ध्वनियोंसे अन्योन्य संघट्टन द्वारा बादलोंके जैसे आघोषोंसे, मधुमाधुरीको भी तिरस्कृत करनेवाले अमृतसे भी उत्तम वंशवाद्यके शब्द समूहसे, अति गम्भीर नगाड़ोंके अत्यन्त निर्भर ध्वनियोंसे हिमालयकी गम्भीर गुहाओंसे निकली प्रतिध्वनिसे मुखर उग्र डिण्डिमके आडम्बरोंसे, रुचिर ऋचाओंके उच्चारण करनेवाले सामकी झङ्कार करनेवाले, जप करते हुए जापकों तथा यजुर्वेदके पढ़नेवाले, यज्ञ करनेवाले, तथा मुखमें सम्पूर्ण अथर्ववेदको कण्ठमें रखनेवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद वचनोंसे, दधिकी गहरी कीचसे अखण्ड धवलिमाके कारण उठते हुए समुद्रके फेन तथा कमलके समान धवल तथा चंचल लहरोंसे कलकल करते हुए नक्र समूह तथा अनेकविध जल-जन्तुओंके उद्धत नादसे क्षीरसागरके रूपका अनुकरण करती हुई वह गोपनगरी अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्तकर रही थी, अतिशय मङ्गल प्रकट करते हुए महोत्सवपूर्वक जातकर्मादि कार्य करके आभीर जातिके सार्वभौम नन्दने बालककी लौकिक और अलौकिक रक्षा सब प्रकार कराई ।।२१।।

विशेष—नन्दमहोत्सवका वर्णन है ! भगवान् श्रीकृष्णके जन्मका महोत्सव अद्भुत था। अनेक गोप और गोपियोंने स्थान-स्थानपर दूध-दधि-माखनसे

---

(1) मादः=मदः।
(2) उलूलुध्वनिमङ्गलाचारः साम्प्रतं बंगदेशे प्रसिद्धः।
(3) घनाघनः=अन्योन्यसंघट्टनः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

च्चरितच्चर्चामपि सामञ्झङ्कारकारिणामपि जपजर्जरित जञ्जपूक पूग-यजुर्जागरूकाणामपि यायजूकानां वदनोदर विहरदखर्वाथर्व गर्व दुर्वाराणामुर्वीगीर्वाणानामाशीर्वाद गीर्वाणैरपि दधिकर्दमसम्मर्दाखण्ड पाण्डिम्नां समुदयदुरुडिण्डीरपिण्ड पुण्डरीकखण्ड परिपाण्डरीभवल्लोल कल्लोल कुलकल कलनक्रचक्रादिक विविध यादोनादोद्धत दुग्धतोधेरनुकुर्वतीरूपं गोपानां वसतिरतीव मुदे हरेरुदेति स्म, सुविदितबहुमङ्गल महो महोत्सव पूर्वकं जातकर्म्मादिककर्म्माणि निर्माथाभीरसार्वभौमो-बालकस्यलौकिकालौकिक रक्षामयांचक्रे ॥२१॥

अशोक कोकः कमलाभिनन्दनः,

प्रभातभास्वानिव नन्दनन्दनः ।

परस्परमें क्रीडाकी, अतः समस्त गोकुल दूध-दधिसे भरगया था। नन्दने अनेक प्रकारके दान दिये। दान गृहीताको जब ज्ञात होता कि मुझसे अच्छी वस्तु अगले-को मिली है वह अविलम्ब मागमें ही प्राप्त दक्षिणाको डालकर नन्दसे अभीष्ट वस्तु माँगता और पाता था अतः रजत, सुवर्णके भी ढेर गोकुलमें लग गये थे। हीरा, पन्ना, मोती, मूँगा बिखरे पड़े हैं ज्ञात होता है लक्ष्मी प्रसन्न होकर स्वयं यहाँ आई है। बात भी यही है गोपियोंने रासप्रकरणमें कहा भी है कि यहाँ तो इन्दिरा सदैव निवासकर रही है—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षुतावका-
स्त्वयि धृतासव स्त्वां विचिन्वते ॥ भा० १०।३१।१

एक कविने नन्दके दानका वर्णन करते हुए ठीक ही लिखा है—

पूत सपूत जन्यौ जसुदा इतनी सुनिकैं वसुधा सब दौरी।
देवन कें आनन्द भयौ उठि धावत गावत मङ्गल गौरी।
नन्द कछू इतनौ जु दियो धन स्वामि कुबेरहु की मति बौरी।
मोहि देखत व्रजहि लुटाय दियो न बची बछिया छछिया न पिछोरी ॥२१॥

अनुवाद—कोक [चक्रवाक] के शोकको दूर करनेवाले कमलोंको प्रसन्न करनेवाले, प्रात.कालीन सूर्यकी तरह नन्दनन्दन' क्षण-क्षणमें विलक्षण क्रमको प्रकट करते हुए अन्धकार नष्ट करनेवाले, अनन्त रुचिवाले, प्रसन्न करने लगे ॥२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षणे क्षणे लक्ष्य विलक्षणक्रमो,
ननन्द सोऽनन्तरुचिस्तमः क्लमः ॥२२॥
सुरक्षणाक्षीणविलासबल्लवः,
सुशोणशोभाधर नव्य पल्लवः ।
दिनेदिनेऽशोभत तुङ्गमङ्गलः,
सुरमद्रुमस्येव नवीन कंदलः ॥२३॥
श्रुतिस्मृतिक्षालितविश्वदूषणः, सगौरगोरोचनलेशभूषणः ।
सचीनपीतांशुकरज्यदङ्गतो, रराज राजेव नवोदयं गतः ॥२४॥
निशासु सन्ध्यासु दिनेषु यत्नतः,
स पश्यतामभ्यधिकं च रत्नतः ।
ऋषेरगम्यो व्रजवासशालिनां,
जगाम चक्षुर्मयतां विलासिनाम् ॥२५॥

विशेष—रात्रिमें चक्रवाक युगल दूर हो जाते हैं प्रातः मिलते हैं अतः सूर्य चक्रवाकका बन्धु है । सूर्यकी किरण जालसे ही कमल खिलते हैं अतः ये कमल बन्धु हैं । भगवान् कृष्ण भी अन्धकारको दूरकर बान्धवोंको सुखदायी हैं । सूर्यकी भाँति अनन्त रुचिवाले हैं ॥२२॥

अनुवाद—सुरक्षाके कारण अक्षीण विलासवाले, लाल शोभासे युक्त अधर पल्लववाले अति मङ्गलवाले, सुरद्रुम (कल्पवृक्ष) के नवीन कन्दलकी तरह नन्दनंदन दिनदिन दूनी शोभाको प्राप्त करने लगे ॥२३॥

अनुवाद—श्रुति-स्मृतिके द्वारा विश्वके दोषोंको हटानेवाला गौर गोरोचनको भूषणके रूपमें धारण करनेवाला, सूक्ष्म और पीत अंशुकसे शरीरको शोभित करनेवाला, नवाभिषिक्त राजाकी तरह शोभित था ॥२४॥

विशेष—श्रुति-स्मृतियोंसे समस्त दोष दूर हो जाते हैं गोरोचनको कान में लगानेसे वह भूषण बन जाता है अर्थात् शोभा बढ़ जाती है । सूक्ष्म और पीत-वस्त्रके धारण से नये अभिषिक्त राजाकी भाँति नन्दकी शोभा हुई थी ॥२४॥

अनुवाद—रात्रिमें, दिनमें, सन्ध्या समयमें भी बड़े यत्नसे रत्नोंसे भी अधिक देखनेवाले व्रजवासियोंको ऋषियोंसे अगम्य वह विलासियोंकी दृष्टिका विषय बन रहा था ॥२५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स रोहिणीगर्भकृतावरोहणः,
सरोहिणीशद्युतिरीशमोहनः ।
दधच्छ्रियैरावत कालभक्रमं,
भुवीह केषां विदधे नभभ्रमम् ॥२६॥

पूतनावधः

दिनेषु गच्छत्सु कियत्सु मत्सरा-
न्मनोदधद्भीषणभूतिमच्छरात् ।
स पूतनां[1] प्रैषय दुग्रशासन-
स्तयोस्तयोपाश्रित नाशवासनः ॥२७॥

यमस्य दूतीव तमस्विनं जनं,
वयोवसाने रुगिवाक्ष्यनञ्जनम् ।
समागता सा पुरि नन्द सुन्दरी-
सुतं चिकिर्षुस्तमसौ व्यसुन्दरी ॥२८॥

अनुवाद—रोहिणीके गर्भसे अवतार लेनेवाला चन्द्र सदृश द्युतिवाला, ईशको मुग्ध करनेवाला शोभासे ऐरावतके शिशुके सदृश पृथ्वीपर सबका उससे आकाशकी भ्रान्ति होती थी ॥२६॥

पूतना-वध

अनुवाद—कुछ दिवस व्यतीत होनेपर, कृष्ण द्वेषी उग्र शासन करने-वाले कंसने बलराम-कृष्णको पूतना द्वारा नष्ट करानेकी इच्छासे भेजा ॥२७॥

विशेष—पूतनाको भागवतके अनुसार श्रीकृष्णके जन्म-दिवसके छठे दिन भेजा गया था। पूतना भी भगवान्‌को मारनेकी प्रतिज्ञाकर चुकी थी। पुराणान्तरमें पूतनाको राजाबलिकी पुत्री रत्नावली कहा है जिसने वामनावतारमें श्रीवामन जैसे सुन्दर बालककी गोदमें लेकर स्तन्यपान करानेकी इच्छाकी थी। फलतः श्रीकृष्णावतारमें वह इच्छा-पूर्ण की गई ॥२७॥

अनुवाद—अज्ञानी पुरुषके पास यमदूतीकी तरह अथवा वृद्धावस्थामें कज्जलशून्य नेत्रमें रोगकी तरह यशोदानन्दनको प्राणहीन करनेकी इच्छासे वह पूतना नगरमें आई ॥२८॥

विशेष—इस श्लोकमें पादान्त यमकालङ्कार है। यह क्रम तीसवें श्लोक तक है ॥२८॥

---

(1) भा० १० स्कं० ६ अध्याये पूतना वध कथा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनिन्द्यमान्द्यं दधती गमे खला,
नितम्बबिम्बाहितहेम मेखला ।
समुल्लसत्कुण्डलमण्डलश्रुतिः,
सुचारु शोभाखिलभीप्रतिश्रुतिः ॥२९॥
मृगेन्द्रमध्या मृगशावकेक्षणा
सहारकण्ठो सरसा बकेक्षणा ।
तनुत्विषा गञ्जितमञ्जुरोचना
मुखेन्दु सौन्दर्यजगद्विरोचना ॥३०॥
दुकूल वल्लीपरिणद्धविग्रहा,
बकी त्रिलोकी प्रथितोग्रविग्रहा ।
समाल्प धम्मिल्लसमृद्ध सौरभा,
ललाट सिन्दूरविमूढ़ सौरभा ॥३१॥
हरेरसुग्रामकुवासनामिता,
सकालकूटस्तनभार नामिता ।
निगूढनक्रेव कृता तरङ्गिणी,
विगाढ माया घटनातिरङ्गिणी ॥३२॥

अनुवाद—वह दुष्टागतिमें सुन्दर मन्दता धारण करती हुई नितम्बपर स्वर्ण खचित मेखला (करधनी) धारण किये थी । कुण्डलोंसे कान भूषित थे । उत्तम शोभासे वह अपनी दुष्टता छिपा रही थी ॥२९॥

अनुवाद—वह सिंह सदृश कटिवाली थी, मृग शिशुके समान उसके नेत्र थे, कण्ठमें सुन्दर हार था, वक सदृश नेत्रोंसे सरसा बनो थी. शरीरकी शोभासे रोचनाको तिरस्कृत करनेवाली थी, और अपने चन्द्र समान मुखसे संसारके लोगों को प्रसन्न कर रही थी ॥३०॥

अनुवाद—शरीरके ऊपर दुकूल धारण किये थी, त्रिलोकीमें भयङ्कर शरीरको दिखानेवाली थी । वह बक नामक असुरकी बहिन (पूतना) केशपाशपर सुगन्ध लगाये थी और उसके ललाटपर गन्धयुक्त सिन्दूर शोभित था ॥३१॥

अनुवाद—वह कृष्ण भगवान्के प्राणोंकी कुवासना वाली थी, स्तनपर कालकूट विष लगाकर आई थी, स्तनोंके भारसे नम्र थी, छिपे हुए नक्रवाली नदीकी तरह भयङ्कर मायाका विस्तार करनेमें अत्यन्त पटु थी ॥३२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निलीनशार्दूल मिवोपकाननम्,
प्रकाशयन्तो ललितालकाननम् ।
स्तनं दधाना विषमेचकाननं,
ग्रहीतुकामा दनुजान्त काननम् ॥३३॥
जगाम नन्दस्य ततो निकेतनम्,
लसत्त्रिलोकी गृहजैत्र[1] केतनम् ।
उवाच वाचा मधुमाधुरी मुचा,
रुचा तिरोभूय रदस्य मौक्तिम् ॥३४॥
मदे यशोदे तनयो नयोत्तमे,
न कस्य मेघाधिक मेच[2] कोदयः ।
चिरेण जातश्चरमे वयस्यहो,
महोदयं विन्दतु नन्दतु श्रिया ॥३५॥
भस्मभूषितमिवानल पिण्डम्,
कोषगूढ़मिव सायक खण्डम् ।
सा ददर्श समदर्शि यशोदा-
क्रोड शायिनमशङ्क किशोरम् ॥३६॥

अनुवाद—वह छिपे हुए सिंहवाले उद्यानकी तरह सुन्दर केशयुक्त मुखको प्रकाशितकर रही थी, विषयुक्त नीलमुखवाले स्तनोंको धारण किये थी, और दनुजोंके अन्तक=काल, कृष्णके प्राणोंको लेनेकी इच्छा करनेवाली थी ॥३३॥

अनुवाद—वह पूतना तीनों लोकोंको जीतनेवाली ध्वजासे शोभित नन्दके घर पहुँची । कान्तिसे दन्तोंकी शोभा ढकती हुई मधुर सुन्दर वाणीसे वह बोली—

अनुवाद—हे उत्तमनीतिवाली यशोदे ! मेघसे अधिक नीलिमा धारण करनेवाला तेरा पुत्र किसको आनन्दित नहीं करता ! अर्थात् सबको सुख देनेवाला है बहुत समयके पश्चात् वृद्धावस्थामें पैदा हुआ है, यह महान् उदय प्राप्त करे और सदा प्रसन्न रहे ॥३५॥

अनुवाद--भस्मसे ढकी अग्निकी तरह, तरकशमें छिपे बाणकी तरह, समदर्शिनी यशोदाकी गोदमें खेलते हुए उस निश्शङ्क बालकको पूतनाने देखा ॥३६

---

(1) जेतृ+अण् । विजय प्राप्त करनेवाला ।
(2) मच्+वुन्, इत च [काला बादल]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एहि वत्स मुखमच्छदर्पणं,
द्रष्टुमुत्सववहं समुत्सहे ।
इत्युदीर्य निजपाणि पल्लवं,
बल्लवेन्द्र[1] गृहिणी पुरो दधे ॥३७॥
आशिषं कुलपुरन्ध्रि विधेहि,
श्रीपदं शिरसि साधु निधेहि ।
एतया सह गिरैव विशङ्का,
स्वाङ्कतः शिशुमदत्त तदंके ॥३८॥
दन्दशूकमिवदामशङ्कया-
वह्निकूटमिव हाटकाशया ।
चन्द्रहासमिव कन्दलीधिया,
नन्दशावकमदत्त सा बकी ॥३९॥

अनुवाद--उसके उपरान्त (पूतनाने कहा--) आओ वत्स ! आनन्दित करते हुए स्वच्छ दर्पणके समान तुम्हारे मुखको देखनेकी मेरी इच्छा है, यह कहकर नन्दपत्नी यशोदाके आगे अपने हाथ फैला दिये ॥३७॥

अनुवाद--हे कुलदेवि ! आप आशीर्वाद देवें और अपने श्रीचरण अच्छे प्रकार इसके सिरपर रखें. यह कहकर निश्शङ्क होकर यशोदाने अपनी गोदसे बालक (कृष्ण) को उस पूतनाकी गोदमें रख दिया ॥३८॥

अनुवाद--जैसे कोई माला समझकर साँपको पकड़ ले अथवा सुवर्ण समझकर अग्निपुञ्ज पकड़ ले अथवा कदली समझकर चन्द्रहास (तलवार) को पकड़ ले ऐसे उस पूतनाने नन्दतनय (कृष्ण) को गोदमें ले लिया ॥३९॥

विशेष--भ्रान्तिमान अलङ्कार है। माला और सर्पमें साम्य है । अतः मालाके धोखे सर्पको उठा लेना वैसेही श्रीकृष्णको गोद लेना है । आशय यह है कि जैसे सर्पको उठा लेनेवाला पछताता है वही दशा पूतनाकी होगी । कोशमें चन्द्रहास नाम तलवारका है । भागवतपुराणमें भी सर्पका उल्लेख है--बालघातिनी पूतनाको देखकर श्रीकृष्णने अपने नेत्र बन्दकर लिये और उस पूतनाने सोते सर्पको अज्ञानी जिस प्रकार उठा लेवे वैसेही कालरूप कृष्णको गोदमें रखा--

विबुध्यतां बालक मारिका ग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ।
अनन्तभारोपयदं कभन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धरज्जुधीः ॥ ३९॥

---

(1) गोपेन्द्रनन्दः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालकूटमिव सा मृगनाभी,
भानतो हरिमिवैण मानतः ।
भीमवज्रमिव पद्मबुद्धित,
स्तंब्रभार विभुमर्म मोहतः ॥४०॥

वामपाणिधृत मूर्द्ध निबद्ध,
स्वस्तिकासन मधत्त तदङ्के ।
कञ्चुल्लीं च समुदस्य कुचाग्रं,
दक्षिणेन च करेण चकर्ष ॥४१॥

कम्पमान भुवन त्रयमन्तः,
शोचमानमुनि देव मशङ्का ।
वाम चूचुकमधत्त मुरारेः,
बन्धुजीवमधुराधर बिम्बे ॥४२॥

श्याम चूचुकमतीव चकास,
श्रीधराधरपुटेऽरुणभासि ।
बन्धुजीव कुसुमोदर मज्ज,
चचञ्चरीक इव कंचन कालम् ॥४३॥

अनुवाद—जिस प्रकार कोई कस्तूरी समझकर विषको ग्रहण करे, अथवा मृग चर्मकी शङ्कासे सिंहको पकड़े अथवा कमल समझकर भयङ्कर वज्रको पकड़ले, इसी प्रकार मोहमें आकर उस बालकको पूतनाने ले लिया ॥४०॥

अनुवाद—बांये हाथपर सिर रखकर उसकी गोदमें कृष्णने स्वस्तिकासन [स्वस्तिकका-सा आकार] ग्रहणकर लिया । पूतनाके कंचुकको उठाकर दक्षिण हस्तसे उसके स्तनका अग्रभाग खींचा ॥४१॥

अनुवाद—निश्शङ्क होकर पूतनाने तीनों लोकोंके कम्पित होते हुए तथा हृदयमें मुनि और देवताओंके शोकाकुल हो जानेपर, बन्धुजीव पुष्पके समान अधर-वाले मुरारिके मुखमें वामस्तन दे दिया ॥४२॥

अनुवाद—बन्धुजीव पुष्पपर अन्दर बैठे हुए भ्रमरके समान थोड़ी देर-तक श्रीधर (कृष्ण) के लाल-लाल अधर पुटपर पूतनाका श्यामस्तन बड़ा ही शोभित हुआ ॥४३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दमन्दचल दृक्पदपाणि,
स्पन्दमान मधुराधर बिम्बम् ।
प्राणपञ्चकममतर्पयदीशः,
प्राणपञ्चक मिलत्पयसास्याः ॥४४॥
वह्निदीपनकृते हरिरुग्र,
क्ष्माभुजामशन मारभमाणः ।
षड्सीमिव जघास स बक्याः,
प्राण पञ्चक पयोरस षट्कम् ॥४५॥
कालकूटकवलेन मुरारे,
र्दुःसहो जठरवह्निरदीपि ।
इत्यति क्षुधित एव तदीय,
प्राणपञ्चकमपि प्रभुरादात् ॥४६॥
कालकूटमखिलैरविषह्यं,
पूतनापि निखिलैरविषह्या ।

अनुवाद—धीरे-धीरे दृष्टि हाथ-पैरोंको चलाते हुए तथा मधुर अधर-बिम्बको हिलाते हुए भगवान् कृष्णने पाँचों प्राणोंमें पहुंचते हुए पूतनाके दुग्धसे अपने पाँचों प्राणोंको तृप्त किया ॥४४॥

विशेष—भगवान्‌ने उसके स्तनोंको जोरसे दबाया था जिससे पूतनाने बड़ा क्रन्दन किया और छोड़-छोड़ शब्द कहे—

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी
निष्पीड्यमानाखिल जीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः
प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोदह ॥ भा. १०।६

अनुवाद—उग्र राजाओंका नाश आरम्भ करनेवाले हरिने अग्नि दीप्त करनेके लिये षड्रसयुक्त पदार्थकी तरह पूतनाके पाँचों प्राणोंमें पहुँचे हुए दुग्धके छःरसोंका आनन्द लिया ॥४५॥

अनुवाद—कालकूट विषके भक्षण करनेसे मुरारिकी जठराग्नि बहुत दीप्त हो गयी, उसके कारण अत्यन्त क्षुधति प्रभुने उसके प्राणोंका भी भक्षणकर लिया ॥४६॥

अनुवाद-- कालकूटको कोई सहन नहीं कर सकता, पूतनाकी शक्ति भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सौहृदादिति तया तह भेजे,
कैटभारिजठरं विषकूटः ॥४७॥

कालकूट गरलाच्च गरीयो,
वेत्ति वैभवमसौ स्वमहिम्नः ।

तत्पथेन तदनु द्रुतमित्थं,
केशवोदरदरीं विजगाहे ॥४८॥

या व्यधत्त दधतो हरिमङ्कं,
मोक्षमाशु कुच कञ्चुलिकायाः ।

सात्ममोक्षमकरोन्न विचित्रं,
वस्तुशक्तिरपरैव जगत्याम् ॥४९॥

अथ पञ्चप्राणानुगतमाया प्रपञ्चं "मा पिब" "मा पिबेति" "मुञ्च मुञ्चेति" क्रोशन्त्याः, आन्दोलितभुजदण्ड चण्डिमपुण्डरीक-नयनमुत्क्षिपन्त्याः, आस्फालस्फुट दुरुचरण निपात्यमान पान भवन-महीरुहधोरणीकं कंसं प्रति चरित मिदमाशंसदिव सार्त्तनादव्यात्तमुख-

---

सहन योग्य नहीं थी इसी सौहृद्-भावसे वह विष पूतनाके साथ प्रभुके उदरमें रहने लगा । असह्य विष जब पूतनाके उदरमें पहुँचा तो उसने असह्य पूतनाको भी उदरमें बुला लिया ॥४७॥

अनुवाद—कालकूट विषसे उस पूतनाने अपनी महिमाका वैभव अधिक माना । जब कालकूट उदरमें पहुँच गया तो पूतना क्यों न पहुँचती । इस विचारसे ही पूतना केशवके उदरमें (विषवाले मार्गसे ही) पहुँच गयी ॥४८॥

अनुवाद—जिसने हरिको गोदमें धारण करते हुए, स्तनोंके वस्त्र (कंचुक) को हटा दिया था उसने अब अपनी मोक्ष भी करली, इसमें कुछ विचित्र नहीं क्योंकि पृथ्वीपर वस्तुओंकी शक्ति और ही होती है ॥४९॥

अनुवाद—पाँचों प्राणोंके साथ मायाका प्रपञ्च लगानेवाले हरिसे, मत पियो मत पियो, छोड़ो, छोड़ो, ऐसा उच्च स्वरसे कहती हुई तथा हाथ पटकती हुई नेत्रोंसे देखती हुई, बड़े-बड़े पैरोंके पटकनेसे पान, भवन, वृक्ष, वाहन आदिको गिराती हुई कंसको दशा बतलाती-सी, आर्तनाद सहित मुख फाड़ती हुई भयङ्कर मुखको विदीर्ण करती, भूमिको कंपाती हुई पूतनाने कोसोंतक पृथ्वीको आक्रान्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रमुखमावर्त्तमाननयन भीषणं कम्पितभूमिचक्रमाक्रान्त बहु क्रोश पर्यन्तमत्यन्तभयदमतीव पीवरं वपुरपतदखर्वमुर्वीधराभोग इव ॥५०॥

अनन्तरमस्याः पयोधरपारावारमुन्मथ्यपयो गरलं पञ्चप्राणाभिधानपञ्चद्रुमानपि तत्तच्छ्रियं चामृतं च समाहृत्य भूय्र्येव मनसि विचार्य्य धूर्जटिना विषमन्यदा गृहीतममृतं पुनरसुरैः कृतश्रमै रपि न प्राप्तमेव इति केवलममृतमसुरकुलोद्भवायै तस्यै दत्त्वा सकल मन्यत्स्वयमेवादत्त दैत्य कुलारातिः ॥५१॥

धत्तेऽद्याऽपि हरः कण्ठे हरिरादत्त यत्नतः ।
दत्त्वामृतमहो बक्यै[1] विषं स्वादुवमृतादिव ॥५२॥
निष्पतन्त्याः पृथिव्यां तु मुखमासीदनावृतम् ।
दैत्यप्राणप्रयाणार्थमिव द्वारमनर्गलम् ॥५३॥

कर दिया था उसका अत्यन्त भयानक स्थूल पर्वत जैसा शरीर एक साथ गिरा था ॥५०॥

अनुवाद—इसके पश्चात् स्तनरूप समुद्रका मन्थन करके क्षीर, विष, पंच प्राण नामवाले पाँच वृक्ष, लक्ष्मी, अमृत निकालकर मनमें बहुत विचार करके कि एक समय शिवजीने विष पान किया था, श्रम करके भी असुरोंको अमृत नहीं मिला था इसलिये असुर कुलमें उत्पन्न उस पूतनाको अमृत देकर अर्थात् उसका मोक्ष करके अन्य सब वस्तुओंको दैत्यकुल शत्रु भगवान्ने स्वयं ग्रहण किया ॥५१

विशेष—क्षीर-समुद्रमेंसे विष, अमृत, लक्ष्मी, कल्पवृक्ष निकले थे पूतनाके स्तन समुद्रमें से मथकर कृष्णने दूध (अमृत) विष (स्तनपर लगा विष) लक्ष्मी (शोभा) पाँच प्राणरूप वृक्ष निकाले पर यह सोचकर कि असुरोंको अमृतसे हाथ धोना पड़ा था जबकि श्रमतो उन्होंने किया था, तो आज पूतनाको अमृत (मोक्ष) देदी । शिवजीने विष लिया आज हरिने विष लेलिया ॥५१॥

अनुवाद—जिसको हरिने यत्नपूर्वक निकाला था उस विषको अमृतसे भी अधिक स्वादु समझकर शिवजीने अपने कण्ठमें धारणकर रखा है, अमृत पूतनाको दे दिया । पूतना अपना स्तन पिलाकर मातृभाव प्रकटकर रही है इसलिये भगवान् कृष्णने उसकी मुक्तिकर दी ॥५२॥

अनुवाद—पृथ्वीपर गिरते हुए पूतनाका मुख फैलगया था मानों दैत्यका प्राण निकलनेके लिये द्वार खुल गया हो ॥५३॥

---

(1) पूतनायै ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घनयोः स्तनयोरन्तरशोभत नृकेसरी ।
केसरीव यशोमुक्तां जिघृक्षुः करिकुम्भयोः ॥५४॥
लम्बमानस्य हारस्य पूतनोरस्यवस्थितः ।
लोकैरतरलोऽप्येक तरलोऽगीयत क्षणम् ॥५५॥

अथ सम्भ्रमाकुल चित्ताभिराभीरीभिरसम्भ्रममेव शयानस्तदुरसि शयेन स्वमेङ्कमानीयता चिरेणैव । तदनु ब्राह्मणानाहूय भूयसो भूयांस्येव भावकोद्भावीनि कर्माणि भावयामासुराभीराः । ग्रहानुग्रह निर्वाहिनोऽपि होमानारेभिरे याज्ञिकाः । केचन महारुद्राभिषेक मनेकधा बुधा विदधुः । केचन मन्त्राणामेव जापं चक्रिरे महामान्त्रिकाः । केचन बह्वाशीर्वादानेव वितेनिरे सुधियः । केचन यशोदानन्दयोः पुण्यातिशयं वर्णयन्तिस्म महात्मानः ॥५६॥

अथ पूतनाया हरिपरिपीतस्तन्यतया परिपूतमेव तत्कटं[1] नाति निकटदेशे कठिन कुठारादिना खण्डखण्डीकृतं संवार्य ज्वालयाञ्चक्रिरे

अनुवाद—गजके कुम्भस्थलसे यश रूप मुक्ताको ग्रहण करनेकी इच्छा से शेरकी तरह वह नरसिंह प्रभु दोनों घने स्तनोंके बीच शोभित हो रहे थे ॥५४॥

विशेष—पूतनाके स्तनरूपी कुम्भस्थलसे यशरूप मुक्ता कृष्णने प्राप्त किये। अर्थात् पूतनाके वधसे उनका यश हुआ। यह बालघातिनी थी ॥५४॥

अनुवाद—पूतनाके हृदयपर बैठे हुए लटकते हुए हारके कारण अचंचल होते हुए भी लोगोंके द्वारा थोड़ी देरके लिये चचल कहलाये गये ॥५५॥

अनुवाद—इसके अनन्तर घबड़ाहटयुक्त गोपियोंने निर्भय होकर पूतनाके हृदयपर विहार करते हुए हरिको शीघ्र ही अपनी गोदमें उठा लिया इसके बाद बहुत ब्राह्मणोंको बुलाकर मङ्गल जनक कार्य गोपोंने कराये, याज्ञिकोंने ग्रहोंको अनुकूल करनेवाले यज्ञ किये, कुछ पण्डितोंने महारुद्रका अभिषेक किया, कुछ महामान्त्रिकोंने मन्त्रोंका जाप किया, कुछ विद्वानोंने बड़े-बड़े आशीर्वाद दिये कुछ महात्माओंने यशोदा और नन्दके अतिशय पुण्यका वर्णन किया ॥५६॥

अनुवाद--फिर भगवान्के स्तन पीनेके कारण पवित्र वह पूतनाका शरीर (शव) दूर स्थानपर लेजाकर कठिन-कुठार आदिसे उसके खण्ड-खण्ड

---

(1) कटं=शवः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोपाः । यद् धूमादपि जगदपि सौरभगौरवेण सुरभि कुर्वन्तो मलयजागरुकाश्मीरकस्तूरिकापूरकर्पूर-कुसुमालि - सौरभ्याणि परिभवन्ति स्म बहुकालम । कंसोऽपीति पूतनाचरितमाकर्ण्य विवर्ण वदनो महापात्र परम्परामाहूय मन्त्रानेव सन्ततं तेने ।।५७।।

तृणावर्तवधः

[1]तमाहूय तृणावर्त्तमनावर्त्तितशासनः ।
गोकुलं व्याकुलीकर्त्तुमादिदेश विशेषतः ।।५८।।
आज्ञां शिरसि राज्ञां च प्रज्ञां स विरही वहन् ।
बाहुमास्फोटयामास मुखरीकृतदिङ्मुखम् ।।५९।।

करके फिर एकत्र करके गोपोंने जला दिया। पूतनाके देहका सुगन्धित धूम था जिसके समक्ष संसारको सुगन्धित करते हुए चन्दन, अगर, कस्तूरी, कपूर, पुष्प आदिकी सुगन्धि बहुत समय तक फीकी प्रतीत होती रही। कंसने पूतनाके चरित्रको सुनकर उदासीन मुख होकर अनेक मन्त्रवेत्ता विद्वानोंको बुलाकर निरन्तर विचार करना आरम्भ किया ।।५७।

विशेष—पूतनाका देह छःकोशके मध्य गिरा था—

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगत्यूत्यन्तरद्रुमान् ।
चूर्णयाभासराजेन्द्र किमेतदासीदद्भुतम् ।। भा. १०।६।

श्रीकृष्णके चरणारविन्दकी धूलिसे सारा ब्रह्माण्ड पवित्र हो जाता है समस्त पाप दूर हो जाते हैं तो पूतनाके पाप तो अत्यन्त स्वल्प थे–अतः पापरहित उसके शवदाहसे सुन्दर गन्ध निकली थी ।।५७।।

तृणावर्त्त-वध

अनुवाद—अनुल्लङ्घनीय शासनवाले कंसने तृणावर्त्तको बुलाकर गोकुलको विशेषकर नष्ट भ्रष्ट करनेका आदेश दिया ।।५८।।

विशेष—कंस अपनी सभामें यह स्पष्टकर चुका था कि मेरा शत्रु ब्रजमें कहीं जन्म ले चुका है किन्तु पूतनाके वधसे उसने निश्चय किया कि मेरा शत्रु गोकुल में है इसलिये विशेषतः गोकुलको नष्ट करनेका उसने आदेश दिया ।।५८।।

अनुवाद--पूतनाके विरहवाला वह तृणावर्त्त कंसकी आज्ञा प्राप्तकर वहाँसे चला। वह बुद्धिमत्तामें राजाओंसे कम न था। उसने अपने भुजदण्ड बजाकर दिशायें गुञ्जित करदी थीं ।।५९।।

---

(1) तृणावर्त्तवध कथा भा० १० स्कं० ७ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिवाद्य महीपालमराल मति भीषणः ।
प्राह प्राहण्मि विश्वानि गोकुलं कियदाकुलम् ॥६०॥

ततश्चलित वानतिप्रबलचक्रवाकाकृति-
दिति प्रथितवंशभूर्मुदित कंस भूमीपतिः ।
भ्रमितभ्रमितभूधरं त्रुटित-भूरि-भूमीरुहं
नमत्क्षितिपतद्‌गृहं धरणि-चक्रगूढग्रहम् ॥६१॥

तरङ्गतरलीभवत्तनुलरीतुलं गोकुलं
समाकुलित गोकुलं मुषित सर्वगोगोकुलम् ।
प्रचण्ड पटुचंक्रमोच्छलितरेणु सद्धारुण-
श्चकार चकितं जगत्तिमिर-वर्षिवर्षोदयम् ॥६२॥

विशष—तृणावर्त्त भी मल्ल था । मल्लोंका यह स्वभाव होता है कि वे अपनी जंघा और भुजा इनको बजाते हैं । यह वीरोंका स्वभाव भी है ॥५९॥

अनुवाद—वह भयङ्कर तृणावर्त्त दुष्ट राजाओंमें हंस कंसको प्रणामकर बोला—राजन् ! मैं सारे विश्वको समाप्तकर सकता हूँ गोकलको व्याकुल करना क्या बड़ा काम है ।६०॥

अनुवाद—तब वह तृणावर्त्त चकवेको-सी आकृतिवाला अत्यन्त बलवान दितिके प्रसिद्ध वंशमें उत्पन्न हुआ राजा कंसको प्रसन्न करके चलने लगा । तब उसके गतिके वेगसे पहाड़ हिलने लगे, वृक्ष टूट गए । पृथ्वीके हिलनेसे घर गिर पड़े और अनेक नक्षत्र भी गिर गये ॥६१॥

अनुवाद—लहरोंसे हिलती हुई छोटी नावके समान गोकुल हिलने लगा, गौयें सब घबराने लगीं । सब गोकुल वासियोंकी इन्द्रियाँ विचलित होगईं । प्रचण्ड और घूम-घूमकर वायुके चलनेके कारण धूलि घूमने लगी । सब ओर अन्धकारके कारण सारा संसार चकित होगया ॥६२॥

विशेष—तरी=नौका, तरिः (तरन्ति अनया) 'नाव्यं (त्रिलिंगं नौतार्ये) स्त्रियां नौस्तरणिस्तरिः" इति अमरकोशः १।१०।१० । प्रथम पंक्तिमें शब्दालङ्कारकी छटा दर्शनीय है, ओजगुण है । मुषित=मुषस्तेय, कर्ममें त प्रत्यय, चोरी अर्थमें, किन्तु विश्वकोशमें "मुषितम् हृत खण्डिते" के अनुसार हरण करनेके अर्थमें तथा खण्डन अर्थमें भी है । यहाँ इसका अर्थ हर लेना होगा अर्थ सम्पूर्ण गोकुलको हर लिया ॥६२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरिमुग्धमहोविद्ध मध्यया धूलि धारया ।
प्रयागं वर्त्तयामास तृणावर्त्तो रयाद्दिवि[1] ॥६३॥

दधज्ज्वलदसुन्दरं मुरहरं तु चक्रान्तरे
सविभ्रममसम्भ्रमो भुवि दिवि भ्रमन्भ्रामयन् ।
अशोभत यशोभरैरहह चक्रवातासुरः
कुलाल[2] इव केलिना कलितकाचकुम्भभ्रमिः । ६४॥

तृणावर्त्त महावर्त्त समावर्त्तितविग्रहः ।
स मायाचक्रविभ्रान्त वेदनां वेद माधवः ॥६५॥

कलापकुसुमत्विषं परमपूरुषं तं दध-
न्महो भसितभूति चेद्भ्रमति चक्रवातासुरः ।

अनुवाद --हरिको मुग्ध करनेवाले तेजसे युक्त मध्यवाली धूलिकी धारा-से तृणावर्त्तने आकाशमें वेगसे प्रयाग बना दिया। जैसे प्रयागमें तीन धारायें मिलती हैं वैसे ही आकाशमें धाराओंके सङ्गममे प्रयाग बन गया ॥६३॥

विशेष—कविने यह कल्पनाकी है कि श्रीकृष्णका तेज और बवण्डरकी धूल ये यमुना और गङ्गाके समान हैं और मानों आकाशी प्रयाग, प्रयागमें जिस प्रकार गङ्गा-यमुनाका सङ्गम दर्शनीय होता है वैसी ही छटा आकाशमें थोड़ी देरके लिए हुई ॥६३॥

अनुवाद—वात्याचक्रमें मुर शत्रु तेजस्वी उसके प्राणोंका नाश करनेवाले हरिको धारण करते हुए बड़े विभ्रमके साथ भ्रान्तिको छोड़कर स्वयं घूमता हुआ हरिको घुमाता हुआ वह तृणावर्त्त असुर इस प्रकार यहाँ सुशोभित हुआ जिस प्रकार कुम्हार खेलमें किसी काँचके घड़ेको घुमा रहा हो ॥६४॥

विशेष —असुन्दर—असुम्=प्राण "(पुंसिभूम्न्य) सवः प्राणा (श्चैवं) जीवोऽसुधारणम् ॥" अमरकोष २ क्षत्रियवर्ग/११९ असुन्दरति इति असुन्दरः जो प्राणोंको हरता है उसका नाम है—असुन्दर। मुरहर=मुर नामके असुरको मारने के कारण इनका नाम मुरहर पड़ा ॥६४॥

अनुवाद—तृणावर्त्तके घूमनेसे घूमनेवाले माधवने मायाके चक्रमें घूमने-वालेकी जैसी वेदनाका अनुभव किया ॥६५॥

अनुवाद—मोरपुच्छकी नीलिमा जैसी कान्तिवाले उन परम पुरुषको

---

1) वेगात् ।   (2) कुम्भकारः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तदा कृतसनिद्रदृक्कमलगोकुल श्रीकुलः
शशीव दिवसोदरे भृशमदीपि सीमोपरि ॥६६॥
हर इव कण्ठेकालः कण्ठे कालत्विषं दधत्पुरुषम् ।
भृतभूति-चक्रवातस्तेनाघ्रातः स एव सञ्जातः ॥६७॥

एवंविधभावि विर्येविहितमखिलं खमिव, विस्तारित निखिल-स्वस्तिकस्तूरिकानेपथ्यमिव, भाविनीलाम्बरनीलाम्बरैक-खण्ड मण्डित कण्ठाभिख्यां प्रख्यापयन्निव, अतिचिक्कणैकमहानीलरत्नमिव, यत्नतो व्रजरत्नाकर देवतारत्नं कलित - कलाप - कुसुमसुकुमार - कोमला-कारं नन्दकुमारं दधदेव तत्सङ्गादुपचितनिरवद्यवैशद्यमिव, चिरा-देव भाविमोक्षतया प्रादुर्भूत सत्त्वगुणव्रज - नगरीकरीष - भूतिमादाय पाण्डरी भूतो बहुवेलमेव दिवि भुवि च चक्रवच्चक्रवातासुरो बभ्राम ॥६८॥

धारण करते हुए वह तृणावर्त्त असुर चक्रवातके रूपमें चमकती हुई भस्मकी तरह घूम रहा था, गोकुलकी सीमापर दिनमें चन्द्रमाकी तरह निद्रा सहित नेत्रोंवाले गोकुलकी शोभाकी तरह वह शोभित हुआ ॥६६॥

विशेष—शशीव दिवसोदरे में सुन्दर उत्प्रेक्षा है ॥६६॥

अनुवाद—कण्ठमें काल रक्खे हुए हरकी तरह काल सदृश कान्तिवाले हरिको धारण किये हुए धूलि उड़ाते हुए वात्या चक्रकी तरह उस तृणावर्त्तको हरिने पकड़ा ॥६७॥

अनुवाद--इस प्रकार होनहार जैसे अखिल आकाशको धारण कारण करता हो तथा फैलाई हुई कस्तूरीके स्वास्तिकयुक्त नेपथ्यकी तरह बलरामने नीलवस्त्रके खण्डसे शोभित कण्ठको बताते हुएकी तरह अति चिकने महानील रत्नकी तरह बड़े यत्नसे व्रजरूपी समुद्र देवताके रत्नके सुन्दर मोरपुच्छके नील-कुसुमके समान कोमल आकारवाले नन्दकुमारको धारण करते हुये ही उसके सङ्ग से बढ़ी हुई सुन्दर स्वच्छताकी तरह विलम्बसे होनेवाले मोक्षके कारण उत्पन्न हुए सत्वगुण वाली व्रज नगरीकी सुन्दर विभूतिसे स्वच्छ होते हुए बहुत देरतक आकाश में और पृथ्वीपर चक्रकी तरह वह चक्रवातासुर तृणावर्त्त घूमता रहा । [भागवत में शकटासुर कथाके पश्चात् तृणावर्त्त प्रसङ्ग है] ॥६८॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तं चकर्ष चिराच्चक्री चक्रीकृतभुजद्वयम् ।
अकुण्ठमहिमा कण्ठे कण्ठीरव इव द्विपम् ॥६९॥
निपतन्नप्यधो दैत्यः सकलोपर्यरोचत ।
कृष्णस्पर्शमणिस्पर्शादसुरोऽपि सुरोऽभवत् ॥७०॥
असौ हरिपरीरम्भरसं वदे महासुरः ।
कण्ठग्राहिणि वैकुण्ठे यदकुण्ठो ददावसून् ॥७१॥

अथ विश्वम्भराभार - सम्भार - परिभूयमानो वितीर्णप्राणो गोकुल-भूमावेव प्राणपणगृहीतमितीव वैकुण्ठाकुण्ठमहिममहानील-रत्नं कण्ठे दधदेव नभोदेशात्परिवर्त्यापतत् तृणावर्त्तो नाम महादनुजः । हरिरपि तस्मिन्दत्त प्राणेऽपि प्राणाः प्राप्ताः पुनरपि किमपि प्राप्तव्यमित्याशयेनेवादत्त - तत्कण्ठस्तदुरसि कालसर्पकिशोर इव बल्लवैर्ददृशे । तदङ्कशायी मायी शिशुरसौ महामहीधरोत्सङ्गविहारी करि कलभ इव, अभिनवजलदकदम्ब इव, दैवैरपि दूरादद्दृश्यतेव बहुकालम् ॥७२॥

अनुवाद—अकुण्ठ महिमावाले हरिने दोनों भुजाओंको गोल करके सिंह जैसे गजको पकड़ता है उसकी तरह पकड़ा ॥६९॥

अनुवाद—सबके ऊपर नीचे गिरते हुए वह दैत्य शोभित हुआ । कृष्ण-स्पर्शरूपी मणिके स्पर्शसे वह दैत्य असुर होते हुए भी सुरकी तरह प्रतीत हुआ ॥७०॥

अनुवाद—उस महाअसुरने हरिके स्पर्शके आनन्दको जाना, कण्ठ ग्रहण करनेवाले वैकुण्ठमें अकुण्ठित होकर प्राण त्यागकर दिये ॥७१॥

अनुवाद इसके पश्चात् विश्वम्भरके आभारके बोझसे दुःखी होते हुए गोकुल भूमिमें प्राण देकर प्राणोंकी बाजी लगाकर मानों वैकुण्ठकी अकुण्ठ महिमा-वाले महारत्नको कण्ठमें धारण करते हुए ही आकाशसे उलटकर वह तृणावर्त्त नामका महादैत्य गिरा । हरि भी उसके प्राण देनेपर ही प्राण प्राप्त हुए हैं फिर भी और कुछ भी प्राप्त करना है इस आशासे मानों उसका कण्ठ न छोड़ते हुए उसके हृदयपर काल सर्पके किशोर की तरह गोप बालकों द्वारा देखे गए । उसकी गोदमें सोते हुए वह मायावी बालक महापर्वतपर विहार करनेवाले गज कलभकी तरह अथवा नये बादल समूहकी तरह देवताओंके द्वारा बहुत देरतक देखे गये ॥७२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शकटासुरवधः

अथ कदाचिदेकदा हरिजन्मर्क्षयोगजनितौत्थानिक महामहोत्सवकर्मणि शर्म्मनिकरनिरन्तरीकृत निखिलमर्मणि समुदयनिवार्यतौर्यत्रिकप्रकरे समवेतानामखिल घोषयोषाणामविरल - वर्द्धमानबहलकौतूहलकोलाहलानां समुचितरचनार्थमादृतया यशोदया विस्तारितसमस्त स्वस्त्ययनमधस्तादेव शकटस्यास्तृतशयनीये कपटनिद्रया मुद्रितार्द्धनयनमाहितगोरोचनैक तिलकं कुल तिलकं संवेश्य प्रस्थितं क्वापि ।।७३।।

अर्द्धोल्लसदवस्थाय मर्द्धोदञ्चददिनद्युति ।
वपुर्मायाशिशोरासीदर्द्धकालीश्वराकृति ।।७४।।

शकट भञ्जन

अनुवाद—इसके बाद हरिके जन्म नक्षत्र महोत्सवके समय तथा मांगलिक कृत्यों द्वारा अखिल मर्मस्थलोंके स्तब्ध हो जानेपर जनसमुदाय द्वारा वाद्यसमूह [तौर्यत्रिक—नृत्य गीत वाद्यमिदं त्रयं तोरितु महं तूर्यं मृदङ्गा मुरजादि तत्र भवं तौर्यं । त्रयोऽशाइतिनिकं, तौर्योपलक्षितं त्रिकं तौर्यत्रिकम्] बजानेसे रोक दिये जानेपर इकट्ठी हुई निरन्तर बढ़ते हुए कौतूहलसे कोलाहल करनेवाली शब्द करती हुई सब स्त्रियोंके समुचित सत्कार द्वारा आदर प्राप्तकी हुई यशोदाके द्वारा सब स्वस्ति वाचन सामग्री एकत्र जब करदी गई उस समय गाड़ीके नीचे बिछे हुए बिछौनेपर कपट निद्रासे आधी आँखें बन्द किए हुए, गोरोचनका तिलक लगाए हुए वंशके तिलक हरिको सुलाकर यशोदा कहीं चली गई ।।७३।।

विशेष—यह शकटके आकारवाला असुर था । 'शकट' गोपोंका पूज्य है । औत्थानिक महोत्सव–करवट लेना है । 'औत्थानिक' के पर्याय अमरकोषमें नहीं है । यह भागवतका शब्द है ।।७३।।

अनुवाद—आधेमें अपने शरीरकी अवस्था शोभित है, आधेमें दिन निकलते हुए जैसी शोभा है उस समय माया शिशु उन हरिका अर्ध नारीश्वर जैसा शरीर शोभित होता था ।।७४।।

विशेष—अर्द्ध नारीश्वरकी कल्पना द्वारा कविने अपने पांडित्यका पूर्ण परिचय दिया है । ऐसी कल्पना अन्यत्र कहीं देखनेमें नहीं आती ।।७४।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्यग्रशकटभङ्गरङ्गाविर्भूतया प्रभूतया रुषेव मनाङ् मिलदर्क-कर्कशरुचा सुचारु दृक्कोण माक्रम्योज्जागरितो मानुषकिशोरानुकृतिं वितन्वानः किञ्चित्कञ्चितदृष्टिपटुकुटिलीकृतभ्रू पुट - सृष्ट लघुजृम्भा-रम्भा-विकसदर्द्ध-वदनाम्भोजं मुहुरामोटितघटित घनालस स्फुटित-घनाघन[1]-सन्निभापघनं मृदुतरतल्पतलानल्पनिर्मज्जनाभिव्यज्यमान किंकिणोप्रमुखविभूषणांकपरम्परं मन्दं मन्दं मृदुकरचरणारविन्द-मुत्क्षिपन्नेव स्तन्यार्थी चक्रन्द नन्द नन्दनो बहुकालम् । तत्क्षणजनित बुभुक्षयोत्क्षिप्तकरचरणमाक्रन्दतो नन्दनन्दनस्य ध्वज - वज्राङ्कुशकुशेशयाङ्क[2] पदपङ्कजाभिघातेन विघटित पटुचक्र कूबराद्यवयवमुद्घाटितहाटिकादिभाजनजनितझणझणाकारपूरिताशेष-दिग्भागं त्रुटित

अनुवाद—तत्काल शकटके भंगके कारण उत्पन्न मानों अत्यन्त क्रोधके कारण थोड़ी पड़ती हुई कठोर सूर्य किरणोंसे नेत्रोंपर चोंध लगनेसे मानों सहसा जगे हुए मनुष्यके बालकके समान आकार बनाए हुए कुछ तिरछी दृष्टिसे तनिक वक्र भृकुटिके से युक्त हलक जंभाईसे आधा मुखकमल खुल जानेपर बार-बार अङ्गड़ाई लेनेपर उत्पन्न हुए अत्यन्त आलससे स्फुटित होते हुए वर्षा कालीन बादलकी तरह शरीरके अङ्ग हो जानेपर कोमल शय्यापर अति करवट बदलनेसे प्रकट होते हुए किंकिणी आदि भूषणोंके बहुतसे चिह्न प्रतीत होनेपर धीरे-धीरे कोमल हाथ-पैरोंको पटकते हुए दूधकी इच्छासे बहुत देरतक नन्द नन्दन रोते रहे। तत्काल उत्पन्न हुई भूखसे हाथ-पैर पटककर रोते हुए नन्द नन्दनके ध्वज वज्र अकुश कमल चिह्नवाले चरणोंके पटकनेसे पहिया आदि अवयवोंके टूट जानेसे सोनेके पात्रोंके टूटनेसे झन-झन शब्दसे सब दिशाओंके भर जानेपर टूटे हुए घड़ा आदिसे पैदा हुए उग्र शब्दसे नगरके सब लोगोंके कान सुन्न हो जानेपर भयङ्कर शब्दके साथ वह शकट उलटकर शीघ्र ही गिर गया ॥७५॥

विशेष—शकट गोपोंका पूज्य है उसका गिरना गोपोंने अनुचित एवं

---

(1) वर्षण शीलो वारिदश्च घनाघनः स्यात् । हन्तीति विग्रहे "हन्तेर्घत्वं चेति" पचाद्यचि, द्वित्वे, अभ्यासागमे कुले च घनाघनः ।

(2) कुशेशयः—शतपत्र कुशेशयम् [अ० को० १।१०।४०]
कुशे जलेशेते कुशेशयम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घटघटीघटाविघटनाविर्भूता - रावस्फुटितपुरपरम्परा - नरादि कर्ण-बाढं निपतितमचिरेण परिवृत्य शकटेन[1] ॥७५॥

आक्रन्दितमिवाकर्ण्य कर्णाय तद्दृशो हरेः ।
अनसा[2] पतितं व्यग्रमनसा तरसा भुवि ।७६॥
यादवेन्द्रपदस्पर्शादवसायित चेतसा ।
अनसा न नसा नूनमशायि तरसा भुवि ॥७७॥
शिशुभूय परं ब्रह्म पुनर्दुग्धाय रोदिति ।
समुत्पतितमित्येव चमत्कारैरिवानसा ॥७८॥
हरेः परमनोभङ्गैर्मनोभङ्गः परस्य च ।
कियद्दिनं पदाम्भोजक्षिप्तानस्त्वेन भण्यते ॥७९॥

अपशकुन कारक माना । शकट भंगकी शान्ति भी की गई पर गोपोंका गोकुल छूट गया ॥७५॥

अनुवाद—कान तक फैली हुई बड़ी-बड़ी आँखोंवाले हरिके क्रन्दनको सुनकर मानों उस समय बड़े वेगसे पृथ्वीपर दुःखी मन होकर वह शकट गिर गया ॥७६॥

अनुवाद--हरिके चरण स्पर्शसे शून्य चित्तवाला वह शकट बड़े वेगसे मानों पृथ्वीपर क्या नाकके सहारे उलटा होकर नहीं गिरा ? (अर्थात् गिरा) ॥७७

विशेष--नासा=नासिका. (नासिकाको नस आदेश हो जाता है) ॥७७

अनुवाद--परब्रह्म बालक होकर दूधके लिए रोरहा है इसी चमत्कारसे मानों वह शकट पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥७८॥

विशेष--"एतेचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" अर्थात् अन्य अवतार कला हैं और श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं वे पूर्ण ब्रह्म हैं । भा. १।३।२८

अनुवाद--इस प्रकार हरिके द्वारा शकट भंग किये जानेके कारण दूसरोंका मन टूट गया और कुछ दिन तक हरिको पैरसे शकट तोड़नेवाला लोग कहते रहे ॥७९॥

विशेष—भगवान्‌की विपत्तिको देखकर स्नेही व्यक्तियोंका मन दुःखित होना ही टूटना है अथवा शकट भंगको अपशकुन मानकर भावी विपत्तिसे मन टूट गया ॥७९॥

---

(1) शकटासुरकथा भा० १० स्कं० ७ अध्याये ।
(2) अनसा=शकटेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता क्षुधा बलवती सविधे न माता ।
तातादिकं च न च कञ्चिदथालुलोचे ।
चक्रन्द मन्दमशृणोन्न च कश्चनेति
बालः क्रुधा शकटमेव पदा बभञ्ज ॥८०॥

विश्वरूपदर्शनम्

क्वचिदपि समये व्रजेन्द्रसुन्दरीत्रिभुवनसौन्दर्यपर्याप्त्यधिकरणमनादिमनन्तमखिलादिं सुतमाधायाङ्के निरातंकेन मनसा भृशादशालिनी स्तन्यपरिपानकृतावधानमुपलालयन्ती वप्रेति[1], पितरिति, जनकेति, तातेति, धनजनसकलसम्पदिति, विपदनयनधुरन्धरेति, बान्धवेति, जीवेति, जीवनसुखेति, सुखनिधानेति, गुणनिध इति, वत्सेति, चन्द्रवदनेति, नन्दनेति, नन्दहृदयानन्दनेति, ईश्वरेति, स्वामिन्निति, चक्षुरिति,

---

अनुवाद—उस समय भूख बहुत थी, समीपमें माता नहीं थी पितादिको तथा और किसीको भी नहीं देखा तब धीरे-धीरे रोने लगे फिर भी किसीने नहीं सुना तब बालकरूप हरिने क्रोधमें आकर पैरसे शकटको तोड़ दिया ॥८०॥

विशेष—भागवतमें दूध पीनेकी चर्चा नहीं है रोनेके साथ शकट फेंकना है 'रूदताने नपादेन क्षिप्तमेतन्नसंशयः ।" १।७।८ ॥८०॥

विश्वरूपदर्शन

[शकट--तृणावर्त्त और विश्वरूप भागवतके दशम स्कन्धके सप्तम-अध्याय में हैं]

अनुवाद—किसी समय ब्रजेन्द्रसुन्दरी यशोदा त्रिलोकीको अपने सौन्दर्यसे भरनेवाले अनादि अनन्त सबके आदि कारण पुत्रको गोदमें लेकर निर्भीक मनसे प्रसन्न होती हुई दूध पीकर सावधान हुए को खिलाती हुई हे वपु ! [वप्र=केदार, खाई, उप्यतेइतिरनिवप्रम । मेदिनी कोषमें तात अर्थमें इसका प्रयोग है परन्तु यहाँ 'तात' शब्द पृथक् स्पष्ट है] हे पितः ! हे जनक ! हे तात ! हे धन जन सकल सम्पत् ! हे दुःखमें श्रेष्ठ सहायक ! हे बान्धव ! हे जीव ! हे जीवन सुख ! हे सुखनिधान ! हे गुणनिधे ! हे वत्स ! हे चन्द्रवदन ! हे नन्दन ! हे नन्द हृदयानन्दन ! हे ईश्वर ! हे स्वामिन् ! हे चक्षु ! हे अन्धेकी लकड़ी ! हे मन ! हे आत्मन् ! सो जाओ इस प्रकार मधुके समान अत्यन्त मधुर वाणोसे कोमल करकमलके स्पर्शसे

---

(1) 'वप्रस्तातेपुमान्' इति मेदिनी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धलगुडेति, मन इत्यात्मन्निति, निन्द्रां याहीति, मधुमाधुरीधुरीणया वाचा करकोमलकमलाभिमर्शणेन जानुद्वयविधूननेन शनैः शनैर्मुद्रिताद्धं नयनपद्मं निद्रामनुभवतो व्यात्ताननमुत्तानशायिनः शिशोराननं मुदितमुदश्रुमेदुरसुखमीक्षितुमारेभे ॥८१॥

तत्रान्तरे पुनरेकाकिनीमेव जननीमवलोक्य त्रैलोक्यवैभवमात्मकुक्षिनिक्षिप्तमघटनघटना पटीयसीं प्रपञ्च्य तामसीं तामसीममायामातिनिद्रानुकूलां मातुर्वचनालीमिव सफलीकुर्वन्सर्वं तदवस्थ एव मात्रे[1] दर्शयामास ॥८२॥

सापि क्वचिदिन्द्रं क्वचिदिन्दुं क्व च सिन्धुं क्व च बन्धुं क्वचिदपि विन्ध्यमन्दरमेरुकैलासमलयमुखावनीधरं कुत्रापि सुरनरकिन्नर सिद्धविद्याधर यक्षरक्षो नक्षत्र ग्रहचक्रं किमपरमखिलं जगदेव वितस्तिमात्र विस्तारभाजो बालस्य गर्भैकदेशे विवर्त्तमानमालक्ष्य किमिदमिति सम्भ्रमाच्चक्षुषो पिदधे निजमोहमेव मेने यशोदा ॥८३॥

दोनों घुटनोंके हिलानेसे धीरे-धीरे आधे नेत्रकमल बन्द करते हुए चित्त लेटे ऊपरको मुख करके सोते हुए बालकके मुखको निकले हुए प्रसन्नताके अश्रुकणोंसे सुन्दर मुख करके देखने लगी ॥८१॥

अनुवाद—इसी अवसरपर अकेली माताको देखकर अघटित घटनामें चतुर अपनी तामसी मायाका आश्रय लेकर निद्राके अवसरपर ऊपर कही हुई अपनी माताकी वचनावलीको सफल करते हुए उसी अवस्थामें रहकर ही अपनी कुक्षिमें स्थित तीनों लोकोंके वैभवको हरिने दिखाया ॥८२॥

विशेष—भागवतमें श्रीकृष्णके दुग्धपान करनेके उपरान्त जंभाई लेते समय विश्वरूप दर्शन है। (भा० १०।७।३५) ॥८२॥

अनुवाद—माता यशोदाने कहीं इन्द्र [भागवतमें इन्द्रका उल्लेख नहीं है] को कहीं चन्द्रमाको कहीं समुद्रको कहीं भाई [भाईका उल्लेख भी भागवतमें नहीं है] को कहीं विन्ध्य मन्दर मेरु कैलाश मलयादि पर्वतोंको कहीं सुरनर किन्नर सिद्ध विद्याधर यक्ष राक्षस नक्षत्र ग्रह चक्रको अधिक क्या सारे संसारको वितस्ति मात्र बालकके गर्भके एक भागमें बदलते हुए देखकर यह क्या है इस भ्रान्तिसे आँखें बन्दकर लीं और यशोदाने अपना मोह ही समझा ॥८३॥

---

(1) विश्वरूप दर्शन कथा भा० १० स्क० ७ अध्याये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत एव केचन पुनरिदमादिकैतव परम्पराः कैटभारातेरवधायैव-मभिदधते सुधियः ॥८४॥

[1]क्रोडारूढो निपीय स्तनरसमलसीभूय निद्रामुपेत्य
व्यातेने मातृमोहं कपटघटनया यद्भवान् कैटभारे ।
आजन्माजिह्मधर्मस्तुतिमुखरमुखब्रह्मणो मूढभावं
तद्गोपीनां च तादृक्त्वयि पुनरियता योगिनः सावधानाः[2] ॥८५॥
अतल्पे तल्पे वा स्वपिति न विकल्पं वितनुते
मृदं माध्वीकं वा ग्रसति रसभेदं न मनुते ।
अमित्रं मित्रं वा स्पृशतु जनमात्रं मदयते
शिशोस्तत्वज्ञानादधिकसुखदा नाम शिशुता[3] ॥८६॥

विशेष—खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दु वह्निश्वसनाम्बुधींश्च । द्वीपान् नगांस्तद् दुहितुर्वनानि भूतानि यानि स्थिर जङ्गमानि ॥ भा० १०।७।३६॥

अनुवाद--इसीलिये इस प्रकारकी हरिकी कैतव परम्पराको देखकर कुछ विद्वान् ऐसा कहते हैं ॥८४॥

अनुवाद—गोदमें बैठकर माताका दूध पीकर आलसमें आकर और फिर निद्राका अनुभव करके हे कैटभारे ! आपने इस कपट चातुरीमे माताको मोहितकर लिया साथ ही जन्मसे लेकर सरल धर्म और स्तुतिमें मुखर मुखवाले ब्रह्माका मूढभाव तथा गोपियोंका विचित्र भाव देखकर आपके विषयमें योगी बड़े सावधान हैं ॥८५॥

अनुवाद—आप कभी शय्यापर कभी शय्या रहित सोते हैं कभी ध्यान नहीं करते, कभी मिट्टीका, कभी मधुका भोजन होता है । किसीमें रसका भेद प्रतीत नहीं होता चाहे मित्र या उदासीन कोई भी स्पर्श करे प्रत्येक मनुष्य प्रसन्न हो जाता है । शिशुके इस तत्त्वज्ञानके भावसे शैशवकाल बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है ॥८६॥

विशेष—बालकका न कोई मित्र होता है न शत्रु । बालकको मिट्टी और मधुके रसमें कोई भेद नहीं दिखलाई पड़ता ॥८६॥

---

(1) क्रुडयते इति क्रोडं, 'क्रोडं भुजान्तरम्' । हैमकोषकारने इसका अर्थ गोद भी किया है । २।६।७७.
(2) स्रग्धरा छन्दः । (3) शिखरिणी छन्द ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बालक्रीडा

क्षणं जनन्या जनकस्य च क्षणं,
कृतक्षणं वक्षसि निर्ममज्ज सः ।
सघोष हासस्फुरदद्विजाननो,
ममज्जतुस्तौ सुखतोयधौ पुनः[1] ॥८७॥

हुताश मत्रासमधत्त पाणिना,
भुजङ्गमादत्त स रङ्गमानसः ।
निवार्यमाणोऽपि जनैः कृतेक्षणैर्न,
वीरता शैशवसाम्य मञ्चति ॥८८॥

रजो विभूषा परिधा दिगम्बरं,
धरैव शय्या हसितं च भाषितम् ।
उपेतमात्रस्य सुखार्पणं क्रिया,
मुरद्विषाकारि शिशुत्त्व संपदि ॥८९॥

हरिदम्बरो वदनवादनप्रियो,
गणपालकार्भगिरिजातकौतुकः ।

बाल क्रीड़ा

अनुवाद--क्षणभरमें माताके और क्षणभरमें पिताके वक्षस्थलपर बड़े आनन्दके साथ हरि बैठते थे । घोषोंकी हंसीके साथ दाँत और मुख बन्द किये हंसते नन्द यशोदा दोनों सुखके समुद्रमें तैरने लगते थे ॥८ ॥

अनुवाद—दृष्टि डालते हुए लोगोंके द्वारा रोके जाते हुए भी कभी हाथ-पर अग्निको रखते थे कभी प्रसन्न होकर साँपको पकड़ते हैं । वीरता बालकपनकी बराबरी नहीं कर सकती । ८८॥

विशेष—सर्पके प्रदर्शन कर्त्ता सर्पका खेल दिखाते तो नन्दनन्दन उसे पकड़ लेते, अग्निका स्पर्शकर लेते ॥८८॥

अनुवाद -भूषण केवल धूलिका, पहिनावेमें केवल दिगम्बर शय्या केवल पृथ्वो, हंसना ही बोलना आनेवालेको सुख देना शैशव-कालमें भगवान्का यही कार्य था ।८९॥

विशेष—वे धूलि-धूसरित रहते, दिगम्बर खेलते पृथ्वीपर लेट जाते, हंसनेके द्वारा ही मानों बोलते और अपनी चेष्टाओंसे सबको सुख देते थे ॥८९॥

अनुवाद – दिगम्बर [हरित्=दिशा—दिशस्तु ककुभःकाष्ठा आशाश्च

---

(1) वंशस्थ छन्द ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरिरर्भकोऽपि गृहिणां महेश्वरो,
बलभूति दर्शितशरीरसौभगः ॥९०॥
अलकाकुलालिकमनोऽभिनन्दनः,
शिशुराननन्द भुविनन्दनन्दनः ।
उरसा प्रयाणरभसप्रयास भाग्
घनसारपङ्कपरिसंकुलाकृतिः ॥९१॥
कृतचूङ् कृतिगृहणतोऽभिधानं,
पितुरग्राहितहस्तयोः प्रयातुम् ।
चलदङ्घ्रितमोघ झम्पमीहे.
कति कैशोरवशोनृकेसरीह ॥९२॥
भुविलुठच्चरणं करजानुना,
क्वणित घर्घरनूपुर किङ्किणि ।

हरितश्वताः] अर्थात् वस्त्र रहित मुखका बाजा बजानेवाले ये पर्वतपर गणेशके तरह व्रजमें कौतुक करनेवाले, गृहस्थियोंके स्वामी श्रीहरि बलके वैभवसे शरीरके सौन्दर्यको प्रकट करते थे ॥९०॥

विशेष—बालकका मुखसे शब्द करना ही बाजा बजाना होता है । ९०॥

अनुवाद–केशपाश [अलका कुबेर पुर्यामास्त्रियां चूर्णकुन्तले (मोहिनीको.) अलति अल्यतेवेति अलकः] के द्वारा सुन्दर प्रतीत होनेवाले सुन्दर लगनेवाले बालकरूप नन्दनन्दन हरि सबको प्रसन्न करते थे । वक्षस्थलसे चलनेमें वेगसे प्रयास करनेवाले घने कपूरसे शरीरको सुन्दर बनाये हुए थे । ९१॥

विशेष—घनसारः=कपूर [घनोदृढः सारोऽस्य=घनस्य सार इव वा घनघारः ॥९१॥

अनुवाद—पिताके नाम लेनेपर चुङ्कारकर देते थे, चलनेको पिताके हाथ भी नहीं पकड़ते थे, किशोर अवस्थामें नृसिंह भगवान् चलते हुए अपने पैरों-को हिलाते जाते थे ॥९२॥

विशेष—झम्पा शब्द अमरकोषमें नहीं है । "अरबराय कर पानि गहावत डगमगात धरनी पैंया" सूरकी बाललीलासे साम्य है ॥९२॥

अनुवाद—पृथ्वीपर चरणोंको घसीटते हुए हाथों और घुटनोंसे नुपुर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स जननी जनकोत्सवमाव,
हंश्चलितु मैच्छदगच्छद वत्सरः ॥९३॥
स्खलन्नपि पुनः पुनः परमयत्नतो जानुनी
निधाय धरणीतले करतले च कौतूहली।
हसन्मुखमुरस्थलीतरलतारहारं हरि-
र्व्रजन्नहरदन्तरादहरहर्व्रजानां मनः ॥९४॥
यन्नामापारसंसारपारावार मतीतरत्।
शङ्कते स करालंबी तरीतुं पितुरङ्गणम् ॥९५॥
आश्वासमिव कुर्वाणो मह्या एव यदूद्वहः।
महीपृष्टेऽर्पयत्पाणी जानुभ्यामनुसंचरन् ॥९६॥

और किङ्किणी घर्घर करके बजाते हुए माता और पिताको प्रसन्न करते हुए चलने की इच्छा करते थे और छोटी अवस्थामें वैसे ही चलते थे। ["जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्नतुः" भा. १०।८।२६] ॥९३॥

विशेष—श्रीकृष्णके आभूषणोंकी ध्वनिसे माता-पिता प्रसन्न होते हैं ॥

अनुवाद—बार-बार गिरते हुए बड़े यत्नसे पैरोंको पृथ्वीपर रखकर हाथोंसे कौतूहल करते हुए मुखमे हंसते हुए हृदयपर चञ्चल हार रखते हुए चलते हुए बीच-बीचमें व्रजवासियोंके मनको प्रसन्न करते थे ॥९४॥

विशेष—श्रीकृष्ण एक प्रकारसे बालजातिके प्रतिनिधि हैं उनकी क्रीडासे यावन्मात्र शिशुओंके अभिभावकोंको सुख मिलता है। अपने चांचल्यके कारण वे व्रजवासियोंका मन वशमें कर लेते हैं ॥९४॥

अनुवाद—जिनका नाम अपार संसाररूपी समुद्रसे पारकर देता है, वह हरि हाथोंका सहारा लगाते हुए पिताके आंगनको पार करनेमें शङ्का करते हैं ॥

विशेष—यह भाव कविकी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अगाध श्रद्धाका परिचायक है ॥९५॥

अनुवाद—यदुकुल भूषण हरि पृथ्वीको आश्वासन-सा देते हुए घुटनोंसे सरकते हुए महीतलपर हाथ रखते थे ॥९६॥

विशेष—पृथ्वीने गौका रूप धारणकर प्रार्थनाकी थी कि मेरा बोझ कम करें मानों हस्तकमलसे धैर्य बंधा रहे हैं कि मैं आगया हूँ ॥९६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशोदाया दधिमन्थनम्

चलत्कनक मेखला कलकलाभिरामाक्वण-
त्कराग्रमणिकङ्कणा तरलहेमहारा हृदि ।
उदीरितहरिक्रियागुणरुचेर्यशोदा स्वयं
ममन्थ दधि मन्थरं, मुरजिदङ्गति[1] प्राङ्गणे ॥९७॥

श्रोणीकूले दुकूलं तदुपरि रसनां कण्ठमालां च कण्ठे
धम्मिल्ले मल्लिकायाः स्रजमुरसिजयोः कञ्चुलीं चादधाना ।
शिञ्जन्मञ्जीरमञ्चन्मणिवलयकरं सा दधि श्रद्दधाना
मन्दं मन्दं ममन्थ व्रजपतिनगरश्रीर्यशोदा यशोदा[2] ॥९८॥

वारं वारमुपैति मन्थनविधौ मन्थान्तिके माधवो
मातः कर्षति चोलमञ्चति हसन्मन्थानमालम्बते ।

यशोदाका दधि मन्थन

अनुवाद—स्वर्ण मेखलाके हिलते हुए कल-कल शब्दसे लगनेवाली हाथों में बोलते हुए मणिके कङ्कणोंवाली हृदयपर चंचल स्वर्ण हार पहने हुए हरिकी गुणवाली क्रियाओंको रुचिसे कहती हुई यशोदा स्वयं धीरे-धीरे दधि मन्थन करती थीं और हरि आंगनमें चल-फिर रहे थे ॥९७॥

अनुवाद—कटि भागपर साड़ी [दुकूलका अर्थ दुपट्टा भी है पर यहाँ साड़ी अर्थ ही समीचीन है साड़ीपर कमरमें करधनी पहनी जाती है—भागवतमें भी ऐसा वर्णन आया है—"क्षौमंवासः पृथुकाटितटे विभ्रती सूत्र नद्धां ।" भागवत १०।९।३] उसके ऊपर तगड़ी कण्ठमें कण्ठमाला केशोंमें मल्लिकाकी माला हृदय-पर कञ्चुकी पहिने हुए घुंघरू धीरे-धीरे बजते हुए मणि कङ्कण हाथोंमें पहने हुए बड़ी श्रद्ध करती हुई धीरे-धीरे यशस्विनी गोकुल नगरीको शोभारूप यशोदा दधि-मन्थनकर रही थी ॥९८॥

विशेष—माताओंका स्वभाव ही है कि वे अपने प्रिय पुत्रका अहर्निश चिन्तन करती हैं फलतः यशोदा दधि-मन्थनके समय हरिकी लीलाओंको भी सुस्वर कण्ठसे गारहीं हैं ॥९८॥

अनुवाद—यशोदाके मन्थन करते हुए बार-बार माधव मथानोके पास

---

(1) अङ्गति=गच्छति । अगिधातुर्गत्यर्थकः ।
(2) स्रग्धराच्छन्दः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तन्यं प्रार्थयते पिबत्यपि करैर्हैयंगवीनं दधद्
भुङ्क्ते चेति निरीक्ष्य नन्दगृहिणी मग्ना मुदम्भोनिधौ[1] ॥९९॥
कराभ्यां जानुभ्यामुपचितकिणाभ्यां लघुचल-
न्सपङ्कालङ्कारो हरिरलि कलम्बालक-कुलः ।
जनन्या नानेति स्तनित जनितानन्दलहरी
परीवाह प्रायः स्मितरुचि ममज्जोरसि मुहुः[2] ॥१००॥

दामोदर लीला

एकदा यदुमणिः क्षुधातुरस्स्तन्यमेव जननीमयाचत ।
सापि चारु परिचुम्ब्य तन्मुखं दातुमारभत दुग्धमात्मनः ॥१०१॥

आते हैं, हंसते हुए माताकी चोलीको खींचते हैं और मथानी पकड़ लेते हैं, दूध माँगते हैं और पीते हैं। माखन लेते हैं और खाते हैं यह देखकर नन्द पत्नी यशोदा आनन्द समुद्रमें मग्न हो जाती हैं ॥९९॥

विशेष--बालककी स्वाभाविक क्रियाका निरूपण है ॥९९॥

अनुवाद—हाथोंसे किणयुक्त घुटनोंसे धीरे-धीरे चलते हुए कीचड़ एवं अलङ्कारोंसे युक्त भालपर लम्बे बालोंसे शोभित माताके न न कहते हुए मन्दहास-पूर्वक बोलीके आनन्द लहरीसे मग्न होकर हृदयसे आकर लग गया ॥१००॥

विशेष—घुटने एवं हथेली धरतीपर चलनेसे कुछ कठोर है उनपर घिसटनेका चिह्न बन गया है वह किण=चिह्न है ॥१००॥

दामोदर-लीला

अनुवाद—एक बार भूखसे आकुल होकर हरिने मातासे दूध माँगा, [भागवतमें भी ऐसा उल्लेख है --"तां स्तन्यकाम आसाद्य मथनन्तीं जननीं हरिः। गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥" भा० १०।९।४ । वह भी सुन्दर उसके मुखका चुम्बन करके अपना दूध देने लगी ॥१०१॥

विशेष—वात्सल्य रसकी तृप्ति ही प्रभुके अवतरणका उद्देश्य है गोलोक-धाममें वात्सल्य अतृप्त रहता है आपने अपना अवतार लेकर इस रसकी तृप्तिकी है फलतः आप आप्तकाम होते हुए भी, माँकी प्रसन्नता हेतु स्तन्य माँग रहे हैं ॥

---

(1) शार्दूल विक्रीडितच्छन्दः ।
(2) शिखरिणी छन्दः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोरसे मयि रसा रसायने बल्लवीस्तनरसस्तु पीयते ।
क्षीरसिन्धुपतिनेति मत्सरादुत्ससार सहसानले पयः ॥१०२॥
अर्धपीतमपहाय माधवं दुग्धरक्षणकृते दधाव सा ।
प्रार्थयन्नहह तामनुव्रजन्सोऽग्रतो दधिघटीमुदैक्षत ॥१०३॥

दधि भाण्ड भञ्जनम्

सातङ्कदृष्टि जननीपथमीक्षमाणो
द्वाभ्यां दधीनि वदने च ददत्कराभ्याम् ।
तद्गोरसस्य दहनोत्पतन व्रतानि
तानीव कैटभरिपुः सफलीचकार[1] ॥१०४॥

स खलु मनुज कैशोरमनुकुर्वाणो नानोपायेन प्रतिनवदशनांकुरार्द्धदशनबद्धमुष्टिकरकमलचपटापाटनधरणितलाभिघर्षणादिना दधि-

अनुवाद—पृथ्वीमें रसायन सदृश मुझ दूधके रहते हुए यह क्षीरसागरका स्वामी माताका दूध पी रहे हैं मानों इस दुःखसे सहसा वह दुग्ध अग्निमें गिरने लगा। १२०॥

विशेष—दुग्ध ही रसायन है अर्थात् सर्वाधिक शक्ति देनेवाला दूध हो है पर हरि मेरा तिरस्कार कर रहे हैं यह विचारकर वह अग्निमें गिरने लगा। उत्प्रेक्षा है ॥१०२॥

अनुवाद—आधा दूध पिये माधवको छोड़कर वह यशोदा दूधकी रक्षाके लिये दौड़ी, उसकी प्रार्थना करते हुए और पीछे जाते हुए हरिने आगे दहीके घड़ेको देखा ॥१०३॥

दधिभाण्ड भञ्जन

अनुवाद—बड़े ध्यान [आ+तङ्क-घञ्, कुत्वम् भीति, त्रास, पीड़ा, व्यथा आदि] से माताके मार्गको देखते हुए तथा दोनों हाथोंसे मुखमें दधि रखते हुए उस दूधके अग्निमें उस कूदनेके व्रतको कैटभारिने सफलकर दिया ॥१०४॥

विशेष—दधिको मुखमें रखनेसे उस दुग्धको कृतार्थ किया जो हरिके न पीनेके कारण अग्निमें कूदनेका व्रतकर रहा था ॥१०४॥

अनुवाद—वह हरि मानव शिशुका अनुकरण करते हुए अनेक उपायोंसे नवीन दन्तांकुरवाला अर्ध विकसित दशनसे हाथकी बँधी मुट्ठी

(1) वसन्ततिलका छन्दः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाण्डमखण्डमभिखण्ड्य निजतुण्डे किमपि निक्षिप्य दशमुण्ड खण्डन-धुरन्धरावतार समुचित परिचर्चा चण्डाधार चतुरतरु मृगानुस्मरणेन तत्किशोर मण्डलाय पुण्डरीक परिपाण्डरं खण्ड मण्डितमुपकल्पानल्प कठिनममण्डं दधिखण्डखण्डशो दत्त्वा लिप्त्वा च धरणितलमनेनाने-कधा निधाय च धावमान बलिभुजामग्रतो भयचकितमनाः प्रपलाय्य साज्यदधितुन्द बिन्दुभिः कुन्दतुन्दिल विमल मुक्ताफल परम्पराति सुन्दरकरवदनारविन्दोदरोयमलार्जुन महामहीरुहभङ्ग्यात्रमंगलमि-वाङ्गीकृत्य विजन निहितो दूरबलदण्डमण्डलीभूय तस्थौ ॥१०५॥

अथ चुल्लिकामस्तकस्थापितस्थाली मध्यस्थितदुग्धमभिरक्ष्य दधिभाण्डागारे दधिभाण्डमभिखण्डितमालक्ष्यालक्ष्य च तत्र तन्मय-तया कुण्ठितकण्ठनालमरालतरालकानिकरसंकुलालिकमाशङ्काचकित-

---

[बद्ध मुष्टि=मुक्का मारना] से चपेटा पातनसे [चपेटा पातन=थप्पड़ मारना] पृथ्वीपर घसीटनादिसे सम्पूर्ण दधि भाण्डको तोड़कर कुछ अपने मुख [तुण्ड= मुख] में रखकर रावण वधके लिये अवतीर्ण रामकी समुचित सेवामें चतुर वानरोंका स्मरण करके उन बालकोंको श्वेत कमल सदृश सुन्दर खांड़से युक्त जैसे मधुर अनेक कल्पनाओंसे शोभित दधिको थोड़ा-थोड़ा देकर कुछ पृथ्वीपर फेंककर अनेक प्रकारसे रखकर उड़ने हुए कौओंके आगे भयसे चकित मनवाले होकर भागते हुए घृतयुक्त दहीके मोटे-मोटे बिन्दुओंसे कुन्द सदृश बड़े-बड़े मोतियोंकी तरह सुन्दर मुखकमल एवं उदरवाला'हरि'यमलार्जुन महावृक्षोंके उद्धारकी यात्रा के महामङ्गलको मानो स्वीकार करके दूर पहुँचकर गोलमोल आकारं जैसा बनकर बैठ गया [वानरोंको दधि क्यों दिया यह भाव भागवतमें नहीं है कविकी पुराण पद्धतिके गहन अध्ययनका परिचायक है] ॥१०५॥

विशेष--रामावतारमें वानरोंने प्रभुकी सेवाकी थी मानों उसीके फल-स्वरूप श्रीकृष्ण वानरोंको अपने करकमलसे माखन खिला रहे हैं। भगवान् किसी के भी अच्छे कार्यका फल अवश्य प्रदान करते हैं ॥१०५॥

अनुवाद—इसके पश्चात् चूल्हेके ऊपर रक्खे हुए पतीलीके मध्यमें स्थित दुग्धकी रक्षा करके दधि भाण्डके स्थानपर दधि भाण्डको टूटा हुआ देखकर कन्ठ नालको कुण्ठित-सा किए, घुंघराले केशोंसे मस्तकको ढके हुए, आशङ्कासे दृष्टिको चकित किए हुए, दहीको शरीरपर लपेटे हुए, कुछ तो मृणालके खण्डोंको खाकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विलोकितं दधिकर्दम संमर्दीकृतविग्रहं कवलितमृणाल शकल तद् खण्ड मण्डित करिकलभमिवावलोकतेस्म सविस्मयमनाः पुण्यपरिपाकं व्रजेन्द्रकुलपुरन्ध्री[1] ॥१०६॥

अथ वल्लवी निजात्मज तत्वानभिज्ञतया चतुर्णामपि चाम्नायानामगोचरमविषयमपि योगीन्द्राणां योग निर्मलीकृत मनसा मनाराेध्यमपि त्रयाणामेव गुणानां स्वेच्छामयमजरमजन्मानमुपचित निखिल शर्म्मणमात्मनो मर्म्मणं कृतसकलनिर्माणमाकरं धाम्नां परमास्पदं महिम्नामतिभूम्नामेकाधिकरणमहर्निशमपि साम्नाभिगीतं नाम्ना कर्मणा वर्ष्मणा चानन्तं मायागुणबन्ध यन्त्रित निखिलममायाखिल बन्धुदाम्ना बद्धुं मनो दधे मूढा ॥१०७॥

तथा कुछ अखण्ड मृणालोंको शरीरपर लपेटे हुए हस्तीके शावकको तरह पुण्योंके फलसे प्राप्त होनेवाले हरिको व्रजेन्द्र कुल भूषण यशोदाने आश्चर्य युक्त मनसे देखा ॥१०६॥

विशेष—व्रजेन्द्रनन्दनके मुखमें दधि लगा हुआ है और कुछ मुखमेंसे निकलकर गिर रहा है उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए कविने दधिको मृणालखण्ड और श्रीकृष्णको हाथीका शिशु लिखा है ॥१०६॥

अनुवाद—इसके अनन्तर अपने पुत्रके तत्वसे अनभिज्ञ होनेके कारण चारों वेदोंके द्वारा नहीं जानने योग्य सभीका अविषय, योगके द्वारा निर्मल मनवाले योगीन्द्रोंके द्वारा भी आराधना नहीं करने योग्य और तीनों गुणोंके द्वारा भी समझमें न आनेवाला, स्वेच्छासे विहरण करनेवाला, अजर, अजन्मा, सब कल्याणोंको करनेवाला, अपने मर्मको जाननेवाला, सबका निर्माण करनेवाला तेजका पुञ्ज तथा महिमाका परमपूर्ण स्थान सभी अतिशयोंका एक प्रधान केन्द्र रात-दिन सामके द्वारा गाने योग्य नामसे कर्मसे अनन्त मायाके गुणोंके बन्धनमे सबको नियन्त्रित करनेवाले श्रीकृष्णको मायाके द्वारा सबको बाँधनेवाली रस्सी से ही बाँधनेकी इच्छाकी ॥१०७॥

विशेष—जिन मायाके गुणोंसे भगवान् जगत्के जीवोंको बाँधते हैं उसी मायारूपिणी रस्सीसे माँ यशोदा प्रभुको बाँधनेकी इच्छाकर रही है। वस्तुतः वह अपने पुत्रकी महिमासे अपरिचित है ॥१०७॥

---

(1) वनिता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ बन्धनाय[1] गोप्या ये ये गुणाः समानीयन्ते त एव तन्माया-गुण गरिम्णा परिभवं प्राप्नुवन्त इव लघिमानमनुभजन्तीति शतधा, सहस्रधा आनीतैरपि न्यूनैरेवा भवद्भिर्नाशक्यत बद्धुं गीर्वाण सिन्धुरः[2] कुतुकी ॥१०८॥

गुणौघाहरणं गोप्या गुणौघहरणं हरेः ।
द्वयमेव द्वयोरासीदेकदा परमद्भुतम् ॥१०९॥

इदमवसरमवकलय्य लज्जयन्निव हासयन्निव सरसवादमवादी न्नारदः प्रभवरतत्व कोविदो भक्तकौतूहली दूरस्थितोऽपि

अनुवाद—तब बाँधनेके लिए यशोदाके द्वारा जो-जो रस्सियाँ मँगाई गईं वे मायाके गुणोंकी गरिमासे सभी अपूर्ण रहीं, सब छोटी पड़ गईं। सैकड़ों तरहसे मंगाई हुई वे सब छोटी पड़ गईं और वह देवताओंमें श्रेष्ठ कौतुक करनेवाला बन्धनमें नहीं आसका ॥१०८॥

विशेष--कुतुकी-कुत+उकञ् इच्छा, रुचि, जिज्ञासा, उत्कटतादि अर्थोंमें यह शब्द आता है [सिन्धु+र, स्यन्दसे उत् संप्रसारण तथा द को ध होकर सिन्धु शब्द बनता है जो प्रवाहके कारण नदी—समुद्रवाची है। अमरकोष-में केवल-देशेनदविशेषोऽब्धौसिन्धुः" आया है किन्तु—यहाँ इसका अर्थ हाथी है जो विश्वकोषमें है। 'नदेदेशेभ दानयोः"] ॥१०८॥

अनुवाद—गुणोंके समूहको नष्ट करनेवाले हरिके लिये बहुत-सी रस्सियोंको यशोदाका लाना यह एक समयमें दोनोंकी दोनों बातें परम आश्चर्य-जनक थीं ॥१०९॥

विशेष—भगवान् त्रिगुणोंके नाशक हैं और यशोदा उन गुणों रस्सियों-को इकट्ठा करके उन्हें बाँधना चाहती हैं अतः वे बन्धनमें न आ सके ॥१०९॥

अनुवाद—इस अवसरको देखकर लज्जित करते हुएकी तरह हंसाते हुएकी तरह, हरिके तत्वको जाननेवाले भक्तोंसे कौतूहल करनेवाले दूर बैठे हुए भी सर्वान्तरयामी आनन्दघन अङ्गोंसे बादलोंको लज्जित करते हुए प्रभुके पास प्रतीत होनेवाले मीठी वाणीसे नारदजी बोले ॥११०॥

विशेष—नारदका इस अवसरपर उल्लेख भागवतमें नहीं है यह कवि-

---

(1) इयं कथा भा० १० स्कं० ९ अध्याये ।
(2) गजः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सविध इव सर्वान्तर्यामिनमानन्द - घनमपघनग्लपित - घनाघनं परितः ।।११०।।

उररीकुरु वैकुण्ठ कण्ठीरव निजं गुणम् ।
किमङ्गीकुरुषे दम्भमारम्भे गुण संपदः ।।१११।।
त्वया बद्धमिदं विश्वमनया त्वं निबध्यसे ।
सहस्वानुचितं नैव गोविन्द ! गुणबन्धनम् ।।११२।।
गुणैर्विश्वं निबध्नासि गुणैरेव निबध्यसे ।
नन्दनन्दनमाक्रन्द स्वकर्माशीहि पूरुषः ।।११३।।
प्रस्वेदैर्वालितं कचैर्विगलितं धम्मिल्लमाल्यैश्च्युतं
हारैश्च त्रुटितं बलैर्विघटितं छिन्नं च काञ्चीगुणैः ।

कल्पना है । वहाँ दो अंगुल रस्सी कम होनेका वर्णन है [द्वयंगुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्चगोपिकाः भा० १०।९ १५] ।।११०।।

अनुवाद—हे वैकुण्ठमें सिंह हाथीके समान, अपने गुणको स्वीकार करो, गुणोंके कार्यके आरम्भमें अब यह दम्भ क्यों स्वीकार किया है ।।१११।।

विशेष—अर्थात् जब आपने ही गुण बनाये तो आप अब उनसे क्यों बचना चाहते हैं [कण्ठीरव—हाथी, सिंह, स्पष्ट घोषणा अर्थमें आता है । अमरकोषमें यह प्राप्त नहीं है, यहाँ सिंह अर्थमें प्रयोग है, हाथी का प्रयोग दशकुमार चरितमें प्राप्त होता है] ।।१११।।

अनुवाद—तुमने सब विश्वको बन्धनमें डाला है यह यशोदा तुमको बाँध रहीं है । हे गोविन्द ! इस अनुचित रस्सीके बन्धनको सहन करो ।।११२।।

विशेष—भगवानूकी भक्तवश्यता है जो समस्त संसारको बन्धनमें डालकर भक्त द्वारा भी बन्धन स्वीकार करते हैं ।।११२।।

अनुवाद—तुम गुणोंसे विश्वको बांधते हो और गुणोंसे बाँधे जा रहे हो, हे नन्दनन्दन ! आक्रन्दन मत करो, अपने कर्मको पुरुष प्राप्त करता है ।।११३।।

विशेष—भगवान् सत्व, रज, और तम गुणोंसे सृष्टि करते हैं ।।११३।।

अनुवाद—पसीना आ रहा है, बाल बिगड़ गये हैं, बालोंके फूल गिर गये हैं, हार टूट गया है, बल थक गया है, कांची सूत्र टूट गये हैं थकावट आगई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रान्त्यैवोपचितं श्रियाप्यपचितं दामानुसन्धानतो
धावन्त्या हरिमातुरातुर - दशैवासीदसोमोदया ११४।।

श्रीकृष्ण बन्धनम्

अथ परमदयामयार्द्र मानसो बहुशो विलोक्य जननी व्यामोहान-पहाय गुणहान मायाप्रपञ्चं निखिल श्रुतीरपि वितथो कुर्वाणो भगवान् निर्गुणोऽपि गुण[1] बन्धनमेवोररी चक्रे ।।११५।।

करुणाम्भोनिधेरासीदहो कारुण्य कौशलम् ।
कर्म्मबन्धच्छिदे तर्वोरुरीचक्रे स्वबन्धनम् ।।११६।।
जितानेकगुणोऽप्येकगुणसन्नद्धमध्यमः ।
अशोभत स वैकुण्ठ नव कण्ठीरवो भुवि ।।११७।।

है, इस रस्सीके बन्धनसे शोभा भी समाप्त होगई, हरिके पीछे दौड़ते हुए यशोदा-की कुछ और ही दशा होगई थी ।।११४।।

विशेष—यशोदाका शरीर स्थूल है अतः उक्त दशा स्वाभाविक है ।।११४

श्रीकृष्ण बन्धन

अनुवाद—तब अत्यन्त दयालू आर्द्र मन होकर माताके व्यामोहको देख-कर, गुणवाली मायाके प्रपञ्चको छोड़कर, सब श्रुतियोंको निष्फल करते हुए निर्गुण होते हुए भगवान्ने रज्जु बन्धनको स्वीकारकर लिया ।।११५।।

विशेष—श्रुतियोंमें श्रीकृष्णको निर्गुण कहा गया है पर आज माताके प्रेमके कारण वे गुण (रस्सी) सहित हो गये ।।११५।।

अनुवाद—करुणासागर भगवान्की करुणा कैसी विचित्र है, वृक्षोंके कर्म बन्धन काटनेके लिये अपना बन्धन स्वीकारकर लिया ।।११६।।

विशेष—यह प्रभुकी असीम कृपा है जो अन्योंका बन्धन काटनेके लिये स्वयंने बन्धन स्वीकारकर लिया । दामोदर-लीलाका प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि नलकूबर मणिग्रीवका उद्धार हो । कृष्ण-बन्धन युक्त ही प्राचीन युगल वृक्षोंको उखाड़ेंगे ।।११६।।

अनुवाद—अनेक गुणोंको जीतनेवाले भी एक गुणके बन्धनमें आकर वह हरि वैकुण्ठके नव केसरीके समान पृथ्वीपर शोभित हुए ।।११७।।

विशेष—एक गुण बन्धन माताके प्रेमका ही रूप है ।।११७।

(1) रज्जुबन्धनम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वशीकरण सामग्रीं यशोदा वेद नापरः ।
ययोलूखल दामभ्यामभ्यानायि वशे हरिः ॥११८॥

यमलार्जुनोद्धारः

एतादृशि समये हरी रभस विशेष विज्ञोप्यज्ञ इव सकुतुकमात्मनो मनः प्रत्याह--

अभूत्पुरो भूतल एव कुण्ठो,
वैकुण्ठकण्ठीरव एष दाम्ना ।
मनो मनोराज्यमिदं मदीयं,
जवादिदानीमनुधाव धर्तुम् ॥११६॥

यशोदा पुनरुलूखले नटकेसरिणमभिनह्य दाम्ना महाकेसरिणमिव लूतातन्तुना, स्वयं तु भवनान्तरगाहतैकान्तं परिश्रान्ता ॥१२०॥

नासाग्रे निहितांगुली किसलयः क्वापि स्वयम्भूरभू-
ज्जम्भारिः क्व च मूढभावमभजत्संदष्ट-जिह्वाञ्चलः ।

अनुवाद--वशमें करनेकी सामग्रीको यशोदा ही जानती है, दूसरा नहीं जानता, जो उलूखलकी रस्सीसे हरिको वशमें ले आई ॥११८॥

यमलार्जुनोद्धारः

अनुवाद--इस समय हरि विशेष आवेशको जानते हुए भी ना समझकी तरह कौतुकके साथ अपने मनसे बोले--यह वैकुण्ठका सिंह रस्सीसे पृथ्वीपर सामने कुण्ठित हो गया है, हे मन ! अब तू इस मेरे मनोराज्यको वेगसे पकड़नेके लिए दौड़ ॥११६॥

विशेष--वैकुण्ठका अर्थ है विगत कुण्ठा, किन्तु माताके समक्ष आप कुण्ठित हैं ॥११६॥

अनुवाद--यशोदा फिर मकड़ीके जालेसे शेरकी तरह रस्सोसे उस नर-सिंहको उलूखलमें बाँधकर स्वयं घरके अन्दर एकान्तमें थककर बैठ गई ॥१२०॥

विशेष--मकड़ीका जाला अत्यन्त सूक्ष्म होता है उससे बन्धन तो दूर स्वयंको ही एकत्र करना कठिन है फिर उससे श्रीकृष्णका बन्धन करना तो सिंह-का ही बन्धन है ॥१२० ।

अनुवाद--नासाके अग्रभागपर अंगुली लगाकर ब्रह्मा कहीं चले गये, जिह्वाग्र भाग दाँतोंसे दबाकर इन्द्र भी कहीं मूढ़ भावको प्राप्त हो गये । ब्रह्मादि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्माद्याः क्वचिदापिरे दिगधिपा द्रागेव निद्रादशां
तस्थुर्व्योमनि के न दुःस्थितधियो लेखास्तु[1] लेखा इव ॥१२१॥
व्यापारं विजहावहर्पतिरपि व्यामोहमन्तर्वह-
न्वातो व्यस्मरदेव विस्मयवशात् स्वाभाविकीं स्वां गतिम् ।
बद्धे गाढमुलूखले मधुरिपौ तद्धैर्यमासीन्मह-
द्यद्गीर्वाणगणा न पेतुरवनावन्तश्चमत्कारतः ॥१२२॥
दामोलूखल बन्धयन्त्रितमहो रूपं परब्रह्मणः
कुर्वाणं पुरतः किमित्यभिलपन्योगं जहौ योगिराट् ।
सन्देहप्रशमाय निर्गुणमिति प्रख्यातवत्यश्चिरं
सव्रीडाश्रुतयो निगूढगतयः प्रैक्षन्त साक्षादपि ॥१२३॥

तथा दिक्पाल भी कहीं जाकर सो गये बुद्धिको भ्रान्त किये देवता भी कहीं चित्र-की तरह आकाशमें चले गये ॥१२१॥

विशेष—इस प्रभुके बन्धनको देखकर देवोंका चकित होना स्वाभाविक है ॥१२१॥

अनुवाद—सूर्य भी हृदयमें व्यामोह धारण किये अपने कार्यको छोड़ बैठा, वायुने भी विस्मयके कारण अपनी स्वाभाविक गतिको छोड़दिया । उलूखल में कृष्णके दृढ़ बाँधे जानेपर देवताके चमत्कारसे जो पृथ्वीपर नहीं गिरे यह उनका बड़ा धैर्य था ॥१२२॥

विशेष—देवोंने विचार किया कि यदि इनका बन्धन हो गया तो अब असुरोंका संहार कौन करेगा ॥१२२॥

अनुवाद—अहो ! क्या करते हुये परब्रह्मका रूप सामने उलूखलमें रस्सीके बन्धनसे जकड़ा हुआ है, यह कहते हुए योगीने योग छोड़ दिया । सन्देह शान्त करनेके लिये निगूढ गतिवाली श्रुतियोंने बहुत लज्जित होकर निर्गुण घोषितकर दिया और साक्षात् देखती रहीं ॥१२३॥

विशेष—श्रुतियाँ भी न समझ सकीं कि परब्रह्म परमात्माने यह बन्धन (गुण) क्यों स्वीकार किया है ॥१२३॥

---

(1) लेखाः=देवाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वारम्वारमुदीक्ष्य दिक्षुचकितं मातुर्भयान्नारद
व्याहारं सफलीचिकीर्षुरवनौ घर्षन्करौ जानुनी ।
मञ्जीरध्वनि किङ्किणीध्वनि मनोहारी महोदूखलं
कर्षन्दामनिबद्धमध्व विरही तर्वोरगादन्तरम् ॥१२४॥

नन्दं च नन्दगृहिणीं च शुचा निनिन्दुः
के वा न वीक्ष्य तमुदूखलदाम बद्धम् ॥
द्वौ चक्रतुः समुचितं प्रवरौ तरुणां
यद्भेजतुर्भुवि निपत्य सुचूर्णभावम् ॥१२५॥

क्षीरबिन्दुकृते बन्ध क्षीरसिन्धुपतेर्रति ।
दलत्तरुमिषाद्दो र्भ्या ताडयामास भूरिव ॥१२६॥

अनुवाद—दिशाओंमें बार-बार माताके भयसे चकित होते हुए देखकर नारदजीके कथनको सफल करनेकी इच्छावाले पृथ्वीपर हाथों व घुटनोंको घसीटते हुए घुंघरुके शब्दसे मनोहर किङ्किणीकी ध्वनिसे मनको हरनेवाले बड़े उलूखलको घसीटते हुए रस्सीसे बँधे हुए दोनों वृक्षोंके मध्यमें पहुँच गये जो अब तक वृक्षोंके मध्यभागसे दूर थे ॥१२४॥

विशेष—नारदके शापसे धनपति कुबेरके पुत्र वृक्ष-योनिमें आये थे। नारदने ही उन्हें वर दिया था कि श्रीकृष्ण तुम्हारा उद्धार करेंगे ॥१२४॥

अनुवाद--हरिको उलूखलकी रस्सीसे बन्धनमें देखकर किसने नन्द व नन्दपत्नीकी शोकसे निन्दा नहीं की ? उन दोनों वृक्षोंने तो ठीक ही किया जो पृथ्वीपर गिरकर अपनेको चूर्णकर डाला ॥१२५॥

विशेष—कविका कथन है कि श्रीकृष्णके बन्धन हो जानेपर सभीने नन्द-यशोदाकी निन्दाकी थी। वृक्षोंसे तो यह कर्म देखा ही नहीं गया फलतः वे पृथ्वीपर गिर गये ॥१२५॥

अनुवाद—क्षीरकी बिन्दुओंके लिये क्षीरसागरके स्वामीका बन्धन हुआ है इसलिये मानों टूटकर गिरे दोनों वृक्षोंके बहाने पृथ्वीने दोनों हाथोंसे छाती ताड़न किया ॥१२६॥

विशेष—क्षीर-समुद्रके स्वामीका बन्धन 'क्षीर' याञ्चाके कारण ही तो हुआ है इस दुःखसे पृथ्वीने अपने वक्षका ताडन इन युगल वृक्षरूपी हाथोंसे किया ॥१२६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[1]आकर्षन्तमुदूखलं नियमितं दाम्ना रुदन्तं पुरो
दृष्ट्वा मृष्टधृती सुदुःखितमती यद्भूरुहौ पेततुः ।
तद्वीक्ष्यैव तयोर्दयोचित शुभारम्भं स्वयंभूमुखाः
श्लाघ्याः कल्पमनल्प यानवसतीस्ताभ्यां ददुर्द्राक्सुराः ॥१२७॥

पततोरेव तयोरुर्वीरुहयोर्वज्राहतयोरिवभूमिधरयोरेकदा त्रिभुवनमपि मुखरी कुर्वाणं निर्घात ध्वनिमिव निर्घोषमाकर्ण्य कर्णं पिदधुरपि गीर्वाणाः[2] । लङ्कायामपि शङ्काकुल-चेतसो विभीषणाद्याः किमद्याकस्मिकस्मरमर्दनोद्दामाशनि कठिनधनुर्भङ्ग भाङ्कारोऽनुभूयते भूय इति वितर्कन्ति स्म । अचिरादेव भोजभूपालभूगोलं तु किमिदमिति शङ्कयेव चकम्पे शम्पेव[3] । कंसः पुनरात्मनो गणानुवृत्तिमनुसमधत्त को मृतः को मृत इति ॥१२८॥

अनुवाद—उलूखल खेंचते हुए रस्सीसे बँधे हुए सामने रोते हुएको देखकर, धैर्य छोड़कर, दुःखी होकर जो दोनों पेड़ गिरगये उन दोनोंको इस दयाके योग्य शुभकार्य देखकर ब्रह्मादि देवताओंने प्रशंसनीय अनेक वाहनादिका स्थान कल्प भरके लिये दे दिया ॥१२७॥

विशेष—यमलोंका गिर जाना देवोंको हर्षप्रद हुआ । प्रभुके प्रति ऐसी निष्ठा वस्तुतः श्लाघनीय मानी है ॥१२७॥

अनुवाद—वज्रसे ताड़ित पर्वतकी तरह गिरते हुए उन दोनों वृक्षोंका एक साथ ही तीनों लोकोंको गुञ्जित करते हुए वज्र निर्घोषकी तरह शब्दको सुनकर देवताओंने कान बन्दकर लिये तथा लङ्कामें भी शङ्कासे आकुल चित्तवाले विभीषणादि, क्या आज आकस्मिक कामदेवके मर्दनसे उद्दाम वज्रके समान कठोर धनुष भङ्गका भाँय-भाँय शब्द फिर हो रहा है ? इस प्रकार बार-बार सोचते थे । शीघ्र ही भोजराजकी भूमि, यह क्या हुआ ? इस शङ्कासे बिजलीकी तरह हिलने लगी, कंस फिर अपने सामन्तोंका ध्यान करने लगा कि कौन मरा ? कौन मरा ? ॥१२८॥

विशेष—वृक्षोंका पात भूकम्प लाया और कंस भी भयभीत हो गया ॥१२८॥

---

(1) यमलार्जुनपात कथा भा० १० स्कं १० अध्याये ।
(2) देवाः । (3) विद्युत् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूतनानिधनभूतवेदनो,
वेद नोऽपरमदेव भूपतिः ।
आर्त्तनादमभिशङ्कते कृतं,
स्वैर्गणैर्जल धरेऽपि गर्जति ॥१२९॥

चिन्तयान्तरमकारि जर्जरं,
गर्वगर्जनमयं तु नोज्जहौ ।
वागुराभिरभिरुद्धविग्रहो,
विक्रमं न हि जहाति केसरी ॥१३०॥

नन्द द्वारा कृष्ण दाममोचनम्

नन्दादयस्तु चकितमभितो निभालयन्तः किमिदमिति च व्याहरन्तोऽनुधावन्तोऽपि तावपि भूमिरुहौ तयोरन्तरे कर्षन्तमुदूखलं दाम्ना बद्ध मध्यं च समुदीक्षमाणाः परमविस्मयं भेजिरे गोपाः । नन्दः पुनश्चिरादेव जगतामपि बद्धारमपि मोचयितारमुन्मुच्याङ्के निधाय विधाय च परिरम्भमासीत्को वेद कीदृशो नाम ॥१३१॥

अनुवाद—पूतनाके निधनसे प्राणियोंकी वेदनाका स्मरण करता हुआ वह कंस राजा बादलोंके गरजनेपर भी अपने लोगोंके द्वारा किये गये आर्त्तनादकी शङ्का किया करता था ॥१२९॥

बिशेष—पूतनाके मरनेका दुःख कंसको अत्यन्त था मेघ गर्जनमें भी वह अपने लोगोंके आर्तनादकी कल्पना करता था ॥१२९।

अनुवाद—चिन्तासे अन्तर्हृदय जर्जर होगया था, परन्तु कंसने अपना गर्वसे गर्जन नहीं छोड़ा, रस्सीसे बँधनेपर भी शेर पराक्रम नहीं छोड़ता । १३०॥

विशेष—यह सूक्ति है । कंस भीतरसे कम्पित है किन्तु बाहरसे गर्जन करता रहता है ॥१३०॥

नन्दद्वारा कृष्णका दाममोचन

अनुवाद--नन्दादि गोपोंने चकित होकर सब ओर देखते हुए यह क्या हुआ, यह कहते हुए उन दोनों वृक्षोंके समीप दौड़ते हुए उन दोनों वृक्षोंके बीचमें उलूखलको खेंचते हुए तथा रस्सीसे मध्यभागमें बँधे हुए हरिको देखकर बड़ा आश्चर्य किया । फिर नन्दने शीघ्र ही संसारके बंधे हुओंको भी छुड़ानेवाले हरिको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तयोः पुनरवनीरुहयोराकस्मिक पतननिदानमन्वेषमाणा नानानुमानानि तार्किका इव तेनिरे, परं विटपिकपटाचारिणौ नन्दनन्दनापकारिणौ कंसानुचारिणाविति मेनिरे केचित् । हरिसहचारिभिराभीरकिशोरैरावेदितमेतेने पातितावेतौ चलन विश्रङ्खलो दूखलयन्त्रणेनेति । तत्त पुनरेते नानुमोदन्ते स्म तथाहि——।।१३२।।

गोपानां चिन्ता

बालोऽयं कमनीय कोमलतनुर्द्वाविव भीमाविमौ
भूमीध्राविव भूरुहौ किमनयोः कुर्वीत भङ्गानसौ ।
कः प्रत्येतु मदान्धगन्धकरिणो दुर्दान्तदन्तद्वयी
कुन्दातुन्दिलकन्दलीकिसलयस्पन्दैरवस्कन्दिता ।।१३३।।

अथ निजालिन्दे[1] नन्दः समुपगत्योपनन्दादि गोपवृन्दान्याहूय दूयमानेन चेतसा बहूपशयानुपशयचिन्तामेव सन्तेने । तेषु समीचीनप्रा-

---

खोलकर गोदमें बिठाकर और आलिङ्गन करके "कौन जाने यह क्या हुआ ? यह कहा ।।१३१।।

अनुवाद--उन दोनों वृक्षोंके अकस्मात् गिरनेके कारण ढूँढ़ते हुए तार्किकोंकी तरह लोग अनेकों अनुमान करने लगे । कपटसे वृक्षका रूप धारण करनेवाले नन्दनन्दन कृष्णका बुरा चाहनेवाले कंसके अनुचरोंको ही किन्हीं लोगोंने माना । हरिके साथ रहनेवाले आभीर किशोरोंने बताया कि हिलती हुई शृङ्खलावाले उलूखलके बन्धनसे युक्त इसी हरिने इन पेड़ोंको गिराया है, इसको इन गोपोंने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि—।।१३२।।

विशेष--कुछने माना कि इस घटनामें कंसका ही हाथ है ।।१३२।।

गोपों की चिंता

अनुवाद—कोमल सुन्दर शरीरवाला यह बालक है और यह दोनों वृक्ष बड़े भयङ्कर पर्वतकी तरह हैं, इनको यह कैसे तोड़ सकता है । इसपर कौन विश्वास करेगा कि मदसे अन्धे गजके कठोर दोनों दाँत कुन्दकी छोटी पतली कन्दलियोंके नव पल्लवके हिलनेसे टूट गये ।।१३३।।

अनुवाद—फिर नन्दद्वारके अग्रभागपर जाकर उपनन्दादि गोपवृन्दको बुलाकर दुःखी चित्तसे अनेक पूर्वापर चिन्तायें करने लगे । उनमें अच्छे अनुभवी

---

(1) प्राङ्गणे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीनाभीरमनीषिणः पप्रच्छ करणीयानि । तत्रोपनन्दो[1] भूयसामपि भूतभाविवर्तमान वृत्तान्तानामभिज्ञो विज्ञापयामास ॥१३४॥

वृन्दावनवासप्रस्तावः

अविचारित कर्माणि नहि शर्माणि तन्वते ।
अपक्वानीव भक्ष्याणि दुःखायैवोपयोगिनाम् ॥१३५॥
विचार्य्य विहितं कार्य्यमानीयापि मनीषिणः ।
विधुलेखेव भूषायै तोषायैव च धूर्जटेः[2] ॥१३६॥
सुखाधानमपि स्थानमुज्जिहानोऽग्रदूषणम् ।
अमुह्यन्तः समुज्झन्ति विषासह्यमिवौदनम् ॥१३७॥

पुराने जानकर गोपोंसे अपना कर्त्तव्य पूछा । तब उपनन्दने बहुतसे बीते हुए आने वाले तथा वर्तमान वृत्तान्तोंको जानते हुए यह कहा—॥१३४॥

विशेष—आज नन्दको यह चिन्ता हुई कि अब कैसे गोकुलमें निर्वाह होगा ? अतः परामर्शहेतु वे भाईयोंसे तथा वृद्धगोपोंसे मिले ॥१३४॥

वृन्दावन वास प्रस्तावः

अनुवाद—बिना विचारे किए हुए कार्य कभी सुख नहीं देते, बिना पका खाद्य पदार्थ, खानेवालेको दुःख ही देता है ॥१३५॥

विशेष--यह सूक्ति है । किसीने ठीक ही कहा है--"बिना विचारें जो करे सो पाछं पछिताय ।" अच्छा मत है--"सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार यत्कृतम् ।" भली-भाँति विचारकर किया हुआ कार्य कभी भी दुःखप्रद नहीं होता ॥१३५॥

अनुवाद—विचार करके किये हुये कार्य बुद्धिमान्को सुख देते हैं जैसे चन्द्रमाकी लेखा भूषणके लिये तथा शङ्करजीकी प्रसन्नताके लिये होती है ॥१३५॥

विशेष—समुद्रसे निकली चन्द्रकला शिवने धारणकी उससे वह आभूषण रूप हुई और शिवजीको शीतलतासे प्रसन्नता हुई ॥१३६॥

अनुवाद—सुख देनेवाला स्थान यदि दोषयुक्त हो तो छोड़ना हितकर है, विषयुक्त ओदनको प्रथम विचारकर छोड़ दिया जाता है ॥१३७॥

विशेष—यद्यपि ओदनसे तृप्ति होती है किन्तु यदि वह विषयुक्त हो जाता है तो उसका त्याग ही उचित है अन्यथा वह प्राणहर्ता बन जायगा ॥१३७॥

---

(1) इयं कथा भा० १० स्क० ११ अध्याये ।
(2) शिव ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षोदीयोऽपि खलु क्षेममक्षामयति ? धामचेत् ।
सुधीर्भजतिगम्भीरनीरं ह्रदमिवाण्डजः ॥१३८॥
समुदञ्चितदोषं चेद्धाम धीमान्न मुञ्चति ।
शोचते शुच्य गम्भीर नीर मीनोपमान भूः ॥१३९॥
मनीषितमगृह्णानो मनीषाभिर्मनीषिणः ।
अनैषीदेव नीचैः स्वं पदं बलिरिवापदाम् ॥१४०॥
अस्तिस्तः सन्ति विघ्नानामेको द्वौ चत्रयः क्रमात् ।
यत्र यात्रेव तद्यात्रा सा भूमिरनुभूयते ॥१४१॥
इह यद्भावि तद्भावि विना पन्था मनीषिणः ।
गरिष्ठगरल[1]ग्रासो नाशु नाशोदयाय किम् ॥१४२॥

अनुवाद—स्थान यदि थोड़ेसे भी कल्याणकी सुरक्षा करता है तो पक्षी गहरे जलवाले तालाबकी तरह बुद्धिमान् उस स्थानकी सेवा करता है ॥१३८॥

विशेष—गहरे जलवाला स्थल छोटा हो तब भी पक्षी उसको नहीं त्यागते ॥१३८॥

अनुवाद—बढ़े हुए दोषवाले स्थानको यदि बुद्धिमान् नहीं छोड़ता तो दुःख-दायी, शोचनीय, गम्भीर जलमें रहनेवाली मछलीकी तरह वह दुःख उठाता है ॥

विशष—यदि जल कम है पर स्थान विशाल है तो मीनके लिये त्याज्य है क्योंकि कम जलमें वह सरलतासे पकड़ा जा सकता है ॥१३९॥

अनुवाद—बुद्धिमान् लोग अपनी बुद्धिसे अभीष्टको न ग्रहण करते हुए आपत्तियोंमें बलि होनेकी तरह अपने आपको नीचे पदपर ले ही जाते हैं ॥१४०॥

अनुवाद—जहाँ एक अथवा दो अथवा बहुत विघ्न आते ही रहते हैं वह भूमि जाने वालोंको यात्राकी तरह प्रतीत होती है। अर्थात् वहाँ ठहरना उचित नहीं ।१४१॥

विशेष—अनेक विघ्नवाले स्थानोंमें रहना उचित नहीं होता ॥१४१॥

अनुवाद—यहाँ जो होना है वही होगा इस उक्तिको छोड़कर विद्वान्‌को मार्ग देखना चाहिये, गरिष्ठ विषका ग्रास क्या शीघ्र नाश नहीं कर देगा ? ॥१४२

विशष—"यद्भावी सुतद्भावी" जो होना है सो होगा यह विचार ॥

---

(1) विषः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बालं नन्द - समीचीन प्राचीनप्रचुरं तपः ।
पूतना चक्रवातान्नस्तरुपातानतारयत् ॥१४३॥
यत्र ते नन्दनो नन्द? तत्रानन्द तरङ्गिणी[1] ।
गोकुलं गोकुलं विद्धि गोकुलं तु न गोकुलम् ॥१४४॥
अस्ति वृन्दावनं नाम वृन्दावनधुरन्धरम् ।
नन्दनं तत्तिरोभूय गुणैस्तरुगणैरपि ॥१४५।
पशूनामसु पोषीणि दोषमोषीणि सर्वतः ।
सपुष्पाणीव शष्पाणि[2] सौमनस्यास्यदान्यहो॥१४६॥
अभिनन्दति कालिन्दी दलदिन्दीवरद्युतिः ।
उदेति जीवनं यत्र जगतामिव जीवनम् ॥१४७॥

अनुवाद—नन्दके अच्छे प्राचीन बढ़े हुए तपने पूतना तृणावर्त्तसे तथा दोनों वृक्षोंके गिरनेसे हमारे बालकको बचाया है ॥१४३॥

विशेष—"धर्मेणहन्यते व्याधिः धर्मेण हन्यते ग्रहाः ।" धर्मसे व्याधियाँ दूर होती हैं और बुरे ग्रहोंका फल भी दूर होता है ॥१४३॥

अनुवाद--हे नन्द ! तुम्हारा नन्दन हरि जहाँ है वहीं आनन्दकी गङ्गा है । जहाँ गौओंका समूह है वहीं गोकुल है यह गोकुल-गोकुल नहीं है ॥१४४॥

विशेष—आनन्द तो श्रीकृष्णके साथ ही है और गोकुल तो वहीं है जहाँ गाय हैं ॥१४४॥

अनुवाद--वृन्दाके वनका धुरन्धर एक वृन्दावन नामका स्थान है, उसके गुणोंसे तथा वृक्ष समूहसे छिपकर वहाँ 'नन्दनवन' निवास करता हैं ॥१४५॥

विशेष—नन्दनवन देवोंका है और वृन्दाके वनोंमें श्रेष्ठ वृन्दावन है ॥

अनुवाद—पशुओंके प्राणोंका पोषण करनेवाली सब आरसे दोषोंका नाश करनेवाली, पुष्पोंसे युक्तकी तरह अहो ! कैसी सुन्दर अच्छी घास है ॥१४६॥

विशेष--घाससे पशुओंका पोषण तो होता ही है किन्तु वृन्दावनकी घासकी विशेषता यह है कि वह दोषोंको दूर करती है । १४६॥

अनुवाद—खिले हुए नीलकमलकी कान्तिवाली श्रीयमुना अभिनन्दन कर रही है, संसारको जीवन प्रदान करनेवाला कैसा सुन्दर जल है ॥१४७॥

विशेष--श्रीयमुनाका जल दिव्य औषधिके समान माना गया है ॥१४७

---

(1) नदी ।
(2) शष्पं बालतृणं घासः । अ० को० २।४।१६७.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुपस्थित प्राणिमात्राणामातपत्राणश्रमापनोदनमृदु पवनविधूयमानतामरसाभिराम नव किसलय ग्रामचामरोच्चयोद्वीजनकुसुमचय विभूषणाय भूषण मधुमिष्टप्रेष्ठभूयिष्ठं फललक्षभक्षवितरणोपदेशगुरव इव गुरवः, शिखिवाहना अपि न विशाखाः, विशाखामृगशिरोभिरामा अपि न विशाखामृग शिरोभिरामा ज्योतिर्मय मण्डलाः, ज्योतिर्मयमण्डलावलितमूर्द्धानोऽपि न मेरवो, न मेरवोऽपि सरल-तमाल-ताल हिन्ताल-शाल-बकुलविशाल-रसाल-पनश-कुटज पटु-पाटलि पटल साधु-पूग प्रमुखाः, साधूपूगप्रमुखा अपि नारीकेलि-ललिताः, ललिता अपि न महेश्वरमहिष्यो, महिष्योपेशाभितपार्श्वा अपि न महिषाः, महिषादकुलमण्डना अपि न गण्डभागाः, पुन्नागानां निवहमनोहरा अपि न नागभूमयो, भूमयोगकरुचिरा अपि नाकाशा, नाकाशा अपि चारुजः,

---

अनुवाद—आनेवाले प्रत्येक प्राणि मात्रकी आतपसे रक्षा, श्रमका दूर करना मन्द पवनसे हिलनेवाले कमलोंके सुन्दर नव किसलय समूहके द्वारा अनेक चंवरोंके सदृश हिलनेवाले पुष्पोंके भूषित करनेके लिये सुन्दर मधु सदृश मधुर प्रिय और अधिक फलरूप भोजन वितरणके उपदेशमें गुरुकी तरह बड़े-बड़े शिखावाले मयूरोंके वाहन होते हुए भी शाखा रहित नहीं अथवा स्वामी कार्त्तिक होते हुए भी विशाख स्कन्द नहीं "विशाख शिखि वाहनः इत्यमरः" विरोधको शाखाशून्य नहीं इस अर्थसे परिहार, विशिष्ट शाखामृग शिर नक्षत्रके समान सुन्दर नहीं किन्तु ज्योतिर्मय प्रकाशित मण्डलवाले, ज्योतिर्मय मण्डलसे शोभित मूर्धावाले होते हुए भी मेरु-पर्वत नहीं, मेरुपर्वत नहीं होते-होते हुए भी सरल तमाल-ताल हिन्ताल शाल वकुल विशाल आम्र पनस कुटज पटु-पाटलि आदि अच्छे-अच्छे वृक्ष समूह साधु समूह होते हुए भी स्त्रियोंकी क्रीड़ासे सुन्दर अथवा नारिकेल नारियलोंसे भूषित ललित होते हुए भी ऐश्वर्य सम्पन्ना स्त्रियाँ नहीं, महर्षियोंसे समीप भाग शोभित होते हुए भी स्वयं गधा या भैंसा आदि नहीं, महिषादों अथवा भीलों आदिके कुलसे शोभित हुए भी गज कपोलादि नहीं, पुन्नाग नाग केसर अथवा नर नागके समूहसे शोभित होते हुए भी नागोंकी सर्पोंकी भूमि नहीं, बहुतसे योग होनेके कारण रुचिर होते हुए भी सब ओर दीप्त होनेवाले नहीं थे, दीप्तिशून्य होते हुए भी विकार रहित थे, सुन्दर होते हुए भी शब्द करनेपर सब-सब महामुनि इकट्ठे हो जाते थे, प्रेमसे पाले जानेपर भी नवीन बालक नहीं थे, नवीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रारवोऽपि चारवोपसन्निहितमहामुनयो, नयोपलालिता अपि न नवप्रजाः, नवप्रजातप्रवाला अपि निःशौचदोषा, दोषाकर किरण जटाला, जटालाञ्छिता अपि न स्थाणवो, नास्थाणवोऽपि यत्र विविधमहीरुहाः प्रदीप्यन्ते ।।१४८।।

ये खलु पत्रिणोऽपि न पत्रिणो, नापत्रिणोऽपि अविपल्लवा अपि सविपल्लवाः सपल्लवाश्च, फलिनोऽपि न फलिनः, लतोपनद्धा अपि नलतोपनद्धाः, विपुलस्कन्ध बन्धुरा अपि न विपुल स्कन्धबन्धुराः, चीरैकमात्र परिच्छदा अपि न चीरैकमात्र परिच्छदाः रामादयः, उल्लसत्करवीरा अपि नोल्लसत्करवीराः वाहिन्यः, अर्जुनसहिता अपि नार्जुन सहिताः युधिष्ठिरादयः, सुमनः सुरभीकृतवासा अपि न सुमनः सुरभीकृतवासा स्वर्भूमयः, अन्तरुल्लसिततमसोऽपिनान्तरुल्लसिततमसो निरुपधि परोपकार कर्माणः, साधव इव भुवमावर्त्य वर्त्तन्ते ।।१४९।।

अनेक बालक पैदा करनेवाले होनेपर भी अथवा नवीन निकले हैं पत्र पल्लव जिनके ऐसे होनेपर भी अपवित्रताके दोषसे शून्य थे, चन्द्रकिरणोंसे जटायुक्त प्रतीत होनेवाले जटाधारी होते हुए भी शिवजी नहीं थे, कटे हुए वक्ष नहीं होनेपर भी अनेक प्रकारसे वृक्ष वहाँ शोभित हो रहे हैं ।।१४८।

विशेष—विरोधाभास अलङ्कारका सुन्दर चित्रण है ।।१४८।।

अनुवाद—जो पत्तेवाले होते हुए भी पक्षी आदि नहीं, अपत्री आदि नहीं होते हुए भी तथा विपत्तिके अंशसे भी शून्य होते हुए भी विशिष्ट पल्लव सहित हैं और पल्लव नवीन कोमल पत्रोंवाले हैं फलवान होते हुए भी फल नहीं थे अथवा किसी यागादिके फल विशेषसे प्राप्त नहीं हैं . लताओंके उपबद्ध होते हुए भी तृणरूप नलोंसे नलपना नलतासे भी उपबद्ध हैं, बड़ी-बड़ी शाखाओं-से घने होते हुए भी शरीरसे बड़े नहीं थे । वल्कल ही एकमात्र जिनको आच्छादित करते हैं ऐसे होनेपर भी वल्कलमात्र पहने हुए रामादि नहीं हैं, शोभित हैं करवीर कन्नेलके पुष्प वृक्ष जहाँ ऐसे होते हुए भी शोभित हाथोंवाले वीरयुक्त सेनायें नहीं हैं । अर्जुन वृक्षादि होते हुए भी सुन्दर कामधेनुके निवासवाली स्वर्गकी भूमि नहीं है, अन्दर मध्यमें घने पत्तोंके कारण अन्धकार होते हुए भी मध्यमें राहुसे रहित हैं । बिना छलके परोपकार करनेवाले सज्जनोंकी तरह भूमिको घेरे हुए हैं ।।१४९।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गोवर्धनवर्णनम्

तेषामनतिदूर एव त्रिभुवनमोदवर्धनो गोवर्धनतपोगोवर्द्धनो नाम महागिरिर्जयति ॥१५०॥

यश्च श्रीवृन्दावनाभिधान सकल मेदिनी मूर्धानमलंकुर्वाणोऽप्यलंकुर्वाणो गुरुगरिमगभीर धीर हेमोर्वीधर सौभगं सुभगसितसितेतरारुणादिनानामणि रमणीयधाम धोरणी मधुरिमकोटीकोटीर मण्डल इव, उपरि रोदसोसीमानमनुशीलयन्निव, द्राघिमाणमवगाहमानो नन्दनवनामन्दमन्दारादिहासो महीरुहवृन्दानि सन्दोहैर्निजशिखरमहीरुहाणामीर्ष्ययेव संघट्टयन्, संघट्टयन्नपि हिमकरमिहिरहयानामवलम्बनपरोऽपि वहति शिरः परीणाहम् ॥१५१॥

यं च खलु अचरमशिखरिशिरोधिरोहिणि रोहिणीरमणे चरमगिरि सुतुङ्ग सङ्गरङ्गिणि च पतङ्गे[1], तद्वयीरश्मिनिस्यूतमन्तराले

गोवर्धन वर्णन

अनुवाद—इसके समीप ही त्रिभुवनको प्रसन्न करनेवाला गौओंकी वृद्धि करनेके लिये तप करके गोवर्धन नामवाला पहाड़ है ॥१५०॥

अनुवाद—जो गोवर्धन श्रीवृन्दावन नामवाले सम्पूर्ण पृथ्वीके शिरोभाग मूर्धाको तथा गौरवकी गरिमासे गम्भीर धीर मेरु-पर्वतके सुन्दर सौन्दर्यको भी अलङ्कृत करता हुआ सुन्दर श्वेत तथा श्वेतसे अन्य लालादि अनेक मणियोंसे रमणीय स्थान धारण करता हुआ आवरण समूहकी तरह अपार आकाशको सीमाको शोभित करता हुआ दीर्घताको प्राप्त करता हुआ नन्दन वनके सुन्दर मन्दारादि वृक्षोंके हासकी तरह वृक्ष समूहको अपने शिखरके वृक्षोंसे ईर्ष्यासे मानो रगड़ता हुआ और रगड़ते हुए भी सूर्य और चन्द्रके घोड़ोंको अवलम्बन देता हुआ अपने सिरके विस्तारको फैला रहा है ॥१५१॥

विशेष—गोवर्धनके शिखर अत्यन्त उच्च थे और अनेक वृक्ष यहाँ सुशोभित थे ॥१५१॥

अनुवाद—जिसको प्रथम पर्वतके शिखरपर रोहिणी रमणके चढ़नेपर तथा अन्तिम पर्वतके ऊँचे स्थानपर सूर्यके आनेपर इन दोनोंकी किरणोंसे मध्य-

---

(1) सूर्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिभुवन विजयमहामृदङ्गमिव कमनोय मणिकुण्डलमण्डलद्वयमण्डित गण्डभित्तिमिवानुभवन्ति भूयांसः ॥१५२॥

येन च कैलासेनेव कलित नीलकण्ठेन, नीलकण्ठेनेवाकुण्ठतमोत्त-माङ्गप्रवहद्दिव्यतरङ्गिणी प्रवाहेण, तरङ्गिणी प्रवाहेणेव लोचनगोचरी चकार समसमय मनोजखेद मूर्च्छनेन, मनोजखेदमूर्च्छनेनेव बहुवियोग कलित परिणाहेन[1], परिणाहेनेव महदवलम्बनेन सहविभूता वृता किम-परमवलीलयैव विश्वम्भरा देवी ॥१५३॥

यस्मै च स्पृहयन्ति वैकुण्ठायेवाकुण्ठभक्तयो धीराः। धीरायेवा-चलस्वभाय चलस्वभावायेव सुखलतैकभूमये,भूमयः इवावलाम्बितानन्त-शिरसे, शिरस इव शकुन्तलाभाभिरामाय, रामायेव कुशलवप्रसूतये कुशल्याप्रसूतये च नमस्कुर्वन्ति कति महात्मानः। १५४।

भागके पूर्ण हो जानेपर तब त्रिभुवनके विजयकी बड़ी मृदङ्गके समान इसको सुन्दरमणि कुण्डल मण्डलसे दोनों कपोलोंके शोभित करते हुएकी तरह विद्वान् बहुतसे समझते हैं ॥१५२॥

विशेष—सूर्य और चन्द्रमा दोनों गोवर्धनके कुण्डलके समान थे। उत्प्रेक्षालङ्कार है ॥१५२॥

अनुवाद—शोभित है नीलकण्ठ जिसपर ऐसे कैलाशपर्वतकी तरह जिस गोवर्धनके द्वारा उत्कृष्ट उत्तम सिरपर बहते हुए दिव्य गङ्गाके प्रवाहसे वह नील-कण्ठ शोभित है, और मानों दिव्य नदी गङ्गाके प्रवाहसे ही जिनका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, कामदेवके खेदको शान्त करनेवालेकी तरह समान व्यवहारसे कामके विकार शान्त करनेवाले गंगाके प्रवाहकेद्वारा विशाल कामके विकारकी तरह चिर-वियोगसे बढ़े हुए विशाल कामके विकारवाले इस प्रकार बड़े अवलम्बनसे धारण की हुई, अधिक क्या लीलापूर्वक जिसने पृथ्वीको व्याप्त किया है ॥१५३॥

अनुवाद—वैकुण्ठकी तरह जिसको धीर अकुण्ठ भक्तिवाले पुरुष चाहते हैं और अत्यन्त स्थिर स्वभाववाले धीर उस गोवर्धन पर्वतके लिये चल स्वभाव-वालेकी तरह उस सुख देनेवाली एक ही भूमिकी तरह तथा अनेक पक्षियों के रहनेसे सुन्दर लगनेवाले शिररूपी शिखरकी तरह सब आनन्दको उत्पन्न करने वाले जिस गोवर्धन-पर्वतको कितने ही महात्मा प्रणाम करते हैं ॥१५४॥

---

(1) परिणाहो ; विशालता ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यस्मादतिनीचा एव निखिलमहीधर ग्रामाः। यस्मादनति दूर इव सप्ताकूपारा[1] अपि शिखराधिरोहिभिरनुभूयन्ते । यस्मादुपेत व्रीडा इव रीढापीडापनुत्तये पयोधिसलिलप्रवेशे बहु मेनिरे मैनाकाद्या महागिरयः ॥१५५॥

यस्य साम्यावलम्बनायेव नमितकन्धरो विन्ध्यवसुन्धराधरोऽद्यापि गङ्गागङ्गाधरोपसेवनव्रती नोत्थापयति मूर्धानम् । यस्य शिखर-महामहीरुहव्यतिकर कुसुमपरम्परा इव तारावलयो निशि निशि जगतैवानुभूयन्ते ॥१५६॥

यत्र च रक्ताकारभृतो दिनकरकिरणजिगीषाजाग्रत्तेजसो राशय इव धातु धोरण्योऽवधीयन्ते विबुधैः ॥१५७॥ यत्र च---

समुदितविपुलनितम्बा बिम्बाधरशोभया सुभगा ।
गोवर्धनरुचिबाला रचयति परितो मनः शिलारूपम्[2] ॥१५८॥

अनुवाद—जिससे सभी पर्वतवृन्द बहुत ही नीचे हैं, जिसके शिखरपर चढ़नेवालोंको सातों समुद्र बहुत समीप दीखते हैं, जिससे नीचे होनेके कारण मैनाकादि बड़े पर्वत लज्जाका अनुभव करते हुए अपने अपमानके दुःखको दूर करनेके लिये समुद्रके जलमें प्रवेश करनेको अच्छा समझते हैं ।।१५५।।

अनुवाद—जिसकी समता प्राप्त करनेके लिये मानों गरदन झुकाये हुए विन्ध्यपर्वत आज भी हिमालयकी सेवाका व्रत लिये हुए अपना सिर नहीं उठाता है । जिसकी चोटीपर वृक्षोंकी परम्पराकी तरह नक्षत्र पंक्तियाँ प्रत्येक रात्रिमें संसारके द्वारा देखी जातीं हैं ।।१५६।।

अनुवाद—जहाँपर लाल आकार धारण किए हुये सूर्यकी किरणोंको जीतनेकी इच्छासे चमकती हुई तेजो राशियोंको तरह धातुयें बुद्धिमानों द्वारा देखीं जाती हैं ।।१५७।।

विशेष--गोवर्धन-पर्वतपर अनेक धातु मानी गई हैं उनका प्रकाश दूरसे ही दिखलाई देता था ।।१५७।।

अनुवाद—बढ़े हुए बड़े नितम्ब वाली अथवा बढ़े हुए पर्वतके मध्यभाग वाली शोभा बिम्बकी तरह अधरकी शोभावाली अथवा बिम्बकी तरह लाल

---

(1) समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावरः सरित्पतिः (अ० को० १।१०।१) ।
(2) मनः शिला मनोगुप्ता मनोह्वा नाग जिह्विका (२।९।१०८) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदयदतन्त्राभोगः पत्रावलिचित्रमित्र - करयोगः ।
मृगमद सुरभिरवन्याः स्तन इव गोवर्धनो जयति ॥१५९॥
सदा वहति वाहनो स्फुरति चामराणां चय-
श्चलन्ति करिखड्गिनः, सितशुभातपत्रंबभौ ॥
अदूरसवितानको भवति पत्रिकोलाहलोऽ-
भ्युदेति महिषीवृतो नृपतिरेव गोवर्द्धनः ॥१६०॥
क्षीरैस्तुन्दिलयन्मुहुः शबलयन्नानाविधैरोषधै-
रत्नौघैरभिभूषयन्निशि दिवा वर्षद्भिराभाः पृथक् ।
स्वालम्बामनिलावधूत विटपिच्छायाकरैर्लालयन् ।
गां नित्यं परिवर्धयन् जनकवद् गोवर्द्धनो वर्द्धते ॥१६१॥

शोभासे सुन्दर पर्वतकी रुचि रूपशोभा, गोवर्धन पर्वतकी रुचि रूपीवाला सब ओरसे मनः शिलारूपम् मैनसिलके सुन्दर रूपको पर्वतकी रुचि अथवा शिला-रूपम् मैनसिलके सुन्दर रूपवाले मनको धारण करती है ॥१५८॥

अनुवाद—अत्यन्त दीर्घ बढ़े हुए विस्तार वाले पत्र समूहपर सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे अत्यन्त सुन्दर कस्तूरीसे सुगन्धित पृथ्वीके स्तनकी तरह सुन्दर लगनेवाले इस गोवर्धन-पर्वतकी जय हो ॥१५९॥

विशेष—कवि कालिदासने भी मेघदूतमें पर्वतको पृथ्वीके स्तनकी उपमा दी है ॥१५९॥

अनुवाद – इसके नृपति एवं पर्वत पक्षमें दो अर्थ हैं, यह गोवर्धन पर्वत राजा ही है बड़ा सुन्दर है, इसमें सदा नदियाँ बहतीं हैं अथवा सेनायें रहतीं हैं। चांवर समूह चमकता है अथवा देवोंका समूह शोभित रहता है, हाथी तथा खड्ग-धारी योद्धा राजाके रहते हैं, समोपमें विस्तारवाला पक्षियोंका अथवा योद्धाओंका कोलाहल हो रहा है. महिषी भैंस अथवा पटरानीसे युक्त यह पर्वत राजाकी तरह सुशोभित है [राजपक्षमें—सेना, देवसमुदाय, हाथी, खड्गधारी योद्धा पटरानीसे युक्त राजा है। पर्वत पक्षमें—यह पर्वत नदियोंसे युक्त है, चांवर युक्त है तथा महिषी, हाथी, गैण्डा जैसे पशुओंसे भरा है और पक्षियोंके कलरवसे युक्त है]।

अनुवाद—क्षीरसे मोटा-सा प्रतीत होता हुआ अनेकविध औषधियोंसे चित्रित रत्न समूहसे भूषित रात-दिन आभा बढ़ाता हुआ वायुसे हिलती हुई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिग्वामोरुपयोधरोद्भटपरीणाहाभिषङ्गक्षण-
प्रोन्मीलन्नव दर्भगर्भजतनूजालैः सरित्स्वेदवान् ।
धाराजस्रमुदश्रु मिश्रितदरी दृग्जाड्य भूमास्पदं
यः कामीव विजृम्भते रसमयो गोवर्द्धनः प्रावृषि ॥१६२॥
चन्द्रकान्तचयकान्ति कलापै,
यामिनीषु गिरिरेष शशीव ।
वासरे पुनरशीतकराभो,
लक्ष्यते द्युमणिकान्तमयूखैः ॥१६३॥
वृन्दावनं घनमुदेति मुदे कलिन्द
कन्याजलं च विमलं विहृतिस्थलं तत् ।
शैलश्च यत्र सुखसार्थपदं पितेव
तत्रैव नन्द तव नन्दतु नन्दनोऽयम् ॥१६४॥
यदि कुर्वन्ति कुर्वन्ति न कुर्वन्ति न कुर्वते ।
धीराः साधुरयंपन्थाः संशयाः संशयास्पदम् ॥१६५॥

वृक्षोंकी छायारूपी हाथोंसे अपनी नीचेकी भूमिका लालन करता हुआ पृथ्वीके पिताकी तरह सुरक्षित रखता हुआ गोवर्धन पर्वत विकसित हो रहा है ॥१६१॥

अनुवाद—दिशारूपी स्त्रियोंके स्थूल पयोधरोंका विस्तृत आलिङ्गन करते समय उठते हुए नवीन दर्भोंके मध्यमें होनेवाले रोम सदृश अंकुरोंसे नदी-रूपी स्वेदके प्रवाहवाला है, निरन्तर धाराओंसे अश्रुमिश्रित गुफारूपी जड़ताका सुन्दर स्थान है, जो कामी पुरुषकी तरह रसमय-आनन्दमय अथवा वर्षाकालमें जलमय गोवर्धन अत्यन्त शोभित हो रहा है ॥१६२

अनुवाद—चन्द्रकान्त मणियोंकी शोभासे यह पर्वत रात्रिमें चन्द्रमाकी तरह तथा दिनमें सूर्यकान्त मणियोंकी किरणोंसे सूर्यकी तरह प्रतीत होता है ॥

विशेष—गोवर्धन पर्वतमें सूर्यकान्त और चन्द्रकान्त दोनों मणि थीं ॥

अनुवाद—वृन्दावन अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाला है यमुनाका जल बड़ा निर्मल तथा विहार करने योग्य है, पर्वत जहाँ पिताकी तरह अत्यन्त सुख देने-वाला है। हे नन्द ! तुम्हारा पुत्र वहीं आनन्द करे ॥१६४॥

अनुवाद—धीर पुरुष जो काम करना चाहते हैं वही करते हैं, जो नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इति गिरमभिनन्द्य नन्दमुख्या
द्रुतमुपनन्द समीरितामम न्दम् ।
रजनिपरिणतौ प्रयाणमेकं
सुदृढ़मकुर्वत निर्विकल्पजल्पाः ॥१६६॥

इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्दकन्दचम्पू काव्ये
तृतीयोऽयमुल्लासः ॥ ३ ॥

करना चाहते हैं वह नहीं करते हैं यही मार्ग ठीक है संशय करना ही संशयका स्थान है ॥१६५॥

विशेष—नीतिमें लिखा है—"असंशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति" संशय रहित कार्य करना चाहिये ॥१६५॥

अनुवाद—इस प्रकार नन्द आदिकोंने उपनन्द द्वारा अति प्रशंसित पर्वतका अभिनन्दन करके अन्तमें सन्देह शून्य निश्चत द्वारा प्रातःकाल ही व्रहाँ प्रयाण करनेका दृढ़ निश्चयकर लिया ॥१६६॥

इति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद शास्त्रि विरचिते श्री श्रीवरानन्दिनी
भाषाटीकासहिते आनन्दकन्दचम्पूः काव्ये, श्रीवृन्दावन
प्रस्थान वर्णनं नाम तृतीयः उल्लासः ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ चतुर्थ उल्लासः

वृन्दावन लीला

अथ वसुमतीति प्रतीतिपत्राहितविविधार्थसार्थनामुद्धरणैर्नेतव्या-नेतव्य विवेचनैर्वृषभ रथघोटकादि संघटनैर्विघटितमतिसौष्ठवतया-धीरैराभीरैरनवधानाभिमानभागिनो भाविनीव द्रुतमपसर्पन्तीकैरपि न विदितैव यामिनी नाम जनिरिव संसारवासना वासितान्तःकरणैः ।

हिमाश्रूणि विमञ्चन्त्या सहसख्या त्रियामया[1] ।
चक्रन्द कुक्कुटध्वानैर्गोकुल श्रीरिवाकुला ॥ २ ॥

सूर्योदयवर्णनम्

अथ वृन्दावनविहरण शुभप्रयाण महामहोत्सवदिदृक्षयेव लाक्षारस क्षालितायामिव नवकुंकुमपङ्कसंकुलायामिव कमलकिञ्जल्क पुञ्जा-रुणसिन्दूरमञ्जुरञ्जितायामिव निजकरमण्डलाग्रनिकृत्तध्वान्तदैत्य-

---

वृन्दावन-लीला

अनुवाद—इसके पश्चात् सुन्दर स्थलीके विश्वास पत्रसे निश्चित तथा अनेकविध कार्य समूहके निश्चयसे साथ ले चलें या नहीं ? आदि विचारोंसे वृषभ, रथ, घोड़े आदिके संघटनसे पृथक्-पृथक् सबकी अनेक सम्मतिसे अधीर, आगे आनेवाले अनिश्चयके कारण द्रुतगतिसे चलती हुई संसारकी वासनासे वासित अन्तःकरणवाले मनुष्योंके जन्मकी तरह "रात्रि" बड़ी जल्दी व्यतीत होगई ॥१॥

अनुवाद—तुषार रूप आँसू छोड़ती हुई त्रियामा सखी रात्रिके साथ गोकुलकी शोभा मानों कुक्कुट मुर्गेकी ध्वनिके बहाने विलाप करने लगीं । [इस श्लोकमें गम्या उत्प्रेक्षा कविने बड़ी सुन्दरता व्यक्तकी है] ॥ २ ॥

सूर्योदयका वर्णन

अनुवाद—वृन्दावन विहारके शुभ प्रयाणका महा-महोत्सव देखनेकी इच्छासे लाक्षारससे धुली हुईकी तरह, नव कुंकुमके कर्दमसे व्याप्तकी तरह, कमल केशरके समूहके समान लाल सिन्दूरसे सुन्दर रङ्गी हुई की तरह, अपने किरण समूहसे नष्ट किये अन्धकाररूपी दैत्यके रक्त समूहसे सिंची हुईकी तरह,

---

(1) रात्र्या ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रक्तौघसिक्तायामिव विस्तीर्ण शोणास्तरणायामिव शोणीकृतायां पुरुहूतहरिति हरिदश्वो भगवान् प्रादुरासीत् ॥ ३ ॥

सभुवनं भुवनंकमलश्रिया, दिनमुखे न मुखेन बभौस्त्रियाः ।
विधुरसाधुरसाय न मण्डलं, रचयता च यता यमहो विधुम् ॥ ४ ॥
उदयता दयता खर तेजसा, विहरता हरता च हरित्तमः ।
अरणतो रणतो हतरक्षसा, दिनकृता न कृता न नभःश्रियः ॥५॥
घनतमो न तमो हि भुजङ्गमो, विकलयन्कलयन् श्रियमावभौ ।
दहनदाहनदारुणमण्डलो, दिनमणिर्न मणिः शिरसो गिरेः ॥६॥
अमलकोमल कोकन[1]दावलेः, सदलयोदलयोगकूतूहलाः ।
सुमधुरं मधुरञ्जित हृज्जगु, मदनमोहन मोदय मेदुराः ॥ ७ ॥

विस्तृत लाल बिछौनाकी तरह लाल-लाल, पूर्व दिशामें सूर्य भगवान् उदित हुए ॥ ३ ॥

अनुवाद—कमलोंकी शोभासे जल सहित सारा भुवन प्रात शोभित होगया, स्त्रियोंका मुख वियोगसे चन्द्रमाका साहश्य प्राप्त करनेवाला भी फीका होगया और वियोगीको आनन्द देनेवाला नहीं रहा ॥ ४ ॥

विशेष—यहाँ कविने यमक अलङ्कारका प्रयोग किया है ।भिन्न अर्थ रखनेवाले समान वर्णोंका प्रयोग यमक कहलाता है "अर्थे सत्यर्थ भिन्नानाम् वर्णानाम् सा पुनः श्रुतिः । ४ ॥

अनुवाद—उष्ण तेजवाले उदित होते हुए आकाशमें विहार करते हुए दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए, शब्द करते हुए अथवा न करते हुए, राक्षसोंका संहार करते हुए सूर्यने आकाशकी शोभाको नहीं बढ़ाया यह नहीं, अर्थात् अवश्य बढ़ाया ॥ ५ ॥

अनुवाद—सर्प सदृश जो भयङ्कर घन अन्धकार है उसके नष्ट करते हुए तथा शोभा बढ़ाते हुए सूर्य शोभित हुआ, अग्निसदृश जलानेवाला दारुण मण्डलवाला दिनका मणिरूप सूर्य पर्वतके सिरकी मणिके समान नहीं था क्या ? अर्थात् अवश्य था ॥ ६ ॥

विशेष—काकूत्प्रेक्षा ।

अनुवाद—निर्मल कोमल कोकनद रक्त कमलके दलपुञ्जमें कुतूहल रखने-

---

(1) चक्रवाकः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असरसीसरसीरुहबन्धना, गृहसिता हसिताध्वगवाक्षतः ।
सुनयना नयनाम्बुजमुद्रणां, रविनिभाविनिभान्त्य जिहीर्षवः ।।८।।
कुतमसां तमसामिव मण्डल, भवनभावनभातमुदस्तयन् ।
परमगारमगारमगात्तदपोहितुं, सवितुराविनुराशु महोभरः ।।९।।
ललित चालित चारुगरुद्द्वयं
स्तनितमानितमाप पुरः प्रियम् ।
अमितकामितकारण गौरवं
सदयकोदयकोक विलासिनी ।।१०।।
धृतवतीतवती शुचमित्यनाविलमृणालमृणायितमानने ।
पुनरसौ नरसौभगदर्शिनी, प्रिय मुखीयमुखेदमुपादधे ।।११।।

वाले भ्रमर मदनमोहन कृष्णकी मालक्ष्मीके उदयसे मेदुर (प्रसन्न) मधु मकरन्दसे हृदयको रङ्गते हुए (क्रिया विशेषण) सुमधुर गान करते थे ।। ७ ।।

अनुवाद—असरसी जलशून्य सरसीरुह कमल नेत्रको बन्धन माननेवाली, प्रकाशयुक्त गवाक्षसे उजाला घरमें प्राप्तकरनेवाली,सुनयना स्त्रियाँ,रविका प्रकाश होनेपर भी नयन कमलकी मुद्रणा अर्थात् नेत्र खुलनेको रोकती हुई शोभित होती हैं, आलस्यसे नेत्र नहीं खोलना चाहतीं हैं ।। ८ ।।

अनुवाद—भवनमें व्याप्तकी तरह 'कु' पृथ्वीके अन्धकार समूहको हटाते हुए रक्षा करनेवाले सूर्यका महातेज अन्धकार नष्ट करनेको घर-घरमें फैल गया ।। ९ ।।

विशेष—अन्धकारकी उपमा राहु तथा अज्ञानसे दी है ।। ९ ।।

अनुवाद--दयापूर्वक सूर्योदयसे चकवीने अति कामनासे गौरव प्राप्त बोलीसे सम्मानित सुन्दर दोनों पङ्ख चलाते हुए सामने अपने प्रियको प्राप्त किया।

विशेष–सूर्योदयके समय चकवा-चकवी युगल मिल गये उनकी ध्वनि मानों सूर्यको धन्यवाद देरही है। यह युगल रात्रीमें दूर-दूर रहता है प्रातः मिलता है ।।१०।।

अनुवाद—चकवीने शोक दूर किया सुन्दर मृणालीको प्रेमसे मुखमें धारण किया, वह मनुष्यके समान सौभाग्य देखनेवाली प्रियके मुखपर मुख करनेवाली हुई ।।११।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रविरहो विरहोग्रहुताशनं, विघटयन्घटयन्मिथुनं मिथः ।
उदयते दयते स्म रथांगयोरकृपणे कृपणे च कृपा प्रभोः ॥१२॥
सतत खातनिखाततमोऽम्बुधिं
कवलयन्वलयन्बलवन्महः ।
विजयते जयतेजसि बाडवो
न सविता सवितानसुमण्डलः ॥१३॥
प्राप्यसूरकर जालशङ्कया, शङ्कयापि नदिशर्क्षमण्डली ।
स्वप्रियेणसह शैलकन्दरे, कन्दरेणुरवनाय निर्ययौ ॥१४॥
दीपिते विनिहितागवेधसा, वेधसा भृशमतस्तिलाहुतिः ।
श्रीप्रबोधविधये विभावसौ[1], भावसौष्ठवजुषा जगत्तनोः ॥१५॥
सूरकुंकुमशिरा नभोगजो, भोगजोद्गतमदः समुत्थितः ।
येनमुग्धरजसान्धकारितं, कारितंभुवनमंचताम्बुधौ ॥१६॥

अनुवाद—सूर्य उग्र विरहाग्निको दूर करते हुए तथा आपसमें दोनोंको मिलाते हुए उदित हुआ, चकवा-चकवीपर कृपाकी, प्रभुकी 'कृपा' कृपण, अकृपण सबपर होती है ॥१२॥

विशेष—'प्रभुकी कृपा' यह सूक्ति है ॥१२॥

अनुवाद—सदा अन्धकारको नष्ट करनेवाले उग्र तेजको बढ़ाते हुए समुद्रको कवलित करते हुये वाडव अग्निकी जय होरही है, विस्तृत मण्डलवाले सूर्यकी नहीं ॥१३॥

अनुवाद—दिशाओंकी सब नक्षत्र मण्डली, रविकिरण समूहकी किसी शङ्कासे शान्ति प्राप्त न करके अपने प्रियके साथ शैल कन्दरामें चलीगई ॥१४॥

विशेष—सूर्योदयके समय नक्षत्र पुञ्ज अस्त हो जाते हैं ॥१४॥

अनुवाद—जगत् स्रष्टा ब्रह्माने भावको सुन्दर बनाते हुई दीपित विभावसु (अग्निमें) जगत् रूप शरीर श्रीवृद्धिके लिए अतिशय रूपसे तिलाहुति प्रदानकी है ॥१५॥

अनुवाद—जिसका कुंकुम युक्त सूर्य सिर है ऐसा आकाशरूपी हाथी भोग सुखादिसे जिसका मद निकला है वह उठा, लोकमें चलते हुए जिसने उठी हुई धूलसे समुद्रमें अन्धकारित-सा कर दिया ॥१६॥

---

(1) सूर्ये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मसृष्टिमहरन्महोदयोऽहो दयोपरहितस्तमोगुणः ।
प्रादुरास किल तच्चिकीर्षया कीर्षया रविमिषाद्रजोगुणः ॥१७॥
न क्षणात्तरलतारकं वियत्कं विरद्विधुदिगभ्यनन्दयत् ।
मुक्ततल्पकमिवोपधानवद् ध्यानवत्सुमनसां तु कुत्रचित् ॥१८॥
उज्झितालिमिलना वियोगिनी योगिनीव सुसमाधिमाददे ।
मुद्रिताक्षिकुमुदा कुमुद्वती मुद्वती दिनकृताः स पद्मिनी ॥१९॥
सूर मोचय ययावहंक्रिया—
हंक्रियामिति पुनः करोमि न ।
झङ्कृतैः कुमुदबद्ध षट्पदी[1]
षट्पदीमिव वितत्य नौत्यमुम् । २०॥
वैरिणः करगतासि पद्मिनी पद्मिनी हसति चन्द्र यासि किम् ।
रोदितीति मधुपस्वनै रसोनै रसौघघटिता कुमुद्वती । २१॥

अनुवाद—अहो दयासे शून्य इस उठे हुए तमोगुणने ब्रह्माकी सृष्टिको नष्टकर दिया उसको नष्ट करनेकी इच्छासे सूर्यके बहाने मानों यह रजोगुण उठा है ॥१७॥

विशेष—रजोगुणसे तमोगुण दबा जा रहा है ॥१७॥

अनुवाद—तरल ताराओंवाले सुख नाशक आकाशको पूर्व दिशामें अभिनन्दित नहीं किया, शय्या छोड़कर केवल उपाधान युक्तकी तरह ध्यानमग्न भक्तोंको प्रातःकाल कार्यरतकर दिया ॥१८॥

अनुवाद—भ्रमर मिलनको छोड़कर अक्षि कुमुदको बन्द करके कुमुद्वतीने योगिनीकी तरह समाधि धारणकी तथा सूर्यके द्वारा पद्मिनी प्रसन्न होगई ॥१९॥

अनुवाद—हे सूर्य ! छोड़ दो, अहङ्कार अब चला गया, अब मैं अहङ्कार नहीं करूँगा इस प्रकार झङ्कारोंसे कुमुदपर भ्रमण करते हुए षट्पदी स्तोत्र द्वारा मानों भ्रमर सूर्यकी स्तुति करता है ॥२०॥

विशेष—आचार्य शङ्करने षट्पदीकी रचनाकी है—"अविनयमपनय विष्णो ! दमयमनः शमय विषयमृगतृष्णाम्" आदि ॥२०॥

अनुवाद—अब तक पद्मिनी वैरीके हाथमें थी अब हंसती हुई कहती है कि हे चन्द्र ! अब तुम जारहे हो इस रस समूहसे युक्त कुमुद्वती रसशून्य फीके मधुप शब्दसे रो रही है ॥२१॥

---

(1) भ्रमरी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आविरास विरहस्तु दुःसहो दुःसहोदितरवेः शुचं कराः ।
इत्यभूत्कुमुदिनी मलीमसालीमसाधुविरुतां जहावले ॥२२॥
मृत्युरेवसुखभूर्वियोगतो योगतोऽपि च परस्य योषितः ।
उत्पलिन्य विषयं तदग्रहीदग्रहीनहितरुग्बलिद्विषत् ॥२३॥

नायिकावर्णनम्

कान्ताभिसारमकरोन्निशि नाम का का
का का भवन्ति तमसां गृहमभ्युपेतुम् ।
भूयिष्ठ मिष्टबलिपुष्टतयाह का का
काकावली दिनमुखेषु हितैषिणीव ॥२४॥
का का प्रिया प्रियतमं परिरभ्य दोर्भ्या
मभ्यागतेऽपि मिहिरे न जहाति निद्राम् ।
जागर्त्तु सज्जयतु चोलमितीव का का
का कालिरालिरिव गूढ़गिरं चकार ॥२५॥

अनुवाद -अब दुःसह विरह होगया, कठोर उदित हुए सूर्यकी किरणें शोक उत्पन्न करतीं है, इस प्रकार कुमुदिनीने दुःखसे रोती हुई मलिन भ्रमर पंक्तिको छोड़ दिया ॥२२।

अनुवाद—वियोगसे मृत्यु ही सुखकर है पर पोषितके योगसे भी मृत्यु अच्छी है, उस कुमुदिनीके अविषय सूर्यको कमलिनीने ग्रहण किया जो आगे हीन होकर हितको नष्टकर बलि आदिसे द्वेष करेगा ॥२३॥

नायिका वर्णन

अनुवाद—रात्रिमें किस-किस प्रियाने कान्तके समीप अभिसार किया, कौन कौन अन्धकारके गृहमें जानेको तत्पर हुई । इष्टावलि प्राप्तिसे पुष्ट होकर किस-किसने क्या-क्या कहा? इस प्रकार प्रातःकाल हितैषिणीकी तरह काका शब्द-को अवली काकावलि सुनी जाने लगी ॥२४॥

अनुवाद -कौन-कौन प्रिया सूर्य निकलनेपर भी पतिकी भुजाओंसे दृढ़ आलिङ्गन करके निद्रा नहीं छोड़ती है, कौन-कौन जागे और अपनी चोली वस्त्रको ठीक करे, इस प्रकार सखीकी तरह काका शब्द-सी पंक्ति काकालि गूढ वाणी बोलने लगी ॥२५॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्राक् त्रुटयन्मेखलाद्याभरणमगणित भ्रष्टवासो भृशोद्यत्-
प्रस्वेदाम्भः प्रवाहं विगलितकवरी गन्धमारम्भि दीर्घम् ॥
दम्पत्योर्युद्धलीला मदननरपतेरस्ति का कावशिष्टा
स्पष्टाभूद्दिङ्मुखश्रीर्विरमतु विदितं काक काकागिरेति ॥२६॥

नवनीत भाण्ड वर्णनम्

आभीरीभिरपि श्रीभिरुत्थितं पद्मिनीपतेः ।
मथितं दधि पूर्वाभिर्महोऽपूर्वाभिरैन्दवम् ॥२७॥
आभीरा पिण्डमैक्षन्त नवनीतस्य मस्तुनि ।
मथिते पुर्वमम्भोधौ पूर्णचन्द्रमिवापराः ॥२८॥
हैयङ्गवीनभृत भाजन भासिकक्षा
प्रक्षामसध्यमधुरा व्रजपक्ष्मलाक्षी ।
संलक्षितामृत घटीस्तनगूढकक्षा
प्रख्यातरूप विभवा भुवि मोहिनीव ॥२९॥

अनुवाद—दिशाओंमें प्रकाश होगया, स्त्री-पुरुषके द्वारा कामदेवकी युद्ध-लीला क्या शेष है ? वह शान्त हो, यह का का इस प्रकारकी वाणीसे स्पष्ट होगया है । जिस युद्धमें शीघ्रतावश मेखलादि आभरण टूट गये शरीरसे उतरते हुए वस्त्र नहीं मालूम हो सके, अति पसीनेका प्रवाह बहने लगा केशपाश सब खुल गया, इस प्रकारका कामदेव अब समाप्त हो ॥२६॥

विशेष—का-का शब्दकी ध्वनिका मनोरम निरूपण है, कामक्रीडाका चित्रण है ॥२६॥

नवनीत भाण्ड वर्णन

अनुवाद—आभीर पत्नियाँ गोपी एवं सूर्यकी कान्ति दोनों उठीं, गोपियोंने दधि-मन्थन किया तथा सूर्यकी कान्तिने चन्द्रमाका तेज फीकाकर दिया ॥२७॥

अनुवाद—गोपोंने दधि-मन्थनसे नवनीतके पिण्डका दर्शन किया जिस प्रकार देवताओंने समुद्र-मन्थन करनेपर पूर्णचन्द्रका दर्शन किया था ॥२८॥

अनुवाद—नवनीतके पूर्ण पात्रसे शोभित कक्षवाली, मध्यभागके क्षीण होनेसे सुमधुर दर्शनवाली पक्ष्मल नेत्रसे सुन्दर अमृत घटोके समान दीखते हुए सुन्दर गूढ़स्तनयुक्त कक्षवाली सुन्दर रूप वैभववाली पृथ्वीपर मोहिनीके समान गोपी प्रतीत होती थी ॥२९॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथोपनन्दभणितसमानन्दितनन्दादयो गोपा वृन्दावनोपसरण-समग्रसामग्री समारचनमारेभिरे प्रातः ॥३०॥

गोपवृन्दवर्णनम्

गोधनानि समादाय सज्जीभूय वहिर्ययुः ।
आभीराः पुरतः पश्चादनोरुढा[1] व्रजस्त्रियः ॥३१॥
अव्याहारविमूढ श्रीरगोव्यापार शालिनी ।
अथगोकुल भूरासीद् बत मूच्छर्वतीव सा ॥३२॥
अश्रूणीव विमुञ्चन्ती पतद्भिः कुसुमर्मुहुः ।
वनश्रीरिव चक्रन्द पक्षिवृन्दकलस्वनैः ॥३३॥
अथाध्वानमगाहन्त धवलीकृत्य धेनवः ।
घनापाये घनोभूय मरालाः स्वर्धुनीमिव[2] ॥३४॥
अध्वानमभ्यधावन्त तमोनिर्धूय धेनवः ।
अधरीकृत हिण्डीरा[3]स्तारा इव नभस्थलम् ॥३५॥

अनुवाद—इसके पश्चात् उपनन्दके कथनसे आनन्दित होते हुए सब गोप, वृन्दावन जानेकी सब सामग्री प्रातःकाल ठीक करने लगे ॥३०॥

गोवृन्द वर्णन

अनुवाद—प्रथम सब गोप तैयार होकर गौओंको लेकर बाहर निकले । पश्चात् गाड़ियोंपर बैठकर व्रजकी गोपियाँ बाहर निकलीं ॥३१॥

अनुवाद—शब्द शून्यतासे शोभाहीन तथा गौओंकी चहल-पहल न होनेसे शोभा न देनेवाली गोकुलकी भूमि मूर्छावतीकी तरह प्रतीत होती थी ॥३२॥

अनुवाद—गिरते हुए पुष्पोंसे आँसू गिराती हुईकी तरह तथा पक्षियोंकी कल-कलसे वनश्री रोती हुई सी प्रतीत होती थी ॥३३॥

अनुवाद—गौ मार्गको धवल करती हुई दौड़ रहीं थीं, जिस प्रकार वर्षाकाल चले जानेपर एकत्र होकर हंस गङ्गाजीको जारहे हों ॥३४॥

अनुवाद—समुद्रफेनकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली गौ अन्धकारको नष्ट करके मार्गमें इस प्रकार दौड़ रहीं थीं जिस प्रकार नारायण आकाशमें दौड़ते हैं ॥३५॥

---

(1) शकटारूढा । (2) गङ्गा ।
(3) हिण्ड+इरन्=समुद्र झाग ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पन्थानमन्वशोभन्त धेनुधाराधुतैनसः ।
सिंधौ जिगमिषोर्धन्या स्वर्धुन्या इव वीचयः ॥३६॥
आसीद् द्राघीयसी धेनु धोरणीभिरनन्तरा ।
पदवी पुण्डरीकाणां[1] मण्डलीभिरिवापगा ॥३७॥
धोरणीभिरलं धेनोरध्वा स्पर्द्धामगाहत ।
परिपाण्डरहिण्डीरमण्डलीमण्डनाम्बुधेः ॥३८॥
परितः परिधावन्ती धवला धेनुधोरणी ।
गोलोकमिव भूलोकमकरोदकरोधिनी ॥३९॥
पदवीमभ्यधावन्त धेनवो धूतरेणवः ।
मर्यादामनिलैर्मुग्धा दुग्धाम्भोधेरिवोर्मयः ॥४०॥
बभौ पाण्डरपल्यङ्कालङ्कारानसि गोकुलैः ।
फणीन्द्रस्य फणावृन्दैरङ्कशायीव केशवः ॥४१॥

अनुवाद—गौओंकी धूलि धारासे अपने पापोंको नष्ट करते हुए सब ऐसे शोभित होते थे जैसे समुद्रमें जानेवाली गङ्गाकी तरङ्गें शोभित होती हैं ॥३६

विशेष—उपमालङ्कार ॥३६।

अनुवाद—गौओंकी निरन्तर चलनेकी पंक्तिसे वह पदवी इतनी बड़ी-चौड़ी प्रतीत होती थी जैसे कमलोंकी पंक्तिसे नदी चौड़ी-सी मालूम होती है ॥३७॥

अनुवाद—गौओंकी पक्तिसे शोभित वह मार्ग श्वेत समुद्रफेनसे शोभित समुद्रकी मानों स्पर्धा अर्थात् बराबरी-सी कर रहा था ॥३८।

अनुवाद—चारों ओर दौड़ती हुई पाप नाशिनी श्वेत गौओंकी पंक्तिने भूलोकको मानों गोलोक बना दिया था ॥३९॥

अनुवाद—क्षीरसागरकी सौम्य तरङ्गें जिस प्रकार वायुके द्वारा मर्यादा में रहती हैं उसी प्रकार धूल उड़ाती हुई गौयें अपनी पदवीपर दौड़ रहीं थीं ॥।

अनुवाद—शुभ्र-पलंग एवं अलङ्कारयुक्त गाड़ीपर गोकुलसे चारों ओर घिरे हुए केशव ऐसे प्रतीत होरहे थे, जैसे फणावृन्दसे शोभित शेषनागकी गोदमें सो रहे हों ॥४१॥

---

(1) कमलानाम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मध्यारूढहरिप्रौढमनः पाण्डुपरिच्छदम् ।
उडूनामिव[1] पूर्णेन्दुर्गवामन्तरगाहत ॥४२॥
क्व दूरोत्क्षेपणं पद्भ्याम् मनसःक्वावगाहनम् ।
प्रभुरेव विजानीते निग्रहानुग्रहावपि ॥४३॥
तदानांसि मनांसीव वृषैरिव महावृषैः ।
योजयामासुराभीरा[2] वीराहङ्कारकारिणः ॥४४॥
महोत्कण्ठा मनांसीव तदनांसि महावृषाः ।
आशु प्रोड्डीनयामासुः पोतानिव महानिलाः ॥४५॥
द्विधाबद्धबलीवर्द्दमधावन्ननसो गणाः ।
घना इव घनीभूय पुरोञ्चत्क्रोञ्चपङ्क्तयः ॥४६॥

शकटवृन्दवर्णनम्

गम्भीरैरनसां घोषैश्चक्रप्रोद्धूतधूलिभिः ।
अवरुद्धं नभो वीक्ष्य मेनिरे दुर्दिनं परे ॥४७॥

अनुवाद—जिसके मध्यमें हरि विराजित हैं ऐसो पीले आवरणवाली गाड़ी गौओंके बीच ऐसे प्रविष्ट हुई जैसे पूर्णचन्द्र तारागणमें प्रविष्ट होता है ।

अनुवाद—कहाँ तो प्रभुने एकबार शकटको पैरोंसे दूर फेंक दिया था और उसे पलट दिया था, और कहाँ आज उसमें अन्दर लेटे हैं, निग्रह तथा अनुग्रह करना प्रभु ही जानते हैं ॥४३॥

अनुवाद—वीर अहङ्कार करनेवाले गोपोंने गाड़ियोंको बैलोंसे तथा मनको बड़े पुण्योंसे जोड़ रक्खा था ॥४४॥

अनुवाद—बड़ी उत्कण्ठावाले महात्मा जसे मनकी हरिमें उड़ान लगाते हैं, उसी प्रकार बैलगाड़ियोंको, वायु वेग जैसे जहाजोंको तेजले जाता है वैसे ही तेजले जारहे थे ॥४५॥

अनुवाद—जिसके दोनों ओर बैल जुते हैं ऐसे शकट समूह, सुन्दर क्रौञ्च पक्षियोंकी तरह इकट्ठे होकर मार्गमें दौड़ रहे थे ॥ ६॥

शकटवृन्द वर्णन

अनुवाद—शकट समूहके गम्भीर घोषसे तथा पहियोंकी उठी हुई धूलसे भरे आकाशको देखकर कुछ लोग दुर्दिन समझ रहे थे ॥४७॥

---

(1) ताराणाम् । (2) गोपाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रजोरुद्धनभोघोषमुखराशमनः कुलम् ।
समुद्ग्रीव मुदैक्षन्त मण्डलानि शिखण्डिनाम् ॥४८॥
अधावन्त गवां धाराः कोटिधैव पुरोऽनसाम् ।
दुर्वाराः सलिलासाराः श्रावणाम्भोमुचामिव ॥४९॥
पाण्डरं पाण्डुभिर्नद्धमुख्यमुख्ये द्विधाग्रतः ।
अविन्ददनसो वृन्दं कोटिकुम्भीन्द्रसौभगम् ॥५०॥
व्रजाम्भोजदृशामङ्गभासामासीच्चमत्कृतिः ।
अनोवृन्देषु तुन्देषु शैलेष्विव तडित्विषाम् ॥५१॥
रोहिणी च यशोदा च रोहिणीशनिभाऽऽनने ।
गायन्त्यौ सुतयोः कर्म्म शर्म्मसिन्धौ ममज्जतुः ॥५२॥
महीधरमहादण्डमण्डितं मुरवैरिणः ।
पिहितार्करजोनीलच्छत्रमादत्त मेदिनी ॥५३॥

अनुवाद—मयूरोंका समूह धूलसे भरे हुए आकाशमें शब्द करनेवाले शकट समूहको ग्रीवा उठाकर देख रहा था ॥४८॥

अनुवाद—श्रावणके बादलोंकी न रोकने योग्य जलधाराकी तरह गौओं-की वह धारा शकट समूहके आगे अनेक प्रकारसे दौड़ रही थी ॥४९॥

अनुवाद—श्वेत तथा अग्रभागमें पीत रज्जुसे दोनों ओर मुख्यभाग बँधे हुए शकट समूह करोड़ों कुम्भीन्द्रके समान प्रतीत होते थे ॥५०॥

अनुवाद—बड़े-बड़े शकटपर बैठी हुई व्रजकी कमल सदृश नेत्रवाली गोपियोंकी अङ्ग शोभाका चमत्कार पर्वतोंपर बिजलीकी कान्तिके समान प्रतीत होता था ॥५१॥

अनुवाद—चन्द्रमाके समान मुखवाली रोहिणी और यशोदा कृष्ण-बल-रामके चरित्रका गान करती हुई आनन्दके समुद्रमें मग्न होरहीं थीं ॥५२॥

अनुवाद—पहाड़रूपी महान दण्डसे शोभित धूलिसे ढँके हुए सूर्यरूपी नीलच्छत्रको पृथ्वी मुर वैरी श्रीकृष्णके ऊपर लगाये हुये थी । पर्वतको छत्र दण्ड तथा धूलिसे आच्छादित रविकी नील धूलिको छत्र मानकर कविने मुरके अरि कृष्णके ऊपर छत्रको कल्पना पृथ्वीके द्वाराको गई है यह अत्यन्त सुन्दर है ॥५३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आभीरनिकरोत्तानविषाणध्वनिधोरणी ।
अन्तरान्दोलयामास द्विषामपि दिशामपि ॥५४॥
हम्भाराश्चैव वत्सानां धेनूनामपि हुङ्कृतैः ।
[1]उक्षातिशयहिक्काभिरापुपूरे नभोऽन्तरम् ॥५५॥
विश्राम्यन्त्यः प्रतिच्छायं पश्यन्त्यः प्रतिभूरुहम् ।
गृहादपि सुखं वर्त्म मेनिरे व्रजसुभ्रुवः ॥५६॥

मध्याह्न वर्णनम्

धावन्धावमन्धकारध्वंसिनि मधुरिपुमधुरमुखेन्दोरवलोकनेन लोचनेन्दीवरमेव सानन्दीकर्त्तुमम्बरमध्यमवलम्बमाने किरणमालिनि संमुखमवगाह्य स्वच्छन्दं हरिमुखचन्द्रमनुपश्यतीव गति विस्मृतिवशात्, निस्पन्दीभवति मध्याह्ने, मिहिरतनूजा[2]वार्यवगाह्य निर्वाह्यापि माध्याह्निकमह्नायाह्निकमानह्यापि सबहुबाह्य पट्ट-शकटकोटि माट-देव वृन्दाटवीनिकटवटकाननोपकण्ठं स वैकुण्ठो व्रजकण्ठीरवाकुण्ठ-

---

अनुवाद—गोप समूहके ऊँचे उठे हुए शृङ्गोंकी ध्वनि समूहने बीचमें दिशाओंको तथा शत्रुओंको भी हिला दिया है ॥५४॥

अनुवाद—गौओंके हुङ्कारोंसे तथा वृषभोंके हिक्का शब्दसे व बछड़ोंके हम्भारोंने आकाशके मध्यभागको भर दिया ॥५५॥

विशेष—स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥५५॥

अनुवाद—व्रजकी गोपियोंने प्रत्येक छायामें विश्राम करते हुए तथा प्रत्येक वृक्षको देखते हुए मार्गमें घरसे अधिक सुख माना ॥५६॥

मध्याह्न वर्णन

अनुवाद—दौड़ते-दौड़ते अन्धकारको नष्ट करनेवाले मधुरिपुके मधुर मुखचन्द्रके अवलोकनसे नेत्रकमलको प्रसन्न करनेके लिये अंशुमाली सूर्यके आकाशके मध्यभागमें आ जानेपर सम्मुख स्नान करके मानों स्वच्छन्द होकर भगवान्के मुखचन्द्रको देखते हुएकी तरह अथवा गति भूल जानेके कारण मध्याह्न कालके स्थिर हो जानेपर यमुनाजलमें स्नान करके शीघ्र ही मध्याह्नका नित्यकर्म पूरा करके अनेक वाह्य शकटकी सब कोटियोंको ठीक करके वृन्दावनके समीप वट-

---

(1) वृष. ।
(2) यमुना (मिहिरः=सूर्यः तस्य तनूजा=तनया) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिवारः। यस्मिन्नस्ति हि भाण्डीरो नाम महावटविटपी निखिल पटीयोऽवनी मण्डनीभूतः ॥५७॥

यस्याधो न पतन्ति वर्षति पयोवाहे पयोबिन्दवो
मूलं न प्रभवन्ति वीक्षितुमहो नक्षत्रमित्रेन्दवः।
छत्रस्येव दलैरजस्रनिबिडैश्छिन्नस्य विश्रामभू
र्यच्छाया मरुतोऽभिजुष्टसरितो दूराध्व संचारिणः ॥५८॥

असितदलभवच्चतुर्विभागः
प्रतिनवपल्लववल्लभोच्चमूर्द्धा।
अचरमचरमाचलोपमानं
प्रतिदिन मञ्चति सन्ध्ययोर्द्वयोर्यः ॥५९॥

यस्तु प्राघुणक सपर्यापर्याप्तये दिग्दिगन्तसंचारिणोऽनन्तपान्थान्मृदुपवनविधूयमाननव किसलयपाणिना विहङ्गकलरवैराह्वयन्निव, दलभूरिभारविनमितशिखरतया तानेव प्रणमन्निव, नव किसलयोपचीयमानशोणतया तेष्वेवानुरागगरिमाणमुद्गिरन्निव, निजनिकटपटु-

---

काननके पास व्रजविहारीका प्रसन्न परिवार भ्रमण करता रहा। जिसमें भाण्डीर नामका बहुत बड़ा वट वृक्ष है जो बहुत सुन्दर तथा पृथ्वीका अलङ्कार भूत है ॥

अनुवाद – मेघ बरसनेपर जिसके नीचे जलकी बूँदें नहीं गिरतीं और सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र जिसकी जड़को नहीं देखपाते, निरन्तर घने पत्तोंसे ढँके हुए छत्रकी तरह जिसकी छाया दूर मार्ग तक चलती हुई तथा यमुना जलके सम्पर्कवाली हवासे सुन्दर विश्रामकी स्थली बनगई है ॥५८॥

अनुवाद –प्रत्येक नवीन किसलयके समान सुन्दर तथा ऊँचे मस्तकवाला हरे पत्तोंके चार भाग बनाये हुए जो प्रतिदिन सायम् दोनों सन्ध्याकालमें उदयाचल अस्ताचलकी मानों पूजा करता है ॥५९॥

विशेष–उत्प्रेक्षालङ्कार ॥५९।

अनुवाद –जो अतिथियोंका सत्कार करनेके लिये अनेक दिशाओंसे आये सब पथिकोंको मृदु पवनसे हिलते हुए नव किसलयरूप हाथसे पक्षियोंके शब्द द्वारा बुलाते हुएकी तरह, पत्तोंके भारसे नम्र शिखर द्वारा उनको प्रणाम करते हुएकी तरह, नये पत्तोंपर बढ़ी हुई लालिमाके कारण उनपर अनुराग भारको प्रकट करते हुएकी तरह, अपने निकट बहती हुई यमुनाकी मृदु-तरङ्गोंमें विहार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घटमानपुटकिनीवल्लभनन्दिनी लघुतरलहरिविहारहारहारिणा नानाविधकमलकुलकल्हारकुमुदाटवीपर्यटन श्रमादिव, उपचितमञ्जुकञ्ज पुञ्जकिञ्जल्कक्लपबहुसौरभभावगौरवादिव, मन्दं मन्दं हता स्वगन्धैः ? कृत पुष्पन्धयनिवहेन गन्धवाहेन दरान्दोली भवद्भिरभिनवपल्लव चारु चामरैस्तानेव वीजयन्निव, निजतलपतितदलौघैस्तेषामेवासनसम्पदं सम्पादयन्निव, निजमुद्भावयति सतां भावम् । अतिविजनतरातिशीतलविततलवर्तिभिरविरलविनिवेशपेशलकिशलयपरं-परं व्याप्तव्योमतया यच्छिर एवावधार्यतेव्योम । निजगुरुभारनिर्भरन्यग्भावभुग्नीभवदवनिमेवोद्धर्त्तुमुपचीयमानो जटा कपट प्रकटित कोटिरिव. अविरतविरतविहितविष्णुपद[1]प्रकाशो बहुशोभमानशिफा[2]

करनेवाले तथा अनेक प्रकारके कमल समूह कल्हार कुमुदादिके समूहमें भ्रमणके परिश्रमसे मानों इकट्ठी हुई कंज समूहकी सौरभके भावसे प्राप्त मानों गौरवसे धीरे-धीरे अपनी उत्कट गन्धसे अन्य गन्धको दबाकर भ्रमर समूहको साथ लिये वायुके द्वारा कुछ हिलते हुए, नवीन पत्तोंके सुन्दर चंवरों द्वारा उन अतिथियोंका उद्वीजन करते हुएकी तरह, अपने नीचे गिरे हुए पत्तोंसे उन अतिथियोंको आसन देते हुए अपने आपको सदाचार व्यवहार करता हुआ प्रकट करता है। अति विस्तृत जन शून्य शीतल तलपर बैठने वालोंके द्वारा अत्यन्त घना कोमल पत्तोंकी परम्परा वाला आकाशमें व्याप्त होनेके कारण जिसका सिर ही आकाश है ऐसा निश्चय किया जाता है । अपने अधिक भारसे झुकती हुई टेढ़ी हुई पृथ्वीको उठानेके लिये बढ़े हुए मानों जटाके बहाने प्रकटितकी है कोटि अथवा नोक जिसने ऐसा निरन्तर अथवा कभी आकाशको प्रकाशित करनेवाला, अत्यन्त शोभित जटाओंके बहाने बढ़े हुए हजारों पैरों वालेके समान, गज शुण्ड सदृश स्थूल तथा निरन्तर धारा-वर्षणसे व्याप्त पृथ्वी तलपर छाये हुए मेघमण्डलके समान, खुली हुई जटाभारसे युक्त समाधिरत योगीके समान, निरन्तर पत्तोंके भारसे भङ्ग हो जायगा इस शङ्कासे बीच-बीचमें मोटे-मोटे जिनमें स्तम्भ लगाये हों, तथा असह्य बोझको ढोती हुई पृथ्वीके जटा सदृश मोटी बँधी हुई रस्सियोंकी तरह अथवा अत्यन्त घनी और चिकनी छाया होनेके कारण शीतल पवनको खानेके

---

(1) आकाश ।
(2) शेते इति शिफा बटादेःशाखाया अवलम्बिनी शिफा (मूलम्) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्याजविजृम्भित बहुपातसहस्रपादिव, करिकर परिपीवराविरल-तरासारस्यूत धरणितलाकाशतल कादम्बिनीमण्डल इव, विगलित-जटाभार समाधिसार महायोगीव, अविरलदलभूरिभारैर्भङ्गः स्यादिति शङ्कयैवान्तरान्तरानिहित स्थूलस्थूणाभिरिवाविषह्यमानभरभरित-वाह्यमानमह्या एव शिक्कानुकूलस्थूलरज्जुभिरिवातिनिबिडतराति-स्निग्धच्छायतयाशिशिर तरानिलकवलनकुतुकेन प्रतिविटपविलम्बमाना-भिरहिपरम्पराभिरिवातिदीर्घकालोद्भूततया द्राघीयसीभिरंगरुहराजो-भिरिव जटोपजटाभिरभिजटालो बहूवाऽऽलोकि परमाश्चर्यमिव व्रज-लोकैः। हरिः पुनरवलोक्य भाविरभसस्थलमिति जहर्ष, जहास च, निगूढम्। तत एव नातिदूरे निखिलनृगोकुलानन्दावनं वृन्दावनं कालिन्दी निकटे च, शकटैरर्द्धचन्द्राकृतिं विधाय विदधिरे निर्भियः सुखनिवासमाभीराः ॥६०॥

महीमूर्त्तेः शम्भोस्तपनतनयाम्भोसितलसद्
गुरुग्रीवं गोभिर्विहितहित गाङ्गेयलहरि।

उत्साहसे प्रत्येक शाखामें लटकते हुए लम्बे सर्पोंकी तरह अति दीर्घकालमें प्राचीनताके कारण उत्पन्न हुई लम्बी-लम्बी रोमपक्तिकी तरह जटाओं और उपजटाओं से जटाधारी वह महान् "वटवृक्ष" परम आश्चर्यकी तरह व्रजवासियों द्वारा देखा गया। भगवान् कृष्ण उसे देखकर भविष्यमें क्रीड़ा स्थल जानकर प्रसन्न हुए और मनमें हँसे। वहाँसे थोड़ी ही दूरपर सब मनुष्यों तथा गौओंको आनन्द प्रदान करनेवाले वृन्दावनको यमुनाके किनारे शकट समूहसे अर्ध चन्द्राकार बनाकर निर्भय होकर ग्वाल-बालोंने अपना निवास स्थान बनाया। इस वृन्दावनको कविने महीमूर्ति शङ्कर भगवान्के सिरकी उपमा दी है ॥६०॥

विशेष—कविवर कालिदासने शिवकी ८ मूर्ति लिखी हैं. उनमें पृथ्वीको भी शिवमूर्ति माना है। कविवर मित्रमिश्रने वृन्दावनभूमिको शिवरूप माना है और शिवकी सभी उपमायें सांगोपांगदी हैं। या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति हुतवहं याह-विर्या च होत्री····यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति" शा० अङ्क०१, श्लोक १ ॥६०॥

अनुवाद—पृथ्वी मूर्तिवाले भगवान् शङ्कर तपन तनया यमुनाके जलसे शोभित ग्रीवावाला, श्वेत गौओंके द्वारा मानों गङ्गाजीकी श्वेत लहरें जिनके ऊपर शोभित हैं तथा अर्धचन्द्राकार शकट समूह के द्वारा सुन्दर अर्धचन्द्र जिसपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उदञ्चत्साधीयः शकटघटितार्द्धेन्दुमुकुटं
बभौ वृन्दारण्यं त्रिभुवनशरण्यं शिर इव ॥६१॥
अमृतोल्लसनं विष्णुपदोल्लासमलाञ्छनम् ।
सर्वोपरि बभौ वृन्दावनमर्द्धमिवेन्दवम् । ६२॥
दूरोद्धूततमोनीतिगोवृन्दैरभिनन्दितम् ।
वृन्दावनतमीशार्द्धमासीन्निशि दिवा समम् ॥६३॥
हरमूर्द्धस्थितस्यापि विधोः स्पर्द्धां विधास्यति ।
अर्द्धचन्द्राकृतिर्नूनमित्यनोभिरतानि पूः ॥६४॥
लोकेषु त्रिषु तद्धाम नाम स्पर्द्धेत किं पुरम् ।
प्रारम्भेणैव सम्भूतमर्द्धचन्द्राकृतीह यत् ॥६५॥
मुरारातिपदासङ्गरङ्गोद्धत मिवास्पदम् ।
चम्पकेतुमिषेणोपजहास त्रिजगत्पुरम् ॥६६॥

शोभित है ऐसा वृन्दावन मानों तीनों लोकोंको शरण देनेवाला भगवान् शङ्करका सिर है ॥६१॥

अनुवाद—अमृत परिपूर्ण लाञ्छनशून्य आकाशको शोभित करनेवाला वृन्दावन मानों अर्धचन्द्रके समान शोभित होरहा है ॥६२॥

अनुवाद—तमोगुणी नीतिको तथा अन्धकारको दूरतक नष्ट करनेवाला तथा गौओंसे अभिनन्दित वह वृन्दावनरूपी अर्द्धचन्द्र रात्रिमें दिनके समान प्रतीत होता था ॥६३॥

अनुवाद—शकट समूह अर्धचन्द्रके आकारवाला निवास यह सोचकर ऐसा बनाया गया था जो निश्चय ही भगवान् शङ्करके सिरपर रहनेवाले चन्द्रमाकी स्पर्धा करेगा ॥६४॥

अनुवाद—इस निवासकी क्या लोकत्रयमें उनके धामकी स्पर्धाकी जायगी, जो प्रारम्भसे ही अर्धचन्द्रके आकारवाला जिनका स्थान बना है ॥६५॥

अनुवाद—मुरशत्रुके चरणोंमें आसक्ति रखनेवाला यह सुन्दर स्थान चम्पक ध्वजाके बहाने मानों तीनों जगत्का उपहासकर रहा था ॥६६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्त्तव्यानन्तसेवेति द्विखण्डीभूय चन्द्रमाः ।
अनन्ताभिख्ययोरासीद्वसुधानभसोरपि ॥६७॥

अर्द्धेन्दोर्भङ्गिभाजिप्रकटितशकटस्योद्भटाभिर्घटाभि-
र्वृन्दाटव्युत्कटाभा घटितपटुपदा चित्रमासीत्तदेव ।
कोदण्डं दण्डपाणिर्यदमनुत निजाखण्डदण्डोग्रदण्डं
यत्पण्ड[1]श्चण्डिमाऽभूद् दुरितभटनटद्भूपुटीभ्रूकुटीनाम् ॥६८॥

वृन्दावने शकटस्थिति वर्णनम्

वृन्दारण्याभिधाने शकट घटनयैवार्द्धचन्द्रायमाणे
स्थानेप्याशोभमानेन्तरभुवि जलदास्कन्दने नन्दसूनौ ।
भूरेषाभालभूषामकृत मृगमदैः प्राह कश्चित्परस्तु
[2]स्फारभ्रूभित्तिभाजि भ्रमति दृशि भृशं मोक्षलक्ष्म्याः कटाक्षः॥६९

अनुवाद—अनन्तकी सेवा करनी चाहिये यह बतानेके लिये अनन्त नामवाले आकाश और पृथ्वी दोनों मानों दो खण्ड होकर कह रहे थे ॥६७॥

विशेष– आकाश और पृथ्वी दोनोंका अन्त न होनेसे अनन्त कहलाते हैं ॥६७।

अनुवाद—अर्धचन्द्रकी भङ्गिमा प्रकट करने शकट समूहकी उद्भट घटाओंसे वृन्दावनकी शोभा उत्कट तथा बड़ी सुन्दर थी, उनमें एक आश्चर्य हुआ, दण्डपाणि यमराजने अखण्ड उग्रदण्ड देनेवाला उसे धनुष समझा, पापरूपी योधाओंकी भ्रूकुटियोंको उग्रता उसे देखकर सब समाप्त होगई ॥६८॥

विशेष—वृन्दावनको देखकर पापोंकी शक्ति क्षीण होगई ॥६८॥

वृन्दावनमें शकट स्थितिका वर्णन

अनुवाद शकट समूहकी रचनासे अर्धचन्द्रके आकारवाले वृन्दावनमें तथा पृथ्वीपर स्थानके शोभित होनेपर तथा नन्दसूनु कृष्णके मेघकी स्पर्धावाला श्यामलरूप धारण करनेपर इस पृथ्वीने कस्तूरीसे अपने मस्तकको भूषित किया, इसपर किसी रसिकने कहा कि विस्तृत भ्रूकुटि शोभित दृष्टिपर मोक्षरूपी लक्ष्मी का कटाक्ष होरहा ह ॥६९॥

---

(1) पण्डः=षण्ढः—"तृतोया प्रकृतिः शण्ठः क्लीवः पण्डोनपुंसकम्" अ. २।६।३९
(2) स्फार=स्फाय+रक्=विस्तृत ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सप्ताधः सन्ति गुप्ता ध्रुवमिदमतुलोभूय भावीति लोकाः
स्वर्भूमीशामृतान्धा भ्रमविधुरमपि ज्योतिषामैक्षि चक्रम् ।
भेजुः पञ्चत्वभाजः परमुपरि पुरः पञ्चताभागिभोग्याः
का योग्याः सन्तु वृन्दावननगरतुलां पर्य्युपेतुं नगर्य्यः ॥७०॥

चन्द्रोदयवर्णनम्

वृन्दावनवृन्दैरानन्दानां घनीभवतः
अम्बरमुकुरविलम्बिप्रतिबिम्बं स्वरेव तं ब्रूमः ॥७१॥

व्रजमहिलामुखचन्द्रान्वृन्दावनभूषु भूरुहान्तरितः ।
ऐक्षत चरमदशायां रभसादिव पद्मिनीरमणः[1] ॥७२॥

अनुवाद—निश्चय हो इस वृन्दावनको तुलना हम नहीं कर सकते यह सोचकर सात लोकके नीचे अतल-वितलादि नीचे छिप गये, स्वर्गपति अमृतसे तथा भूमि पति मोहसे अविचार शील है ज्योतिष, चक्र, नक्षत्र समूह सब भ्रमण करनेसे विकल होने लगे। ऊपरके कुछ लोकोंको शरीर त्यागके पश्चात् पञ्चत्व भागी ही भोग सकते हैं फिर कौन-सी नगरियाँ वृन्दावन नगरकी समानता करनेको समर्थ हो सकती हैं ॥७०॥

विशेष—पांचतत्त्वों पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसे यह शरीर निर्मित होता है पांचतत्त्वोंका मूलरूपमें मिलना ही मृत्यु कहलाता है ॥७०॥

चन्द्र उदयका वर्णन

अनुवाद—अनेक वृन्दावनोंके आनन्दोंके घनीभूत समूहका आकाशरूपी दर्पणमें विस्तृत पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब ही स्वर्ग है। यह हम कहते हैं ॥७१॥

विशेष—अब तक स्वर्गकी छाया भूमिपर आती थी पर कविका कथन है कि आकाश दर्पणमें प्रतिबिम्ब भाव स्वर्ग है ["दिवःखण्डमेकम्" [मेघदूत पू०] अवन्ती नगरी स्वर्गका खण्ड है और जिनके पुण्यशेष रह जाते हैं उन्हें भूमिमें यह भूभाग निवास करनेको मिलता है] ॥७१॥

अनुवाद—वृन्दावनकी भूमिमें वृक्षोंमें अन्तरित होकर छिपकर सूर्य भगवान्ने अपनी अस्तकाल दशामें शीघ्रतासे व्रजगोपियोंके मुखचन्द्रका दर्शन किया ॥७२॥

विशेष—सूर्य-चन्द्रका दर्शनकर रहे हैं, सुन्दर कल्पना है ॥७२॥

---

(1) सूर्यः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथमं मन्दिरवासादिव बहिरासामुदीक्ष्य मुखचंद्रान् ।
अनुरागारुणबिम्बो दिनमणिरालम्बते स्म चरमाशाम् ॥७३॥

पूर्वं व्यधात्कुमुदिनी विरहोपतापं
पापं तदाप परिपाकमिति प्रतीमः ।
यत्पद्मिणोविरहदावमुखे मिषेण
सन्ध्यारुचेर्ज्वलति चण्डरुचि[1]र्ममज्ज ॥७४॥

निर्यन्तीभीरिवात्मना सह घनाम्भोजाटवो कान्तिभिः
शोणोभूय सरोजिनीपरिवृढः सार्द्धं प्रतीचीरुचा ।
वारम्वारमुदीक्ष्यमाण इव तां पद्माननां पद्मिनीं
प्रेम्णा मन्थरमद्रिकन्दरतटीमाटत्पटीयानपि ॥७५॥

श्रीवासानन्दकन्दः कमलजनिभूल्लाससन्दोहसिन्धु—
र्लोकानामेकबन्धुर्निखिलगिलतमोभावपादप्रभावः ।

अनुवाद—मानों गृह निवाससे बाहर प्रथम गोपियोंका मुखचन्द्र देखकर उनके प्रेमसे अरुण बिम्ब होकर सूर्य पश्चिम दिशामें लटक रहा है—यह सूर्यास्तका वर्णन है ॥७३॥

विशष—उत्प्रेक्षालङ्कार ॥७३॥

अनुवाद—प्रथम कुमुदिनीने जो विरहका कष्ट सहन किया था उस कष्ट सहनसे उसका पाप पककर समाप्त होगया यह हम विश्वास करते हैं। जो सन्ध्याकी अरुण शोभाके बहाने जलती हुई पद्मिनीकी विरहाग्निमें सूर्य डूबा है—उसने निकलकर कुमुदिनीको दुःखी किया था ॥७४॥

अनुवाद—निकलती हुई कमल समूहकी कान्तिके साथ स्वयं सरोजिनी द्वारा वृद्धिको प्राप्त सूर्य पश्चिमकी शोभाके साथ लाल होकर बार-बार सुन्दर मुखवाली कमलिनीको देखता हुआ चतुर होता हुआ भी प्रेमसे शिथिल पर्वतकी कन्दरामें चला गया अर्थात् अस्त होगया ॥७५॥

अनुवाद—श्रीके निवाससे आनन्द देनेवाला कमलोंको खिलाकर आनन्द समूहका समुद्र लोकका एकमात्र बन्धु सम्पूर्ण अन्धकारकी विनाशक किरणोंवाला दोषा रात्रि अथवा दोषोंका विनाशक ऐसा सूर्य भी परिणत होकर पश्चिम दिशामें

---

(1) चण्डरुचिः=सूर्यः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सद्यो दोषाभिमर्दी स बत परिणतो वारुणी[1]मालम्बे
क्रोधैरन्धेति सन्ध्या ज्वलति धृतवती दुर्द्धरं धामशोणम् ॥७६॥
मन्दीभूत निजप्रभृतिकिरणत्वेनातिमात्रोज्ज्वल–
च्छैलोपान्त हुताशसन्तति चमत्कारं रविः प्रैक्षत ।
अस्तोर्वीधरगर्भगह्वरवहद्दुर्वारदीर्घोभव –
द्रक्तोग्रद्युति-लक्ष-भक्षकफणिस्फूर्जन्मणिश्रीः क्षणम् ॥७७॥
सौर्वाग्निर्वारुणाशाचरमिहिरकरैः[2] कुत्रचित् कुत्रचिच्च
प्राच्यां नक्षत्ररत्नः क्व च तिमिरचितास्फालकल्लोलचक्रः ।
अव्यक्तानन्तमध्यः क्वचिदपि वसुधाधामसंधानसंधिः
सन्ध्यासिन्धुं समिन्धे जगति किमरं राघवेन्द्रैरलङ्घ्यम् ॥७८॥
अनुरागिणि मार्त्तण्डे दिगभूदनुरागिणी ।
रागो हि प्रिययोर्योगे दुर्वारः स्याद् द्वयोरपि ॥७९॥

लटक गया, अतः सन्ध्या क्रोधसे अन्धी होकर जलने लगी और कठोर लाल तेज धारणकर लिया ॥७६॥

अनुवाद—अस्ताचलकी गर्भ गुहामें दुर्वार और विस्तीर्ण लाल शोभाकी शिथिलतासे चमकती हुई मणि शोभाके समान अपनी किरणोंके शिथिल होनेसे उज्ज्वल पर्वतके समीप अग्नि ज्वालाके चमत्कारकी तरह सूर्य चमकने लगा। अर्थात् अस्त होते हुए सूर्यका तेज कुछ शिथिल होगया ॥७७॥

अनुवाद—पश्चिममें सूर्य किरणोंसे ही कहीं-कहीं अग्नि ज्वाला जैसा प्रकाश है, पूर्व दिशामें चन्द्रमा है, कहीं रात्रिका विस्तृत अन्धकार भी है, कहीं-कहीं पृथ्वी व गृहोंका आदि मध्य अन्त नहीं प्रकट हो रहा है। संसारमें राघवेन्द्रसे भी अलङ्घनीय दूसरा ही यह सन्ध्यारूपी सिन्धु बढ़गया है ॥७८॥

विशेष—प्रकृतिका चित्रण है ॥७८॥

अनुवाद—सूर्यके अनुराग युक्त होनेपर सन्ध्या भी अनुरागिणी होगई। दोनों प्रिय-प्रियाओंके योगमें राग हटाया नहीं जा सकता [अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरः सरः (का० प्र०) ॥७९॥

---

(1) वारुणी—सुरा प्रत्यक् च वारुणी । वरुणस्येयम् "तस्येदम्" इत्यणि वृद्धौ अलोपे "टिड्ढाणमिति" ङीपि च वारुणी । वारुणी गण्डदूर्वायां प्रतीची सुरयोः स्त्रियाम्" (इति मेदिनी) अ० को० टी० पृ० ४५६ ।
(2) सूर्यः—मेहतीति मिहिरः । (अ० को० १।३।२९)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हा सिन्धौलोकबन्धौ पतति विधिवशाद्राजनीवाजनि द्राग्-
द्वैराज्यं सर्वराज्ये सतनुतनुरुजं सोऽतनुः संतनोति ।
दोषोद्रेकाद्द्विरेफोऽनुभवति कुमुदं भाविदोषाकरश्री
र्यच्चक्षुर्गोचरार्थानपि हरति हठाद् ध्वान्तदुर्दान्तदस्युः ॥८०॥
तुङ्गभूतिभिरभावितमोभिर्ज्योतिरिङ्गणगणैस्समदोपि ।
युक्तमेव तव शीलितदोषाख्यानकालकवलीकृतभानोः ॥८१॥

अन्धकारवर्णनम्

गम्भीरैरवगाहितेव जलदैर्ग्रस्तेव कालाहिभि-
र्व्यस्तेव द्विपयूथपैर्निरवधौ मग्नेव मष्यम्बुधौ ।
क्रीडत्क्रोडकुलाकुलेव परितो गूढेव गाढाञ्जनैः
कस्तूरीपरिपूरितेव विदधे ध्वान्तैर्जगन्मण्डली ॥ ८२ ॥
वारुण्याश्रयणोज्जिहानकुयशोभारैरिवाहर्पते[1]-
र्दुर्वारैरुदसर्पिसर्पकलुषाकारान्धकारोत्करैः ।

अनुवाद—हा, लोक बन्धु राजा सूर्यके समुद्रमें गिरनेपर एक साथ क्या हुआ ? वह शरीर हीन अन्धकार अथवा काम सब राज्यमें अथवा दो राजाओंके राज्यमें शरीरधारीके शरीरमें पीड़ा कर देता है। दोषा रात्रिके अथवा दोषोंकी अधिकतासे आगे आनेवाली चन्द्रशोभाका ध्यान करके भ्रमर कुमुदका आश्रय ले रहा है। अन्धकाररूपी दुर्दान्त चोर हठपूर्वक आँखोंके सामने वस्तुको नहीं देखने देता ॥८०॥

अनुवाद—अन्धकार बढ़ गया चलने वालोंने ज्योतिः अथवा प्रकाश जलाया। प्रसिद्ध दोषा (रात्रि) अथवा दोषको बतानेवाले कालसे कवलित सूर्यको यह ठीक ही है ॥८१॥

अन्धकारका वर्णन

अनुवाद—सब जगत् मण्डली अथवा पृथ्वी मानों घने बादलोंसे भरगई हो अथवा कालरूप सर्पोंसे ग्रस्त होगई हो अथवा गज समूहसे व्यस्त होगई हो अथवा अवधिशून्य स्याहीके समुद्रमें डूब गई हो अथवा क्रीड़ा करते हुए शूकर कुलसे व्याप्त हुई हो अथवा गहरे काले अञ्जनसे लिप्त हो गई हो अथवा कस्तूरी-से भर गई हो इस प्रकार अन्धकारसे भर गई ॥८२॥

अनुवाद—पश्चिम दिशामें आश्रय लेनेसे उठे हुए सूर्यके दुर्वार अपयश-

---

(1) अहर्पते—त्विषांपतिरहर्पतिः । (अ० को० १।३।३०) अन्हःपति=सूर्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्बद्धमधुव्रतस्य रुदती हुङ्कारकोलाहलै
स्तद् द्रष्टुं द्रुतमक्षमेव पिदधे पद्मेक्षणं पद्मिनी ॥८३॥

धरणिकुहराद्गर्भाद्दुर्वीभृतां तरुकोटराद्
बहिरभिययुः खद्योतानां मिषेण मरीचयः[1] ।
अहिततिमिरैरान्दोल्यन्तेऽन्तरावलिभिर्गते
[2]सवितरि परीवाराः प्रायः प्रभूदयसोदयाः ॥८४॥

सह दिनकृतैवाह्नायाह्ना प्रयातमथोन्मथा
किल कमलिनी यास्यत्येषा दिषां भयशालिनी ।
इति गुरुतमोवृन्दैः सान्द्रैर्दिशो दश गोपिता
निखिलपदवी रुद्धा क्रुद्धात्मभिर्मुषिता दश ॥८५॥

दुर्वारः कालचोरो दिनमणिमहरद्यन्नभःप्राङ्गणस्थं
जाग्रत्येवाऽखिलेऽपि स्वपिति सति पुनर्नाद्भुतं नेष्यतीति ।

से अथवा ऊपर उठते हुए सर्पके समान कलुष आकारवाले अन्धकार समूहसे अथवा अन्दर बन्द हुए भ्रमरके हुङ्कार कोलाहलसे देखनेमें असमर्थ होती हुई पद्मिनीने अपने नेत्रकमल तत्काल बन्दकर दिये । अर्थात् संकुचित हो गई ॥८३॥

अनुवाद—पृथ्वीके अन्दरसे तथा पर्वतोंके मध्यसे तथा वृक्षोंके कोटरोंसे खद्योतके बहाने किरणें बाहर निकलने लगीं । सूर्यके अस्त हो जानेपर प्रायः प्रतिकूल अन्धकार अन्दरसे निकलता हुआ प्रभुके उदयके साथ उदित होनेवाले परिवारको भी निकालना चाहता है । ८४॥

अनुवाद - सूर्यके साथ ही तत्काल दिन भी अस्त हो गया तथा कमलिनी भी उन्मथित हो गई, यह भी प्रकाशके शत्रुको भय देनेवाली हो जाती यही जानकर घने अन्धकारने दशों दिशाओंको छिपा दिया । क्रुद्ध होकर अन्धकारने प्रकाशके सब मार्ग रोक दिये ॥८५॥

अनुवाद—दुर्दमनीय कालरूप चोरने सबके जागते हुए आकाशरूपी आँगनमें बैठे हुए सूर्यको चुरा लिया और सोनेपर तो क्या नहीं ले जायगा । ऐसी

---

(1) मरीचयः—"भानुः करो मरीचिः स्त्री पुंसयो र्दीधितिः स्त्रियाम्" म्रियते तमोऽस्मिन्निति मरीचिः । (अ० १।३।३३) ।

(2) तपनः सविता रविः (अ० को० १।३ ३१) सुवतीति सविता ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इत्यन्तर्भूतचिन्ता सपदि दश दिशो रोदसीपूरसीम-
द्वाराणि ध्वान्तकूटै रजनिरपिदधे दुर्विपाटैः कपाटैः ॥८६॥
उत्तुङ्गादद्रिशृङ्गात्कमलकुलपतौ दत्तझम्पे[1] पयोधौ
कीलालै[2] रुच्छलद्भिर्नवजलदनिभैर्विश्वमाप्लावि सद्यः।
ताराखद्योतधाराकपटमणिघटाः कुर्वते पर्वतेऽपि
व्योमान्तर्दिग्दिगन्तेऽप्यतिशयमियता सर्वतो वीथि बन्धम् ॥८७॥
महाद्रिसानोरिव चण्डभानोः पयोधिपाथः सु बभूव पातः।
तमोमिषेणेति विशालजालं विधिस्तमुद्धर्तुमिव व्यधत्ताम् ॥८८॥
नीहारास्रै रजस्रं कुवलयनयनप्रान्ततो निष्पतद्भिः-
कोकानां काकुरावैर्बत वियति समुत्क्षिप्य नक्षत्रमालाम्।
उन्मुक्तध्वान्तधाराघनकचनिचयाच्छादिताङ्गी रुचोना
मस्तं यातेऽधिनाथे[3] विलपति जगतो वर्द्धितास्तोकशोका ॥८६॥

हृदयमें चिन्ता होनेपर रात्रिने अन्धकार समूहके द्वारा आकाश पृथ्वीके असीम द्वारोंको कठोर किवाड़ोंसे बन्दकर दिया ॥८६॥

अनुवाद—ऊँचे पर्वत शिखरसे समुद्रमें सूर्यके कूदकर अस्त होनेपर नये बादलोंकी तरह उछलते हुए जलसे सारा विश्व आप्लावित हो गया। इतनेमें पर्वतपर आकाशके मध्य एवं दिशाओंमें भी तारागण तथा खद्योतकी धाराओंके बहाने मणि कलशोंने अत्यन्त वीथियोंका बन्धन जैसा उत्पन्नकर दिया है ॥८७॥

अनुवाद—पर्वतकी ऊँची चट्टानसे समुद्रके जलमें सूर्यका पतन हुआ, विधाताने उसे जलसे निकालनेको अन्धकारके बहाने बहुत बड़ा जाल डाला है। कविने प्रकृतका निषेध करके अन्य साधनाके द्वारा बड़ा सुन्दर अपन्हुतिका प्रयोग किया है ['प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् साध्यते सात्वपन्हुतिः"]। अन्धकारका निषेध कर जाल डालना सुन्दर कलपना है ॥८८॥

अनुवाद – नीलकमल रूप नयन प्रान्तमे गिरते हुए नीहाररूप आँसुओंसे कोकोंके मदन शब्दसे आकाशमें नक्षत्रमाला रूप भूषणोंको फेंककर बढ़े हुए अन्ध-

---

(1) झम्पे— झम्+पत्+ङ (स्त्रियां टाप् च) उछल-कूद।
(2) कीलाल –(कील+अल्+अण्) जल। पयः कीलालममृतम्' अ०को०
(3) अधिनाथः—परमेश्वरः। चन्द्रे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अभिससार विधुं रजनीवधूस्तिमिरनीलनिचोलमुपेयुषी ।
यदवमोच्य करेण कुतूहली सह तया स चिरं विहरिष्यति ॥९०॥

प्रातः वर्णनम्

अथ सुखमयमेव यामवतीमतीत्य प्राचीमुखचुम्बिनि मरीचिमालिबिम्बे हरिबिम्बाधरमधुरविकस्वरार्द्धभणिति मधुमाधुरीजलधिकृतविनोदयोर्नन्दयशोदयोर्न केवलं दिनमुखमेव सुप्रभातमपि तु जन्मकर्म्म धर्म्मशर्म्माणि मर्म्माणि [1]नर्माण्यपि सुप्रभातानि जातानि । निरवधिनिखिलानन्दयशोदानन्दनरोहिणीनन्दनयोरतत्त्वविज्ञानामाभीराणामाज्ञामनुपालयतोः कदाचिदुपहरणमदूरवर्त्तिनामेव सलिलपान भोजनादि भाजनानाम्, त्रिभुवनमूर्द्धन्ययोरपि, क्वचिदपि मूर्द्धन्येवोद्वहन-

---

कारकी धारा रूप खुले केश समूहसे शरीर ढँके हुए कान्तिके अधिनाथ सूर्यके अस्त होनेपर अत्यन्त बढ़ा हुआ है शोक जिसका ऐसी दशामें रो रही है ॥८९॥

अनुवाद—अन्धकार रूप नील प्रच्छद पट (चादर) ओढ़कर रजनी रूप वधूने चन्द्रके पास अभिसार किया । वह कुतूहली चन्द्र हाथसे उसकी चादर हटाकर उसके साथ विहार करेगा । अन्धकार लेकर रात्रि आई है चन्द्रमा उसके अन्धकार को हटाकर उसके रूपको उज्वल करेगा यही चन्द्रमाका विहार उसमें भी कविने बड़ी कुशलतासे अपन्हुतिको व्यक्त किया है ॥९०॥

प्रातः वर्णन

अनुवाद—इसके अनन्तर सुखपूर्वक रात्रिको व्यतीत करके सूर्यके पूर्व दिशाका मुख चुम्बन करते ही अर्थात् निकलते ही हरिके अधर बिम्बकी मधुर तथा अर्ध विकसित तोतली बोलीकी माधुरीके आनन्द समुद्रमें विनोद करनेवाले नन्द यशोदाको केवल प्रातःकाल ही सुन्दर नहीं था अपितु जन्म कर्म धर्म सब प्रकारके आनन्द सभी बड़े सुखप्रद तथा हर्षयुक्त थे । असीम अखिल आनन्द स्वरूप कृष्ण बलरामके तत्त्वको न जाननेवाले गोप समूहको आज्ञामें रहनेवाले ये दोनों कभी पासमें रहनेवालोंको भी जलपान तथा भोजन पात्रादिको लाते थे । तीनों लोकोंके शिरोधार्य कृष्ण-बलराम पीठ परिमाण पादुकादिको किरीटकी तरह सिरपर रखकर ले जाते थे, किसी समयपर वाणीसे अगोचर इन दोनोंको

---

(1) नृ+मनिन्, क्रीडा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महह किरीटानामिव पीठपरिमाणपादुका[1]दीनाम्; क्वचिदपि समये गिरामगोचरयोरपि प्रकृतीनामेव गोचरीकरणं गोवारिणामेव सहचारिणीतः, वागधीशयोरपि वाचामेव कदाचिदभ्यसनम्, गोलोकपालकयोरपि क्वचिदपि गवामेव परिपालनपरिचर्याकलनमादराद्दीर्घम्, एवंविधविविधकैशोरानुकृतिविहारसम्पदो बहुवेलं बहुधंवोदपद्यन्त ।

वत्सचारण लीला

वात्सानां बन्धमोक्षं निभृतसमये कुर्वतोर्बालकानाम्
निद्राणानान्तु निद्राविघटनमभितः क्रीडतां ताडनानि ।
चातुर्य्यं चौर्यचर्याचितमुपचरतोश्शिक्यभाण्डस्थितानां
कौमार्यं दुर्निवार्य्यं हरिहलधरयोराविरासीदसीम ॥९२॥
भग्नं भग्नमहार्यहारि भवनान्निर्गम्यते गम्यते
भुक्तं भुक्तमताड्यताडि पुनरप्यावृत्यते वृत्यते ।
नीतं नीतममोच्यमोचि हरिणैवाकार्यकारीत्यभू
त्कौमार्येषु हरेरहर्निशमसौ वाग्विभ्रमः सुभ्रुवाम ॥९३॥

सबके सन्मुख गोपियोंके साथ गोपोंको भी दर्शन देते । वाणीके स्वामी दोनोंको शब्दोंका स्मरण कराना, गोलोकके पालक दोनोंका कभी आदरसे लम्बी गोपालन की परिचर्या बताना इस प्रकारकी अनेक किशोरावस्थाके आनन्द हर समय अनेक प्रकारसे होते रहते थे ॥९१॥

वत्स चारण लीला

अनुवाद—असमयपर बछड़ोंको बन्धनसे छुड़ाना, सोते हुए बालकोंकी निद्राको नष्ट कराकर जगाना, खेलते बच्चोंको ताड़न करना, बड़ी चतुरतासे मक्खनादिकी चोरी करना, छींकेपर रक्खी मक्खनादि वस्तुओंको चुराना, इस प्रकार की हरि हलधरको कुमार अवस्थाका असीम आनन्द था ॥९२॥

अनुवाद—तोड़ दिया, तोड़ दिया, ले गया, ले गया, घरसे निकल गया, निकल गया, खा लिया खा लिया, पीट दिया, पीट दिया फिर आगया, आगया, ले लिया, ले लिया, छोड़ दिया छोड़ दिया हरिने यह कर दिया, कर दिया, हरिकी कुमार अवस्थामें गोपियोंका रात-दिन यही शोर मचा रहता था ॥९३॥

---

(1) "शिक्यं काचोऽथ पादुका" (अ० को० २।१०।३०) स्तंसेः शिः कुट् किच्च इति यति, शिरादेशे, कुटि च शिक्यम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनतिदीर्घेणैव कालेन मदकलकलभाविव दुर्विभाव्यप्रभावो द्वावप्याभीरकिशोरपरम्पराभिः सह नगरानतिदूर एवचारयाञ्चक्रतु-रौत्सुक्येन कतिचन वत्सान् ॥९४॥

ललाटनटितालकं रटितकिङ्किणीजालकं
नवीनपशुपालकं सवनमालकं बालकम् ।
झणज्झणितनूपुरं लसितगोपुरं तं पुरः
स्ववत्समनुगामिनं कलयति स्म नन्दः कृती ॥९५॥

प्रतिदिनमपि प्रातः प्रातः प्रियप्रिय चुम्बनै-
र्मधुरमधुरस्निग्धस्निग्धोक्तिभिः प्रतिबोधितः ।
हरिरथ समं भ्रात्रा मात्रा पयो दधि भोजितः
सह शिशुगणैर्वत्सानुत्साहितः समचारयत् ॥९६॥

मधुरमुरलीशृङ्गोत्सङ्गः सवेत्रकराम्बुजो
लघुललितया घट्या कट्यां त्रिधा परिवेष्टितः ।
अलिकफलिके गौरं गोरोचनाकणभूषणं
दधदहरत स्वान्तं शान्तं हठादपि योगिनाम् ॥९७॥

अनुवाद—थोड़े ही समयमें मद शोभित गज कलभकी तरह जिनका प्रभाव नहीं जा सकता ऐसे दोनों कृष्ण और बलराम ग्वाल-बालोंके साथ नगरके समीपमें ही बड़ी उत्सुकतासे कुछ बछड़ोंको चराने लगे । ९४॥

अनुवाद—मस्तकपर बाल धीरे-धीरे हिल रहे हैं तथा किङ्किणीके घुंघुरु बज रहे हैं ऐसे नये पशु-पालन करनेवाले वन मालासे शोभित अपने बछड़ों-के पीछे चलनेवाले हरिको नन्दबाबा बड़ा प्रेम कर रहे हैं ॥९५॥

अनुवाद—प्रतिदिन प्रातःकाल प्रिय चुम्बनसे तथा मीठी-मीठी प्रेमभरी स्निग्ध उक्तियोंसे जगाये हुये फिर भाईके साथ माताके द्वारा दूध-दही खिलानेके पश्चात् ग्वाल बालोंके साथ उत्साहसे बछड़े चराने चले गये ॥९६॥

अनुवाद—मधुर मुरली और शृङ्ग गोदमें रक्खे हुए, हाथमें बेंत लिये हुए, हलकी सुन्दर पट्टीसे कमरमें तिहरी लपेटे हुए भालपर गोरोचनका सुन्दर भूषित तिलक लगाये योगियोंके शान्त हृदयको भी हठात् वशमें कर रहे थे ॥९७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृदुचरणयोः शिञ्जन्मञ्जीरयोर्मणिघर्घर
ध्वनिनि जघने हारस्फार प्रभाजुषि वक्षसि ।
पथि विहरतोर्वत्सैरच्चैः क्षणं पतदीक्षणं
चिरमनिमिषं तस्थौ सुस्थौकसीव गृही जनः ॥९८॥

सुपटु घटयन्वत्सान्स्वच्छांकुरे नवशाद्वले[1]
स्वयमनुचरन्कच्छे कच्छे समुत्सुकमानसः ।
चिरमुपगतः स्निग्धच्छायास्थलीः सहली हरि
र्व्यहरदमितैराभीराणामभीः[2] शिशुभिः सह ॥९९॥

वेणुं वादयतः कदापि नटतः शिञ्जानमञ्जीरकं
सानन्दं क्षिपतश्च कन्दुकमथोद्धर्त्तुं पुनर्धावतः ।
बालैः कृत्रिमवत्सरूपरुचिरैः सार्द्धं हरेः क्रीडतो
वत्सीभूय पुरो बभूव दनुभूर्वत्सैः[3] समं मत्सरः ॥१००॥

अनुवाद --मञ्जीरके शब्दसे गुञ्जित कोमल चरणोंपर मणियोंकी घर्घर ध्वनिवाली जङ्घाओंपर हारको सुन्दर शोभायुक्त वक्षःस्थलपर सुन्दर बछड़ोंके साथ घूमते हुए दोनोंके मार्गमें गृहस्थ लोग पलकशून्य दृष्टि डालते हुए सुन्दर घरके समान देखते रहते थे ॥९८॥

अनुवाद—स्वच्छ अंकुरवाली नई-नई घासमें बछड़ोंको ले जाते हुए स्वयं उत्सुक मन होकर किनारे-किनारे घूमते हुए बलरामके साथ कृष्ण चिकनी सुन्दर छायावाले स्थानपर पहुँचे अनेकों ग्वाल-बालोंके साथ निर्भय होकर घूमते रहे ॥९९॥

अनुवाद—वंशी बजाते हुए कभी शब्द करते हुए मंजीरोंके साथ नट-लीला करते हुये आनन्दसे गेन्द फेंकते हुए और उसे उठानेको दौड़ते हुए बनावटी बछड़ारूप धारण किये हुए बालकोंके साथ खेलते हुए हरिके आगे द्वेष करनेवाला दानव वत्सासुर बछड़ा बनकर आगया ॥१००॥

---

(1) शाद्वले— तृणे ।
(2) अभीः—भयरहितः ।
(3) वत्सासुर कथा भा० १० स्कं० ११ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वत्सासुर वधोपक्रम

सकल सुरासुरभयंकरं तमसुरं बधाय साधारणवत्सरूप धारिणं हलधरमवलोकयन्मधुसूदनः पुनरिदमभाणोत् ॥१०१॥

अहो पश्य बलदेव—

वलति सविधे मन्दं मन्दं गवां शिशुताभुवां
चकितचकितं चक्षुर्दिक्षु क्षिपन्नपि वीक्षते ।
तृणमपि मुदादत्ते धत्ते रदैः स्वदते मदै[1]—
र्न खलु तुलितो वत्सैर्वत्सासुरोऽयमुदीर्य्यते ॥१०२॥
दशतरलितैर्लाङ्गूलाग्रैर्द्वयोरपि पार्श्वयो—
स्तनुमनुवलद्वीथीबन्धां व्यपोहति मक्षिकाम् ।
विरचित वपुर्दंशं दंशं निराकुरुते द्रुतो—
द्वलितवदनाघातैः कण्डूयते च रदांकुरैः ॥१०३॥
निपतति हठादङ्गे यस्मिन्मनागपि मक्षिका
चलति तरसा[2]वारं वारं तदेव न चापरम् ।

वत्सासुर वधोपक्रमः

अनुवाद—सब असुर और देवताओंको भय देनेवाले उस असुरको मारनेके लिये साधारण बछड़ारूप धारण किये हुए बलरामको देखते हुए श्रीकृष्ण यह कहने लगे ॥१०१॥

अनुवाद—अहो हे बलदेव देखो ! जौ गौओंके तथा बनावटी बछड़ोंके पास धीरे-धीरे आरहा है दिशाओंमें चकित होकर दृष्टि डालते हुए देखता है, बड़ी प्रसन्नतासे घास मुँहमें लेता है, दाँतोंसे दबाता है मत्त होकर चाखता है बछड़ोंसे इसकी तुलना नहीं होती है यह वत्सासुर प्रतीत होता है ॥१०२।

अनुवाद—चंचल हिलते किनारेवाले लांगूलके अग्रभागसे दोनों ओर शरीरको कुछ झुकाते हुए बैठी हुई मक्खीको उड़ा रहा है, बनावटी शरीरको नोंच-नोंचकर वेगसे घुमाये हुए मुखके आघातसे दांतोंकी नोकोंसे खुजला रहा है ॥१०३॥

अनुवाद—हठपूर्वक जिस अङ्गपर जरा भी मक्खी बैठ जाती है वहीं

---

(1) रदैः=दन्तैः । (2) तरसा=वेगेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहह महती माया मायापशोरवधीयताम्
सह पशुगणै रोमन्थानां विधीनधितन्वतः ॥१०४॥

अहो समुचितमेवास्य बलदेवातिशिशुत्वं गोत्वं च। यदिह जानतोऽप्यजानत इवानूभूयते वृत्तिः ॥१०५॥

साक्षादैक्षत पूतनापरिभवं वेत्त्येव वार्त्तां तृणा–
वर्त्तस्यापि निवर्त्तते न तदपि व्यापारभारादतः।
को बालादपरः कृशानुकुहरक्रोडे करं न्यस्यति
प्रत्यक्षीकृतमाशु विस्मरति वा को नाम गोभ्यः परः ॥१०६॥

भवतु नामाचिरेणैव फलमाप्स्यति चतुष्पादमायानां खलानां खलु। तथा हि मायादशायामपि तामसस्वभाव पुनरपरिहार्य एव।

कालः काक इवायं भवति न केषां भयङ्कराकारः।
यस्मिन्नुदयति दृष्टिर्जलद इवोल्कामयीदृष्टिः ॥१०७॥

कुलटाकुटिलकचाधिकमेचकाकारतया त्रिभुवनसंहारकारणं तम इव, तम इव मरीचिमालिमरीचिमालया दिगालयात्परिभूयपरिपातितं

अङ्ग बार-बार चलता है दूसरा नहीं चलता। अहा इस मायाके पशुकी देखो बड़ी माया है वह पशुओंके साथ रोमन्थ कर रहा है ॥१०४॥

अनुवाद—अहो हे बलदेव ! उसका शिशुत्व और गोत्व उचित ही है जो यहाँ इसकी जानते हुए भी अजानकी तरह वृत्ति प्रतीत हो रही है ॥१०५॥

अनुवाद—प्रत्यक्ष ही पूतनाका परिभव देखा, तृणावर्त्तकी बातको भी जानता ही है फिर भी इस अनुचित व्यापारसे रुकता नहीं, बालकके अतिरिक्त कौन अग्निके बिलमें हाथ डालेगा। प्रत्यक्षकी हुई बातको ही पशुके अतिरिक्त कौन इतनी जल्दी भूल जायगा ॥१०६॥

अनुवाद—अस्तु, शीघ्र ही चतुष्पादकी माया धारण करनेवाले दुष्टोंका यह फल प्राप्त करेगा, मायाकी दशामें भी इसका तमोगुणी स्वभाव जाता नहीं।

अनुवाद—काले कौएकी तरह किसके लिये इसका भयङ्कर आकार नहीं होता, जैसे बादलकी दृष्टि उल्कामयी है उसी प्रकार इसकी उल्कामयी कठोर दृष्टि है ॥१०७॥

अनुवाद—कुलटा स्त्रियोंके कुटिल कचोंसे अधिक काले आकारका होनेके कारण त्रिभुवनका संहार करनेवाले तमोगुणकी तरह सूर्यकी किरणोंसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धरणिमण्डलेषु । एतस्य बालधिरपि कालभुजङ्गमसंभ्रमं तनुते । निविडमषीमलीमसत्विषि वपुषि चान्तरन्तरा शोणच्छवि परम्परा अतिशय सान्द्रधूमवृन्दोपरिपरिवलितहुताशहेतय[1] इव, अहह निरन्तरमन्तरापूर्यदुर्वार्याभोगतया बहिर्निर्यद्रोषहुताशनोत्तुङ्गस्फुलिङ्गा इवानुभूयन्ते । यस्य चत्वारस्तु चरणाश्चतुर्णामपि धर्म्मार्थ काममोक्षनाम्नामुपधोनाममूलमथनमन्दरमन्थान दण्डानां चण्डिमानमावहन्ति, घनतिमिरनिरोध्यमानोडुचन्द्रपादा इवादावेव विडम्बनाय विधिना वितीर्णमषीपूर्णचूर्णानीव पदाकारेषु सान्द्राणीव लक्ष्माणि लक्ष्यन्ते ।

अहो तिष्ठतु क्षणं, विहरिष्यावः ॥१०८॥

उन्मीलद्गलकम्बलौ कुथपरीतत्त्वात्तथा लोमशौ
दोःपादेन चतुष्पदौ दलभवैः शृङ्गैः सशृङ्गावपि ।
श्रीरामश्च हरिश्च लम्बितकटीचञ्चद्धरी बालधी[2]
नर्दन्तौ वृषभाविवाप्तवृषभाकारौ प्रचिक्रीडतुः ॥१०६॥

दिशाओंसे तिरस्कृत होकर पृथ्वी मण्डलमें गिरे हुए अन्धकारकी तरह है । इसको वालधि अर्थात् पूँछ भी काले सर्पका भ्रम पैदा करती है । गहरी स्याहीके समान मैली कान्तिवाले इसके शरीरपर बीच-बीचमें पड़ी हुई लालिमाकी झलक अत्यन्त चिकने धूम समूहके ऊपर पड़ी हुई अग्नि ज्वालाकी तरह निरन्तर बीचमें भरे हुए कठोर आभोग होनेके कारण बाहर निकलते रोष रूप अग्निके उत्तुङ्ग स्फुलिङ्गकी तरह प्रतीत होते हैं । इसके चारों चरण छल रूप धर्म अर्थ, काम, मोक्ष चारोंका समूल मन्थन करनेवाले मन्दर रूप मन्थाके दण्डकी जैसी कठोरता धारण करते हैं, घने अन्धकारसे रोके जाते हुए चन्द्रमाके किरण जालकी तरह प्रारम्भमें ही विधाताने भरी हुई स्याहीके चूर्णकी तरह पैरोंमें चिकने-चिकने चिह्न दिखाई देते हैं । अहो थोड़ी देर ठहर, हम दोनों क्रीड़ा करेंगे ॥१०८॥

अनुवाद—गल, कम्बल, सास्नासे युक्त कुथसे आवृत होनेके कारण लोमयुक्त प्रतीत होनेवाले दो हाथ दो पैरसे चलनेके कारण चतुष्पाद और दलोंसे बने सींगोंके कारण शृङ्ग सहित, कटिभागमें लम्बे चीर वस्त्र लपेटनेसे लांगूलके सहित बैलोंका जैसा आकार धारण करनेवाले शब्द करते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥

---

(1) ज्वाला—"वन्हेर्द्वयोर्ज्वाल कीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम्" (अ० को० १।-१।५७) हिनोति हन्ति वाहेतिः । (2) बालधि केशवल्लाङ्गूलम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चक्रतुस्तौ नरक्रीडां दधुर्व्रीडां दिवौकसः।
व्यसनानि प्रभूणां हि परिवारस्य मूढये ॥११०॥

हरिरिति विहरन्नेव करिवर इव करलीलया सह कन्दुकेन परचरणावुपगृह्य पर्यवधूयच्छागशावकवत्सिमिव वत्सासुरमुत्सारयन् मायाफलमालोकयामास कपित्थतरुमौलौ। स खलु केवलमेक एव चूर्णतां भेजे। निजबलगरिमाणमादेवलोकमालोकयन्निव निपतनसमकालमेव तानपि चूर्णयाञ्चक्रे ॥१११॥

अथ निपपात देवतारातिरवनिरुह मूर्द्धनि ध्वनिभरमुखरितहरिदाकाश मण्डलः। कंसः पुनरात्मन एव शिरसि कटु कठोरशतकोटिकोटिपतनमाभिशशङ्के मूर्च्छित इवास बहुकालं च ॥११२॥

आभीरार्भकनिवहास्तु तदवधाय व्याधूय च मुहुर्मुहु मूर्द्धानं प्रशशंसुरवतंसममराणाम्। अमराः पुनरमिततरप्रमोदमेदुरा दुरापसुरनगरनवप्रसूनविसरैरानन्दाश्रुपूरैरिव द्रुतमवकिरन्ति स्म ॥११३॥

बकासुरवधः

अथ कदाचिदनुचारयन्तः प्रचुरपशुकिशोरानुपचित जलपान

अनुवाद -कृष्ण और बलराम नर क्रीड़ा करने लगे, देवताओंने लज्जा धारण की, भगवान्‌की क्रीड़ायें देव परिवारको मोहमें डालनेके लिये होती हैं ॥

अनुवाद—भगवान्‌ने खेल करते हुए ही सूँडमें खेल करनेवाले हाथीकी तरह गेंदके समान पिछले पैरोंको पकड़कर और घुमाकर बकरीके बच्चेकी तरह वत्सासुरको कपित्थके पेड़की जड़में पटककर छल करनेका फल दिखा दिया, वह तो अकेला ही विनष्ट हुआ अपने बलकी गरिमाको देवलोक तक दिखाते हुए अपने गिरनेके समय तत्काल दुष्टोंके बलको भी चूर्णकर दिया ॥१११॥

अनुवाद—वह 'देवशत्रु' अपने गिरनेके कोलाहलसे दिशाओं एवं आकाशको गुञ्जित करता हुआ गिर गया उस कोलाहलसे कंसने अपने सिरकी कटु-कठोर सैंकड़ों कोटिके पतनकी आशङ्काकी और देरतक मूर्च्छित पड़ा रहा ॥११२॥

अनुवाद—गोप-बालकोंने यह जानकर बार-बार अपने सिरको हिलाकर देवताओंके शिरोमणि कृष्णकी प्रशंसा की। देवताओंने फिर अत्यन्त प्रमोदमें भरकर दुर्लभ स्वर्गमें होनेवाले नये पुष्पोंकी अश्रु-बिन्दुओंकी तरह वर्षा की ॥११३

बकासुर वध

अनुवाद—इसके अनन्तर एक समय बहुतसे बछड़ोंको चराते हुए जल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वासनाभिः सह रामकेशवाभ्यामाभीरनन्दना अरविन्द [नन्द] नन्दिनी जलमवगाह्य परिपाय्यापः पशूनपि स्वयमपि निपीतवन्तो विहरन्तोऽपि विचरन्तो नातिदूरे विहितसमाधिमिवार्धमुद्रितनयनमारभ्यैकचरणव्रतमिव संवृत्तैकचरण चरणावलम्बिधरणितलम्, ध्यानानन्दवशीकृतमिव निस्पन्दमानम्, आरब्धयोगाभ्यासमिव ऋजुस्थिरीभवदुन्नतग्रीवम्, तपःप्रभावाविर्भूतप्रभूतसत्वगुणमिवबहलधवलिमानमावहमानम्, निर्धूतकलुषतया प्रत्यवयवं बहिर्भवत्तेजोंकुरप्ररोहैरिव देहरुहैरुज्जिहानबहुमहिमानम्, अतिदयालुतयेवाङ्गोत्तरङ्गदुरुपतङ्गादिकमप्यनुद्वेजयन्तं गुरुगरिमतुङ्गिमातिवलक्षिमपक्षद्वयद्राघिमदर्शित कैलासप्रातिपक्ष्यम्; पक्षद्वयलभ्यमान विलक्षणलक्ष्मीकतयाऽभिख्याति ख्यातमपि किरणलक्ष्माणमपि क्षामयन्तं लक्ष्मीरमणचरणकिणाङ्कैरुपलक्षितपार्श्वद्वयपक्षीन्द्रमिव सितेतरद्वित्रपत्रातिचित्रित पार्श्वद्वयीदीप्यमानं गुरु विरहविधूयमानतयामुरमथनमुदीक्षितुं साक्षाद् भगवन्तमिव पन्नगाधीशं, नगाधीशमिवान्तः कठिन गुरुसारं, सारस्वतश्रियाभिरामपि

पीनेकी इच्छासे कृष्ण-बलरामके साथ सब गोपबालक यमुना जलमें स्नान करके पशुओंको जल पिलाकर स्वयं भी जल पीकर घूमते विहार करते हुए समीपमें समाधि लगाये हुएकी तरह नेत्र आधे बन्द करके एक चरण ऊपर करके एक चरणसे ही पृथ्वी तलका आश्रय लिये बैठा हुए ध्यानके आनन्दमें वशीभूतकी तरह निश्चेष्ट वैठा हुआ योगाभ्यासको आरम्भ करने वालेकी तरह ऊँची ग्रीवा उठाकर सीधा और स्थिर बैठे हुए को तपके प्रभावसे उत्पन्न वहु सत्व गुणकी तरह बहुत सी धवलियाको धारण करते हुए कलुष नष्ट होनेके कारण प्रत्येक अवयवमें बाहर निकलते हुए तेजके अकुर प्ररोहकी तरह रोमाञ्चोंसे बहुत शोभा प्रकट करते हुए, अति दयालु होनेके कारण अङ्गोंसे उठती हुई तरङ्गसे, पतंगे आदिको भी दुःख न देते हुए गुरु गौरवयुक्त उच्चतासे प्रतीत होनेवाली दोनों पङ्खोंकी दीर्घतासे कैलाशका प्रतिपक्षि भाव प्रदर्शित करते हुए, दोनों पङ्खोंसे प्राप्त हुई विलक्षण शोभाके कारण कान्ति शोभा द्वारा अति सुन्दर होते हुए भी सूर्यको भी कम करते हुए भगवान् विष्णुके चरण-चिह्नोंसे दोनों पार्श्व अङ्कित होनेवाले गरुड़की तरह दो तीन कृष्ण पत्रोंसे चित्रित पार्श्वके दोनों भागोंसे अत्यन्त शोभित, अत्यन्त वियोगसे दुःखी होनेके कारण मुररिपु कृष्णको देखनेके लिये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमतपोरूपं रूपं परमिव कृतान्तस्यातिदुर्दान्तं, दान्तमिवमिहिरमयूखातिविधुरमपि हरिमात्मनैवमीक्षमाणं क्षमानद्धपदमपि, दिविष्ठातिकष्टानुष्ठानपरिनिष्ठं निष्ठुरं बकनामानमसुरं मायाकलितब[1]कपक्षिलक्षणं हरन्तमिवेक्षणं समैक्षन्त ।।११४।।

तदवकलनकौतूहलतरलतया तदन्तिक[2] एव विहरत्स्वाभीर किशोरेषु निजसोदराशोकजातवेद सामुपशान्तये जडधियेव मत्स्यावतारोऽप्यस्यैवेति स्वभक्ष्यत्वेनोद्भावयन्निव नवजलधर श्यामधामानमति साहसोपशोभमानं यशोदाकिशोर मेवाग्रसीदुग्रशीलोऽयम् ।।११५।।

[3]स त्रोटिकोटौ स्वकटौ निधाय प्रयातुमुड्डीय विचारयन्तम् ।
बकं बकीप्राणरसोपलम्भाद् विश्वम्भरात्मा श्लथयां बभूव ।।११६

साक्षात् शेषनागकी तरह, अन्दर अति कठोर गुरु होनेके कारण पर्वत राज्यकी तरह सरस्वतीकी जैसी शोभासे सुन्दर होते हुए भी परम तपोरूप यमराजके रूप की तरह, अत्यन्त दुर्दमनीय दमयुक्तकी तरह सूर्य किरणसे दूर रहते हुए भी स्वयं हरिको देखते हुएको पृथ्वीपर पैर रक्खे हुए परन्तु आकाशमें होनेवाले कष्ट भोगनेमें कुशल निष्ठा मायासे वकपक्षीके स्वरूपको धारण किये हुए दृष्टिको चुराते हुए वक नामवाले असुरको देखा [भागवत दशम स्कन्धमें द्वादश अध्यायमें ८ श्लोकोंमें बकासुरवध-कथा वर्णित है] ।।११४।।

अनुवाद—उसको देखनेके उग्र कौतूहलसे उसीके पास गोप बालकोंके भ्रमण करते हुए अपने भाईयोंकी शोकरूप अग्निको शान्त करनेके लिये मानों मूर्ख बुद्धिसे मत्स्यका अवतार इनका ही हुआ था, इसलिये इनको अपना भक्ष्य समझते हुए नव जलधरको तरह श्याम शोभा धारण करनेवाले अत्यन्त साहसवाले यशोदा किशोर श्रीकृष्णको इस उग्र स्वभाववाले वकदैत्यने ग्रस लिया ।।११५

अनुवाद—अपनी चञ्चुकी नोंकमें अपने कर गण्डको छिपाकर उड़कर जानेका विचार करनेवाले उस बकको पूतनाके प्राण हरनेके आनन्दका स्मरण करके हरिने कुछ शिथिल कर दिया ।।११६।।

---

(1) वकासुरवध-कथा भा० १० स्कं० ११ अध्याये ।

(2) समीपे ।

(3) त्रोटिश्चञ्चुः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कैटभारिरुदभाद्बकासुरत्रोटिकोटिघटितः क्षणं हठात् ।
चन्द्रचूड शिखरीन्द्र शेखरीभूतनीरधरनीतिभाक् प्रभुः ॥११७॥

अथ कोटिशीतकिरणशीतलाकारमपि दव दहनमिवाननोदरमेव दहन्तं स पुनरचिरादेव देवाधिदेवं हरिमुद्गिरति स्म ॥११८॥

अथाग्रे यः स्वाग्रे सुरनरसमग्रेशमसुरः–
समुद्वीक्ष्योद्ग्रीव प्रकटित कटित्रोटि विकटः ।
व्यधात्तुण्डाघाताद्धरि वपुषि घातानपि मुधा
क्रुधान्धो दम्भोलाविव दलहतारम्भ निवहान् ॥११९॥

निजमुण्डे चण्डाहतिव्यथिततुण्डतया पिण्डीभूतं भूतद्रुहमवधाय माधवस्तमादाय खे लसद्विविषदोभिहर्षयन्खेलितुमैच्छदखेदोऽयम् ॥१२०

अधोन्यञ्चन्मूर्धाकरकमलरुद्धा मलगलः
खलः खेलास्वोद्यन्नरचरमभागोऽसुरबकः !
सुराराते रासीदहह चिरमाशीलितलसन्–
महाकन्दोदञ्चद्विसविशद तुन्दोदज[1] रुचिः ॥१२१॥

अनुवाद—वकासुरकी चोंचकी नोकसे पकड़े हुए कृष्ण भगवान् थोड़ी देर तक शङ्करजी पर्वतके शिखरपर आये हुये बादलकी तरह शोभाको प्राप्त हुये ॥११७॥

अनुवाद—इसके पश्चात् करोड़ों चन्द्रमाके समान शीतल भी, अग्निके समान मुँहके अन्दर जलाते हुए कृष्णको तत्काल ही बकने उगल दिया ॥११८॥

अनुवाद—पहले अपने सम्मुख सुर-नरादि सबके स्वामी कृष्णको देखकर ग्रीवा उठाकर अपनी विकट चोंचकी नोक प्रकटकी थी, अब हरिके शरीरपर उन्हीं चोंचके आघातोंको क्रोधसे अन्धा होकर करने लगा जसे व्रजपर पत्तोंसे कोई निरर्थक प्रहार करे ॥११९॥

अनुवाद—अपने सिरपर प्रबल आघातोंसे व्यथित हुई चोंचवाले, प्राणियोंसे द्रोह करनेवाले उस वकपक्षीको जानकर माधव प्रसन्न होते हुए आकाश में अपने देवताओंमे खेलनेकी इच्छा करने लगे ॥१२०॥

अनुवाद—नीचे झुकी हुई मूर्धावाला तथा हाथसे जिसका निर्मल गला पकड़ा हुआ है और उस दुष्ट बकका खेलमें अन्तिम भाग कुछ उठ गया है, उस

---

(1) उदजः पशुप्रेरणम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुञ्चचचञ्चुपुटग्रीवः श्रीवल्लभकराम्बुजे ।
प्रपञ्चं पाञ्चजन्यस्य वञ्चयामास गोभिया ॥१२२॥

ग्रीवादण्डे गृहीतः समसमयचतुः पार्श्वविस्फारपक्षं ।
सान्द्रोदञ्चत्सुधारुग्धवलिमगमनव्यापिश्चाद्विभागः ।
आभीरेन्द्रत्वमाशोभयदपरि वहन्पाण्डरच्छत्र लक्ष्मी-
मक्षीणक्रौञ्चमायाधरत्रिबुधरिपुस्तस्यपक्षीन्द्र केतोः ॥१२३॥

हरिणोद्भ्रामितस्योच्चैः पक्षास्तस्य दिशो दश ।
मयूखा इव पीयूषमयूखस्य जगाहिरे ॥१२४॥

प्रोड्डीय केऽपि तनुतस्तनवो वलक्षाः
पक्षाः क्षणाद्विविशुरेव दिशोन्तरिक्षम् ।
उद्भ्रामितस्य रभसान्मधुसूदनेन
तारा इव प्रबलकाय बकासुरस्य ॥१२५॥

समय देर तक खेलनेके कारण सुन्दर महाकन्दसे निकलती हुई मृणाल दण्ड जैसी सुन्दर गो प्रेरणामें होनेवाली जैसी शोभा कृष्णकी हो रही थी ॥१२१॥

अनुवाद—भगवान् कृष्णके हाथमें उसकी चोंच एवं ग्रीवा संकुचित हो रही थी उस समय गौओंके डरसे पाञ्चजन्य शङ्खके जैसी शोभा बना रहा था ॥

अनुवाद—ग्रीवारूपी दण्डमें पकड़ा हुआ है एक समयमें ही चारों ओर पङ्ख फैल गये हैं, चिकनी उठती हुई सुन्दर शोभा है, धवलिमासे पीछेका सब भाग व्याप्त है ऊपर श्वेत छत्रकी जैसी शोभा हो रही है, उस अक्षीण क्रौंच बक पक्षी-की मायाको धारण करनेवाले देव शत्रु बकने गरुड़ वाहन भगवान्की आभीर राजाकी शोभाको छत्रके द्वारा प्रकट किया है। (इस श्लोकमें कविने बकपक्षीको छत्रकी उपमा दी है) ॥१२३॥

अनुवाद—हरिके द्वारा ऊँचे दसों दिशाओंमें घुमाये हुये उसके पङ्ख चन्द्रमाकी किरणोंकी तरह दूर तक गिरे ॥१२४॥

अनुवाद—कुछ सफेद पङ्ख उसके शरीरसे उड़कर सब दिशाओंमें और आकाशमें घुस गये। श्रीकृष्ण द्वारा वेगसे घुमाए हुए प्रबल शरीरवाले बकासुरके पङ्ख ताराओंकी तरह सब जगह फैल गये ॥१२५॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उड्डीनैर्गरुतां गणैर्बकतनोर्धावल्यधाराघनैः
क्षुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रलहरी स्पर्द्धाधरैर्दुर्द्धरैः ।
नृत्यद्धूर्जटिमूर्द्धनिर्धुतधुनी प्रोत्तुङ्ग भङ्गायितैः
संभारैरिव कैटभारियशसः शुभ्रीकृता रोदसी ।।१२६।।

हरिरपि करिकरभलीलया पटुबहुलकटु चञ्चुपुटविभागकपट-भणितद्विधाकरणक्रमेणैव कोमलकमलमृणालीमिव दक्षिणेतराभ्यामपि कराभ्यामूर्ध्वाधोऽवस्थिते त्रोटी दधदेव त्रुटिलवलघुनैव कालेन द्विफालीचकार मायाबकस्य तनुवल्लीम् ।।१२७।।

सङ्गरप्राङ्गणेऽधावि धारया रक्तपक्षयोः ।
बकदेहाद् बकारातेः कीर्त्येवोद्यत्प्रतापया ।।१२८।।

द्विधाभूय हरेः पाणौ द्वयोरपि च लोकयोः ।
बकोऽभूदबको दूरादधश्चोर्ध्वं च पश्यतोः ।।१२९।।

अनुवाद—धवलताकी घनी धाराओंके समान तथा क्षुभित होते हुए क्षीर-सागरकी चिकनी लहरीकी स्पर्धा करनेवाले दुर्धर एवं नृत्य करते हुए शङ्करजीकी मूर्धापर हिलती हुई गङ्गाजीकी ऊँची भंगिमाके समान उन वकासुरके शरीरसे उड़े हुए पङ्खोंके समूहने श्रीकृष्णके यशसे आकाश और पृथ्वीको श्वेतकर दिया ।।१२६।।

अनुवाद—हरिने भी गज कलभके खेलके समान सुन्दर पटु चोंचके दोनों भागोंको क्रमसे कोमल कमल दण्डके समान दोनों हाथोंसे ऊपर नीचे चोंचके पुटोंको पकड़ते हुए क्षणांशमें ही उस माया वकके शरीरको फाड़कर दो टुकड़े कर दिया ।।१२७।।

अनुवाद—उस प्रांगण भूमिमें रक्त रंजित पङ्खोंकी धारा इस प्रकार वेगसे निकली जैसे वकके शरीरसे विस्तृत प्रतापवाली कृष्णकी कीर्ति निकली हो ।।१२८।।

अनुवाद—हरिके हाथोंमें दो टुकड़े होकर ऊपर नीचे दोनों देखते हुए लोकोंको वह वक उस समय दूरसे अवक अर्थात् वक नहीं प्रतीत होता था ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अराजन्त मुरारातेरुरसोऽन्तर सृक्कणाः[1]।
नवोदितपयोवाहे[2] नवीनार्कच्छटा इव ॥१३०।
अमृतं सा बकी भुङ्क्ते मां विहायेति मत्सरः।
जहौ स्वयमिव प्राणान् परिपाणौ बकासुरः ॥१३१॥
बकासुरवपुः पाण्डुरक्तै रासक्तमन्तरा।
शुभ्रमभ्रमिवादभ्र तडिदभारैरशोभत ॥१३२।
विदीर्णास्यवहद्रङ्कै रारक्तो बकविग्रहः।
गैरिकैरिव नीहारशिखरी समरोचत ॥१३३॥

अम्बरतलमवलम्ब्य देवता निकुरम्बं[3] हरेरुपरिकुसुमकदम्बकं ववर्ष हर्षेण ॥१३४॥

अभयं धाम तद्वीक्ष्य विह्वलानि भियामराः।
अर्पयन्त इवावर्षन्मनांसि सुमनोमिषात् ॥१३५॥

अनुवाद—मुररिपु कृष्णके हृदयके मध्यमें रक्तके कण, ऐसे शोभित होते थे जैसे नवीन बादलपर बाल सूर्यकी किरणें पड़ रहीं हों ॥१३०॥

अनुवाद—वह पूतना मुझे छोड़कर अमृत पानकर रही है, इस मत्सरसे मानों वह वकासुर हरिके हाथोंमें प्राण छोड़कर स्वयं चला गया ॥१३१॥

अनुवाद—पाण्डुवर्णके रक्तसे भरा हुआ वकासुरका शरीर घनो बिजली के भारसे स्वच्छ मेघकी तरह शोभित होता था ।१३२॥

अनुवाद—फैले हुए मुखसे निकले हुए रक्तसे रङ्गा हुआ वकका शरीर गैरिक धातुसे भूषित हिमाच्छादित पर्वतकी तरह शोभा था ॥१३३॥

अनुवाद—आकाशमें आकर देवताओंके समूहने हरिके ऊपर प्रसन्नतासे पुष्पोंकी वर्षाकी ।१३४॥

अनुवाद—अब उस स्थानको भय रहित जानकर पुष्पोंके बहाने मानों डरसे घबराये हुए मनको अर्पण करते हुए फूल बरसाये ॥१३५॥

---

(1) रुधिरकणाः।
(2) मेघे।
(3) वृन्दः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुन्दिलबकरुधिर बिन्दुभिः केवलप्रबालैरिव भूषितस्य कैटभारातेर्वपुरन्तरान्तरामुक्ताभिरिव नन्दनवनदरदलित मल्लिकाभिराभूषयाञ्चक्रे । १३६॥

लोलं कोलाहलेन प्रथममथ बकक्रीडनानीति सद्यो
ध्यायन्संदिग्धमुग्धम् दनुज इति पुनर्दीप्यमुड्डीनमन्तः ।
अन्धः संभावनेऽभून्मुहुरपि पततां धावतां वत्स वत्से-
त्याक्रन्दद्बल्लवानाम् मधुमथनमुखं वीक्ष्य को[1] वदकीदृक् ॥१३७॥

अभ्युत्थानं प्रकुर्वन्नुषसि विरचयन्सर्वतोगोप्रचारं[2]
पद्मानन्दैककन्दः शुचिरुचिरकरा सङ्ग राजद्रथाङ्गः ।
प्रोद्यन्नुच्चैस्तमोहा परमहिमरुचिः स्फीतपीताम्बर श्री
र्यातानन्ताभिसङ्गो हरिरपि च हरिर्भेजतुर्मित्रभावम् ॥१३८॥

अनुवाद—केवल प्रवालकी तरह मोटी-मोटी वकके रुधिरको बूदोंसे भूषित श्रीकृष्णका शरीर बीच-बीच मोतियोंसे शोभित नन्दन वनकी कुछ खिली हुई मल्लिकाओं जैसा शोभित हुआ ॥१३६॥

अनुवाद—प्रथम कोलाहलसे कुछ चंचल, फिर वक जैसी क्रीडा देखकर तत्काल ध्यान करते हुए सदिग्ध जैसा हुआ, यह दैत्य है ऐसा जानकर दीप्त तथा हृदयमें उड़तासा हुआ संभावनामें तथा वत्स! वत्स ! यह चिल्लाते, दौड़ते, गोपोंकी कृष्णके मुखको देखकर, कौन जाने क्या दशा हुई ? ॥१३७॥

अनुवाद—(प्रस्तुत श्लोकमें कविने श्रीकृष्ण व सूर्यका साथ-साथ वर्णन किया है) गमनमें श्रीकृष्णका साथ करते हुए सूर्य तथा कृष्ण दोनों मित्र-भावको प्राप्त हुए । प्रातःकाल दोनों हरि तथा सूर्य अभ्युत्थान करते हुए, फिर दोनों गौओंका तथा किरणोंका प्रचार करते हुए, हरि-लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले, सूर्य कमलोंको आनन्दप्रद, हरिके पवित्र हाथोंमें सुदर्शन चक्र शोभित तथा सूर्यके शुचि रुचिर किरणोंके आसङ्गसे रथके अङ्ग शोभित, दोनों उदित होते हुए, तमोगुणको कृष्ण, अन्धकारको सूर्य नाश करनेवाले, अहिम रूचि सूर्य उत्कृष्ट महिमावाले कृष्ण, तथा विस्तृत आकाशमें शोभित सूर्य तथा पीत-वस्त्रधारी कृष्ण दोनों मित्र-भावको प्राप्त हुए ॥१३८॥

(1) वृन्दः ।
(2) गोचारणम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शृङ्गध्वानैः प्रबोध्यन्व्रजशिशुमुषसि द्राक्समादाय वत्सा-
न्वात्सल्याद्वत्सलाभिः शुचिघटित—पटुप्रेष्ठभूयिष्ठ-भक्षः ।
शिञ्जन्मञ्जीरमोदद्विगुणितचरणान्दोलकृत्यं प्रनृत्य-
न्सार्धं गोपालबालैर्व्यचरदुपवनं बालगोपालवेषः ।।१३९।।
दैत्यारेः केलिपात्राण्यकृत तरुमृगीभेकडिम्भान्विहङ्ग—
स्वाङ्गच्छाया विभङ्गीप्रतिरवनिवहान्कृत्रिमान् गोतुरङ्गान् ।
क्षिप्तस्योत्क्षेप धाराः परमसुखपदं कस्यचिद्वस्तुनोदः
कैशोराणामसाध्यं तदिह न जगतीमूर्ध्नि किञ्चित्प्रतीमः ।।१४०।।
अहमहमिकयापि शिशुः प्राप न योगी हृदापि बहुयोगैः ।
सुलभः प्रभुरपि सुलभादपि दुर्लभतोऽति दुर्लभः समये ।।१४१।।

अघासुरवधः

[1]अथाघोनामाद्य प्रतिनिधिरमोघप्रतिनिधि-
र्बकानृण्यं वाञ्छन्वलद जगराकार गरिमा ।

अनुवाद—शृङ्गकी ध्वनिसे प्रातःकाल ही व्रज बालकोंको जगाकर, फिर तत्काल बछड़ोंको लेकर, प्रेम करनेवाली गोपियों द्वारा पवित्र बनाया हुआ सुन्दर प्रिय वहुत-सा भोजन लेकर, बजते हुए मञ्जीरोंके मोदसे दोनों चरण हिलाकर, नाचते हुए गोपाल बालकोंके साथ, बालगोपाल वेषधारण किये बगीचेमें भगवान् भ्रमण कर रहे हैं ।।३३९।।

अनुवाद - वृक्ष, मृग, भेक, डिम्भ पक्षी तथा उनकी छायाका अनुकरण तथा उनकी प्रतिध्वनि वनावटी क्रत्रिम गौ - अश्वादि श्रीकृष्णके क्रीड़ा-पात्र थे। ऊपर फैंकी हुई किसी वस्तुकी फैंकनेकी धारा तथा किसी वस्तुका उछालनादि यही उनकी क्रीड़ा थी। बालकोंको इस पृथ्वीपर कोई वस्तु असाध्य नहीं है, यह हम विश्वास करते हैं ।।१४०।।

अनुवाद—जिनको योगी हृदयसे भी तथा बहुत योगोंसे भी प्राप्त नहीं कर सकता उसको पहले मैं, या मैं इस भावनासे गोपबालक प्राप्तकर लेता था, समयपर प्रभु, सुलभसे सुलभ तथा दुर्लभसे भी दुर्लभ हैं ।।१४०।।

अघासुर वध

अनुवाद—फिर एक अघ नामवाला असुर बकके प्रतिशोधकी इच्छा रखता

---

(1) अघासुरकथा भा० १० स्कं० १२ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुक्रोश व्यापो गिरिरिव च बभौ पीवरवपु-
र्नवं प्राचीनं वा मुनिरपि न बोद्धुं प्रभुरभूत् ॥१४२॥

अघासुर रूपवर्णनम्

रुन्धानः शिरसाब्जबन्धुमधिक व्यात्ताननत्वाद्द्विधा
व्योमोर्वीमपि तामसीमिव हठात्कुर्वन्दिवा रोदसीम् ।
दुर्वारस्फुरदुग्रफूत्कृति – मरुत्क्ष्वेडाम्बु – वर्षोल्वणो
वर्षाकालमकाल एव विदधे घोराघनामोरगः ॥१४३॥

बिभ्राणे भूरि गर्भे विषमतिकठिन व्यग्रजिह्वाग्रभाग-
प्रोद्यद्विद्युद्विलासः प्रकटितरदन व्यूहवेल्लद्बलाकः ।
चक्षुर्निर्घोष घोराशनिरतनु - चलत्सृक्कशक्रायुधोग्रः
कोटिर्निर्वास्य विश्वं घनतमतमसाभास घोराघमेघः ॥१४४॥

वलच्छोकः कोकः स्फुटमलनिलोकश्च किमिति–
प्रमादं प्राङ्मेने दिविषदपि दुद्राव तरतः ।
समाक्रान्तं विश्वम्भरभरणनिःसम्भ्रमवशा–
दघेनाघेनेव व्यथितमिदमासीज्जगदपि ॥१४५॥

हुआ उसका अमोघ प्रतिनिधि हिलते हुए अजगरके आकारवाला, अनेक कोश तक व्याप्त लम्बा, पर्वतकी तरह स्थूल शरीर, शोभित होता था जिसको यह नया है या पुराना यह जाननेको मुनि भी समर्थ नहीं हो सकते थे ॥१४२।

अनुवाद—सिरसे सूर्यको आच्छादित करता हुआ, अधिक मुँह फैला होनेके कारण आकाश और पृथ्वीको मानों अलग-सा करता हुआ, दिनमें हठ-पूर्वक आकाश पृथ्वीपर अन्धेरा-सा करता हुआ, नहीं रोकने योग्य निकलती हुई उग्र फूत्कारकी वायुके मुखबिन्दुसे उग्रजल वर्षा जैसी करता हुआ, अकालमें ही उस घोर अघ नामक सर्पने वर्षाकाल जैसा कर दिया ॥१४३।

अनुवाद—उग्र विष अन्दर रखे होनेपर अति कठिन उग्र जिह्वाके अग्रभागपर बिजली जैसी चमक प्रकट करता हुआ, चमकते हुए दन्तोंको वक पंक्तिकी तरह दिखाता हुआ, चमकते हुए घोर वज्रकी तरह नेत्र चमकाता हुआ, दीर्घ चलती हुई जिह्वाको इन्द्रायुधकी तरह उग्र प्रकट करता हुआ, घार अन्धकार को कोटिसे विश्वको निकालकर वह घोर अघरूप मेघ प्रतीत होता था ॥१४४॥

अनुवाद—कोक शोकपूर्ण होगया, लोकने यह क्या है ? यह कहकर भ्रम माना, आकाशमें रहनेवाले देव भी एक ओरको हट गये, विश्वम्भरकी रक्षा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अकस्मात्पिदधे व्योम ससोमार्कमघासुरः ।
पयोधौ पतनं मेने मनीषीव मनीषयन् ॥१४६॥

अथ तदाकार त्रिभुवनजनितचमत्कार घनफूत्कारवारमारुत प्रसारितविषविषमतरासार सम्भारतया गुरुगरिमगभीरभीमनिः सीमतिमिरगर्भोपगूढ़ व्योमतया दुर्दिनमनुवर्ण्य दुद्रुवद्रुतमेव ग्रामाभिमुखमाभीरकुमाराः । तदाननोदरदरी द्वारं नगरद्वार मिवावगाह्य नगरमिव तदुदरमेवौको जगाहिरे गोवत्सलगोपवत्सगोवत्साः ॥१४७॥

अघासुरोदरेगोपालं गमनम्

हरिरघमवधाय धावतोऽपि धेनुजघनमादाय सुदाम श्रीदामसुबलस्तोककृष्णप्रभृत्याभीरकुमारजविहारपरिषदो धावन्तेवाहंपूर्वमहं पूर्वमित्यहमहमिकयेव तानेव स्पृशन्नपि सपदि जगाहे तदुदरगुहागर्भम् ॥

की आशासे सब सम्भ्रान्त हो गये, अथवा भयके भारके भर जानेसे सम्भ्रान्त होकर सारा विश्व भयाक्रान्त होगया, पापकी तरह इस अघासुरने सम्पूर्ण संसार को व्यथित कर दिया ॥१४५॥

अनुवाद – अघासुरने सूर्यचन्द्रके सहित अकस्मात् ही आकाशको ढक दिया मानों विचार करते हुए बुद्धिमान्की तरह उनका समुद्रमें पतन मान लिया ॥१४६॥

अनुवाद—इसके पश्चात् सर्पमय त्रिभुवनसे होनेवाले चमत्कार तथा उसकी बढ़ी हुई फुफकारसे पैदा हुई तीव्र वायुसे तथा विषम विष फैलानेके तीव्र भारसे तथा बढ़े हुए गुरु गम्भीर भयङ्कर असीम अन्धकारसे भरा हुआ आकाश होनेके कारण दुर्दिनको समझकर तत्काल ग्रामकी ओर आभीर कुमार भाग गये । उसके मुखके मध्यभाग रूपी गुहाके द्वारमें नगर द्वारकी तरह घुसकर नगरकी तरह उसके उदर रूप घरमें गौओंसे प्रेम करनेवाले ग्वालोंके बालक तथा गौयें और बछड़े सब घुस गये ॥१४७॥

कृष्णका उदरमें जाना

अनुवाद—हरि अघासुरको जानकर धेनु चरणोंको लक्ष्य मानकर सुदामा श्रीदामा सुबल स्तोक कृष्णादि गोपकुमारकी गोष्ठीमें दौड़ते हुए मैं पहले, मैं पहले इस अहमहमिकाके द्वारा दौड़ते हुए गोपबालोंको छूते हुए भी तत्काल ही अघासुरके उदर रूप गुहाके गर्भमें घुस गये ॥१४८॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यन्नामाप्यघमर्द्दनं वितनुते किन्नाम चित्रं महत्-
तेनाघो विनिपात्यते परमघस्योच्चैस्तपो वर्ण्यते ।
योगीन्द्रस्य मनोऽप्यणोरणुतरः सङ्गाहते वा न वा
यो गर्भेऽपि निविश्य कैटभरिपुः सोऽभूद्गरीयान्गुरोः ॥१४९॥

अथ प्रख्यापनक्षीणतमाघोऽयमघासुरः ।
तमितीवानुजग्राह स्वयमन्तर्गतो हरिः ॥१५०॥

हरिणान्तर्गतं तस्य तेनाप्यन्तर्गतं हरेः ।
अद्वन्द्वं हि द्वयोरेव समं त्रयमपेक्ष्यते ॥१५१॥

तमः श्रीरप्युच्चैरपचिततमः श्रीः समुदभू-
दघान्तर्मग्नोऽपि प्रभुरनघ एव त्रिभुवने ।
कृताभीरासङ्गोऽप्यविरतमसङ्गः किमपरं
सदा शुद्धो मुक्तस्तदुदरनिरुद्धोऽपि निभृतम् ॥१५२॥

अनुवाद—जिसका नाम भी अघ पापका नाशकर देता है, अगर वह अघका नाशकर दे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु अघका तप बड़ा ऊँचा वर्णन किया जाता है। अणुसे अणुतर तत्व योगीन्द्रके मनमें प्रविष्ट हो सके या नहीं, परन्तु जिन कैटभ रिपु भगवान् कृष्णने उस अघके अन्दर गर्भमें प्रवेश किया वह गुरुसे भी गुरु है ॥१४९॥

अनुवाद—प्रख्यापन कथनसे अघासुरके अघ क्षीण हो गये इसीलिये मानों अन्दर गर्भमें प्रविष्ट होकर हरिने कृपा की ॥१५०॥

अनुवाद—हरि अघासुरके अन्दर चले गये और अघासुर भी हरिके अन्दर चला गया, दोनों सम स्थान न रहना तीन समान वस्तुकी अपेक्षा रखता है ॥१५१॥

अनुवाद - तमकी शोभा भी बढ़ी हुई तमकी कान्तिको नष्ट करनेवाली हुई, कृष्णने अघके अन्दर प्रविष्ट होकर भी अघका नाशकर दिया, फिर अघके अन्दर मग्न होते हुए भी भगवान् त्रिभुवनमें अघरहित 'अनघ' रहे। आभीरोंका आसंग करते हुए भी निरन्तर वह असङ्ग है, अधिक क्या कहेंगे, वह अघके उदरमें निरुद्ध रहते हुए भी सदा शुद्ध मुक्त और निश्चल है ॥१५२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तमस्तन्वन्सुगम्भीरमभ्यसारीदघासुरः ।
कुलटा मोक्षलक्ष्मीस्तं तमस्यस्तंगते दिवा ॥१५३॥

भगवति गरुडध्वजे[1] गतवति निभृतमघासुराज गरोदरं घनतिमिरपरीतदरीविजिहीर्ष येव सपदि भयतः प्रपलाय्यमानैः पञ्चभिरसुभिरपीन्द्रियैः पञ्चभिर्महाभूतैस्सात्म मनोभिरसुरभोगिनो गुरुभोगभित्तिभेदं विधाय बर्हिनिर्यद्‌भिरुपदर्शितवर्त्मना शनैः शनैरजगरजरठकठोरहालाहलज्वालाकुल कवलनविकलतया परेता एव पूर्वं तदनु दनुजारि दर्शन सुधाभिवर्षणैरपि जीविताभूयो वत्सा अपि वत्स पाला अपि स्वेच्छाचार परायणा अशरणबल नारायणानुसरणा गिरिविवरकोटि दरीद्वारवाटतः समुदय गिरिगभीरगह्वर विहरदुडपरिवृढकिरण परम्परा इवगिरि गर्भनिर्भरभ्रमद् भागीरथीझङ्कार मुखरजलवीचय इवान्वधावन्त बहिरध्वानम् ॥१५४॥

अनुवाद—गम्भीर अन्धकारको बढ़ाते हुए अघासुरने अपना स्वरूप प्रकट किया, परन्तु अन्धकार अस्त होनेपर दिन होता है इसलिये अनेक स्थानपर घूमनेवाली लक्ष्मीने अघासुरको नष्ट कराकर प्रकाश कराया ॥१५३॥

अनुवाद—भगवान् कृष्णके अघासुर रूप अजगरके उदरमें घने अन्धकारसे व्याप्त गुहामें विहारकी इच्छासे प्रविष्ट होनेपर तत्काल भयसे ग्वाल-बाल वत्सादिकोंके प्राण इन्द्रियाँ महाभूत चित्त मनादि सबके क्रमसे निकल जानेपर सर्प रूप अघासुरके फनरूप भित्तिको भेदन करके बाहर निकलनेके दिखाये हुये मार्गसे धीरे-धीरे अजगरकी कठोर विष ज्वालासे आकुल होकर पूर्वमें मृत हुए भी सब ग्वाल-बाल-वत्सादि कृष्ण दर्शन रूप अमृत वर्षासे जीवित हो गये। फिर सब वत्स-बाल अपनी इच्छासे विहार करते हुए अशरण शरण नारायणका अनुसरण करते हुए पर्वत कन्दराकी तरह द्वारके मार्गसे निकले हुए उदयाचलकी गंभीर गुहासे निकलकर चन्द्रमाकी किरण परम्पराके समान तथा पर्वतके गर्भसे निकलकर भ्रमण करती गङ्गाकी झङ्कारसे मुखर जल तरङ्गकी तरह बाहर मार्गपर दौड़ने लगे ॥१५४॥

---

(1) श्रीकृष्णे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अघात्मा सोऽद्य मेदस्वी पलायितुमिवाक्षमः ।
तमालोक्य तमः पुञ्जं तत्रैव समलीयत ॥१५५॥
इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्दकन्दचम्पू काव्ये
चतुर्थोऽयमुल्लासः ॥४॥

अनुवाद—वह पापी मेदस्वी लम्बा-चौड़ा भागनेमें असमर्थ श्याम वर्ण कृष्णका दर्शनकर वहीं पर विलीन होगया और परलोक सिधार गया ॥१५५॥

इति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेद शास्त्रि बिरचिते
श्रीवरानन्दिनी भाषाटीका सहिते आनन्दकन्द
चम्पूः काव्ये चतुर्थोयमुल्लासः ॥ ४ ॥

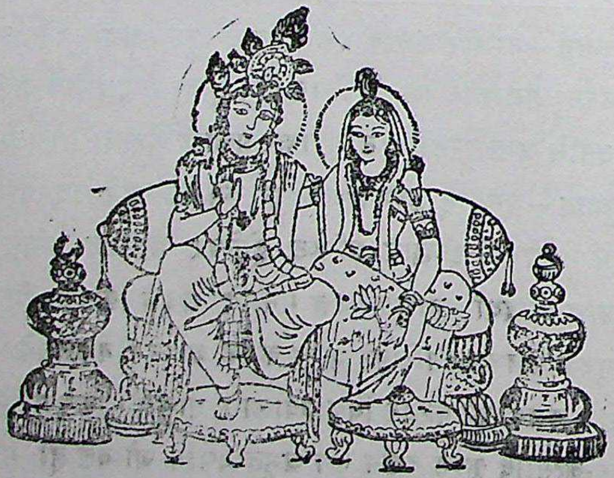

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ पञ्चम उल्लासः

सर्वेषां कालिन्दी तटे गमनम्

अथ पशुप[1]किशोराः परस्परं मुखमीक्षमाणा विस्मयानापुराहुरपि पुरुहूतावरजन्मानमलौकिक कर्म्माणम् । अथ प्रभातसमयावधि बहुधा बहुधावितमनु चटुल पटूद्भट वत्समनूपवनकच्छं क्रीडितमपि बहुधैव, कथमपि शमनमुखादिव विकटसंकटादभिरक्षितैः सम्प्रति विषमबुभुक्षा क्षामैरस्माभिरपेक्ष्यते क्षेमम् । तदितोद्रुतमनुविन्दतु कालिन्दीपुलिन-मलिन्दमिवानिन्द्यं गोविन्दः सह गोवृन्दैरमन्दपरिणाहम् ॥१॥

किमात्मनो वर्णयिष्यामः, क्षामतमं तव वपुरालक्ष्यैव श्यामधामा-भिराममिदमहह वयं सुदूर पराहता एव ॥२॥

यदिदम्--

पदं ते मञ्जीरध्वनिषु तनुते मान्द्यमधुना
हठाद्वाढं बद्धामपि पटुघटीमुज्झति कटी ।
वचो वक्त्रादूर्ध्वं बहिरुदयते नार्द्धमवशं
द्रवत्प्रायः कायः स्फुरति निरपायः क्षुधि हरे ॥ ३ ॥

सभीका यमुना-तटपर जाना

अनुवाद—इसके पश्चात् परस्पर एक दूसरेका मुख देखते हुए आश्चर्य करनेलगे तथा अलौकिक कर्म करनेवाले इन्द्रके कनिष्ठ भ्राता कृष्णसे, कहने लगे। प्रातःकालसे लेकर बहुत दौड़ते हुए चंचल उद्भट बछड़ोंके पीछे बहुत कुछ जल-युक्त किनारेवाले वनोंमें खेलते रहे। यमराजके मुखकी तरह विकट सङ्कटसे रक्षा किये हुए हम सब बड़ी भूखसे कुछ रक्षा चाहते हैं अब यहाँसे यमुना तटके द्वार-तटकी तरह अनिन्दनीय सुन्दर सब गौओंके साथ लम्बे-चौड़े स्थानपर श्रीकृष्णजी चालिये ॥ १ ॥

अनुवाद—हम अपनी क्या कहें, आपके श्याम तेजसे सुन्दर तथा भूखसे विकल शरीरको देखकर हम तो बहुत दुःखी हैं ॥ २ ॥

अनुवाद—जो यह आपका पैर इस समय मंजीरकी ध्वनिमें मन्दता ला

---

(1) गोपबालकाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षुधावर्णनम्

न व्याहारविहारयोर्न शयने नाप्यासने नाञ्चने
नालङ्कारनिकारयोर्न भवने नो वा वने निर्वृतिः ।
सिक्तस्यापि सुधारसेन शतधास्तोत्रस्तुतस्यापि चे-
दुन्मीलत्यवली भवत्तनुधियोधैर्यच्छिदैक क्षुधा ॥ ४ ॥

हरिरभितो विलोक्य त्रैलोक्य मुकुटमणिमिवाम्बरमणिमम्बरमध्यमध्यासीनं भगवन्तमुदीक्ष्य समाचचक्षे कृतोत्प्रेक्षम ॥ ५ ॥

मध्य मण्डित चण्डांशु दृश्येतरमभूदिदम् ।
ज्वलता वीतिहोत्रेण[1] महाकुण्डमिवाम्बरम् ॥ ६ ॥

अथ सकलवत्स-वत्सपालानुकूलं यमुनाकूल एव नवकिसलयकमनीक-स्निग्धच्छायोच्छुरिततरुणतरूत्करमूलं मृदुगतिमहनीयहंस कामिनी

रहा है, कटि भी अच्छी तरह बँधी हुई पेटीको शिथिलकर रही है, भूखके कारण मुहसे आधा वचन भी नहीं निकल रहा है, भूखमें शरीर दुःखी शिथिल क्रिया-शून्य होगया है ॥ ३ ॥

भूखका वर्णन

अनुवाद—न बात करनेमें, न घूमने, न शयन करने, आसन, गमनादिमें अलङ्कार निकट तथा भवन वनादि कहीं पर भी चैन नहीं है। धैर्यनाश करनेवाली एक क्षुधा लगनेके कारण कहीं चैन नहीं, फिर चाहे कोई सैकड़ों स्तोत्रोंसे स्तुति करे या सुधाके रससे सींचे, फिर शरीर और बुद्धि सब निर्बल हो जाती है ॥ ४ ॥

अनुवाद—हरिने सब ओर देखकर तीनों लोकोंके मुकुटमणिकी तरह अम्बरमणि सूर्य भगवान्‌को आकाशके मध्यमें आया हुआ देखकर उत्प्रेक्षा करते हुए कहा ॥ ५ ॥

अनुवाद—मध्यमें शोभित सूर्यसे अन्यकी तरह यह आकाश जलती हुई अग्निसे महाकुण्डके समान हो गया है ॥ ६ ॥

अनुवाद—सब बछड़े व गोपवालोंके अनुकूल यमुना तटपर ही नव किसलय युक्त घनी चिकनी छाया युक्त नये वृक्षों पत्रादिसे शोभित मूलवाला,

---

(1) अग्नि—अग्निर्वैश्वानरोवह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः (अ० को० १।१।५३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलरव कोलाहल लोभनीय परिपार्श्वं कृत मधुरतराडम्बर कारण्डवाकीर्णं समुदितमुदितमितर चक्रवाक-रचित चक्रवालं [1]दात्यूहव्यूहविहित वहलकलकलित बहुकौतुहलाभोगं मदकलकलविङ्क निरातङ्क झङ्कार मुखर महीरुहशिखरं सरस कोमल विमलतमाति स्वच्छवालुका विसरं क्वचिदुपचितनवनीरवाह खण्डमण्डितं क्वचिदपि चाखण्डोदयदुडुनिकर निकामवलयितमम्बरवलयमिवाविशदविशद कोकनदच्छविनिविडं सरोजराजिराजितं सर इव बहुविधलक्ष्मलक्ष्मी विलक्षणीभूत मनोभूफलकमिव सुविपुल पुलिन पदं मूर्तिमतीं मुदमिवालुलोके, सत्वरमुपगत्येदमाचचक्षे च ॥ ७ ॥

यमुनावर्णनम्

कालिन्दीचन्द्रहासं च पुलिनाभेद्य चर्म्म च ।
जित्वा जघदघं धर्म्मो द्वयमेव जहाविव ॥ ८ ॥

कोमल गतिसे सुन्दर हंस कामिनीके शब्दके कोलाहलसे सुन्दर स्थानवाला, मधुर आडम्बर करनेवाले कारण्डव पक्षियोंसे व्याप्त सब प्रकारसे सुन्दर, चकवा-चकवी के समूहसे शोभित, दाव्यूह पक्षियोंके बहुत कल-कलसे कौतूहल उत्पन्न करनेवाला, मदवाले कलविङ्क पक्षियोंके आतङ्क शून्य झङ्कारसे वृक्षोंके शिखरको गुञ्जित करनेवाला, सरस कोमल और निर्मल अत्यन्त स्वच्छ बालुका युक्त, कहीं उठे हुए नव जलद खण्डसे शोभित और कहीं पर अखण्ड उदित होते हुए नक्षत्र समूहसे अत्यन्त घिरा हुआ, आकाश वलयकी तरह, विशद कोकनद कमलकी शोभासे सुन्दर, कमल पंक्तिसे शोभित तालाबकी तरह, अनेक प्रकारकी चिह्नयुक्त शोभासे विलक्षण, विस्तृत रेतीला स्थान मूर्तिमती प्रसन्नताकी तरह देखा, तत्क्षण वहाँ जाकर कहने लगे ॥ ७ ॥

यमुना-वर्णन

अनुवाद—कालिन्दी रूपी तलवार है और पुलिन रेतोला स्थान जिसका अभेद्य चर्म म्यान है, इस म्यानयुक्त तलवारसे धर्मने संसारके पापको जीतकर दोनोंको यहाँ छोड़ दिया है। पुलिन शब्दका अर्थ धर्मके कवच रूपमें भी घटता है ॥ ८ ॥

---

(1) 'दात्यूहः कलकण्ठकः" जलकाकः (अ० को० २।५।२१)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

खलश्रेणीकोलाहलकलित काञ्चीकलकलो
मिलद्वीचीभासोल्लसितसितवासो वलयितः ।
पदाङ्कैः कोकानां प्रिय नरवर लेखोपखचितो
नितम्बः कालिन्द्याः पुलिनमिदमिन्दीवरदृशः ॥ ९ ॥

क्वचित्कूर्म्ममुखोन्मेषमुखरीभूतबुद्‌बुदम् ।
क्वचिन्मत्स्योच्छलत्पुच्छं भात्युच्छं यमुनापयः । १०॥

हिण्डीरस्फुट पुण्डरीक पटली पाण्डुः क्वचित्कुत्रचि-
न्माद्यन्मुग्धमरालमण्डलपटुप्रारब्ध कोलाहला ।
धावद्धीवरभीरु पीवरदुली[1]वाचालवीचीकुला
कुत्रापि क्वचिदप्युदेति यमुना पाठीन झंपाकुला ॥११॥

अथ भोक्तुमनाः करिवरकरभ इवाति कूतूहलोपुलिनवरमध्य-
मध्युवास वासुदेवः पशुपकिशोरैरलंकृतः परितः ॥१२॥

अनुवाद—कमलके समान नेत्रवाली यमुनाका यह पुलिन भाग नितम्व स्थल है, दुष्टोंका कोलाहल ही काञ्चीकी ध्वनि है, तथा उठती हुई तरङ्गोंके श्वेत वस्त्रसे वलयित है, कोकके चरण चिह्न ही प्रियके नख अङ्कोंके शोभा स्थान हैं ॥ ९ ॥

अनुवाद—यमुनाका जल कहीं-कहीं कछुएके मुखसे निकला हुआ बुद्-बुद् शब्द करनेवाला है, कहीं मछलीकी पूँछसे उछलता हुआ सुन्दर शोभा देता है ॥१०॥

अनुवाद—कहीं जल बुद्‌बुद्से युक्त कमल समूहसे श्वेत, कहीं मतवाले भोले हंस समूहके सुन्दर कोलाहलवाली तथा कहीं दौड़ते हुए धीवरोंसे भयभीत कच्छपीसे उठी हुई वाचाल लहरोंवाली और कहीं-कहीं 'यमुना' बड़ी-बड़ी मछलियोंसे आकुल होकर उठ-सी रही है । ११ ।

अनुवाद इसके पश्चात् गज कलभकी तरह अति कुतूहलसे भरे हुए भोजनकी इच्छासे चारों ओर बैठे गोपबालोंसे शोभित वासुदेव रेतीले मैदानमें बैठे ॥१२॥

---

(1) दुली कमठी । "कमठी दुलि" दोलतीति दुलिः । (अ० को० १।१०।२४)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सालवाल इव कल्प पलाशो केशवः सपरिवेष शशीव ।
अन्तरे व्रजकिशोर गरीयोमण्डलस्य विनिविश्य बभासे ।।१३।।
आवृत्योल्लसितं विराजदलकैर्गोपालकैर्बालकैः ।
कालिन्दीपुलिने कलिन्दतनया कल्लोल कल्पंमहः ।
भूवक्षः पदकाख्यभूषण इवान्तर्भाति नीलोपलं-
रत्नैर्द्वैपमिवाद्रिमैक्य रुचिरै रम्भोभिरम्भोनिधेः ।।१४।।
मध्योद्यन्माधवाकारमाभीर शिशु मण्डलम् ।
अपश्यदमरश्रेणो पूर्णचन्द्रमिवापरम् ।।१५।।
हरिपरिमण्डितमध्यं मण्डलमाभीरजैर्बद्धम् ।
ज्योतिश्चक्रमिवासीन्मेढ़भूतध्रुवं वियति ।।१६।।
वत्सपैर्मण्डलीभूय मण्डितो यदुनन्दनः ।
द्वीपशैल इवाशीलि केसराचलमण्डलैः ।।१७।।

अनुवाद—आलवाल युक्त कल्पवृक्षकी तरह, परिवेष सहित चन्द्रमाकी तरह ब्रजगोपोंको गरिमासे युक्त मण्डलके मध्यमें बैठकर केशव अति शोभित हुए ।।१३।।

अनुवाद—शोभित अलकोंवाले गोपाल, बालकोंसे घिरे हुए बैठे तथा यमुनाके पुलिनमें यमुना जलके कल्लोल करते हुए तेजके समान तथा पृथ्वीके वक्षःस्थलपर पदक नामके भूषणमें अन्दर चमकते हुए नील उपलके समान तथा समुद्रके सुन्दर मिले हुए जलसे रत्नोंके द्वारा द्वीपगत पर्वतके समान, हरिकी शोभा थी ।।१४।।

अनुवाद—मध्यमें शोभित हुए माधवको तथा सब ओर बैठे गोपबालक मण्डलको देवताओंने दूसरे पूर्ण चन्द्रकी तरह देखा ।।१५।।

अनुवाद—हरि जिसके मध्य बैठे हैं ऐसे गोप बालकों द्वारा बाँधे मण्डलको, ध्रुव जिसके मेढीभूत अर्थात् मध्यमें हो ऐसे ज्योतिश्चक्रकी तरह आकाशको देखा ।।१६।

अनुवाद—गोपाल बालकोंके द्वारा मण्डल बनाकर बैठे हुए यदुनन्दन, केसरके पर्वत मण्डल द्वारा द्वीप मध्य पर्वतकी तरह शोभित हुए ।।१७।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिष्टान्न - रोटि - पूरिवर्णनम्

मात्रा दत्ते प्रयत्नादमृत इव दधिक्षीरहैयङ्गवीने
खण्डापीने नवीने यदपि च लुचिवीरोटि पूर्य्यैक चौर्य्यः।
आभीराणां शिशुभ्यो विदितरुचि ददे सस्वदे वासुदेवो
यन्माधुर्य्यादिवान्धः क्व नु पशुभिरितं तेषु ते कोऽपिवेद ।।१८।।

कचौरिवर्णनम्

उदञ्चति कचोरिका मधुरिका मनश्चोरिका-
सुधारसपुरी पुरी न लुचिवी समोर्वीतले।
हरेर्हरिण चोलना हरिणहीन चन्द्रानन
त्रपोषित सुधानिधिः सुमधुवाटिका रोटिका ।।१९।।
तमोरुचिधुरन्धरे हरिकरे बिगाढान्तरे-
विधुप्रतिनिधिर्दधि द्रुतमभाणि गोपार्भकैः।
अघासुरविघातनोद्भटवनान्तरोद् भावनां
श्रमच्छिदिर माधवोऽरमत दधिनधुन्वञ्छिरः ।।२०।।

मिष्ठान्न-रोटी-पूड़ी वर्णन

अनुवाद—माताके द्वारा बड़े यत्नसे अमृतकी तरह दधि, दूध, मक्खन आदि दिये हुए थे। खण्ड (खाँड़) से पूर्ण नये नये थे, यद्यपि कृष्ण लुचिवी, रोटी पूरी आदिके चोर हैं, फिर भी गोप बालकोंको रुचिपूर्वक दिया और स्वयं खाया जिसकी मधुरतामें अन्धे होकर हमारे पशु कहां चले गये यह कोई नहीं जान पाया ।।१८।।

कचौड़ी-वर्णन

अनुवाद—कचौड़ी बड़ी अच्छी है, मधुरिका मनको चुरानेवाली है, पूरी अमृतरससे पूर्ण है, लुचिवीके समान पृथ्वी तलपर कुछ नहीं है। तथा हरि की सुन्दर चोलना वस्त्र तथा कालिमासे हीन चन्द्रके समान मुखवाली स्त्रीकी त्रपा लज्जासे युक्त अमृत समुद्रके समान मधुर वाटी तथा रोटी है ।।१९।।

अनुवाद—श्याम शोभासे सुन्दर घने चिकने मध्यवाले सुन्दर हरिके हाथमें चन्द्रके प्रतिनिधि अर्थात् चन्द्र सदृश दही गोप-बालकोंने देनेको कहा, अघासुरके विनाशकी दूसरे वनमें होनेवाली विचार धाराको श्रम दूर करनेवाले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिष्टं मिष्टमिदं गृहाण न मुदं भेजे मनस्त्वा विना–
भोक्तुं बल्लवबाल बल्लभवहन्नेवं वचो वैभवम् ।
तस्यार्धं विततार वत्सपगणस्त्रैलोक्यमुत्कम्पयन्
न म्लालेन मुखेन पाणिकमले जग्राह नारायणः ।।२१।।

हासवर्णनम्

माधवेन पुरतः प्रसारिते हन्त दक्षिणकरे तदर्थनैः ।
हासयन्त उपहास कौशलैः केऽपि केऽपिशतधाप्यवञ्चयन् ।।२२।।
[1]कुत्राघोपरमः क्व भोजनविधिस्स्तोकैः समं प्राकृतै-
रित्यादिश्य विधिर्विरुद्धहृदयो बोद्धुं व्यतानीद्धियम् ।
तादृङ् मण्डलमध्यमण्डितममुं सा धीस्त्व साधीयसी-
स्तम्भालीवृतमन्वभून्नहठतो वैकुण्ठकण्ठीरवम् ।।२३।।

माधवने दहीके लिये सिर हिलाते हुए वहला दिया दहीको देखकर प्रसन्न हो गये, अघासुर-वधका श्रम दूर हो गया ।।२०।।

अनुवाद—यह मीठा-मीठा तुम ले लो, हे वल्लववालवल्लभ ! गोपबालकोंसे प्रेम करनेवाले तुम्हारे बिना खानेको मन नहीं होता इस प्रकार मीठी वाणीको कहते हुए उसका आधा गोपबालोंने उनको दिया, तीनों लोकोंको कंपाते हुए अर्थात् सिर हिलाते हुए म्लान मुखसे नारायणने उसको अपने हाथपर नहीं लिया ।।२१।।

हास-वर्णन

अनुवाद—उन गोपवालोंके कथनसे सामने माधवके द्वारा दाहिना हाथ फैलानेपर हास चातुर्यसे हँसते हुए कुछ बालकोंने बहुत बार हाथ रखकर झूठ ही धोखा दे दिया अर्थात् दिया नहीं देनेका बहानाकर दिया ।।२२।

अनुवाद—कहाँ तो अघासुरका मारना, और कहाँ कुछ गोपबालोंके साथ भोजन, यह देखकर विरुद्ध विचार बनाये हुये ब्रह्माने भगवान्‌की परीक्षा लेनेका विचार किया । ऐसे गोप मण्डलके मध्यमें शोभित उनकी परीक्षाकी यह बुरी बुद्धि बनाली, जैसे खम्भोंके मध्य बैठे शेरको कोई नहीं समझ पाता वैसे ही गोपोंके मध्य बैठे हुए वैकुण्ठके सिंह कृष्णको ब्रह्मा नहीं पहचान पाये ।।२३।।

---

(1) विधिकृत वत्सापहरणं भा० १० स्कं० १३ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तां मायामतनोप्प्रभातुमुदधौ जालैकफालीमिव
भ्रातः साहस कौशलं हतविधेः कस्मै किमाचक्ष्महे ।
तद्वत्सानहरद्धठेन कपटी तुच्छोऽपि सन्स्वेच्छया
वत्साघातिशयोच्छलन्मदमहामायेन्द्र मायाच्छिदः ॥२४॥

ब्रह्म व्यामोहः

भूमावेकं निधाय द्विगुण घनमिलद्भुग्नजं घोरुजानु
प्रोद्दाम्यापि द्वितीयं पदमवनितलाद्बद्ध वीराधिवासः ।
वेत्रं वेणुं विषाणं तनपटपुटितं पृष्टपार्श्वद्वयान्त-
र्बिभ्राणो वामपाणि प्रणिहित कवलं दक्षहस्तेन भुङ्क्ते ॥२५॥

वत्सापहरणम्

वेत्रं वेणुमथो विषाणसदधत्पृष्टे च पार्श्वद्वये
क्षुत्सेनामभिजेतुमायुधमिव त्रेधाक्रुधा माधवः ।
तद्यालीढयतेः क्षणं यदुपतेर्लब्ध्वान्तरं प्राग्विधि-
र्यद्वत्सानहरन्स गोपतिरिति ख्यातस्त्रिलोक्यामभूत् ॥२६॥

अनुवाद—जैसे कोई समुद्रमें जालकी एक फाली उसे जाँच करनेके लिये डाले तो समुद्रकी गहराई आदि का पता नहीं लगता, इसी प्रकार कृष्णकी परीक्षा करनेके लिये ऐसी माया ब्रह्माने की, हे भ्राता उस हतविधिके साहस और चतुरताको हम किससे और क्या कहें, उनके बछड़ोंको हठपूर्वक कपटी और तुच्छ ब्रह्माने चुरा लिया । वत्सासुर और अघासुरके अत्यन्त उठते हुए मदवाले तथा महामायावियोंकी मायाको भी नष्ट करनेवालेकी 'ब्रह्मा' परीक्षा लेना चाहता है ॥

ब्रह्म-मोहन

अनुवाद—दोहरी करके घनी टेढ़ो मिलती हुईं हैं जङ्घा-घुटने और जानु जिसमें ऐसा एक पैर पृथ्वीपर मिलाकर रखते हुए तथा दूसरे पैरको पृथ्वीसे उठाये हुये वीरासन बाँधे बेंत वेणु और श्रङ्गको शरीरके वस्त्रोंमें पीठ और दोनों पार्श्व भागमें खुरसते हुए, बाँये हाथमें ग्रास पकड़े हुए, दाहिने हाथसे खा रहे हैं ॥

वत्स-अपहरण

अनुवाद वेंत, वेणु और श्रङ्गको पीठ और दोनों ओर पार्श्वमें क्षुधाकी सेनाको तीन प्रकारसे जीतनेके लिये माधवने क्रोधसे धारण किया । श्रीकृष्णके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनालोचितगोवत्सा वत्सपाः कच्छपा इव।
कण्ठमाकुण्ठयामासुश्चण्ड - दण्डहता इव ॥२७॥

अहो वत्सा न लप्स्यन्त मोक्ष्यन्ते किन्तु मद्विधाः।
एहि कृष्ण ! विधास्यन्ते गवामेव गवेषणम् ।.२८॥

कृष्णस्यान्वेषणम्

यदि वत्सा न लप्स्यन्ते नोत्पत्स्यन्ते किमाधयः।
पुरः किमभिधेयं वा तदाम्बा तातयोरपि ॥२९॥
अशनं मुञ्चतो वीक्ष्य किशोरानाशु केशवः।
दयार्द्रो वारयामास मया गतमिति ब्रुवन् ॥३०॥
निवार्य तानार्यतमः समस्तान्, हस्तारविन्दे कवलं दधानः।
तथैव वामे स यथा गृहीतं, जगाम गामेव गवेषमाणः ॥३१॥

भोजनमें ध्यान देनेसे पूर्व ब्रह्मा अवसर पाकर बछड़ोंको नहीं चुरा सका, इसीलिये श्रीकृष्णको सब लोग गोपति नामसे प्रसिद्ध करते हैं ॥२६॥

अनुवाद—गौ और बछड़ोंको न देखकर ग्वाल-वाल कच्छपकी तरह संकुचित हो गये। दण्डोंसे तेज पीटे जाते हुए की तरह शोर मचाकर कण्ठ-को कुण्ठितकर लिया ॥२७॥

अनुवाद—अहो बछड़े नहीं प्राप्त होंगे, हम जैसे अब किस प्रकार छूटेंगे, हे कृष्ण ! आओ अब ये सब गौओंका अन्वेषण करेंगे ॥२८॥

कृष्णका ढूढने जाना

अनुवाद—यदि बछड़े प्राप्त नहीं होंगे तब क्या मनकी चिन्तायें नहीं होंगी ? अवश्य होंगी। माता और पिताके सामने जाकर हम क्या कहेंगे ॥२९॥

अनुवाद--ग्वाल-बालोंको खाना छोड़ते हुये देखकर, केशवने तत्काल दयालु होकर मैं ढूँढ़ने जाऊँगा, ऐसा कहते हुए भोजन छोड़नेसे रोक दिया ॥३०॥

अनुवाद—श्रेष्ठतम श्रीकृष्णने उन सबको रोककर, हाथमें ग्रास धारण कर और उसी प्रकार बाँए हाथमें भी ग्रास लिया और गौओंको ढूँढ़ते हुए चल दिये ॥३१॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वासीद्रोटी क्ववेत्रं क्व नुवत कवलः क्वावतंसः क्ववंशी
कुत्रांसादुत्तरीयांशुकमशनरसः कुत्र वा कुत्र हासः ।
अक्षिभ्यां नैक्षि नाबोधि च बत वपुषा चेतसा लक्षि नो वा
धन्यानां धेनुजार्थे प्रतिधरणिरुहं धावतो माधवस्य ॥३२॥

कृष्णस्यश्रमवर्णनम्

प्रत्यम्भो धामतीरं प्रतिगिरिकुहरं प्रत्यटव्यन्तरालं
प्रत्यध्व प्रत्यनध्व प्रतितरुनिकटं प्रत्यटद्धामकुञ्जम् ।
प्रत्याशं प्रत्यनाशं प्रतिनददुटजं प्रत्यनासन्नदेशं
प्रत्यासन्नप्रदेशं व्यचिनुत भगवान्प्रत्यगारं च वत्सान् ॥३३॥

द्विगुणमरुणिमानं दर्भगर्भाकुरोधैः
क्षत चरणमसृग्भिश्चक्षुरर्कांशुभारैः ।
अलभत वपुरभ्रश्यामलं श्यामधाम
श्रमबहलजलार्द्रां भ्राम्यतः कैटभारेः ॥३४॥

श्रमोदझरमेदुरं मिहिरभानुतुष्यं वपुः
स वीजयति पाणिना चलघटीकटीं नाटयन् ।

अनुवाद—गोपवालोंके बछड़ोंको ढूँढ़नेके लिये दौड़ते हुए माधवने प्रत्येक वृक्षके नीचे ढूँढ़ा, कहीं पर भी आँखोंने न देखा, न जाना, शरीरसे चित्तसे किसी प्रकार भी न जान पाये, कहां रोटी गई, कहाँ बेंत गया, ग्रास, भूषण, वंशी कहाँ गई, कन्धेसे दुपट्टा भी कहीं का कहीं गया, न भोजनका आनन्द रहा न हँसी रही ॥३२॥

कृष्णका श्रम-वर्णन

अनुवाद—प्रत्येक तालावके किनारे, प्रति पर्वत गुफामें, प्रत्येक वन मध्यमें प्रत्येक मार्ग तथा मार्ग शून्य स्थानमें, प्रत्येक वृक्षके निकट, प्रत्येक समीपके प्रदेशमें तथा दूर देशमें प्रत्येक भवनमें, भगवान्ने बछड़ोंको ढूँढा ॥३३॥

अनुवाद—घूमते हुए कृष्णके कुशोंके अन्दरके अकुरोंसे दूनी लालिमा होगई, रक्तसे पैर घायल होगये, सूर्यकी किरणोंसे आँखें लाल होगईं, घन सदृश श्याम शरीर काला तथा पसीनेके जलसे भींग गया ॥३४॥

अनुवाद—पसीना निकलता रहा, सूर्यकी किरणोंसे शरीर तप गया, चञ्चल घटी युक्तकी तरह कमर हिलाते हुए हाथसे हवा करते थे, मस्तकपर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ललाटतटविस्फुटत्करसरोजमुद्वीक्षते
दिशो दश गवेषतेऽप्यहह गा विवेशो हरिः ॥३५॥

कार्यार्थी यदि जायते विधिवशात्कः प्राकृतः कः प्रभु
र्व्यामोहाननु विन्दते वितनुते व्यापारभारानपि ।
हंसालीषु बकावलीषु हरिणश्रेणीषु वत्सभ्रमाद-
बभ्राम प्रचुरं जगाम पुलिनं मोघः स मेघच्छविः ॥३६॥

तस्करापहृतहारमिवोरः क्षोणि[1]खञ्जनदृशोगतशोभम् ।
हीनमम्बरमिवोडुकदम्बैर्बाल शून्य पुलिनं हरिणैक्षि ॥३७॥

हरिरिदमवधाय दुर्विधातुः
कपट कुतूहलमात्मनो विभूतेः ।
अघटित कटुदृष्टिरेव सृष्टिः
पशुपशुपालकयोः स्वयं बभूव ॥३८॥

इदमवधाय माधवानुसेवी भृशमनुरक्तिभक्तिव्यक्तीकृतभयजजल

हाथ रखकर दूर तक देखते थे, चारों दिशाओंमें ढूँढ़ते हैं, पृथ्वीपर सब ओर प्रवेश करते हैं ॥३५॥

अनुवाद—चाहे प्रभु हों, अथवा साधारण हो, दैवयोगसे कार्य सबको ही उपस्थित हो जाता है, आज प्रभु भ्रम प्राप्तकर रहे हैं अनेक व्यापार भार उठा रहे हैं, हंसोंमें, बगुलोंमें, हिरनोंमें, बछड़ोंके भ्रमसे खूब घूम रहे हैं, घनश्याम रेतीले प्रदेशमें गये, परन्तु सब बेकार रहा ॥३६॥

अनुवाद—तस्करसे चुराये हारसे शून्य हृदयकी तरह, खजन सदृश सुन्दर नेत्रवाले न शोभाहोन पृथ्वीकी तरह, तारागणसे हीन आकाशकी तरह, (हरिने) सब स्थानोंको बछड़ोंसे शून्य ही देखा । ३७॥

अनुवाद—भगवान्‌ने अपनी विभूति अपनेसे उत्पन्न दुष्ट विधाताका यह कपट कुतूहल समझा और स्वयं कटु दृष्टिसे शून्य बछड़ा और ग्वाल-बालकी सृष्टि स्वयं ही बन गये ॥३८॥

अनुवाद—यह जानकर इसको सहन न करता हुआ माधवका भक्त

---

(1) धरा धरित्री धरणी क्षोणी ज्या काश्यपी क्षितिः "क्षौतीति क्षोणी" ।
(अ० को० २।१।२) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धारम्, तदसहमान इव ब्रह्मणि जातमत्सर इव कोऽपि च सुकृती[1] व्याजहार किमपीदम् ॥३९॥

चौर्याचार्य पदाय सम्प्रतिगवां चातुर्यमाचर्यतां
दुश्चर्यैक चतुर्मुखे न करवै किं वैरमस्मिन्नहम् ।
स्वच्छो हि प्रभुरेव तात इव नो गृह्णातु भृत्यानयं
यद्भ्राम वने सदर्भकठिने मध्येऽह्नि दूयेततः ॥४०॥

गोपरूपधारणम्

प्रत्येकं भिन्नभिन्नाभरण गुणवयो वेषलावण्य लक्ष्मी-
नीलाशीलांगभङ्गीमुखनखनयन भ्रूललाटाशनादीन् ।
द्वेधात्मानं किशोरान्कनकमिव तुलाकोटिकोटीरकाञ्ची-
केयूरादीन्प्रकुर्वन्निजमिव स नभौ दर्शयन्ब्रह्मभावम् ॥४१॥

अत्यन्त अनुराग और भक्तिके द्वारा आँखोंमें अश्रु धारण किये हुए, ब्रह्मामें द्वेषको करता हुआ कोई पुण्यवान् यह कहने लगा ॥३९॥

अनुवाद--हे चौराचार्य ! इस समय गौओंकी प्राप्तिके लिये कुछ चतुरता कीजिये । दुश्चर्यामें चतुर इस ब्रह्मामें मैं अब वैर क्यों करूँ । आप प्रभु हैं स्वच्छ हैं । पिताकी तरह इस भृत्य ब्रह्माकी अनीति आप स्वीकार करें । परन्तु कुशोंसे इस कठोर वनमें मध्याह्न कालमें जो आपका भ्रमण हो रहा है इसका मुझे बड़ा दुःख है ॥४०॥

गोपरूप-धारण

अनुवाद--प्रत्येकको जैसी वस्तुकी जैसी शोभा थी वैसी ही भिन्न-भिन्न आभरण, गुण, अवस्था, वेष, सौन्दर्य शोभा, स्वभाव, अङ्ग भङ्गी, मुख, नख, नयन, भ्रू ललाटादि वाले ग्वाल-वालोंको तथा स्वर्णकी तरह सुन्दर तुलाकोटि-मञ्जीर-कोटि-काञ्ची - रसना - केयूरादिको तदनुकूल बनाते हुए अपना ब्रह्मभावसर्व व्यापकता प्रकटकर दी ॥४१॥

---

(1) सुकृती पुण्यवान्धन्यो महेच्छस्तु महाशयः । सुकृतमस्यास्तीति 'अत इनठनाविति' इनिः सुकृती । (अ० को० ३।१।३) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वत्सरूपधारणम्

तावत्ताद्दगशेषवेषवसनालङ्कार शोभागुणा
व्याहारव्यवसाय विग्रह पयोव्यापार - भोगादिकम् ।
रूपं वत्सपवत्सयोरपि हरिः स्वीकृत्य सायं ययौ
ध्वानैर्वेणु - विषाणयोस्तरलयन् गोगोपवामभ्रुवः ॥४२॥

गोगोपीनांदशावर्णनम्

अघध्वंसिवंशीरसीरावचित्रं समाकर्ण्यकर्णेपुराकर्णनेत्राः ।
बहिर्निःसरन्त्यो मुहुर्निष्पतन्त्यो दधु क्षीब[1] भावं परिक्षीणधैर्याः ॥४३
श्रवोभाजिवेणोः स्वने नन्दसूनोर्गवां गोपवामभ्रुवामेकदेव ।
क्षरत्क्षीरधाराभिरासीदसीमस्तनाली घनालीढ पाथोधरश्रीः ॥४४

क्वणत्किङ्किणीनां झणत्कारधारा
रणत्कार राजीरुवन्नूपुराणाम् ।
हरेर्वत्सहम्भारवः शृङ्गवंशी
निनादो जगाहे जगन्त्येव सायम् ॥४५॥

बछड़ारूप-धारण

अनुवाद—गोप बालकोंका जैसा वेष-वस्त्र-अलङ्कार-शोभा गुण बोल-चाल व्यवसाय विग्रह, दूधादिका कार्य बछड़े और ग्वालोंका जैसा रूप था वैसा ही बनाकर वंशी और विषाणको ध्वनिसे गौ और गोपियोंको चञ्चल करते हुए शामको पहुँचे ॥४२।

गोपियोंकी दशा-वर्णन

अनुवाद—अघासुर नाशक कृष्णकी सुन्दर ध्वनिको कानसे सुनकर आँख-कान लगाये हुये, धैर्य खोये हुए बाहर निकलती गिरती पड़ती गोपियाँ किं-कर्त्तव्य विहीन हो ग्ई ॥४३॥

अनुवाद—कान तक पहुँची कृष्णकी वंशीके रवमें गौओंका, गोपियोंका एक साथ ही बहते हुए दूधकी धारासे, असीम स्तनोंसे बहते दूधकी घने बादलोंसे बरसते जलकी जैसी विचित्र शोभा थी ॥४४॥

अनुवाद—बजती हुई किंकिणियोंकी झणत्कारकी धारा, नूपुरोंकी रण-

---

(1) क्षीब—"मत्ते शौण्डोत्कटक्षीबाः" मत्तः (अ० को० ३।१।२३) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वचिद् वत्सपालैः क्वचिद् वत्सजालै-
र्बलद्वन्द्वमालैः क्वचिन्नन्दबालैः ।
परब्रह्मभिः पूर्णमेवास तूर्णम्
पुरं गोपुरं चत्वरं मन्दिरं च ॥४६॥

बलत्पुच्छवत्सोच्छलद्धूलिधारा
धुनीमग्नमानन्दसिन्धूरमग्नाः ।
समादाय दोर्भिस्तमादाय वक्षः
स्वनन्दन्यशोदादयो घोषयोषाः ॥४७॥

श्रमजलपशुकुलबहल धूलि धोरणीभिरभिसंकुलतया पंकिलकाय-कन्दलीकं प्रथमत एव कीलाल धाराभिरभिकुसुमसमूहादिभिः सुरभी-कृतस्नैहैः स्नेहैरिवाभ्यञ्जयत ॥४८॥

बालप्रेमनिरूपणम्

तदनु च विमलतरेण श्रीयमुनाजलपूरेण स्नपयित्वा, तदनु च वस-

त्कारकी शोभा, हरिके बछड़ोंका हम्भा-हम्भा शब्द श्रृंग और वंशीका शब्द सायं संसारमें सब जगह व्याप्त होगया ॥४५॥

अनुवाद—कहीं गोपबालोंके रूपमें, कहीं बछड़ोंके समूहमें, कहीं नन्द-बाबाके बालकोंके रूपमें, नगर, गोपुर चबूतरादि मन्दिर सब परब्रह्मसे व्याप्त होगये ॥४६॥

विशेष—स्वयमात्मात्म गोवत्सान् प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ।
क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद् व्रजम् ॥भा०११।१३।२०

अनुवाद—घूमती हुई पूँछवाले, बछड़ोंके उछलनेसे, उठी हुई धूलकी धारामें मग्न श्रीकृष्णको आनन्द सागरमें मग्न यशोदादि गोपोंकी स्त्रियाँ भुजाओंसे आलिङ्गन करके हृदयमें प्रसन्न हुईं ।४७॥

अनुवाद—पसीना तथा पशुओंके द्वारा उठी हुई धूलि धारासे सने होनेके कारण मैले शरीरवाले कृष्णको सबसे प्रथम जलसे फिर पुष्पोंसे वासित स्नेहकी तरह तैलसे अभ्यक्त किया, स्नान कराके तैल लगा दिया ॥४८॥

बाल प्रेम निरुपण

अनुवाद—तदनन्तर फिर विमल यमुना जलसे नहलाकर फिर सुन्दर वस्त्रसे पोंछकर कुसुमके समान सुकुमार छोटे-छोटे बाल अवयवोंको ठीक करके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नेन स्वेन सम्मार्ज्यावयवं कुसुमसुकुमारस्पर्शतया सूक्ष्मतया चाति समीचीने कौशेय वाससी[1] परिधाय्य, पुनरपि मञ्जीर प्रमुख चरणालङ्कार किङ्किणी प्रभृति कटिभूषणारुण नख रुचिर ग्रैवेयकादिक ग्रीवाभरणमुद्रिका वलय[2] केयूरकुण्डलादिभिरभिमण्ड्य, गोरोचनाभिरति ललितललाटपट्टकोपरि पटुतरतिलकमुल्लिख्य नयनमनुरञ्ज्यापि मञ्जुभिरञ्जनैरलिकतलमिलदलकमालिकामलि - किशोरमालिकामिव सम्प्रसाध्य, क्षणमभिलषितमन्नादिकमनुभोजयन्त्यः, क्षणमुरसि निवेश्य, गुह्यमितीव गाढमुपगुह्य, भुजवल्लीभ्यामामीलितनयनमनुभवन्त्यः किमपि सुखभरं, क्षणमपि करचरणोदर चिबुक मुखकपोलपालिभालमौलि स्थलमनुचुम्बन्त्यः, क्षणमपिजनितदरान्दोल हिन्दोलिकाया मान्दोल्य, जगदानन्दनमपिनन्दनमानन्दयन्त्यः, क्षणमपि च निजाङ्कपल्यङ्क एव निधाय स्फुरदधर बन्धुजीवान्तरे स्तनमाधाय स्तन्यमधुर सुधारसं पाययन्त्यः, क्षणमपि निखिल बिलक्षण मुदित क्षणमाख्याय साक्षादेव हरेः कलिकलुषकलाप यापन क्षणं चरितमकृत्रिम माधुरी

स्वच्छ रेशमी वस्त्र पहनाकर फिर मञ्जीरादि चरण भूषण किंकिणी आदि कटिभूषण सुन्दर नख ग्रैवेयकादि (ग्रीवाके आभरण) अगूठी, कंकण, केयूर, कुण्डलादिसे शोभित करके गोरोचनसे सुन्दर ललाट पट्टपर शुभ तिलक लगाकर, आँखोंमें सुन्दर काजल लगाकर, भ्रमर मालाकी तरह मस्तक तक आये केशोंको कन्धेसे ठीक करके फिर अभीष्ट अन्नादि कुछ भोजन कराती हुई गोपियाँ क्षणभर हृदयसे लगाकर, छिपाती हुई की तरह, भुजाओंसे गाढ़ आलिङ्गन करके, कुछ आंख बन्दकर अपूर्व सुखका अनुभव करती हुई, कुछ क्षण हाथ, पैर, उदर, ठोड़ी, मुख, कपोलस्थल, मस्तक भागको चुम्बन करती हुई, छोटेसे हिंडोलेमें थोड़ी देर झुलाकर, जगत्‌को आनन्द देनेवाले यशोदानन्दनको आनन्दित करती हुई थोड़ीदेर गोदरूपी शय्यापर बिठाकर, स्फुरित हुए बन्धुजीव कुसुमके समान ओष्ठमें स्तन लगाकर सुधाके समान, मधुर दूध पिलाती हुई थोड़ी देर कलियुगके पाप समूहको नष्ट करनेवाले निखिल विलक्षण सबको प्रसन्न करनेवाले साक्षात् हरिके चरितको कहकर, गानकर, स्वाभाविक माधुर्यसे शोभित अपने घरके आँगनमें ही धीरे-धीरे

---

(1) वस्त्रं । (2) कङ्कणम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धाम निजधाम प्राङ्गण एव लघुतटमनुद्रावं द्रावं निद्रापयन्त्यः कर्मान्तरमेव न विदुरखिलाश्चर्य चातुर्यैक भुवोऽपि गोपनार्यः ॥४९॥

आहूय हुङ्काररवेण दूराद्दुर्धावतस्तानभिधातुकामान् ।
[1]गोगोपबालानहरत्स मूढो, भेजे परब्रह्म शिशूभवत्ता[2] ॥५०॥

स वत्स वत्सपीभूय विहरन् गृहगोष्ठयोः ।
दर्शयामास योगीन्द्रमात्मारामत्वमात्मनः ॥५१॥

दधति न मनो घासग्रासे न वारिणि वारिता
अपि च विपिने गोपैः कोपैः स्थितिं न हि कुर्वते ।
गिरिबिल तनूनुल्लङ्घन्ते समीक्षितुमुज्झित—
प्रतिनवसुना वत्सीभूते मुरद्विषि धेनवः ॥५२॥
कलितमुरलीध्वानाः प्राणान्मनाक् क्व न मेनिरे
व्रजमृगदृशः के पन्थानः स्फुटत्कटुकण्टकाः ।

घूमकर सुलाती हुई, सभी आश्चर्य और चतुरताको उत्पन्न करनेवाली गोपियाँ कोई अन्य दूसरा कार्य ही इसके अतिरिक्त नहीं जानतीं थीं ॥४९॥

अनुवाद—दूरसे हुङ्कार शब्दसे बुरी तरह दौड़ती हुई गौओंको तथा कहनेके इच्छुक गोपाल-बालोंकों बुलाकर मूढ ब्रह्मा हरले गया फिर शिशु बनते हुए परब्रह्म गो गोपाल दोनोंके रूपमें प्रतीत होने लगे ॥५०॥

अनुवाद—बछड़ा और गोपाल बनकर घर और गोष्ठमें विहार करते हुए भगवान्‌ने अपने आपको योगीन्द्र और आत्माराम दोनों ही भावमें प्रकट कर दिया ॥५१॥

अनुवाद—अब ब्रह्मरूप गो-गोप वेषधारी कृष्ण, घासके कवलमें तथा जलमें जल बुद्धिसे मन नहीं लगा रहे हैं, वनमें गोपोंके साथ कोपसे ठहरना नहीं चाहते। बछड़े बने हुए मुररिपु कृष्णके देखनेको गौयें, छोटे बछड़ोंको छोड़कर पर्वत वृक्षोंको लाँघकर जा रहीं हैं ॥५२॥

अनुवाद—मुरलीकी ध्वनि सुनकर प्राणोंकी तनिक भी परवा नहीं होती, नकलते हुए बड़े-बड़े कटु काँटोंवाले कौनसे मार्ग गोपियोंके हैं यह भी नहीं देखते,

(1) "मन्ये मनोज्ञ प्रचुराशयेषु तपांसि वृन्दावन गोप गोषु" इति पाठः पार्श्वभागे केनापि लिखितः ॥
(2) शिशूभवत्परब्रह्म ता गा भेजे" इत्यन्वयः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न बत पतनं श्वभ्रे स्वासामिवालयकर्म्मण-
स्तनुभुवि हरौ गोवद्गोवर्द्ध नाद्रिपिपासवः ॥५३॥

वृन्दावनदूर्वादल महिमा

वृन्दावनैक दूर्वासमतां पूर्वाधिपोऽपि नाश्रयते।
आस स्वर्देशदेवो वत्सीभूयापि यामभितः ॥५४॥

ब्रह्मभ्रान्ति

गाहन्तां गहनान्तरणि शतधा मुग्धा हि तन्मातरो
मच्चेतोऽपि हरन्ति हन्त हरिवद्वत्साश्च ते वत्सपाः।
आः किं तन्न मयाप्यबोधि यदहो रामोऽपि नामेदृशो
भ्रान्तिर्यत्र विधौ कियानिह[1] सरोजन्माप्तजन्मा विधिः ॥५५॥

विषय-मदमहिम्नामेव भूम्ना स मेने
क्षणलवलघुकालं वत्सरं मत्सरात्मा।

हमारी तरह घरमें काम करने वालोंका भी कहीं गड्ढेमें पतन न हो जाय, गोवर्धन पर्वतपर पिपासु गोप-गोपियाँ-गौकी तरह रूप धारण करते हुए कृष्णमें इस प्रकार भावनाकर रहे थे ॥५३॥

वृन्दावन दूर्वादल-महिमा

अनुवाद--पूर्वाधिष्ट पूर्व दिशाका स्वामी इन्द्र भी वृन्दावनकी एक दूर्वाकी समता भी नहीं कर सकता, जिस वृन्दाटवीके चारों ओर बछड़ा बने हुए कृष्ण घूम रहे हैं ॥५४॥

ब्रह्माजीकी-भ्रान्ति

अनुवाद—भोली-भाली गौयें सैकड़ों तरह गम्भीर वनमें घूमती रहें, हरिकी तरह यह बछड़े और ग्वाल-बाल मेरे मनको प्रसन्न करते रहें, अहो हम भी अब तक नहीं जान सके कि बलराम भी ऐसे ही हमारी तरह हैं, वह भगवान् के रूपको नहीं समझ पाये, ब्रह्माको तो ऐसी भ्रान्ति हुई क्योंकि जड़ जलसे उत्पन्न कमलका पुत्र है उसकी भ्रान्ति स्वाभाविक है ॥५५॥

अनुवाद—विषयोंके मदकी अधिकतासे उस मत्सर करनेवाले ब्रह्माने अपने अर्थात् ब्रह्माके क्षणांशके थोड़े कालके बराबर मनुष्योंके वर्षभर समय; क्या

---

(1) ब्रह्मा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमजनि किमित्याशङ्कया स स्वयम्भू-
र्मुरमथन विनोदं द्रष्टुकामो जगाम ॥५६॥

ब्रह्मव्यामोह

तावन्तोऽपि तथैव तेन हरिणा तत्रैव तादृग्महत्-
क्रीड़ाकौशलमावहन्ति शिशवो गच्छन्ति वत्सा वनम् ।
इत्यालोच्य विविच्य चेतसि चिरं क्रीडानमत्कन्धरः
श्रीबन्धोरवधाय धाम निपतद् धूलीषु सोऽलीयत ॥५७॥

दौरात्म्यं निजमनुचिन्त्य कैटभारे-
रुद्भाव्य भ्रमितधियो हृदि प्रभावम् ।
आमीलन्नयन मखण्डजाड्य दण्डं
द्राग्दण्डं वपुरपि वेधसोऽनु चक्रे ॥५८॥

चण्डकर्म चरतो हि गुरूणां दण्डवत्पतनमेव न दण्डः ।
पद्मभूरिति विभुप्रिय वृन्दारण्यधाम शरणं स जगाम ॥५९॥

कर्म्माणि स्मरतो निजानि विदलन्मर्म्माणि शर्म्माण्यगु-
र्द्राग्दूरेषु सहाक्षपाटवगणैर्भङ्गं च भेजे स्वरम् ।

होगया इस शङ्कासे ब्रह्मा मुररिपुके विनोदको देखनेकी इच्छासे गया ॥५६॥

ब्रह्माजीका मोह

अनुवाद—उतने ही वैसेही उन्हीं हरिके साथ वहींपर वैसेही आनन्दसे क्रीड़ा-कर रहे हैं, वैसेही छोटे-छोटे बछड़े वनको जाते हैं। यह देखकर चित्तमें बहुत देर-तक सोचकर और अपनी गर्दन झुकाकर श्रीबन्धु-कृष्णका प्रताप समझकर गिरतो हुई धूलिमें लोट गया ॥५७॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके साथ अपनी दुष्टताको विचारकर भ्रान्त बुद्धियुक्त हृदयमें प्रभावको सोचकर आँखें बन्द करते हुए अखण्ड जड़ताका दण्ड अत्यन्त मूर्खताका दण्ड भोगनेको अपना शरीर ब्रह्माने तैयार किया ॥५८।

अनुवाद—गुरुओंके साथ अनुचित कर्म करनेका दण्ड केवल दण्डके समान गिर पड़ना ही नहीं है यह सोचकर कृष्णके प्रिय वृन्दावन धाममें ब्रह्मा शरण प्राप्त करनेके लिये गया। "पृथ्व्यां वपुः कनक दण्डमिवाभिपात्य" भागवत १०।१३ ६२ ॥५९॥

अनुवाद—मर्म स्थलको विदीर्ण करनेवाले अपने कर्मोंको स्मरण करते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संभ्रान्त्या शवनिर्विशेष - वपुषो दुर्मेधसो वेधसो
भूपृष्ठे पतितस्य तस्य न ययुः प्राणा बहिर्व्रीडया ॥६०॥

अथ कंटभरिपुर्बन्धाय धातुरवस्था मास्थाय किमपि निजरूपमनिरूपणीयलावण्य-वयोवेषविशेषप्रतिरूपमपहाय निखिलसुरासुरानवगाह्यमागाधमायाप्रपञ्चममृताविशेषहास - लेशेन तरलतरापाङ्गेन सुधातरङ्गेणेवाभिषिञ्चन्ननतिदूर एव तरुण कदम्बतरुमवलम्बमानोऽमृत संजीविनोमिवामृतवर्षिणीमिव विद्यामनवद्यां मुरलीमुरलीकृत्य जीवयन्निव प्रबोधयामास धातारम् । स खलु ससंभ्रमचकितमुदीक्ष्य दिक्षु पुरो लक्षयति स्म पुण्डरीकाक्षम् ॥६१॥

ब्रह्मस्तुतिः

त्रिभङ्गीमदङ्गं भ्रमद्भ्रूभुजङ्गं,
कृपा सङ्गरङ्गावलद्रक्तरङ्गम् ।
चतुःपार्श्वपुञ्जी भवन्मञ्जुगुञ्जा,
वली चारुचूडा वलद् बर्हखण्डम् ॥६२॥

हुए ब्रह्माकी शक्ति नष्ट होगई । तत्काल दूर तक सब इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो गई साथ ही स्वर भङ्ग होगया । भ्रान्तिसे मृतकके समान शरीर होगया, पृथ्वीपर गिरे हुए मूर्ख ब्रह्माके प्राण लज्जासे बाहर नहीं निकले ॥६०॥

अनुवाद—इसके पश्चात् कंटभरिपु कृष्ण बन्धनकी तरह ब्रह्माकी अवस्थाको जानकर नहीं जानने योग्य लावण्यवय वेशादि विशेष स्वरूप रहित सुर-असुरादिसे नहीं जानने योग्य अगाध माया प्रपञ्चवाले अपने रूपको छोड़कर अमृत सदृश हासयुक्त तरलतर नेत्रयुक्त अमृत लहरीकी तरह सिंचन करते हुए समीपमें ही तरुण कदम्ब वृक्षका सहारा लेते हुए, अमृत सञ्जीवनीकी तरह अमृत वरसानेवाली शुद्ध विद्याका मुरलीके समान आश्रय लेकर जीवन देते हुएकी तरह ब्रह्माको समझाने लगे । वह ब्रह्मा भ्रमके साथ चकित होकर चारों ओर दिशाओंको देखकर श्रीकृष्णको देख रहा था ॥६१॥

ब्रह्म-स्तुति

अनुवाद—अङ्गोंको त्रिभङ्गके समान तथा सर्पके समान काली-काली भ्रूकुटिको चलाते हुए कृपाकी आसक्तिसे शोभित हो रही है लाल आभा जिनकी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सपत्रैकनीपं स्फुरद्वामकर्णं,
तमालाभ्रमालाशिलाश्याम वर्णम् ।
स्फुरद्रोचना चन्द्रचञ्चल्ललाटं,
लसद्द्वारलक्ष्मीकवक्षः कपाटम् ॥६३॥
कटीनद्धचञ्चद् घटीशुद्धवेशं,
कृता - खण्डपौगण्डशोभाविशेषम् ।
घनस्निग्धनीपाचलच्छायमूले,
स्थितं चण्डभानोः[1] सुतायाश्च कूले ॥६४॥
हृताशेषवाम्यं महायोगिकाम्यं,
श्रुतीनामगम्यं प्रसादाति रम्यम् ।
विषाणं च वेणुं च वेत्रं च विभ्र-
त्परं ब्रह्म साक्षात्स्वयम्भूः समीक्षे ? ॥६५॥
न्युब्जानां पुनरब्जानां श्रियमाप मुरद्विषि ।
प्रसन्नेऽपि त्रपान्यञ्चतुर्मुख चतुर्मुखी ॥६६॥

चारों ओर एकत्र हुई सुन्दर गुन्जाकी पंक्तिसे शोभित चोटीमें मयूरकी पूँछ जिनके लगी हुई है । "गुञ्जावतंस परिपिच्छलसन्मुखाय" । भा० १०।१४।१ ॥६२॥

अनुवाद—पत्रयुक्त एक कदम्ब पुष्पसे शोभित वाम कर्ण चमक रहा है, तमाल, वर्षाकी मेघमाला तथा श्याम शिलाके समान श्याम वर्णवाले हैं, चमकती रोचनासे अर्द्ध चन्द्र सदृश तिलकसे ललाट शोभित है तथा सन्मुख द्वारपर लक्ष्मीसे भूषित वक्षस्थल है ॥६३॥

अनुवाद—कटिभागमें घंटीसे चमकता हुआ शुद्ध वेष है, अखण्ड सम्पूर्ण कुमार अवस्थासे सम्पूर्ण शोभा है, घनी और चिकनी कदम्ब वृक्षकी छायामें यमुनाके तटपर स्थित हैं ॥६४॥

अनुवाद—सब प्रतिकूल वर्गको नष्ट करनेवाले बड़े-बड़े योगियोंसे अभिलषित श्रुतिसे अगम्य प्रसन्नतासे अति सुन्दर विषाण वेणु और वेत्रको धारण किये साक्षात् परब्रह्मको ब्रह्माने देखा ॥६५॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके प्रसन्न होते हुए भी लज्जाके कारण झुके हुए ब्रह्माके चारों मुखोंने झुके हुए कमलोंकी शोभाको प्राप्त किया ॥६६॥

---

(1) विधिकृता स्तुतिः भा० १० स्कन्धे १४ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हिमीकर्तुकामा हृदेवास्य वामा
हिमानीव हेमाभवासो वसानम् ।
हरिं हारिणं हारिता राजधानी
प्रमाष्टुं प्रियागः प्रतुष्टाव वाणी ॥६७॥

परस्मै परस्माच्च कस्मैचिदस्मै
नमस्ते समस्तेश यस्त्वेष भासि ।
इतो वत्सपा[1] लीमितो वत्सपालान्–
विचिन्वन्वनेऽस्मिन्वितन्वन् रहस्यम् ॥६८॥

[2]तुलाकोटिमङ्घ्रो कटौ क्षुद्रघण्टां
हृदि स्फारहारं श्रुतौ कर्णिकारम् ।
करे वेणुवेत्रे मुखे स्मेरनेत्रे
दधानाय चित्रे नमो विश्वनेत्रे ॥६९॥

अनङ्गीव रङ्गी भवान्वेत्रमंसे,
ऽप्यजन्मापि जन्माददे गोपवंशे ।

अनुवाद—अत्यन्त शीतल महत हिमकी तरह इस ब्रह्माकी वामा पत्नी सरस्वती ठण्डा करनेकी इच्छासे क्रोध दूर करनेकी अभिलाषासे हृदयसे प्रिय ब्रह्माके आग=अपराधको दूर करनेको प्रसन्न चित्त हरिको राजाओं स्थिर करनेवाली वाणी स्तुति करने लगी ॥६७॥

अनुवाद–हे समस्त जगत्‌के स्वामी ! परसे पर किसी एक विशिष्ट स्वरूप आपके लिये मैं नमस्कार करता हूँ जो आप सर्वत्र प्रकाशित हैं, इधर बछड़ोंको और गोपोंको ढूढ़ते हुए अपने रहस्यको फैला रहे हैं । ६८॥

अनुवाद—चरणोंमें नूपुर कमरमें घुँघरू क्षुद्र छोटी घण्टा हृदयपर सुन्दर हार कानोंमें कन्नेरके फूल ["कर्णयोः कर्णिकारम्" भा० १०।२१।५] हाथ वेणु और बेंत मुखमें प्रसन्न नेत्र धारण करते हुए विश्वके चितेरे नेताको नमस्कार करता हूँ ॥६९॥

अनुवाद–अङ्गहीन होते हुए भी अङ्गी बनकर खेल करनेवाले अजन्मा होते हुए भी गोप वंशमें जन्म लेनेवाले, अकर्मा होते हुए भी कर्मजन्य, पापका

---

(1) "पाली पंक्तिः" । (2) तुलाकोटिर्नूपुरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अकर्म्मापि कर्म्माघहन्पाशुपाल्यं,
किमेतन्नचित्रं पुराणोऽपि बाल्यम् ।।७०

न वै वास्य गावो न च व्यासगावो,
विदुर्धाम देवोचितं ते कथञ्चित् ।
त्वमीदृक् त्वमीदृक्पथे कुर्वते त्वा,
मभूदित्ययं मत्सरो वत्सरोत्या ।।७१।।

न वाचं यमानन्दमाधीनचेतो,
रमेश क्षणं चक्षमे स्प्रष्टुमेव ।
वनान्तर्निगूढं दधाना भवन्त,
बलाद्वत्सचारी न किं मत्सराय ।।७२

महानस्तु दण्डो वरं देव चण्डो,
विनोदं व्यतानीन्ममागस्त्वगण्डम् ।
श्रुतं रूपमेकं पुराधानुभूतं घना-
नन्द वृन्दावने वृन्दभूतम् ।।७३।।

जगत्सेवितच्छायपादोऽपि
यत्त्वं तनू .... ।

नाश करते हुए पशु-पालन करनेवाले, पुराने होते हुए भी बालक, क्या यह आपके आश्चर्य जनक कार्य नहीं हैं ? यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है '।७०।।

अनुवाद—आपके स्वरूपको न इस ब्रह्माकी, और न व्यासकी वाणी प्राप्तकर सकती है, आप ऐसे हैं इस रूपका ये योगी दृष्टि-मार्गमें लाते हैं, वत्स पालन रीतिसे आप नर-लीला कर रहे हैं ।।७१।।

अनुवाद—हे रमेश ! हमारा यह पराधीन चित्त योगियोंके आनन्दको क्षणभर भी स्पर्श नहीं कर सकता है वनके मध्य छिपे हुए आपको अन्य लोग कैसे जान सकते हैं, क्या वत्स चारण आपकी नर-लीला नहीं है ? ।।७२।।

अनुवाद—हे देव ! यह मेरा महान् दण्ड योग्य अपराध है, आपके विनोदमें मैंने अखण्ड अपराध किया । घन आनन्द रूप वृन्दावनमें एकत्र हुआ जो रूप मैंने पहले सुना था वह रूप मैंने पाप नाशके लिये अनुभव किया ।।७३।।

अनुवाद—आपके चरणोंकी छायाका संसार सेवन करता है । (.... श्लोकका एक चरण अप्राप्य है ।) श्रुति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रुतिर्नेति नेति क्रमादन्व धावच्
छ्रामादप्यविन्दत्पदं ते न हन्त ।
असत्स्वागसोऽपि प्रसह्यापराधं
क्षमाशील साक्षाद्भूस्त्वं नमस्ते ।।७४।।

नरीनर्त्ति नाथत्रयी जातहर्षा, महावारिवर्षागमे बर्हिणीव ।
जपन्त्येकमेवाद्वयं ब्रह्म किञ्चिन्न, नानेति जाते भवत्य द्वितीये ।।७५।।
यदानन्दमाहुः परब्रह्मरूपं, तथा तच्चमुक्तिस्फुरद्वक्ति वेदः ।
विघूर्णन्नघोऽपि त्रिलोकीमलोऽपि, त्वयि क्षेमभागीक्षितो मोक्षलक्ष्म्या ।७६
अथास्यातिमृत्योस्त्रयी त्रासमापत्तमोभूःक्वरक्षःप्रभाभूः क्वमोक्षः ।
'विदित्वातिमृत्युं तमेव प्रयाती' त्य, थासीदृशी मोदयन्मोदराशिः ।।७७
न तप्यं च तेपुर्न जप्यं च जेपुः, परं धाम भेजुस्त्वयायुज्य रेजुः ।
अघौघैरवद्याश्च घोरैरघाद्याः, कृपावृष्टिधन्या प्रभोः सृष्टिरन्या ।।७८।।

नेति-नेति कहकर दौड़ती है परन्तु आपके पदको श्रम करके भी प्राप्त नहीं कर पाती, दुष्टोंके अपराधोंको सहन करके आप कृपा करते हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूं ।।७४।।

अनुवाद—हे नाथ ! अति वर्षा कालमें मयूरीकी तरह वेदत्रयी प्रसन्न होकर नृत्य करती है । अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म आपकी सत्ता अद्वय एक आपका ही जप करते हैं, नाना नहीं एक आप ही अखण्ड रूप हैं [पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः भा० १०।१४।२३] ।।७५।।

अनुवाद—परब्रह्म रूप एक ही आनन्द है, मुक्तिमें स्फुरित हुए उसको ही वेद बताता है । त्रिलोकीका घूर्णित पाप भी मोक्ष लक्ष्मीसे नष्ट होकर आपके ही पास कल्याण प्राप्त करता है ।।७६।।

अनुवाद—मृत्युसे पर आपसे त्रयी भी डरती है, फिर तमसे उत्पन्न राक्षस व प्रकाशसे उत्पन्न मोक्ष कुछ नहीं उसको जानकर मृत्युको पार करता है, यही श्रुति प्रसन्नता देती है [भा० १०।१४।१७] ।।७७।।

अनुवाद—न कोई तप न कोई जप है उस पर तेजका आश्रय लेकर सायुज्य प्राप्त हो जाता है । घोर पापोंसे दूषित पापी भी आपकी कृपा दृष्टिसे धन्य होगये, आपकी सृष्टि दूसरी है ।।७८।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अहो पूतना सा जगद्भूतनाशा, व्यधात्कर्मजात्या विभो[1]यातुधानी ।
किशोरीभवन्तं भवन्तं प्रतार्यामृतं मातृकूटा ददे कालकूटैः ॥७९॥
स्मरन्सूक्ष्ममंशं जडीभूय भूमन्न वाचं च वाचंयमः कर्त्तुमीशे ।
भवन्तं भवन्तं पुरस्तादनन्तं कथं वीक्ष्य मूढा वयं वर्णयामः ॥८०॥
त्वया वञ्चनापञ्च पञ्चाननेन त्रिलोकीप्रपञ्चो विरिञ्चीकृतोऽयम् ।
समं वत्सपालैरभून्नैव वृन्दावने वत्सवृन्दावने सङ्गभागी ॥८१॥
न वैकुण्ठवाटी नवाम्भोजबन्धुर्नगोलोकलक्ष्मीर्न च क्षीरसिन्धुः ।
घनश्यामवृन्दाटवी पाटवी स्यात्तनुव्यूहभाजा त्वयाभाजि भो या ॥८२॥
त्वमेकोऽपि नानासि हेमेव भूमंस्तुलाकोटि कोटीरकेयूर काञ्चयः ।
वदन्त्येवमेके विरुन्धन्त्यनेके यतः स्याद्धतो भृत्यभर्त्रादिभावः ॥८३॥

अनुवाद—अहो संसारके प्राणियोंका नाश करनेवाली यातुधानी पूतनाने जातिके अनुसार कार्य किया । बालरूप आपकी छलमयी माता बनकर कालकूट विषसे छिपाकर दुग्ध दिया ॥७९॥

अनुवाद—हे भूमन् ! आपके सूक्ष्म अंशका स्मरण करके मितभाषी योगी भी जड़ होकर बोल नहीं सकते । अनन्त आपको सम्मुख देखकर हम मूढ़ क्या वर्णन कर सकते हैं ? ॥८०॥

अनुवाद—पञ्चभूतके द्वारा जगत् रूप वंचनाके पञ्चानन सिंह रूप आपने तीनों लोकोंका प्रपञ्च ब्रह्माके द्वारा विस्तृतकर दिया है, किन्तु वत्सपाल गोपोंके साथ वत्स वृन्दके अवन रक्षणमें वृन्दावनमें आप सङ्ग भागी नहीं हुए अर्थात् रक्षा नहीं कर सके ॥८१॥

अनुवाद—नवकमल सदृश सुन्दर वैकुण्ठका उद्यान गोलोककी शोभा तथा क्षीरसागर यह सब आपको सुन्दर नहीं प्रतीत हुई परन्तु हे घनश्याम यह वृन्दावन बड़ा रमणीय है जो नर शरीर धारण करके आप इसका सेवन कर रहे हैं ॥८२॥

अनुवाद—आप एक होते हुए भी अनेक हैं जैसे सोना एक होते हुए भी तुलकोटी, कोटीर, केयूर, कांची आदि भूषणोंके रूपमें अनेक होता है ऐसा लोग कहते हैं, कोई इसका विरोध भी करते हैं जिससे सेवक-स्वामीकी भावना नष्ट न हो सके ॥८३॥

---

(1) यातुधानी=राक्षसी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पयोदर्पणानां प्रभेदेषु नाना
बलाद् बिम्बशाली यथा भानुमाली ।
प्रकृत्येककृत्ये जगत्येवमेको-
जगद्भासयन्भासि नानेव नूनम् ॥८४॥

तनूभूतमंशं दधद्योगभागी
भवत्सुप्रभावैर्भवानेव भावी ।
हुताशैकलेशं महाकाष्ठकूट-
क्रमाद्वह्निकूटो यथा कैटभारे ॥८५॥

न [1]शक्रादिदेवा न वा तीर्थ सेवा
न पीयूष भोगा न वा भूरियोगाः ।
समग्रैकबन्धुः समग्रैकवैरी
भवोद्दाम दावे भवानेव दावः ॥८६॥

ध्यायन्तु ध्यान धन्या धरणि धरतटे जाग्रतों ज्योतिरग्र्यं
निर्व्यग्रं ते समग्राः कमपि च पुरुषं यायजूका यजन्ताम् ।
नेदं नेदं च वेदा विदधतु बहुधास्माकमास्तां पुरस्ता
दुन्मीलन्नीलधारा धररुचिरुचिरः कोऽपि गोपीकिशोरः ॥८७॥

अनुवाद—जल दर्पणादिके भेदसे सूर्यकी तरह आपके अनेक प्रकारसे प्रतिबिम्ब हैं। प्रकृतिके एक कृत्य इस जगत्में आप अकेले इस जगत्को भासित करते हुए भासित हो रहे हैं ॥८४॥

अनुवाद—स्वल्प अंशको धारण करनेवाला योगी अपने आपमें तदाकार होकर प्रभावशाली हो जाता है, जिस प्रकार हे कैटभारे ! अग्निका एक स्फुलिंग महाकाष्ठके योगसे वह्नि समूह हो जाता है ॥८५॥

अनुवाद—न इन्द्रादि देव हैं, न तीर्थ सेवा, और न बहुतसे भोग, और न बहुत योग्य हैं, इस संसाररूपी उत्कट अग्नि पुञ्जमें सबके एक बन्धु और सबके बैरी बस आप ही हैं ॥८६॥

अनुवाद—ध्यानमें मग्न होकर योगी पर्वत, शिखरपर जागते हुए उस अग्र ज्योतिका ध्यान करें। व्यग्रता छोड़कर सब याज्ञिक किसी पुरुषका यज्ञ करें। वेद भी यह नहीं, यह नहीं, कहकर अनेक प्रकारसे हमारे सामने विधान करें, सब

---

(1) इन्द्र ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यागानां विप्रयोगः सुचिरमुदयतामास्तु योगप्रयोगो
हे भक्ते मातरुक्तेरविषय हृदयागोचरे त्वं प्रसीद ।
व्यक्तोचक्रे हि चक्री[1] तवमहिमचयं गोपिकाद्वारिबद्धो
नैकैरागत्य गोपैर्दधिहरणरुषा गर्जितैस्तर्जितोऽपि ।।८८।।
न न्यूनो नातिरिक्तस्तदवयवचयो वेषभूषादिकानां
तादृक्तावद्विधातुं प्रभुरपि यदभूः कोटिधा कैटभारे।
तन्मन्ये सर्वभावं रस सरस गुणासीम सौभाग्यवृन्द-
स्वच्छन्दानन्द वृन्दावनमनुभवितुं नो विधेर्मोहनाय ।।८९।।
दाम्ना बद्धोऽपि मध्ये प्रकुपितजननी भीतिरुद्धोन्तरेऽपि
प्रोद्यद् भक्तर्षि हर्षावह धरणिरुहोद्धार लीलावलीढः ।
क्षिप्त्वा क्षिप्त्वाक्षि दिक्षु क्वणितकटितटीक्षुद्रघण्टाघटाद्य-
स्तद्वाचंद्रागकार्षीस्त्वमिव किमु विभोकोऽपि भक्तानुकम्पी ।।९०

कुछ रहें, परन्तु निकलती हुई नीलधारोंको धारण करनेवाले मेघको शोभावाला कोई गोपीका किशोर हमारे सामने रहता है ।।८७।।

अनुवाद—यज्ञोंका विप्रयोग (विशेषेण प्रयोग) अथवा वियोग बहुत समय तक होता रहे । योगोंका प्रयोग भी चलता रहे । हे भक्ति माता ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ तुमको वाणीसे नहीं कहा जा सकता, हृदयमें भी तुम्हारा प्रत्यक्ष नहीं होता, गोपिकाओंके द्वारपर बन्धनको प्राप्त करनेवाले इस चक्रधारी कृष्णने तुम्हारी महिमा प्रत्यक्ष करदी है । अनेकों गोपोंने दधि चुरानेसे क्रोधमें भरकर गरजते हुए इसे डराया भी है ।।८८।।

अनुवाद—वेष भूषादिके द्वारा वत्स और गोप सब, न कम न अधिक जैसे गोप बछड़े थे वैसे ही आप बन गये हैं कैटभारे ! आप सबको वैसा ही और उतना ही कर सकते थे पर स्वयं अनेक रूपमें बने, मैं मानता हूं कि रसयुक्त गुणोंमें असीम सौभाग्य तथा स्वच्छन्द आनन्दवाले वृन्दावनमें रमण करनेके लिए ही आपने यह किया, विधिको मोहमें डालनेको नहीं ।।८९।।

अनुवाद–आप रस्सीसे बँधे कुपित माताके डरसे हृदयमें डरते हुए भक्त व ऋषियोंको प्रसन्न करते हुए यमलार्जुनके उद्धारकी लीलासे मग्न दिशाओंमें

---

(1) कृष्णः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एतादृक्कोटिकोटि प्रकटितनु तपः पूरिताशेष कामा
मेघश्यामाभिरामा गुरुगरिम चतुर्बाहवः पूर्णबोधाः ।
विद्यन्तेऽद्यापि तेऽमी मम हृदि करुणापाङ्गभङ्गीतरङ्गैः
सिञ्चन्तोदः प्रपञ्चं मधुमथनविधिः कोऽयमेको वराकः ।।९१।।
सृष्टावेकोऽस्मि स्त्रष्टा विरतिरिति मदस्यास्तुमोहो महीया-
नप्यास्तामप्सुरस्तात्रिजगति कुयशः किन्तु तेनैष धन्यः ।
यत्ते प्रत्येकमेकं निजमपि निकटेऽपश्यदास्यैश्चतुर्भिः
स्तोत्रं कुर्वाणमुर्वी[1] विलुठित मुकुटं कंटभारे स्वयम्भू ।।९२।।
पानायं पाणिपात्रः क्वचिदपि तृषया निष्पिवन् क्षुद्भिरश्न-
न्पत्रं कुत्रापि दैवाच्युतममृतमिव क्षीणकौपीनवासाः ।
कर्त्तव्यैषानुकम्पा मधुमथन - दृशोर्वाहयन्बाष्पधारां
गायन्नारायणोऽसौ व्यपनयतु वयः क्वापि कुञ्जेविरञ्चिः ।।९३।।

दृष्टि डाल·डालकर कटिभागमें बजती हुई छोटी घण्टियोंसे सुन्दर लगनेवाले आपके समान किसीने भी हे विभो! भक्तपर कृपा करके ऐसी वाणी बोली है ।।९०

अनुवाद—ऐसे करोड़ों भक्तोंने अल्पतपसे ही अपनी इच्छाओंको पूर्ण किया है मेघकी तरह श्याम आभावाले गम्भीर गौरव वाली चार भुजाओंवाले तथा पूर्ण बोधयुक्त करुणा जनक अपांग भागकी भङ्गिमासे इस प्रपंचको सोंचते हुए हे मधु-मथन! ऐसे अनेक हैं जो मेरे हृदयमें हैं, मैं जानता हूँ इस विचारे एक ब्रह्माकी क्या बात है ।।९१।।

अनुवाद—सृष्टिमें एक मैं ही स्त्रष्टा ब्रह्मा हूँ, मेरे मदकी समाप्ति हो जाय मोह बढ़गया है, तीनों लोकोंमें अपयश होगा,(वह रहे) मैं इससे प्रसन्न हूं जो यह पृथ्वीपर मुकुटोंके लोटते हुए चारों मुखोंसे स्तुति करते हुए यह ब्रह्मा इन सबको देख रहा है यह आपकी महिमा है ।।९२।।

अनुवाद—प्यास लगनेपर हाथोंसे ही कहीं जल पीता हुआ तथा भूँख लगनेपर दैवसे गिरे पत्तोंको अमृतकी तरह खाता हुआ केवल क्षीण कोपीन धारण किये आँखोंसे वाष्पधारा बहाते हुए नारायण गान करते हुए यह ब्रह्मा किसी कुञ्जमें अपनी अवस्था व्यतीत करदे, बस ऐसी कृपा कीजिये ।।९३।।

(1 पृथ्वी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चतुर्वेदाभ्यासव्यथित चतुरास्यैरलमलं
तदेतच्चैतन्यैरुदयतु तवैवोरुजडिमा ।
विधिर्यैर्मञ्जीर त्वमिव हरिसंचारसमये
पदाम्भोजालक्ष्मीर्न शुभनुतिझङ्कारमकरोत् ॥९४॥

पदाम्भोजं पायात्परमपददायादसुविदां
हृदां हार्दानीहं बलवदनुरागं वहदिव ।
अधः शोणं शोचिर्दधदनल रोचिर्जय चिरं
घनस्निग्धच्छाया शयितमिव सायास मिहिरम् ॥९५॥

उपासे कौशेयं वसनमति पीत द्युतिभरैः
परीतं त्वत्प्रीति प्रसरदनुरागैरिव बहिः ।
त्रिलोकीमाच्छाद्य त्रिगुणपटमत्साद्य जयत-
स्तव स्वच्छं स्वेच्छामयवपुरपिच्छादयति यत् ॥९६॥

अनुवाद—चारों वेदोंके अभ्याससे दुःखी चार मुखोंकी आवश्यकता अब नहीं, इन चैतन्य मुखोंसे जड़ता उत्पन्न हुई है वह तुम्हारे पास ही रहे। हे मंजीर जिस हरिके भ्रमण कालमें तुम झङ्कार करते हो उसी प्रकार यह ब्रह्मा शुभ स्तुति पाठकी झङ्कार करता रहे, चरणकमल रूप अपने कमल निवासपर विराजमान लक्ष्मी नहीं बल्कि ब्रह्मा स्तुतिको झङ्कार करता रहे, यही इच्छा है ॥९३॥

अनुवाद—भगवान्‌का चरणकमल हमारी रक्षा करे, जो अधिकारीके परम पदके भाग अथवा प्राप्तव्य अंश पहचाननेवाले हृदयकी अन्य विषयक अनिच्छा तथा उत्कट अनुराग प्रेमको धारण करता है उस चरणका तलभाग लाल लाल अग्निकी दीप्तिको धारण किये हुएकी तरह घनी चिकनी छायामें सोते हुए, आराम करते हुये, थके हुए सूर्यको तरह है, मानों सूर्य थककर घनी छायामें सो रहा हो ॥९५॥

अनुवाद—हे भगवान् ! आपके प्रेमसे बाहर फैलते हुए अनुरागकी तरह अत्यन्त पीली कान्तिके भारसे युक्त रेशमी वस्त्रकी मैं उपासना करता हूँ। जो त्रिलोकीको ढके हुए सत्व, रजः, तमोगुण पटको हटाकर विजय करनेवाले आपके स्वच्छ स्वेच्छामय शरीरको भी ढक रहा है ॥९६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अशून्ये वा सेवे समुदयति देवेश रसना
सरागैरप्येतैः कठिनिमसमेतैरपि भृशम् ।
अभूदेभी रत्नैर्जलधिरपि रत्नाकर इति
स्वपूर्वेषां स्वेषां महदनुगृहीतो हि यशसे ।।९७।।

नमस्तुभ्यं क्षुभ्यत्तरुण तरणे कौस्तुभमणे
[1]++ स्ति प्राशस्त्यं तवहि हृदि हार्दो हरिरधात् ।
सदा त्वं सागर्भ्यान्मिलितमिव शुभ्रांशुमदधः
स्मितज्योत्स्नालास्यं प्रतिफलितमास्यं मुरभिदः ।।९८।।

गुणामुक्ते मुक्तावलि वलिनि युक्तासि हृदये
दयेद्धः (?) स्नाहार्दे निभृतमभितः कैटभरिपोः[2] ।
नमस्ते व्यस्तारि स्वयमशमथा धीनपरिधी-
भवव्योमोद्दाम द्युमणि तुलना कौस्तुभ मणे ।।९९।।

अनुवाद—हे देवेश ! मैं इस कटि भूषण रसनाकी प्रत्यक्ष ही स्तुति करता हूं यह सर्व सम्मुख प्रदीप्त हो रही है, इसमें कठिनिमा द्रढिमासे युक्त लगे हुये रत्नोंसे ही समुद्र रत्नाकर कहलाता है और अपनेसे पूर्व अपने ही जनों द्वारा इसी कारण यशस्वी बना है ।।९७।।

अनुवाद—अपनी कान्तिसे तरुण सूर्यको क्षुभित करनेवाले हे कौस्तुभ-मणि ! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ । हरिने अपने हृदयमें तुम्हारी शोभाको धारणकर रक्खा है । तुम और चन्द्रमा दोनों समुद्रसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये चन्द्रमाकी किरणोंका सौन्दर्य भी तुम्हारे साथ है, मुररिपु कृष्णका मुस्काना चन्द्रमाकी चांदनीसे मिलकर लास्यकी शोभाकर देता है ।।९८।।

अनुवाद—हे गुणोंसे अमुक्त ! अर्थात् युक्त मुक्तावलि तू कृष्णके बलयूक्त तथा स्नेहसे आर्द्र हृदयपर ठीक निवास करती है, कृष्ण तेरे ऊपर दया करें । व्यस्त दुःखी शत्रुके अशमथ अर्थात् अशान्त घिरे हुए आकाशमें प्रदीप्त सूर्यकी तुलना करनेवाली कौस्तुभमणिसे तू युक्त है, तेरी बड़ी शोभा है मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।।९९।।

---

(1) चकास्ति ।   (2) कृष्णस्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कदा वा कीदृग्वा कियदहह हृद्वागविषयं
शिखण्डी प्राचण्ड्यं तपसि किमखण्डं व्यतनुत।
वदामः किं कस्मै त्रिभुवन गुरोर्दैवन शिरो-
मणेश्चूडादण्डः शिखरित शिखण्डो विजयते ॥१००॥
श्रुतौ लग्ना त्वं च प्रभवितुरयं च स्फुटमयं
भवाशङ्कापङ्कावलिवलन रङ्कायित मतिः।
मुखेन्दुस्वच्छन्द द्युतिलहरिवंशीरव सुधा
तरङ्गैरुत्तुङ्गैः स्नपित वपुरुत्तंस वलसे ॥१०१॥
नमस्ते कस्तूरि त्रिदशतिलकेनासि तिलकी-
कृता त्वं सौरभ्यच्छविनिवह साग्येऽपि वपुषि।
अतः स्थाने गोरोचन कनकगौरोदितकणा-
नुरागैः सन्नद्धाधिकललितमध्या विजयसे ॥१०२॥
ददे केयूराभ्यां मुरहर जडाभ्यामपि भवा
न्भुजस्तम्भालम्बं शिशुपशुकदम्बं मृगयसे।

अनुवाद—जहाँपर हृदय और वाणी नहीं पहुँच पाती ऐसे शिखण्डी मोरने कब और कैसी कितनी अखण्ड और उग्र तपस्याकी है यह हम किससे क्या कहें। तीनों लोकोंके गुरु देवताओंके शिरोमणि श्रीकृष्णका चूड़ादण्ड अर्थात् चोटी जिस मोरकी पूँछसे शिखरित है, शिखरकी तरह मोरकी पूँछ चोटीपर शोभित है ॥१००॥

अनुवाद—तुम प्रभुके कानमें लगी हो और यह जन प्रत्यक्ष ही संसारके दुःख समूहसे पीड़ित बुद्धिवाला है, मुखरूपी चन्द्रमाकी स्वच्छन्द तथा शोभित लहरीसे युक्त वंशीकी अमृत सदृश ऊँची तरङ्गोंसे अपने शरीर सजानेवाले भूषण-के समान शोभित हो रही हो। यह स्तुति वंशीकी है, वंशी अधरपर रक्खी हुई कान तक पहुँच सकती है ॥१०१॥

अनुवाद—हे कस्तूरी मैं तुझे नमस्कार करता हूं, देवताओंके श्रेष्ठ कृष्णने तुझे अपना तिलक बनाया है, वे कस्तूरीका तिलक लगाते हैं, गन्धयुक्त शोभा समूहसे समान अपने शरीरमें तेरा तिलक शोभा देता है, गोरोचन तथा सुवर्णके समान गौर और सुन्दर अनुरागसे मध्यभाग अधिक शोभित तथा सुन्दर बन जाता है ॥१०२॥

अनुवाद—हे मुरहर कृष्ण! तुम जड़ अपने केयूरके लिये अपने भुज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनो मे सोत्साहं परिशमितदाहं समुदभू
त्समोदञ्चदृष्टिः प्रभुरखिलसृष्टिष्वपि यतः ॥१०३॥

सरःस्थं सिन्धुस्थं सुखयति हि सूरः सरसिजं
पुरस्थं पृष्ठस्थं कुमुदममृतांशुर्मदयते ।
अदूरस्थं दूरस्थितमपि समं पश्यति यमी
भवानेव स्वामी जगदवति[1] वामीयतु न तु ॥१०४॥

पयोजं संभूय स्वजनकमतिक्रामति पयः
पयस्त्वेतन्नैव व्यथयतिपरं वर्द्धयति च ।
पिता भर्त्ता बन्धुः सकलगुणसिन्धुस्त्रिजगतां
भवानव्याद् भूमन्सगुणमगुणं वा कमलजम् ॥१०५॥

कुम्भीरग्रस्त कुम्भीश्वरवचसि हरे नाथ रक्षेति वृत्ते
निर्वर्त्मा वर्त्मभेदग्रहलवमटत स्त्रायतां नस्स्वरातेः ।

रूप स्तम्भका सहारा देते हो और बछड़े तथा ग्वाल-बालको ढूँढ रहे हो मेरा मन उत्साहसे भरगया है, उसकी जलन शान्त होगई है, सम्पूर्ण सृष्टिमें तुम अपनी दृष्टिको प्रसारित करते हो इससे मेरे मनको उत्साह प्राप्त हुआ है ॥१०३॥

अनुवाद—सूर्य तालाबमें और सिन्धुमें रहनेवाले सब कमलोंको सुख देता है और चन्द्रमा आगे तथा पीछे रहनेवाले सभी कुमुदोंको मत्त बना देता है। दूर तथा समीप सब जगह रहनेवालेको यमी योगी एक साथ बराबर देख लेता है, आप स्वामी हैं संसारको रक्षा करते हैं. किसीके प्रतिकूल नहीं हैं ॥१०४॥

अनुवाद—जल कमलको उत्पन्न करता है तथा अपने पिता अग्निका उल्लंघन करता है अर्थात् शान्त करता है, बुझा देता है परन्तु जल कमलको दुःख नहीं देता किन्तु बढ़ाता है। परन्तु आप तीनों जगत्के पिता भर्त्ता तथा भाई और सम्पूर्ण गुणोंके समुद्र है, हे भूमन् ! आप कमलसे उत्पन्न ब्रह्माकी चाहे वह गुणवान् है या गुणहीन है, रक्षा ही करें ॥१०५॥

अनुवाद—ग्राहसे ग्रस्त गजेन्द्रने जिस समय यह कहकर पुकारा कि हे नाथ ! हे हरे ! मेरी रक्षा करो। मार्ग भेदसे मुझको खींचते हुए शत्रुसे बचाओ, आपके सब मार्ग हैं प्रत्येकसे आकते हो यह शब्द सुनते हो गरुडकी ओर आपने

---

(1) रक्षयति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पक्षीन्द्रे नाक्षिपातः क्षणमजनि यतस्तत्क्षणोपस्थितायां
नो लक्ष्म्यां पक्षपातः पतति न वसने पूर्णबोधस्य बोधः ।।१०६।।
चूङ्कारैश्छोटिकाभिः करतलकलितैर्नर्तयन् कोऽपि तालै-
रत्र त्वां दारु पुत्रीमिव नववयसि प्रेरयन्कोऽपि गोपः ।
आनिन्ये मृद्भिरद्भिः सुलभवनभवैः पल्लवैर्वश्यभावा-
नाः किं कुर्मो वयं तु भ्रमविधुरधियोनेति नेति भ्रमामः ।।१०७।।
एतद् विद्यानवद्या श्रुतिरधिकरणाधीनसिद्धौ च सृष्टौ
दृष्ट्वैनं मुग्धमिष्टा धरणिरुदनिधेर्लीलयैवोदधारि ।
निर्व्यूढं तत्तु सर्वं परमिदमधुना पादयो प्रार्थयेत्वां
हे विश्वोद्धार धीरोद्धर विधुरमितो मोह पाथोधिमध्यात् ।।१०८
इतिस्तुत्वा नत्वा जनुरपि च मत्वा सफलितं
विरेमे वाग्बद्धाञ्जलिपुटकमग्रे प्रभवितुः ।

दृष्टि नहीं डाली उस समय उपस्थित हुई न लक्ष्मीपर न गिरते हुए वस्त्रपर आपकी दृष्टि गई, पूर्ण बोधवाले आपको सब ज्ञान है [कविने मुरली, मयूरपङ्ख, कौस्तुभमणि आदि सभी वस्तुओंकी स्तुति प्रस्तुतकी है। ऐसा वणन भागवत-पुराणमें भी नहीं है] ।।१०६।

अनुवाद—कोई गोप अपने करतलसे चुटकी बजाकर चूँ-चू करते हुए तालसे नचाता है और कोई नई उमरमें आपको कठपुतलोकी तरह प्रेरणा करके नचाता है, और कोई मिट्टीसे जलसे तथा वनमें हानेवाले पत्तोंसे वशमें कर लेता है, आह हम क्या करें हम तो नेति-नेति इस भ्रममें पड़कर ही चक्कर काटते रहे ।।१०७।

अनुवाद—श्रुति इस श्रेष्ठ विद्याको बताती है कि सृष्टि अधिकरणके आधीन है बिना स्थानके कैसे हो, इस प्रकार इस मुग्ध-भावको देखकर अपनी इष्ट पृथ्वीको खेलमें ही आप समुद्रसे निकाल लाए, और सर्व कार्य पूर्णकर दिया परन्तु इस समय मैं आपके चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि हे विश्वके और धीर जनके उद्धार करनेवाले इस दुःखीको भी मोह सागरसे पार करदो ।।१०८।।

अनुवाद—इस प्रकार स्तुति करके और प्रणाम करके और अपने जन्म-को सफल मानकर अञ्जलि पुट बाँधकर प्रभुके आगे ब्रह्मा मौन होगया, और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभुं दृष्ट्वा तुष्टं तदनु मुदितोऽष्टा[1]पदगिरौ
स्वयम्भूः स्वं धामाभजत हरिनामादृतमुखः ॥१०६॥
इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्दकन्दचम्पूः
काव्ये पञ्चमोऽयमुल्लासः ॥ ५ ॥

प्रभुको प्रसन्न जानकर फिर स्वयं भी प्रसन्न होकर मुखसे हरिनामका उच्चारण करते हुए सुमेरु पर्वतपर अपने स्थानको चले गये ॥१०६॥

इति श्रीपण्डित डा० वासुदेवकृष्णचतुर्वेद शास्त्रि विरचिते श्री "श्रीवरानन्दिनी" भाषा टीका सहिते आनन्दकन्दचम्पूकाव्ये ब्रह्मस्तुति वर्णनं नाम पञ्चम उल्लासः ॥ ५ ॥

---

(1) अष्टापदगिरौ सुवर्णपर्वते मेरावित्यर्थः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ षष्ठ उल्लासः

गोपबालैः सहभोजनवर्णनम्

हरिरपि परिवृत्य पुरोवर्त्तमानानेव तान् वत्सानादाय नादयन्मधुरमुरलीमागच्छन्नेव लीलयानुशीलयामास पुरेव बहिरन्त वत्सपालपरिवारमपि पुलिन परिसर एव यमुनायाः ॥ १ ॥

अथ हरिमवलोक्य वत्सपालाः प्राहुरागतोऽयं हरिरागतोऽयं हरिरहो, अरे, इहोप स्थित, इहोपस्थितोऽसि, नचिरेण कालेन अस्माभिरेकोऽपि नास्वादितः कवलः, साधुसाधु तदिदमवधीयतां सकलमविकलमेव द्राक्षाफलामिक्षादिकमस्ति, साक्षादेव किमाख्यामि सहोप भोक्ष्यामि, बुभुक्षातिक्षामो भवानिव मद्विधोऽप्येषः ॥ २ ॥

विधाय विधिनार्धित क्षुधित वत्सपालैः समं
स भोजनमधो दधे भवनमेव गन्तुं मनः ।
विषाणमुरली रवैर्बहल वत्स कोलाहलै-
र्जगौ जय जय ध्वनि सपदि भूर्भुवः स्वस्त्रयी ॥३॥

गोप-बालकोंके साथ भोजन

अनुवाद—हरिने घूमकर आगे आते हुए उन बछड़ोंको लेकर, मधुर वंशी बजाते हुए पहलेकी तरह बाहर, सब गोप समूहको यमुनाके रेतीले मैदानमें आते हुए सबको सन्तुष्ट किया ॥ १ ॥

अनुवाद—तब सब ग्वाल-बालोंने हरिको देखकर कहा कि अरे, हरि आगये, अरे ! हरि तो यहीं उपस्थित हैं, अभी आये हैं । हमने अभी एक भी ग्रास नहीं खाया है, यह देखो, द्राक्षाफल आमिक्षादि सब वैसाका वैसा ही रक्खा है, सामने ही क्या कहूँ साथ ही खायेंगे, आपकी तरह ये सब भी भूखसे बहुत दुःखी हैं ॥ २ ॥

अनुवाद - दैवसे दुःखी और भूँखे ग्वाल-बालोंके साथ भोजन करके भगवान्ने अपने घर जानेका विचार किया । श्रङ्ग मुरलीके शब्दसे तथा बछड़ोंके बहुतसे कोलाहलके साथ भूर्भुवः स्वः तीनों लोक जय जयकारकी ध्वनि करने लगे ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रातः प्रातः प्रतिदिनमपि प्रीतचेतावसानः
पीतं वासो मुखरमुरली चेतिताहूत सार्थः ।
यातावातैर्भवनवनयोरङ्गभङ्गीविनोदै—
श्चेतोमोदैः पिहितमकरोद् गोपगोपी गणस्य ।। ४ ।।

पार्श्वे पार्श्वे शिखरशिखरे कन्दरे कन्दरेऽद्रे—
स्तीरे तीरे [1]तपनदुहितुर्निर्झरे निर्झरे च ।
वत्सान्धेनूरपि धवलितो धूलिभिर्धीर धीरं
धावं धावं व्यहरदभितो वारयंश्चारयंश्च ।। ५ ।।

कृष्णस्य नाना क्रीडावर्णनम्

पौगण्डैकपदं शिखण्डिनिमुदं बिभ्रच्छिखण्डं दध-
च्चूडाग्रे तदखण्ड ताण्डवकला संजात कौतूहलः ।
नृत्यं क्वापि कदापि तैःसह वलन्मंजीर शिञ्जाकरी-
घञ्चत्किङ्किणि कारणत्कृति चमत्कारैर्बभौ चक्रवत् ।। ६ ।।

अनुवाद—सवेरे-सवेरे प्रतिदिन प्रसन्न चित्त होकर पीले वस्त्र पहिने मुरली बजाते साथियोंको सबको बुलाकर और साथमें लेकर भङ्गोंकी भङ्गिमाके साथ विनोद करते हुए कभी घर और कभी जाते आते सब ग्वाल-बालोंके चित्त-को प्रसन्नतासे भर देते थे ।। ४ ।।

अनुवाद—पास-पासमें शिखर-शिखरपर, पर्वतको कन्दरा-कन्दरापर, यमुनाके किनारे-किनारे, झरने-झरनेपर धूलसे सने हुए बछड़ोंको और गौओंको धीरे-धीरे चराते हुए और कभी बचाते हुए सब ओर विहार करते थे ।। ५ ।।

कृष्णकी विविध क्रीड़ाओंका वर्णन

अनुवाद—एक पैर उठाये मयूरोंको प्रसन्न करते मयूर पिच्छको चोटो-के ऊपर धारण करते हुए, अखण्ड ताण्डव नृत्यकी कलाओंसे सबको कौतूहल उत्पन्न करत कभी गोपोंके साथ नाचते तथा बजते हुए मञ्जीरके शब्दसे कटि-भागमें शोभित हुई किंकिणीके रणत्कारके चमत्कारोंसे चक्रकी तरह घूमते हुए शोभित होते थे ।। ६ ।।

---

(1) यमुनायाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाणिभ्यामवरुद्ध्य मध्यममवनेः पादौ च पक्षाविव
व्यातत्य भ्रमिभाजिविभ्रमवशाद् भ्राम्यच्छिखण्डीयति ।
ग्रीवा चिक्कण चारुचा[1]ङ्गिमलसच्चूडं नटच्चन्द्रकं
धावन्तिस्म तमेव बर्हिवनिताश्चित्रायितं बर्हिभिः ॥ ७ ॥

उन्मीलत्कलकौशलैर्मदकलाः शिष्यीकृताः कोकिलाः
गीताम्भोधिजलभ्रमाभगमकारम्भैर्जिताः षट्पदाः ।
आपूर्य्याधर पल्लवे मुरलिकामुद्गायता नृत्यता
ग्रावाणोऽपि जलीकृता जलमपि ग्रावीकृतं सर्वतः ॥ ८ ॥

गीतं [1]कीरमयूर कोकिलगणैरेणैरहो वीक्षितं
गुञ्जद्भृङ्गमृदङ्ग गुङ्गमरवैरारम्भि गम्भीरता ।
सन्तुष्टैरव गन्ध पुष्ट कुसुमं वृष्टं च भूमीरुहैः
प्रेष्ठे महामहोत्सवविधौ दैत्यद्विषः कानने ॥ ९ ॥

अनुवाद--दोनों हाथोंसे पृथ्वीके मध्यभागको पकड़कर तथा पैरोंको पङ्खोंकी तरह पीछे फैलाकर घूमनेके कारण नाचते हुए मोरकी तरह प्रतीत होते हैं, ग्रीवाकी चिकनी सुन्दर शाभासे चोटीकी कान्ति बढ़ाते हुए, चोटीपर चंदोवे जैसे बनाये मोरके जैसा नाच दिखाते दौड़ते थे और चित्रित बने हुए उनके पीछे मोरोंके साथ मोरनी भी दौड़ रही हैं ॥ ७ ॥

अनुवाद—उन्मत्त बना देनेवाले सुन्दर कौशलसे मदवाली कोयलें मानों उनकी शिष्य बन गईं, समुद्र जलके घूमनेकी तरह गुंकार जैसे गानके शब्द से मानों भ्रमरोंको जीत लिया, अधर पल्लवपर वंशीको रखकर गायन करते तथा नृत्य करते कृष्णने मानों पत्थरोंको पिघलाकर पानी बना दिया और पानी भी जमकर स्तब्ध होकर पत्थर बनगया ॥ ८ ॥

अनुवाद–तोता, मोर, कोयल तथा हिरनोंने गानेको देखा सुना गूँजते हुए भौंरे मृदङ्गकी गुङ्कारके समान शब्दसे गंभीरता प्रकट करते थे, सन्तुष्ट होकर वृक्षोंने भीनी-भीनी गन्धसे युक्त पुष्पोंकी वर्षाकी, अत्यन्त प्रिय कृष्णके उस वनमें गोष्ठके महा उत्सवके समयपर बड़ा आनन्द था ॥ ९ ॥

---

(1) "चाङ्गस्तु शोभने दक्षे" इति मेदिनी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कच्छानुस्फुरदच्छ निर्झर शिलातल्पे शयानं भजन्
श्रान्ति भ्रान्तिभरेण मन्द पवनो दाक्षिण्यभागी बभौ ।
तादृक्कोकिलकाकली – तदनिलप्रारब्धनिद्राविधे-
र्लक्ष्मीलालितपादपल्लवमहो गोपेन संवाह्यते ॥१०॥

तालवन वर्णनम्

वनोपवन दुर्वनीगिरिगभीरगर्वावनी
निरूढनवकन्दलीग्रहिलवत्समुत्साहयन् ।
भ्रमान्विविधविभ्रमैरथ सहोपलभेऽर्भकैः
समीरण समाहृतं सुरभिताल गन्धं हरिः ॥११॥

अयि वद कोऽयमकस्मादस्मद्विधानामपि चेतांसि विस्मापयन् मधुरमकरन्दमन्दिरा मन्दरारविन्दमान्दोलयन्नपि मैलिन्दमतिमन्थरयन्नपि निजगुरुभारैरिव गन्धवाहमुवाह सुरभितवनकन्दरो मनोहरो गन्धः, इति वचनमभिनन्द्य नन्दनन्दन श्रीदाम सुबलमुखाः सुखावहाः सखायः सकलमविकलमेव निवेदयाञ्चक्रिरे गोपाः ॥१२॥

अनुवाद—तटपर बहते हुए स्वच्छ झरनेके जलयुक्त शिलाकी शय्यापर शयन करते हुए कृष्णको थका हुआ-सा जानकर मन्द-मन्द पवन दक्षिण दिशासे आकर सेवा कर रहा था। ऐसी कोयलकी कूक तथा शीतल मन्द सुगन्ध वायुसे कुछ निद्रावश हुए कृष्णके, श्रीलक्ष्मी द्वारा लालित चरणोंको गोप दबारहे थे ॥१०

ताल-वर्णन

अनुवाद—वन उपवन, दुर्वनी, पर्वतीय गम्भीर भूमिमें उत्पन्न नव कदली कलिकाके उत्सुक बछड़ोंको उत्साह देते हुए तरह-तरहके खेल करनेवाले ग्वाल-बालोंके साथ घूमते हुए कृष्णने पवनके द्वारा आई सुगन्धित ताल वृक्षोंकी गन्धको प्राप्त किया। ११॥

अनुवाद—अरे ! कहो, यह कहाँसे अकस्मात् ही हम जैसेके चित्तको भी विस्मित करती हुई, मधुर मकरन्द उत्पन्न करनेवाले कमलोंको भुला देनेवाली तथा भ्रमर समूहको आन्दोलित करती हुई, अपने गुरु भारसे वायुको भी अत्यन्त मन्द गतिवाली करती हुई, मनोहर गंध कहाँसे आरही है ? इस वचनका अभिनन्दन करते हुये नन्दनन्दन श्रीकृष्णके श्रीदाम, सुबलादि सुख देनेवाले मित्र-गोप सब अविकल रूप आदि अन्तसे निवेदन करने लगे ॥१२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अहो अवधीयतामव धीयतामस्माभिः। आवेदनीयं स्वयमेव बालावनीरुहो महासहायीकृत गन्धद्वारेव दुरात्म दनुज मदनानुभाव भगवत्पदारविन्देषु निवेदयति स्म धेनुकाभिधेय दनुजनिधन महोत्सवारम्भम्। व्रजकुल शरण समीप एव देवता मुनि मनुजमनोरथातिरूढं गूढममृतमिव सुपरिणतफलजालमावहन्ति प्रचुरतरताल[1] वनानि विद्यन्ते। भिद्यन्ते खलु यत्र त्रिभुवननिधन धुरंधरदुर्धराचार धेनुकासुर समबलबहल बन्धुपरम्पराणामारा[2]वैर्निर्घातघोषैरिवनिखिल हृदयानि दूरतोऽपि दुर्वारैः ॥१३॥

तथाहि

निद्रां विद्रावयन्ति स्फुटममरभुवः कुर्वते दिग्विभागं
प्रोद्भेदं भूरिखेदं श्रवणबहुतया भोगिभर्त्तुर्दिशन्ति।
गर्जत्पर्जन्य पर्याकुलितमिव महीभामुरद्भावयन्ति
द्रागदृप्यद्रासभानां ध्वन दशनिमदोद्घाटिनोघोरघोषाः ॥१४॥

अनुवाद—अहो यह सब हमसे सुनिये, इस आवेदन करने योग्य वृत्तको स्वयम् बालवृक्ष मानों इस कृत्य में सहायक गन्धके द्वारा, उस दुष्टात्मा दनुजके मदयुक्त भावको जाननेवाले आपके चरणकमलोंमें, धेनुक नामक दैत्यके निधनके महोत्सवारम्भका निवेदनकर रहे हैं। व्रजकुलको शरण देनेवाले आपके पासही देवता-मुनि और मनुष्योंका मनोरथ भी जहाँ नहीं जा सकता, ऐसे मनसे अगम्य-गूढ अमृतकी तरह पके हुए फल समूहको धारण करनेवाले ताल-वृक्षोंके वन हैं। तीनों लोकोंके नाश करने योग्य, बल धारण करनेवाला, दुष्ट आचारवाला ऐसे धेनुकासुरके समान बलवाले, बहुतसे उसके बन्धुओंके नहीं रोकने योग्य वज्र-घोष-के समान तीव्र शब्दके दूरसे ही सुननेसे सबके हृदय फट जाते हैं [इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसंकुलम्" भा० १०।१५।२१] ॥१३॥

अनुवाद—जैसाकि उनके तीव्र शब्द घोष देवताओंकी निद्रा नष्टकर देते हैं, दिशाओंमें गुञ्जारके द्वारा फटना जैसा उत्पन्नकर देते हैं, शेषनागके बहुत कान होनेके कारण बहुत दुःख उत्पन्न करते हैं। गरजते हुए मेघके जैसे शब्दसे सब पृथ्वीपर बड़ा उत्पात-सा उत्पन्नकर देते हैं। अभिमानी रासभ गधों-

---

(1) तालवन प्रवेश कथा भा० स्कं० १५ अध्याये।
(2) शब्दैः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ तेषामाकर्ण्य वर्णितानि कर्णयोरवगाह्यासत्त्व भूयाँरावैरिव-[1]रासभानामुत्थापितौ तान्यपि च द्रष्टुकामौ चेलतुरभिरामो घन-श्यामो दामोदरोऽपि श्रीदामादिभिरभिवेष्टितौ परितः । हरिर-वलोक्य तानेक्यभावापन्नानासन्नानेव विषणानिव मालिन्यातिशय सम्पन्नाननापन्नानतुलतरताल तरून्नाम, तमाह बलरामम् अहो अवधी-यतामवधीयताम् ।।१५।।

मूलादामौलिनीलावयव सुवलितः किञ्चिदूर्ध्वाभिवञ्च-
त्पत्रालीचित्रमूर्धा समुदयमयते तालभूमीरुहो न ।
त्वं धर्त्तानन्तभर्त्ता धरणिरितिदधे सावधाना धुनानं
ध्वान्तारेर्धाम धन्या धवलमणिमयाखण्डदण्डात[2]पत्रम् ।।१६।।
उर्वी दूर्वाद्य पूर्वासित रुचिरुचिरा त्वामनन्तेऽत्यनन्तं
दृष्ट्वासौ स्पष्टबद्धाञ्जलिपुट फलका कोटि कोटी बभूव ।

का आकार धारण करनेवाले इन दैत्योंके ध्वनित होते हुए वज्रके समान बढ़ते हुये ये इनके भयङ्कर शब्दघोष बड़ा उत्पात करते हैं ।।१४।।

अनुवाद—इसके बाद उनके इस वर्णनको सुनकर रासभोंके अनिष्ट उग्र शब्दसे कानोंमें खिचे हुएकी तरह रासभोंको तथा उनकी वर्णनानुकूल क्रियाओं को देखनेकी इच्छासे उठाये हुए घनके समान श्याम, श्रीकृष्ण और बलराम, श्रीदामादि अपने सखाओंसे युक्त होकर चले । श्रीकृष्णने समीपमें ही दुःखी अथवा डरकर मानों सब एक जगह इकट्ठे हुएकी तरह अति मलीन जैसे रक्षासे शून्य अतुलतर ताल वृक्षोंको देखकर बलरामसे कहा—अहो, देखो देखो सावधान सावधान ।।१५।।

अनुवाद—मूलसे शिखर तक नीले-नीले अवयवोंसे शोभित, कुछ ऊपर सब ओर चमकती हुई पत्रावलीसे चित्रित मस्तकवाले यह तालवृक्ष उदयको प्राप्त नहीं हो रहे हैं । आप धारण करनेवाले अनन्त तथा रक्षक हैं, इसलिये यह पृथ्वी सावधान होकर अपनेको धन्य करती हुई सूर्यके तेजयुक्त तथा हिलते हुये धवल मणिमय अखण्ड दण्डसे युक्त मानों आतपत्र अर्थात् आपके ऊपर छत्र धारणकर रही है ।।१६।।

अनुवाद—दूर्वादि अपूर्व हरी-हरी शोभासे रुचिर यह पृथ्वी अनन्ता

---

(1) गदभानाम् । (2) छत्रम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नोत्तालामेघकालाः कवलित ककुभस्तुङ्गभावैर्दलानां
नीलानां पुञ्जकारैः पृथुल फलफलैर्नद्धमूर्धान एते ॥१७॥
रुद्ध्वा मूर्धानमूर्ध्वं सुविपुलफलकैर्योद्धुमुद्दाम धाम्ना
मार्त्तण्डेन प्रकाण्डा मरकतविततस्तम्भ सम्भावनाभूः ।
दुर्दान्ताध्वान्तसेनादल जटिल शिरस्तालसम्भारदम्भाद्-
भूयः सम्भूय वृन्दावन घनघनिमोज्जृम्भणादुज्जिहीते ॥१८॥

वृन्दावने कलित गोपकिशोरसङ्ग-
मङ्गीकरिष्यति मही भरभङ्गरङ्गम् ।
तालध्वजेति विदधे सविधिस्त्रिलोकि-
जैत्रध्वजं विपुल तालतरुच्छलेन ॥१९॥

अदभ्रै रेवाभ्रैः सहमिहिरजोत्तुङ्गलहरी
विगाहं स्वर्गंगासलिलमुदभूदम्बरचरी ।

नामवाली तथा आप भी अनन्त नामसे शोभित हैं. यह देखकर स्पष्ट अंजलि-पुट बाँधकर अर्थात् हाथ जोड़कर कोटि-कोटि अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न हुई हैं, अत्यन्त नहीं उठे हुए मेघ जैसे काले पत्तोंके अति उच्च होनेके कारण दिशाओंके ढके हुए नीले समुदाय द्वारा तथा बड़े-बड़े मोटे फलोंसे सिर बाँधे हुएसे यह ताल वृक्ष प्रतीत होते हैं ॥१७॥

अनुवाद—सुविपुल बड़े-बड़े फलोंसे ऊपर सिरको ढककर उत्कट तेजसे प्रकाण्ड तेजस्विनी मरकतमणिके स्तम्भ जैसी प्रतीत होनेवाली यह पृथ्वी दमन न करने योग्य अन्धकारकी सेना साथ लेकर पत्रोंसे जटिल सिरवाले तालवृक्षोंके समूहके आडम्बरसे मानों सूर्यसे युद्ध करनेको सत्रसे मिलकर वृन्दावनकी अत्यन्त घनी उठी हुई विकसित शोभामें उठान भरती हुई तैयार हो रही है ॥१८॥

अनुवाद—वृन्दावनमें श्रीकृष्ण गोप किशोरोंको साथ लेकर पृथ्वीके भारको दूर करनेके लिये रङ्ग स्थल स्वीकार करेंगे। यह जानकर ब्रह्माने बड़े-बड़े तालवृक्षोंके बहाने तीनों लोकोंको जीतनेकी ध्वजा-रूप यह ताल-ध्वज बनाया है ॥१९॥

अनुवाद—यमुनाकी उच्च लहरी बड़े-बड़े बादलोंके साथ आकाशमें संचरण करती हुई स्वर्गङ्गाके जलमें स्नान करनेको उठी यह दीखनेवाली ताल-वृक्षोंकी पंक्ति नहीं है किन्तु यह आकाशमें मोटे-मोटे खम्भोंकी पंक्ति है अथवा कालीका शरीर हैं ॥२०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नभस्स्थूलस्थूणावलिरिव घनालीव फणिनां
न पाली तालानां समुदयति कालीतनुरिव ॥२०॥

तालवृक्षकम्पनम्

गृहाणैकं पाणौ रजतगिरि सानौ तम इवा-
र्भकस्तालाङ्क त्वामनुभवतु तालाङ्कमभितः ।
इतीशे गोपानामभिलपति कोपादिव बली
[1]हली लोलीचक्रे तदुरुतरचक्रं भुजबलैः ॥२१॥
तरूनान्दोलयामास हलो तान्कर लीलया ।
गम्भीरमदकुम्भीन्द्रो मृदुरम्भावलीमिव ॥२२॥

अथ बल विपुल भुजाभिघात जात कम्पानां तालपरम्पराणां फलपरम्परासम्पाता धारा सम्पाता इव निःशम्पाततवारिधराणामचिरेणोदपद्यन्त ॥२३॥

विशेष—यहाँ कवि ने बड़ा सुन्दर अपन्हुति अलङ्कार दिखाया है "प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् साध्यते सा त्वपन्हुतिः ॥२०॥

तालवृक्ष हिलाबा

अनुवाद—एक वृक्षको हाथमें पकड़ो रजतगिरि अर्थात् कैलाशपर अन्धकारके समान तुम्हारी शोभा होगी, हे तालांक=बलराम! अर्भक, बालक उस समय तालके चिह्नवाले तुमको सचमुच सत्य नामवाला तालांक समझेगा, क्योंकि बलरामका नाम तालांक भी है, [तालांको मुसली हली (अ० को०)]। इस प्रकार गोपेश्वरके कहनेपर क्रोधसे मानो बली-बलरामने अपनी भुजाओंके बलसे उस महान् ताल-वृक्षोंके समूहको हिला दिया ॥२१॥

अनुवाद—जिस प्रकार कोई गम्भीर मदवाला गजराज कोमल केलेके वृक्षोंको हाथसे हिला दे ऐसे वृक्षोंको हिला दिया ["बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् सम्परिकम्पन्' भा० १०।१५।८] ॥२२॥

अनुवाद—इसके अनन्तर बलरामजीकी विपुल भुजाओं के अभिघातसे कम्पित होते हुए उन तालवृक्षोंके बहुतसे फल शीघ्र ही ऐसे गिरने लगे जैसे बिजलीके बिना आकाशमें छाये बादलोंकी जल-धारायें वेगसे गिरतीं हैं ॥२३॥

1—बलराम।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजाघातेन ते शीर्णास्तूर्णं चूर्णीचिकीर्षवे ।
[1]तालाङ्काय ददुस्तालास्तालं कायरिरक्षया ॥२४॥

अत्युच्चैः पतितानि तानि परितस्तालानि तालद्रुमा-
त्कालानि स्फुटितानि कान्यपि रसैः सिक्तानि रक्तान्यपि ।
व्यक्तानीव शिरांशि मांसलगुरु ग्रीवाटवीतो दश
ग्रीवस्यानुबभूव कैटभरिपुर्भूयोऽपि वृन्दावने ॥२५॥

अविरलपतदुरुताल फलानामवार ध्वनि धोरणीमवधाय क्रोडाध्मात धेनुकाभिधदनुजाधीश प्रमुख खराकार प्रखर मुखराः सुराः सर्वे तमभिययुर्वेलाभिलङ्घनरंहसोऽपि घोरोर्मय इव कल्पकालीना नाल्पजगदाप्लावन संकल्प शालिनो महाजलधेः ॥२६॥

धेनुकासुरवधः

क्षुरक्षुण्णक्षोणी स्खलितपवनोच्चालितरजः–
समूहैः संमोहं कृतजलधिरोधः फलभुजाम् ।

अनुवाद—भुजा के आघातसे टूटे हुए ताल-वृक्षोंने तोड़नेवाले तालांक अर्थात् बलरामके लिये मानों अपनी शरीर रक्षाके लिये बहुतसे ताल-फलोंको दिया ॥२४॥

अनुवाद—वे तालके फल बहुत ऊँचे वृक्षसे गिरे इसलिये कुछ फट गये, रससे भीगकर लालहो गये । ऐसा प्रतीत होता था मानों वृन्दावनमें भी फिर एक बार भगवान्‌ने बड़ी दश ग्रीवाओंसे युक्त रावणके दश सिरोंको अनुभव किया हो, लङ्काकी तरह वृन्दावनमें भी रावणके सिर फिर आ गये हों ॥२५॥

अनुवाद--निरन्तर गिरते हुए तालके फलोंकी उत्कट ध्वनिको सुनकर वक्षस्थल फुलाये धेनुक नामके दनुजपति आदि रासभ आकारवाले घोर शब्द करते हुए सब असुर चारों ओरसे इस प्रकार आगये जैसे प्रलयकालमें होनेवाली सम्पूर्ण जगत्‌को डुबानेके सङ्कल्पवाली तथा किनारेको तोड़नेवाली महासमुद्रकी घोर लहरें चारों ओरसे आतीं है, इस प्रकार रासभ शरीर धारण किये सब दैत्य आगये ॥२६॥

धेनुकासुर वधः

अनुवाद--खुरोंसे पिसी हुई भूमिसे उठी हुई और वायुके द्वारा उड़ायी हुई धूलिके समूहसे मानों समुद्रको रोकते हुएकी तरह प्रतीत होनेवाले उस दैत्यने

1—तालाङ्को मुसली हली (अ० को०) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विधाय व्याधूयोपरि परिवलद्बालधिमसौ
जघान व्याघोषी चरम चरणाभ्यां बलहृदि ॥२७॥
घूर्णद्घर्घरघोरघोषमुखरब्रह्माण्डभाण्डोदरं
क्रोधेन क्षितिमुल्लिखन् पुनरपि प्रैषन् खुराग्रैः खरः ।
अभ्रूभङ्गमनक्षि रङ्गिमचलद्भङ्गिस्मितं बालधौ
ताक्ष्येणेव फणी बलेनरुरुधे धावन्क्रुधा [1]धेनुकः ॥२८॥
लाङ्गूलाग्रे गृहीत्वा शशकमिव मुहुर्भ्रामयित्वा समन्ता-
द्वान्त्रा सृग्धोरणी स्रग्गगन वनहरिद्धेनुकं सावहेलः ।
दिग्दाहारण्य दाहारुणघनघटनारक्तवृष्टोर निष्ठा-
स्तालाङ्कस्त्यक्त शङ्कस्त्रिभुवनमचिरान्मानयामास मानी ॥२९॥
लगुडेनेव तालानि विशालानि हलायुधः ।
तेनैव पातयामास निक्षेपक्षपितायुषा ॥ ३०॥

फलकी इच्छावालोंको कुछ भ्रान्तिसे उत्पन्न करके उसने पूँछको ऊपर घुमाते हुये तथा भयङ्कर शब्द करते हुये पिछले दो चरणोंसे बलरामके हृदयपर बड़े वेगसे प्रहार किया ॥२७॥

अनुवाद--घूमते हुए तथा घर्घरके भयङ्कर शब्दसे ब्रह्माण्डके मध्य भागोंको गुञ्जित करते हुए क्रोधसे पृथ्वीको खोदते हुये और खुरोंके अग्रभागसे खुदी हुई धूलिको ऊपर उछालते हुए भ्रूभङ्ग एवं नेत्र संचालनके बिना ही मुस्कराते हुए, पेंतरे जैसे बदलते हुए, पूँछको हिलाते हुए उस रासभाकार धेनुक दैत्यको, ताक्ष्य जैसे सर्पको रोकता है उसी प्रकार रोक लिया ॥२८॥

अनुवाद--शशककी तरह उस रासभको पूँछमें पकड़कर चारों ओर खूब घुमाकर तथा जब रक्त वमन करने लगा उस समय भी आकाशमें वनमें तथा दिशाओंमें झटकेके साथ घुमाया, [भ्रामयित्वैक पाणिना (भा० १०।१५।३२)] जब दिग्दाह जैसा, अरण्यदाह जैसा तथा लाल-लाल बादलों जैसा जब बुरी तरह रक्त वमन करने लगा तब मानों तालांक बलरामजीने निश्शङ्क होकर त्रिभुवन-को दुःख देनेवाले उस दुष्ट दैत्यको मरणासन्नकर दिया ॥२९॥

अनुवाद—जैसे लाठीके द्वारा बड़े-बड़े तालके फल तोड़े जाते हैं उसी

---

(1) धेनुकासुरवध कथा भा० १० स्कंध १५ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धेनुकासुनिधने प्रधने ये क्रोधबाधित धियो दधुरोजः ।
ताल पातनकृते हलिनस्ते क्षेपणीय पदवीं ययुराशु ॥३१॥
किं ब्रूमस्ताल मूल्यं दधति हृदिसधा नामतो यस्यरीढां
प्रोढाहङ्कारिणस्ते सपदि विदधिरे यत्कृते प्राणदानम् ।
धन्यास्ते धेनुकाद्याध्रुवमिति तु वयं ब्रूमहे यत्तनुभ्यो
दत्त्वा प्राणान्परेभ्यः फलमतुल सुदुः सङ्गरश्रान्तिशान्त्यै ॥३२॥
मुख पंकेरुहे तालं तालाङ्कोऽधत्त लीलया ।
अशङ्कत परं को न [1]शशाङ्कोपहत तमः ॥३३॥
विघटितकटुकण्टककोटिकोटीरमिव कैटभारातिरटवीनां तद्वनं विधाय तालध्वज महनीयतया क्षणमुररीकृतमुरलीक एव क्षणमङ्गी-

---

प्रकार बलरामजीने आयुको नष्ट करनेवाले उस भ्रमणसे घुमाकर दैत्यको पटक दिया और मार दिया ॥३०।

विशेष—भ्रामणत्यक्त जीवितम् भा० १०।१५।३२ ॥३०॥

अनुवाद—इस युद्धमें धेनुकके प्राण नष्ट होनेपर क्रोधान्ध होकर बलरामके सखाओंने ताल फलोंको तोड़नेके लिये क्षेपणीय (फेंकनेको) अर्थात् फल तोड़नेका वेग प्रकटकर दिया ॥३१॥

अनुवाद—हम तालके फलोंका क्या मूल्य बतायें, जिनके नामसे अमृत भी लज्जा धारण करता है, बड़े-बड़े अहङ्कारियोंने जिनके लिये तत्काल ही अपने प्राणोंका दान कर दिया। वे धेनुक आदि निश्चय ही धन्य हैं, हम क्या कहें जिन्होंने अपने शरीरसे प्राण देकर दूसरेको अर्थात् अपने शत्रुओंके लिये युद्धकी थकावट की शान्तिके लिये अतुल फल प्रदानकर दिया ॥३२॥

अनुवाद—तालांक बलरामजीका नाम है, बलरामजीने लीलापूर्वक ताल फलको अपने मुख-कमलमें रक्खा, उस समय चन्द्रमाने अन्धकारको दूर कर दिया यह शङ्का किसने नहीं की ॥३३॥

अनुवाद—बड़े तीव्र कटु-कण्टकोंको समूल नष्ट किये हुए की तरह उस गम्भीर वनको श्रीकृष्णने स्वच्छ करके तालध्वजकी तरह सुन्दर लगनेवाली मुरलीको क्षणभर मुखपर शोभित करके क्षणभर गाना गाते हुए, क्षणभर मुख

---

(1) शशाङ्कः—चन्द्रः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत सङ्गीत एव मुत्तुङ्गमुखरित शृङ्ग एव क्षणमाह्वयन्नेव धेनूरभि धाय नाम धेयानि क्षणमति चंचलवत्सतर धावन्त मनुधावन्नेव दिन-परिणामरमणीयतया क्षणमनु कूजन्तं कोकिल मनुकूजन्नेव, क्षणमपि स्वेच्छा विहारतया पुरोवलक्षित पक्षिच्छाया मच्छादयन्नेव, क्षणमपि स्वच्छाययैव स्वमाययेव विहरन्, क्षणमपि पशुपाललीलया लगुडयष्टि मालोडयन्नेव, क्षणमपि पदकटकपटूत्कटनादमोद मेदुरो नृत्यन्नेव, दिशि दिशि च मयूरपरम्परा मुन्मुखमनुपश्यन्ती मनुपश्यन्नेव, दिक्सु-न्दरीणां दृगिन्दीवरसन्दीपिनी मञ्जन शलाकामिव कामपि वनमालि-कामालोकमान एवाटवीह रिदवलीढशिखराधिरूढनवपल्लव रागपर-म्परामिव, सन्ध्यारुचिमभि संदधान एव सकलदिन धेनुधूली धारा कवलनभानुमालिभानुमालानिमज्जन धूसरी भव दल कक्कुलबद्ध चारु-चूडाग्र चचन्द्रक चन्द्रमुख चन्द्रालिक तिलक चन्द्रकर चरण नख-चन्द्रमा वृन्दावनचन्द्रमा मन्दं मन्दं वृन्दावन जनमनः कुमुदवनमुद्-बोधयामास निजपाद पातैः ॥३४॥

ऊँचा करके श्रङ्गको बजाकर, गौओंको नाम ले लेकर बुलाते हुये थोड़ी देर चंचल दौड़ते हुए बछड़ों के पीछे दौड़ते हुए दिन ढल जानेपर सुन्दर ढङ्गसे बोलती हुई कोयलोंके पीछे स्वर मिलाकर कूंजन करते हुए क्षणभर इच्छानुकूल विहार करने-के कारण सामने दीखती हुई पक्षियोंकी छायाको ढकते हुए क्षणभर अपनी छाया-से ही अपनी मायाकी तरह विहार करते हुए क्षणभर गोपालोंकी तरह लगुडको घुमाते हुए क्षणभर पैरोंमें कटकके सुन्दर बजनेके शब्दसे प्रसन्न होकर नाचते हुए क्षणभर दिशाओं-दिशाओंमें ऊपर देखती हुई मयूर पंक्तिको देखते हुए दिशा रूपी स्त्रियोंके नेत्रकमलको शोभित करनेवाली अञ्जन शलाकाकी तरह वनमालाको देखते हुए ही वन और दिशाओंमें व्याप्त शिखरोंके ऊपर नव पल्लवकी लालिमा समूहकी तरह सायंकालकी शोभाको देखते हुए ही सम्पूण दिन गौओंकी धूलि धाराके पड़नेसे तथा सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त होनेसे धूलिसे धूसरित केशोंकी चोटीमें बँध हुए मयूर पिच्छ ["बर्हापीडं नटवर वपुः" । भा० १०।२१।५] से शोभित मुखचन्द्रके मस्तकपर करचरणके नखके समान टेढ़े आकारवाला तिलक धारण किये वृन्दावनके चन्द्रमा श्रीकृष्णजीने धीरे-धीरे अपने चरण पात ['वृन्दा-रण्यं स्वपदरमणम्" । भा० १०।२१।५] से वृन्दावनके लोगोंके मनरूपी कुमुदको विकसित कर दिया ॥३४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्णशोभावर्णनम्

आचूडं पशुधूलिधूसरमभूदाभालमुद्यद्घन-
स्वेद ग्रन्थिलमा कपोल मधुरस्मेराननं तद्वपुः ।
वासोलङ्करणैरपेतकिरणैर्धेनोश्च रेणोर्गणैः
शोभा तु द्विगुणो बभूव सुतरा माभीर चूडामणेः ॥३५॥

सुखमुषित निशावसानसमयसमुचित समेतसाधुकृत्यो निवर्त्योदय दुडुपरिवृढाभिरामं रामं यथाकामं विहितविलास वेषभूषैरभिभूषितो व्रजकिशोरैरनुससार वन भ्रमर शिरोमणिराभीर शिरोमणीभूय । अतिरङ्गेण तरलमन स्तयोत्तुङ्ग कुरङ्गोत्तरङ्गितैः सह तरङ्गितानि तन्वन्तश्चटुल वत्सरैः सह दण्डमनु वञ्चन्तो विहरन्तोऽपि परिश्रान्ताः कान्तारे तृषाविषान्तकारण तयेव विषान्तरमनुसन्दधानाः कालियहृद-विषमेव महाविषमाययु राभीर शावकाः सर्वे ॥३६ ।

श्रीकृष्ण-शोभा

अनुवाद—चोटीसे लेकर मस्तक तक उनका शरीर पशुओंकी धूलिसे भरा था तथा पसीनेसे लथपथ था, कुछ मन्द मुसकान सुन्दर कपोल वाला मुख था जिसमे शरीरकी शोभा सुन्दर थी, गौओंकी धूलि पड़नेसे वस्त्र अलङ्कार शोभाहीन जैसे पड़ गये थे फिर भी आभीर चूड़ामणि श्रीकृष्णकी शोभा दूनी हो गई थी ॥३५॥

अनुवाद—सुख-पूर्वक रात्रि बिताकर ["संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे" । भा० १०।१५।४६] तब निशाकी समाप्तिके समय सब कृत्य समाप्त करके उदित होते हुए (उडु परिवृढ) चक्रके समान सुन्दर रामको लौटाकर इच्छानुसार सुन्दर वेशभूषा बनाये व्रजबालकोंके साथ देव शिरोमणि कृष्ण आभीर बालकोंके शिरोमणि बनकर वनको गये । बड़े आनन्दसे चंचल मन होनेके कारण ऊँचा कूदते हुए हिरनोंके तरह तरंगें भरते हुए चंचल बछड़ोंके साथ दण्डको फेंकते हुए विहार करते हुए वनमें घूमते थके हुए भी तृषारूप विषका अन्त करने के लिये तृषा विनाशक जलका अन्वेषण करते कालिय हृदय रूप महा विषके पास वे सब व्रज-बालक आगये ॥३६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ भगवदवलोकनानुभावलावित महाविषानुभावा गतजीवा अपि जीवन्ति स्म विस्मयमावहन्तिस्म मिथो बहुकालम् । अनन्तरं तु मनसि विचिन्त्य तमन्तकमिवानन्त जन्तूनां त्रिभुवन जनित चमत्कार विषोद्धारकारिणं गरुडानवगाह्यहृदे निर्वाह्य निखिलासह्यमधिवासमति भासमानमसुरनरकिन्नरयक्षरक्षो गणगन्धर्वगर्वचर्वणा दुर्वारं कालिय[1] दर्वीकरं दमयिस्यन्नुद्दामके सरिकिशोर इव शिखरिशिखरं हरिरग्रवर्त्तिनमधिरुरोह कदम्बमविलम्बम् ॥३७॥

कदम्बालग्रीवश्रुतिततिकदम्बैक कलिकः[2]
कदम्ब प्रत्यग्रांकुर रुचिरचूडाग्रमधुरः ।
कदम्बेभ्योऽर्भाणाम् प्रतिनव कदम्बानि वितरन्
कदम्बव्यालंबी स्फुटकुसुमचुम्बी स रुरुचे ॥३८॥

अनुवाद– इसके पश्चात् भगवान्‌की दृष्टि मात्रके प्रभावसे महाविषके प्रभावको नष्ट करके प्राणहीन ["ईक्षयामृत वर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्" भा० १०।१५।५० भी बहुतसे जीवित हो गये थे तथा बहुत देर तक आश्चर्य करते रहते थे । इसके अनन्तर अनन्त प्राणियोंको यमको तरह नष्ट करनेवाला तीनों लोकोंको चमत्कृत करनेवाले भयङ्कर विषको वमन करनेवाला, गरुडसे अवगाहन न करने योग्य हृदयमें निवासके कारण अत्यन्त असह्य अति कठोर दीप्त असुर नर किन्नर यक्ष राक्षस गण गन्धर्वादि से भी अगम्य कालिय नागका दमन करनेकी इच्छावाले अदम्य शिशु सिंहकी तरह आगे आये हुए पर्वत शिखरकी तरह उच्च कदम्ब वृक्ष ['कृष्णः कदम्बमधिरुह्य" । भा० १०।१६।६] पर कृष्ण भगवान् शीघ्र ही चढ़ गये ॥३७॥

अनुवाद—सुन्दर कान, कण्ठादि सब कदम्ब वृक्षकी कलीके समान सुन्दर प्रतीत होते थे तथा कदम्बके नवीन अंकुरोंके समान कृष्णकी चूड़ाका अग्रभाग शोभित था, बालकोंके समूहको कदम्बकी नव कलिका फलादि वितरण कर रहे थे, कदम्बका आश्रय लिये हुये वे कृष्ण उस समय विकसित पुष्पोंका आनन्द लेते हुए शोभित हो रहे थे ॥३८॥

---

(1) कालिय दमन कथा भा० १० स्कं० १५-१७ अध्यायेषु वर्त्तते ।
(2) शिखरिणीच्छन्दः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जहौ नो मञ्जीरं न च कटितटीघर्घर घटीं
न हारं नो हीरावलिवलित केयूर वलयान् ।
भुजस्तम्भास्फोटस्फुटितफणिदृग्वाट महिरा-
द्यदेतस्मिञ्झम्पं हरिरकृत कम्पं जगदधात् ॥३९॥

तिमिरैरिव दुर्निवारसारैर्विषभारैरिव विश्व नाशकारैः ।
जलदैरिव बद्धभीमनादैः सलिलैरुत्थित मच्छलद्भिरुच्चैः ॥४०॥

उन्मज्जन्भूरिमज्जन्बहुतरलहरीर्वर्द्धयन्दोः पदाद्या-
स्फालै कालः करालैः कलभ इव नवाडम्बरारम्भभीमः ।
पादाम्भोजन्महस्ताम्बुजवदनसरोजन्मदृक पुण्डरीकैः
साटोपं कैटिभारिर्भुजगपतिहृदं[1] भूषयामास भूयः ॥४१॥

करे कलभलीलयाकृत चकार चिक्षेप च
स्मितामृततरङ्गिणि स्ववदनेऽपि दिक् प्राङ्गणे ।
निरञ्जन गुणोञ्जन द्युतिमुदे तदोयं जलं
भ्रमद्भ्रमरविभ्रमं तदुरु बिभ्रदभ्राजत ॥४२॥

अनुवाद—उस समय उन्होंने न मंजीरको छोड़ा और न कटि तटपर रहनेवाले घटी सदृश बजने वाले भूषणको छोड़ा और न हारको और न हीराओं से जड़े हुए केयूर तथा वलयको छोड़ा भुज स्तम्भके आस्फोटनसे नीचे शेष नाग- की दृष्टि फट जैसी गई तथा विशेष कम्पशून्य संसारको हरिने एक विशेष झटका सा दिया ॥३९॥

अनुवाद—उस समय नहीं रोकने योग्य अन्धकारकी तरह विश्वका नाश करनेवाले विषभारकी तरह तथा भयङ्कर गर्जन करनेवाले बादलोंकी तरह वेगसे छलकते हुए जल उठ रहा था ["श्वसिताम्बुराशिः" भा० १०।१६।७ ।

अनुवाद—डुबकी लगाते हुए, डूबते उछलते हुये, हाथ पैरोंके आस्फा- लनसे पटकनेसे बहुत लहरियोंको उछालते हुये, काले गज शिशुकी तरह शोभित होते हुए, नया आडम्बर उत्पन्न करनेसे भयङ्कर चरणकमल, हस्तकमल, मुख- कमल एवं नेत्रकमलोंसे श्रीकृष्णने उस कालिय हृदयको भूषित कर दिया ॥४१॥

अनुवाद—गज शिशुकी जैसी लीलासे हाथमें तथा मन्द हासरूपी अमृत

---

(1) कालिय ह्रदः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अम्भोगम्भीरभङ्गोत्तरलगुरुफणामण्डलत्वेन जाग्र-
त्पाथो निर्भेदिनिर्यद्द्युतिनयनकुलं ज्वालयन् जालमग्नेः ।
स्फूर्जत्फूत्कारगर्जद्गुरुगरलगलं सृक्विणो लेलिहानः
कालः कालात्करालः फणिपतिरुदगात् कालियः कालतोयात्[1] ।।४३

फणाभिः स्फाराभिर्दशशतमिताभिर्द्विनयने[2]
गताभिः प्रत्येकं प्रवरमणिमेकं द्विरसने ।
पुरस्तादुत्तस्थौ मुरविजयिनः[3] कालियफणी
बभौ नार्कोनाग्निर्न मणिचपले नाशनिशनी ।।४४।।

क्रोधान्धः संदधानः सुखमय शयनस्वापस्वाप भङ्गैक हेतुं
साक्षात्पक्षीन्द्र केतुं तमहि पतिरसौ नापि पश्यन्नपश्यत् ।
छायादानात्स माया कलितनरतनोर्वर्द्धयन्वारिलीलां
विस्फाराभिः फणाभिः प्रभुशिरसि शतच्छत्रवाही बभूव ।।४५।।

लहरीमें अपने मुखपर तथा दिशाओंमें सुन्दर श्यामवर्णके शोभावाले रूपपर उस समय वह जल घूमते हुये भ्रमरका तरह शोभा प्राप्तकर रहा था ।।४२।।

अनुवाद—जलके अत्यन्त उफननेसे अत्यन्त चञ्चल तथा भयङ्कर फणा-मण्डल करके तथा उग्र गम्भीर जलको भेदन करके निकलती हुई दृष्टिकी तीव्र द्युति करता हुआ, अग्नि समूहको जलाते हुयेकी तरह गरजती हुई भयङ्कर फुस-कारसे उग्र विषको उगलते हुये जिह्वाको चाटते हुये कालसे भी भयङ्कर वह फणिपति कालियनाग कालरूप जलसे निकला ["चक्षुःश्रवा समसरत्तदमृष्यमाणः" भा० १०।१६।८] ।।४३।।

अनुवाद—बहुत फैले हुये हजार फनोंसे दोनों आँखों तक गये हुए तथा दोनों जीभोंमें प्रत्येक फनपर आई हुई मणियोंसे वह श्रीकृष्णके सामने कालियनाग उठा । उस समय न सूर्यकी, न अग्निकी तथा मणियोंपे चञ्चल वज्र शनि आदि किसीकी शोभा नहीं थी ।।४४।

अनुवाद - क्रोधसे अन्धा होकर अपने सुखमय शयनको भङ्ग करनेका यही एक कारण मानते हुए उस अहिपति कालिय नागने गरुडध्वज श्रीकृष्णको देखते हुए भी नहीं देखा, मायासे नर शरीर धारण करनेवाले प्रभुकी जललीलाको

---

(1) स्रग्धराच्छन्दः । (2) शिखरिणी । (3) श्रीकृष्णस्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लक्ष्मीर्यत्र विचित्रितैव नियतं यत्राबभौ कौस्तुभः
श्री वत्सेन यदञ्चितं यदुपदेर्लब्ध्वा तदुच्चैरुदः ।
दन्तेषु त्रुटितेषु तेषु गरलस्योच्चेषु मोघेष्वथो
भोगेनैनमवेष्ट यद्गजमिवालानैः फणी भीषणः[1] ।।४६।।
नावासो गणितः श्रियोऽपि नु मता न स्वीकृतापि त्रपा[2]
श्वभ्रं वारि वनं च कण्टकघनं वर्त्मापि न प्रेक्षितम् ।
अश्यत्केशवदुकूलभूषणमुपालक्ष्येति दुर्लक्षणै-
रुड्डीयेव विनिर्गतं व्रजभुवामाबालवृद्धैर्द्रुतम् ।।४७।।
धावं धावमरण्यधोरणि सरोधारानिकुञ्जावली-
ष्वद्रेरूर्ध्वमधो दरीषु यमुनारोधस्सु बाधाकुलैः ।
गत्वा कालियधाम वीक्ष्य तमहि क्रोडावगूढं भुवि
भ्रष्टानामुदबोधि कौरट इवा क्रन्दस्य कोलाहलः ।।४८।।

बढ़ाते हुये बड़े-बड़े फनोंसे प्रभुके ऊपर छाया डालनेसे सौ छत्र धारण करनेवाले-की तरह होगया ।।४५।।

अनुवाद—जिसकी विचित्र ही शोभा थी श्रीवत्स चिह्नसे भूषित यदुपतिके उस हृदयको प्राप्त करके कौस्तुभमणि शोभित होरही थी, बड़े-बड़े निष्फल विषदन्तोंके टूट जानेपर उस भीषण सर्पने लौह श्रृंखलासे हाथीकी तरह अपने फनसे इनको लपेट लिया ।।४६।।

अनुवाद—किसीने घर देखा न लक्ष्मीका स्थान देखा, न लज्जाका ध्यान रखा, गढ्ढा, पानी, वन कंटकमय मार्ग कुछ नहीं देखा। कृष्णका समाचार जानकर बुरे लक्षणोंसे युक्त ब्रजके सब बालक जवान वृद्ध मानों उड़कर पहुँच गये हों उसकी तरह सभी बड़े वेगसे वहाँ पहुँच गये ।।४७।।

अनुवाद—वनोंमें तालाबोंके पास निकुञ्जोंमें पर्वतोंके ऊपर नीचे गुफाओंमें यमुनाके किनारे दुःखी होते हुए सब कालिय धाममें जाकर सर्पकी क्रोडमें फँसे हुए श्रीकृष्णको देखकर पृथ्वीपर लौटने लगे और कुरर पक्षीकी तरह रुदन करने ["रुदत्य इव तस्थिरे" (भा० १०।१६।११)] का कोलाहल होने लगा ।।४८।।

---

(1) शार्दूलविक्रीडितम् । (2) त्रपा=लज्जा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोपी गोप गवामबाधित शुचां बाष्पाम्बु धारामुचां
हारावैः सह यास्यतो बहिरसू[1] नालक्ष्य लक्ष्मीपतिः ।
आस्फालस्फुर दङ्गभङ्ग बलवज्झङ्कार भूषागणं
द्रागिभन्दन्फणि भोगबन्धमुदगात्कुम्भीव कुम्भीलताम् ।।४६।।

गलद्गरल[2] भीषणं ज्वलद दभ्रतीव्रेक्षणम्
घन श्वसनगर्जनैः प्रलयमारुतारम्भिणम् ।
अनेक सरसीरुहोद्भटमिवैक नालं हठाद्
घटायित फलावलिं हरिरधात्करे कालियम् ।।५०।।

[3]जहाति च दधाति च स्फुटमनेकधा माधवः
पलायन परायणे भ्रमति भोगिनि भ्राम्यति ।
विवर्त्तयति सर्वतः करगृहीतलांगूलकम्
किशोर इव कौतुकी कलित केलि गण्डूपदम् ।।५१।।

अनुवाद - आँखोंसे अश्रुधारा छोड़ते हुए और निरन्तर शोक करते हुये गोपी-गोप और गौओंके हाय-हाय शब्दसे उनके प्राणोंको बाहर निकलते हुये देखकर लक्ष्मीपति कृष्ण आस्फालनसे ताड़नसे अङ्गोंके भङ्ग जैसी चञ्चलतासे भूषणोंकी झङ्कारके साथ सर्पके फनका बन्धन तोड़ते हुए हाथी जैसे नक्रका बन्धन तोड़ देता है उसी तरह तोड़कर उठ बैठे ।।४६।।

अनुवाद—भयङ्कर विषको उगलनेवाले अधिक जलते हुये तीव्र नेत्रवाले अति गर्जन सा करती हुई तीव्र श्वासोंमे प्रलयकाल जैसी वायुको छोड़नेवाले एक नालवाले तथा अनेक कमल समूहकी तरह घटाओंकी तरह छाई हुई फणावली-वाले कालिय सर्पको हरिने हाथमें पकड़ लिया ।।५०।।

अनुवाद—माधव अनेक प्रकारसे प्रत्यक्ष ही कभी छोड़ते हैं तो कभी पकड़ते हैं, भागनेमें तैयार उस सर्पको कभी घुमाते हैं, कभी स्वयं घूमते हैं, उसकी पूँछ पकड़कर सब ओर घुमाते हैं, किशोरकी तरह खेल करनेवाले भगवान् केंचुएकी तरह उससे खेल करते हैं। "क्रीडन्नमुं परिससार यथाखगेन्द्रः" भागवत १०।१६।२५] ।।५१।।

---

(1) प्राणान् । (2) विषः । (3) त्यजति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जलमनु हरिः कारं कारं विहारमनेकधा
भुजग पतिना सार्द्धं श्रद्धां वहन्बहु नत्तितुम् ।
नटवरवपु स्तन्मूर्धानं हठादधिरूढवान्
शिखरि शिखरी रंहः संघादिवोन्मदकेसरो ॥५२॥

फणां फणातः फणिनोऽधिरुह्य फणाप्रधानं हरिरारुरोह ।
सोपान बन्धस्य शिलां शिलातः सुतुङ्गसौधाग्रमिवक्रमेण ॥५३॥

कालियमस्तकेनृत्यः

पादाग्रे नूपुराभ्याम् कटितटनिकटे क्षुद्रघण्टाघटाभि-
र्बाह्वोरग्रेऽपि चञ्चन्मणि मदवयवैर्नाट्यमारम्भिसद्यः ।
हारेणोरस्युदारे नभसि पटतटेनालकेनालिकान्ते
कान्ते तत्तफणान्तर्नटति सुनटितं गण्डयोः कुण्डलाभ्याम् ॥५४॥

सूयन्ते स्मापदान्त प्रभृतिरुचिभराखण्डचूडाशिखण्डै-
स्ते भावास्ते च हावाः प्रतितनुजपदं भिन्नभिन्नास्तदङ्गैः ।
यान्दृष्ट्वा देवगोष्ठी विगत धृति जगौ गर्ज दम्भोधिजैत्रं
वादित्रं वादयन्ती सतुरगवदन व्यूहविद्या धराद्या[1] ॥५५॥

अनुवाद—हरि जलमें अनेक प्रकार से उस सर्पके साथ विहार करके उसको नचानेकी इच्छासे नटवर जैसा शरीर धारण करके मतवाला हाथी जैसे बड़े वेगसे पर्वतके शिखर-शिखरपर चढ़ जाता है उसी प्रकार भगवान् उसके सिरपर चढ़ गये ॥५२॥

अनुवाद—हरि उस साँपके एक फनसे दूसरे फनपर होते हुए प्रधान फनपर चढ़ गये, जैसे सीढ़ियोंकी तरह एक शिलासे दूसरी शिलापर होते हुए क्रमसे ऊँचे महलपर चढ़ जाते हैं ॥५३॥

कालियके मस्तकपर नाचना

अनुवाद—पैरोंके अग्रभागमें घुंघरुओंसे कटितटके पास छोटी-छोटी घण्टियोंसे भुजाओंके आगे चमकती हुई मणिवाले अवयवोंसे तत्काल नाट्य आरम्भ हो गया, हृदयपर सुन्दर हारसे आकाशमें वस्त्रोंके द्वारा मस्तकपर केशपाश द्वारा कपोलपर कुण्डलके द्वारा प्रत्येक फनपर अच्छा तरह भगवान् नृत्यकर रहे हैं ॥५४

अनुवाद—पैरोंसे चोटी तक अपूर्व शोभायुक्त ऐसे हाव भाव प्रत्येक

---

(1) स्रग्धराछन्दः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्यङ्गं प्रतिबिम्बिताः फणिफणा श्रेणी मणीनां गणा
नृत्याकल्पमनल्पमेव विदधुर्दूरादपि श्रीपतेः ।
एवं च प्रतिबिंबशालि न मधु स्वान्तः समन्तादमी
साधीयस्तदहो महोरगपतिर्यत्ता न धान्मूर्धभिः ॥५६॥
रत्नान्तः प्रतिबिम्बितेन शतधा स्वेन स्वयं माधवः
स्वात्मारामपदं प्रदर्श्य विदधे नृत्योत्सवं कोटिधा ।
हस्तोत्क्षेपघनाङ्गभङ्गिचटुलभ्रूदृक्त रङ्गोत्कटं
पादाग्रेण नखेन पार्ष्णितलतो गुल्फेन झम्पैश्चरन् ॥५७॥
गन्धर्वाणां च यूथं कुलमपि यमिनां देवतानां च वीथी
दिक्पालानां च माला कुलकुवलयकं दिक्षु संवीक्ष्यतेस्म ।
विभ्राम्यन्विभ्रमेणा विदित तनु भिदा लेशमारभ्य रंहो-
नंहोभिः स्तूयमानः क्षणमकृत हरिस्ताण्डवाडम्बराणि ॥५८॥

पदपर अङ्गोंसे भिन्न-भिन्न उत्पन्न होते थे जिनको देखकर देव गोष्ठीने धैर्य छोड़ दिया और गरजते हुए बादलसे भी सुन्दर बाजे बजाते हुए किन्नर समूह तथा विद्याधरादि सब चकित थे ।।५५।।

अनुवाद—श्रीकृष्णके दूरसे ही प्रत्येक अङ्गपर प्रतिबिम्बित होनेवाली सर्पके फणोंकी मणियोंने अत्यन्त नृत्यका ऐसा चमत्कार किया. इस प्रकार उसका मध्यभाग वैसा सुन्दर नहीं था जैसा कि प्रतिबिम्बित मणियाँ शोभित थी महोरग पति कालिय नागने अपनी मूर्धाओंसे उनको अच्छे प्रकार धारण कर रक्खा था अपूर्व शोभा थी । ५६।।

अनुवाद—रत्नोंके मध्य सैकड़ों प्रकारके प्रतिबिम्बसे भगवान्ने स्वयं आत्मामें रमण करनेका अपना पद दिखाकर अनेक प्रकारसे नृत्यका उत्सव किया, हाथोंको उठाकर तथा अङ्गोंके सचालनसे चंचल भृकुटिसे दृष्टिकी तरङ्गोंमे उत्कट तथा पैरोंके अग्रभाग नख द्वारा पैरोंके तल भागसे गुल्फोंके चलानेकी विचित्र शोभा थी ।।५७।।

अनुवाद—गन्धर्वों, संयमी योगियों तथा देवताओंका समूह एवं सब दिक्पाल दिशाओंमें नील कुवलय जैसी श्याम शोभा देख रहे थे। शरीर परिवर्त के अलक्षित क्रम द्वारा विभ्रमसे घूमते हुए वेगके कारण जाना नहीं जा सकता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत्वा नृत्यति कैटभारिरनतं मूर्धानमूर्ध्वादधो-
नासादृग्वदनात्त्रिधा च हृदसृग्धाराकुलं कालियम् ।
पत्युः प्राण परीप्सया फणिपतेरन्तः पुरादन्तरा
विद्युद्दाम परम्परा इवपुरः पेतुस्त्रियो दण्डवत् ॥५९॥

तुष्टाव च सुष्ठु निष्पेष्ठारं दीर्घपृष्ठ[1] कुलपतिकुल प्रोष्ठी[2] नयनागोष्ठी ॥६०॥

जनुर्दन्दशूके गुणोद्गार मूके पुरः कैटभारेः स्त्रियः किं वदामः ।
परंत्वेतदन्तर्निकामं जपामः कुले कद्रुजानांकृती कालियोऽभूत्[3] ॥६१॥
मुनिमौनशाली यतिर्योगमाली न शुद्धेन धर्त्तुं हृदाभूदधीशः ।
शिरोरत्न भूषा महारत्नभूर्षाभवन्भासि भो किं तपः कालियस्य ॥६२

था कि कब किस अङ्गको मोड़ दिया । पुण्यवानों द्वारा स्तुति किए हरिने ताण्डव जैसा क्रम क्षण भरको कर दिया ॥५८॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण अनन्त अनम्र मूर्धाको ऊपरसे नीचे झुकाकर नाचते थे । अर्थात् पैर पड़नेसे मूर्धा झुक जाती थी, हृदयकी रक्त धारासे कालियका नाक, आँख, मुँह भर गया था तीनों स्थान रक्त पूर्ण थे । पतिकी प्राण रक्षाके लिये फणपतिकी स्त्रियाँ बिजली जैसी शोभावाली अन्तःपुरसे निकलकर हरिके चरणोंमें दण्डकी तरह गिर गईं ॥५९॥

अनुवाद—सर्प-कुलके स्वामी कालियकी मछलीके समान नेत्रवाली स्त्रियाँ निष्पेषण अर्थात् मस्तकोंको चूर्ण करनेवाले कृष्णकी स्तुति करने लगीं । ६०

अनुवाद—गुणोंसे शून्य दन्द शूक दंशनशील कुलमें हमारा जन्म हुआ है । हम स्त्रियाँ आपके सामने क्या कह सकतीं हैं । परन्तु यह हम अपने हृदयमें खूब जानतीं हैं कि सर्प कुलमें कालिय बड़ा पुण्यवान् हुआ ॥६१॥

अनुवाद—बड़े-बड़े मुनि यति योगी अपने शुद्ध हृदयसे जिसको धारण नहीं कर सके, कालियके सिरका रत्न जो महामणि, उसके ऊपर भूषित होकर, हरि शोभित हो रहे हैं, कालियका कितना बड़ा तप है ॥६२॥

(1) दीर्घपृष्ठ=सर्पः । (2) प्रोष्ठी=शफरी । (3) भुजङ्गप्रयातम् ।

कालियनागेकृपा

न वा दण्डनीयो न वा खण्डनीयः परं कालियोऽसौ पदा मण्डनीयः ।
इतीवाधिरूढः प्रभोगूढ पादं स्वभृत्याण्डजाधीश चण्डावसादम् ॥६३
त्रिकोणा धरित्री कि यानत्र भारः स्वयं शेषभावादि मामुद्बभार ।
कथं ते नु विश्वम्भराकारभारं सहेताहि[1]रेष क्षरत्प्राणशेषः ॥६४
कटी वत्समूर्धत्रिभेदात्तवाऽसौ त्रिलोकीशकाय त्रिभागी त्रिलोकी ।
भवद्भारसोढा न भूभारवोढा कियान्गूढपादाभयं कोऽपिमूढः ॥६५॥
कठोरं कठोरात्फणामण्डलं तत्पदं कोमलादप्यलं कोमलं ते ।
मणिग्रावघाताद्यथारक्त जातं वमद्रक्त शोचिर्दद्यद्वि व्यथेन ॥६६॥
भजेवैनतेयं नते नैव मूद्‌र्ध्ना हृदावासमासादितो येन भोगी ।
हृदं मर्मखेदच्छिदं च प्रपद्येऽमुना यत्र दृष्टो भवानिष्ट दिष्ट्या ॥६७

कालिय-नागपर कृपा

अनुवाद—अब यह कालिय न दण्डके योग्य है और न खण्डनके योग्य है यह हरिके चरणसे भूषित करने योग्य है इसीलिये अपने सेवक गरुडको अपने भार बोझिल करनेवाला यह गूढ चरण आज कालियके सिरपर चढ़ा है ॥६३॥

अनुवाद – यह त्रिकोण अर्थात् गोल पृथ्वी है, इसमें कितना भार है, यही जानकर स्वयं शेष भावको प्राप्त भगवान्‌ने इसको धारण किया, अब इस विश्वको धारण करनेवाले भगवान्‌के भारको यह कैसे धारण कर सकता है इसी से इसके कुछ प्राण शेष हैं ॥६४॥

अनुवाद—आपकी कटिकी त्रिवलीकी तरह मूर्धाके भी तीन भाग जैसे होगये, त्रिलोकीश आपकी कायासे ही त्रिलोकी भी तीन भाग जैसी है, यह आपके भारको और पृथ्वीके भारको नहीं सहन कर सकता । यह कोई मूढ है, आपके पापसे गूढ भारको धारण नहीं कर सकता ॥६५॥

अनुवाद—यह फणामण्डल कठोरसे भी कठोर है, आपका चरण कोमल से भी कोमल हैं, यह चरण मणिरूप पत्थरके टकरानेसे लाल रक्तके छलकनेसे लाल होगया है, फिर भी यह चरण व्यथित नहीं है ॥६६॥

अनुवाद—हम नम्र मूर्धासे गरुड़को प्रणाम करतीं हैं, जिसने इस

---

(1) अहिः=सर्प ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भवत्पादपङ्केरुहाङ्केन पूतोमृतः स्यादयं चेद्वयं चानुयामः ।
भविष्यन्त्य नाथास्तदैतेऽद्य जाता भवानेव भावी जगन्नाथ नाथ ।।६८

पक्षीन्द्रः[1] क्षम एव कर्त्तुमचिरा दुर्वीमदर्वीकरां
हन्तव्ये विरमस्वयं न हि नखच्छेद्ये कुठारोद्यमः ।
क्रीडा मात्रमपेक्षितं यदितदा तज्जातमास्तामयं
प्राणैरेव कथं कथं च न फणी क्षेमाय न क्षम्यताम् ।।६९।।

स्तुतिमिति भुजगेन्द्रसुन्दरीणां हरिरवधाय विधाय ताण्डवानि ।
मृदितमिव विषं भृशं तमासीद्विषमय दुर्जयवीर्यमुत्ससर्ज ।।७०।।

विश्वम्भरभराक्रान्तः क्लान्तो वान्तोरुशोणितः ।
कथं कथमपिप्राप्त प्राणस्तं प्राह पन्नगः ।।७१।।

कालियको इस हृदयमें आवास दिलाया और मर्मके दुःख नाशक इस हृदकी शरण लेती हैं जिसने अनुकूल भाग्यके कारण आपका दर्शन कराया ।।६७।।

अनुवाद—आपके चरणकमलके चिह्नसे पवित्र होकर यदि यह मर जाय तो हम इसका अनुगमन करेंगी और अनाथ हो जायेंगी, हे नाथ ! जगन्नाथ !! आपही हमारे शरण है ।।६८।।

अनुवाद—केवल गरुड ही पृथ्वीको शीघ्र ही सर्पहीन करनेमें समर्थ हैं अब मारने योग्य इसको छोड़ दीजिये, नखमे मारने योग्यको कुठार नहीं उठाया जाता, यदि केवल क्रीड़ाकी ही इच्छा है तो वह पूर्ण हो चुकी, अब इसके केवल प्राण शेष रहे हैं, इसे हमारे कल्याणके लिये अब क्षमाकर दीजिये ।।६९।।

अनुवाद—इस प्रकार कालिय नागकी स्त्रियोंकी स्तुति सुनकर और ताण्डव नृत्य करके उसके विषको नष्ट सा जानकर अपने विषम दुर्जय पराक्रमको छोड़ दिया ।।७०।।

अनुवाद—हरिके भारसे दुःखी अति रुधिरको वमन करता हुआ जैसे-तैसे प्राणोंको वह प्राप्तकर कालिय पन्नग भगवान्‌की प्रार्थना करने लगा ।।७१।।

---

(1) गरुडः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालिय स्तुतिः

येन क्वापि सुधा व्याधायि विधिना कुत्रापि हालाहलो
हिंसैका क्वचिदेव देव करुणा कुत्रापि नैसर्गिकी ।
दुःखी कोऽपि सुखी च कोऽपि मृदुलः कोऽपि प्रचण्डः परो
दण्ड्योऽसौ प्रभुरस्महं विहरते तुभ्यं किमीश ब्रुवे ॥७२॥
कर्माधीनमिदं वदन्ति सुधियस्तेभ्यो नमस्कुर्महे
साक्षी तत्र सरोजपत्रनयनः श्रीमान्स्वयं सर्वदा ।
दण्ड्यं कर्म तदस्तु कुण्डलिकुले जातस्य पापस्य मे
दण्डः कोऽयमये मयेति विदितो नाद्यापि निद्रावता ॥७३॥
मया तेनाहूताः पिबत चलमित्थं जलधियः ।
सुदुर्वाराभीराः सह पशुगणैर्ये पपुरपः ।
हुताशस्थं हस्तं दहति न हुताशः क्व नु विभो ।
प्रभूणां चेष्टा हि स्फुरति जगतां मूर्धनि गुरुः ॥७४॥

कालिय कृत स्तुति

अनुवाद—जिस विधाताने कहीं अमृत बनाया और कहीं हलाहल विष बना दिया, कहीं हिंसा तो कहीं स्वाभाविक करुणा उत्पन्नकी, कोई दुःखी तो कोई सुखी है, कोई कोमल तो कोई अत्यन्त कठोर बनाया, वही दण्डनीय है, मैं अपने कार्यमें स्वतन्त्र हूं, विहार करनेवाले आपको हे ईश ! मैं क्या कहूँ ॥७२।

अनुवाद—बुद्धिमान् लोग इस जगत्को कर्माधीन बताते हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ । कमलनयन श्रीमान् ! आप स्वयं साक्षी हैं। सर्प कुलमें उत्पन्न मुझ पापीके लिये कम दण्डनीय बन जाय । अहो यह दण्ड क्या है मोहमें पड़े हुए मैंने उसको आज तक नहीं जाना ॥७३॥

अनुवाद—मैंने उनको बुलाया कि जल समझकर उस चंचल जलको पियो बड़े वेगसे आकर आभीर समुदायने पशुओंके साथ इस जलको पिया । हे विभो ! अग्निमें पड़े हुए हाथको अग्नि कहाँ नहीं जलाती । इसमें प्रभुकी इच्छा ही बलवान् है आप सब संसारके गुरु हैं ॥७४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वामिन्नाज्ञापयतु विज्ञेतरस्मै कस्मैचिदस्मै विस्मृतनिखिलाय प्राप्तप्रायनिधनाय प्रतिपन्नहालाहलैक धनाय । यत्कुर्वन्भगवदभिमतो भवन्नयमुपलभते परं भव्यम् ॥७५॥

कृष्णस्याभयप्रदानम्

आकर्ण्याहमुरारातिरणाति कुलमर्द्दनः ।
मदङ्घ्रेरङ्कनिःशङ्कः सिन्धुं याहि ह्रदं जहि[1] ॥७६॥

प्रभुवर करुणापाङ्गपीयूष तरङ्गिणी तरङ्गाभिषेक मधुरिमातिरेकानुभवार्द्रीभावतया समीचीनमुरगवरो वरं वव्रे ॥७७॥

ईदृक्कर्म्म न शाम्यतीश यदि मे स्यादत्र जातौ जनु[2]–
र्मा भूयान्मतिरीदृशी मधुरिपो दष्टोऽसि मूढैर्यया ।
श्री भाजां पुनरीदृशीदृगमितः स्यात्ताण्डवाडम्बरम्
मौलौ जन्मनि जन्मनि प्रभुवरैतत्ते पुरः प्रार्थये ॥७८॥

अनुवाद—हे स्वामिन् ! आप विज्ञसे इतर मूर्ख इस जनको, जिसने सब कुछ भुला दिया है, एक प्रकारसे मृत्यु ही प्राप्त हुई है तथा हालाहल रूप धन प्राप्त करने वालेको समझायें जिसको करके आपका प्रिय पात्र होकर कल्याण प्राप्त करे ॥७५॥

अभय दान

अनुवाद—यह सुनकर मुर शत्रु तथा शत्रु कुल नाशक कृष्णने कहा कि मेरे चरणोंके चिह्नसे अङ्कित होकर तुम निश्शङ्क होकर समुद्रमें चले जाओ और ह्लदको छोड़ दो ॥७६॥

अनुवाद—भगवान्की करुणा दृष्टिरूपी अमृत नदीकी लहरीमें स्नानकी मधुरताका अनुभव करते हुए उरग वर कालियने सुन्दर एक वर माँगा ॥७७॥

अनुवाद—यदि आप ऐसा मेरा कर्म उचित नहीं समझते तो मेरा इस जातिमें जन्म न हो और मेरी ऐसी बुद्धि न हो जिस बुद्धिसे हे मधुरिपो ! मैंने तुम्हें काटा है । और श्रीमान् जीको मेरे विषयमें ऐसी दृष्टि है तो मेरे मस्तकपर हे प्रभुवर ! जनम-जनममें ऐसा ही ताण्डवका आडम्बर हो, यह मैं प्रार्थना करता हूँ ॥७८॥

---

(1) त्यज । (2) जन्म ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ विघटितकुम्भीनसदम्भकानने वरकुम्भीश्वर किशोरइव यमुनाम्भोलहरीस्तम्भ इव तटमवगाह्य ददर्श साम्राज्यं शोक दहनानाम् ॥७९॥

गोपानांशोकावस्थावर्णनम्

क्वचित्तातो मूर्च्छामनुभवति तच्छायसदृशी
क्वचिन्माता जातास्मृतिरपगता सुप्रतिनिधिः ।
क्वचिद्गावो दीनाः क्वचिदवनि लीना व्रजगणा
हली मोहं जानन्नपि भजति हन्तैक्षि हरिणा ॥८०॥

गोपानांहर्षवर्णनम्

तमालोक्योत्तस्थुः प्रतिनवतमालद्युतिधरं
सुधासेकैरिन्दोरिव निशि दिनग्लानकलमाः ।
यशोदाद्या नार्यो युगपदभिवार्यादधुरमी
पुमांसो नन्दाद्या निधिमिव दरिद्रास्तत इतः ॥८१॥

अनुवाद--फिर सर्पके इस पाखण्ड रूप वनको नष्ट करके अर्थात् उसका अहङ्कार तोड़कर सुन्दर गज किशोरकी तरह यमुना जलकी लहरी स्तम्भकी तरह तटपर आकर शोकाग्निसे जलते हुओंकी दशा देखी ॥७९॥

गोपोंकी शोकावस्था

अनुवाद—कहीं तात मूर्छाका अनुभवकर रहे हैं उन्हींकी तरह माता भी स्मृति नष्ट करके मृत सदृश पड़ी हुई हैं कहीं गौएं दीन हो रही हैं कहीं व्रजगोप पृथ्वीपर लीन हैं समझते हुए बलराम भी मोहमें पड़े हैं, भगवान्ने ऐसा देखा ॥८०॥

गोपोंका हर्ष

अनुवाद—नव तमाल पल्लवकी शोभा धारण करनेवाले श्रीकृष्णको देखकर सब इस प्रकार उठ बैठे जैसे दिनमें म्लान धान्यांकुर रात्रिमें चन्द्रमाके अमृतमय सेक से शोभित हो जाता है । यशोदादि नारियोंने एक साथ चारों ओर से घेर लिया जैसे दरिद्र निधिको पाकर प्रसन्न होते हैं, वैसे नन्दादि लोग सब प्रसन्न होगये ।८१॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[1]परीरम्भं केचिद्विदधुरपरे चुम्बनविधिं
परे मूर्धाघ्राणं करकमलमेके हृदि हरेः।
अदृष्ट्वा दृष्ट्वै प्रमदमपरे भेजुरभितः
पतन्तो हन्तोपर्युपरि निपतन्त्येव च परे ॥८२॥

अथ सकलपशुपशुपालकुलैः सह ह्रदवरसविध एव परम - घन-च्छायासु तेषामखिलायासमपनिनीषुरुषित्वा निशि भृशमुदयन्तमन्तक[2]मिव गोगोपानां ग्रसमानमेभिः सहाशातलगगनतलानि बलादालीढ-त्रिभुवनमिव क्वचिदपि सिमसिमाय[3]मानवनपरम्परं क्वचिदपि कटु-कठोररवोद्गारमुखरितदिगव्रजगाढ विगाढ कोटर पूरित तरुवारं भयचकितमार्त्तनादगणितप्रमादविश्वजनैरुदीक्ष्यमाणं प्रवर्त्तित प्रलयमिव दावानलं चिरविहितजलाव[4]गाह प्रतीकारमिव प्रतितनुरुह-कुहर कूपनिविष्टदुष्ट दीर्घपृष्ठ विषविषमौषधमिव कवलीचकार लीलयैव वनमाली ॥८३॥

अनुवाद—कोई आलिङ्गन करने लगे कोई चुम्बन करने लगे, कोई सिरका चुम्बन करते थे, कोई हरिके हृदयपर हाथ रखते थे, कोई देखकर और कोई बिना देखे ही सब ओरसे प्रमत्त बन रहे थे, कोई हरिके ऊपर गिरते थे, कोई गिरने वालेके ऊपर गिर जाते थे ॥८२॥

अनुवाद—इसके पश्चात् सब पशु तथा गोपोंके साथ तालाबके पासमें ही अति घनी छायामें इन सबने थकावट, परिश्रमको दूर करनेकी इच्छासे रात्रि-में विश्राम किया। रात्रिमें यमराजकी तरह अत्यन्त उठते हुए तथा गौ और गोपोंको ग्रस्त करते हुए इनके साथ ही दिशाओं एवं गगन तलको तथा तीनों लोकोंको बलपूर्वक नष्ट करते हुए सा तथा कहीं वनकी भूमिमें सिमसिम जैसा अग्नि ज्वालाका शब्द उठता सा कहीं कटु-कठोर शब्दके उठनेसे दिशाओंमें गुञ्जन तथा वृक्ष समूहके कोटरोंमें अग्नि ज्वालाका व्याप्त होता हुआ सा, भयसे चकित होकर आर्त्तनाद करते हुए जिससे बड़े भयपूर्वक लोगों द्वारा देखा जाता हुआ प्रलयकाल-सा करते हुए दावानलको बहुत देर तक किये हुए जलावगाहनके

---

(1) आलिङ्गनम्। (2) काल इव।
(3) सिमसिमायमान=सि+मन्=प्रत्येक समस्त अमरकोषमें यह शब्द नहीं है।
(4) जलस्नान।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यगाहन्त हरेरन्तरभ्रं लिहदवाग्नयः ।
समालीढदिशः क्रोडमिव शम्पाः पयोमुचः ॥८४॥

इति विविधातिलोकलीलानुशीलनविस्मापित-सकलगोपालकुलो
बृन्दावनमानन्दयन्ननुविन्दति स्म गोविन्दः ॥८५॥

मरुं कुर्वन्नुर्वीदलविकलमुर्वीकुलकुलं
दिशोर्का दुष्प्रेक्ष्याः प्रबलदवदावानलभुवः ।
पिकान्मूकानन्धानहह धरणीधूलिभिरलीन्
दिनं दीर्घं दीनां निशमपि निदाघः समुदभूत् ॥८६॥

ग्रीष्मवर्णनम्

निदाघदीर्घाहदिनेश दीप्तितप्ते ययुर्व्योमपथे त्वराभिः ।
हया हिमांशोर्मिहिकाभिषेकादिति त्रियामा तनिमानमाप ॥८७

प्रतीकारकी तरह, प्रत्येक रोमरूपी कुहर कूपमें प्रविष्ट हुई सर्पके विषम विषको औषधकी तरह खेलमें ही भगवान्ने उस दावानलको कवलितकर लिया ॥८३॥

अनुवाद—जैसे सब दिशाओंमें व्याप्त होनेवाली बिजलीको बादल अपनी गोदमें ले लेते हैं उसी प्रकार आकाशको छूनेवाली दावाग्निको भगवान्ने अपने अन्दर ले लिया दावाग्नि का पान—यह दावासुर ही था जिसे श्रीकृष्णने मारा । ॥८४॥

अनुवाद–इस प्रकार अनेक प्रकारकी लोकलीलासे सम्पूर्ण गोपाल कुलको विस्मयमें डालते हुए और वृन्दावनको आनन्दित करते भगवान् क्रीड़ा करते थे ॥८५॥

अनुवाद—पृथ्वीके प्रत्येक वर्गको दुःखी करते हुए, पत्तोंको विकल करते हुए, सबको मरु, रेगिस्तान जैसा करते हुए, दिशाओं तथा सूर्यका तापके कारण प्रबल दावानलके होनेसे दुर्दर्श बनाते हुए, कायलोंको मूक तथा पृथ्वीकी धूलिसे भ्रमरोंको अन्धा बनाते हुए, दिनको लम्बा तथा रात्रिको छोटा करते हुए ग्रीष्म-काल आगया ['ग्रीष्मोनागतुं रभवत्'' (भा० १०।१८२)] ॥८६॥

ग्रीष्म-वर्णन

अनुवाद—ग्रीष्म-कालके बड़े-बड़े दिनोंमें सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए आकाश-मार्गमें चन्द्रमाके घोड़े रात्रिके तुषार सेक होते हुए भी वेगसे चलते थे इससे रात्रि छोटी थी ॥८७॥

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रचण्डमार्त्तण्डमयूखमण्डलादुपेतदण्डाः पथि सप्त सप्तयः ।
सुदुर्बलीभूय निदाघवासरे शनैः सरन्तीति दिनेषु दीर्घिमा ॥८८
कदापि भाण्डीरवने गणेन विहर्तुकामः सह निर्जगाम ।
हरिः सरामः सकलाभिरामः संवाह्यसंवाहक-भावपूर्वम्[1] ॥८९
कटीतटीबद्ध घटी-विशेषो वपुःश्रिया बल्लव - निर्विशेषः ।
वयःक्रियावेशगुणैश्च तैस्तैरभूत्समस्तैक – सुहृत्प्रल[2]म्बः ॥९०

प्रलम्बासुरवधः वर्णनम्

बलं बलीयांसमयं बलीयानुवाह वाहा[3]दपि वेगवाही ।
बभार विश्वम्भरतामथाऽसौ तस्यासुरं भावमुदीक्ष्यभीमम् ॥९१

अनुवाद –प्रचण्ड सूर्यकी किरणोंसे मानों दण्डाहत होकर, मार्गमें सातों घोड़े निर्बल होकर ग्रीष्म-कालमें धीरे-धीरे चलते थे इसलिये मानों दिन बड़ा होता था ॥८८॥

अनुवाद—किसी समय संवाह्य संवाहक क्रीड़ा करनेकी इच्छासे बलरामके साथ सर्वाङ्ग सुन्दर राम भाण्डीर वनमें अपने समूहके साथ विहार करने निकले ॥८९॥

अनुवाद – कटि तटपर सुन्दर घटी विशेष बाँधे हुए शरीर शोभासे बिल्कुल ग्वाल-बाल जैसा प्रतीत होता हुआ अवस्था क्रिया वेश और गुणसे सबमें मिलता-जुलता सबका एक मित्र बनकर प्रलम्बासुर आगया ["गोपरूपी प्रलम्बोऽगात्" भा० १०।१८।१७] ॥९०॥

प्रलम्बासुर-वध

अनुवाद—इस बलवान् प्रलम्बासुरने बली बलरामको पीठपर चढ़ाया और अश्वसे भी अधिक वेगसे चला, उसके भयङ्कर भावको देखकर बलरामजीने भी विश्वम्भर रूपको धारणकर लिया ॥९१॥

---

(1) उपजातिः । (2) प्रलम्बासुरवध कथा भा० १० स्कं० १८ अध्याये वर्त्तते ।
(3) वाहनात् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घटीं बिभ्रन्नीलां कनकमयभूषावति शितं[1]—
प्रलम्बं सालम्बं व्यजयत विशालं बलवपुः ।
गिरीन्द्रे कुम्भीन्द्राकृतिरिव चिरं धातुरुचिरे
बलद्बन्धो मध्ये समुदयदहो दामलतया ॥६२॥

प्रलम्बासुरमूर्धानं दलयामास हेलया[2] ।
हली हस्तेन पारीन्द्रः कुम्भिकुम्भस्थलीमिव ॥६३॥

तनुक्रमात्तेन तनीयसापि दिग्भूवियद्व्यापि दधत्स्वरूपे ।
सुधांशुनेवोग्रतमः करेण बलेन नीतः प्रलयं प्रलम्बः ॥६४॥

मही दाहं धत्ते भवति भृशमम्भो दहनतां
हुताशज्वालेयं झनझनित झञ्झानिलघटा ।
विनाज्योतिःकूटं नयनपथमायाति न नभ-
स्तदेकं भूतानां जगदजनि भूतं शुचिमनुः ॥६५॥

अनुवाद—नीलघटीको कनकमय भूषावाले शरीरपर धारण किये तीक्ष्ण आलम्बन सहित प्रलम्बको विशाल बलके शरीरने जीत लिया, धातुओंसे सुन्दर गिरीन्द्रपर गजेन्द्रकी जैसी आकृतिकी तरह बिजली जैसी लतासे शोभित मध्यमें बलरामजो वन्यसे शोभित उदित हो रहे थे ॥६२॥

अनुवाद—खेल-खेलमें सिंह जिस प्रकार गजकी कुंभस्थलीको तोड़ देता है उसी प्रकार बलरामने अपने हाथकी मुष्टिसे प्रलम्बासुरके सिरको तोड़ दिया ॥६३॥

अनुवाद—दिशाओं व पृथ्वी व आकाशमें व्याप्त होनेवाले लम्बे-चौड़े शरीरको धारण करनेवाले उस प्रलम्बासुरको बलरामजीने अपने हाथसे ऐसे मार दिया जैसे चन्द्रमा अपनी किरणोंसे सब जगह व्याप्त उग्र अन्धकारको नष्टकर देता है ॥६४॥

अनुवाद—पृथ्वी उग्र दाह धारणकर लेती है जल भी उष्णता धारण कर लेता है, अग्निकी ज्वाला प्रत्यक्ष है ही और झन-झन शब्द करती हुई वायुकी

---

(1) शो+क्त = (तेज) ।
(2) हेड्भावे उस्य लः — क्रीडा सुरत इच्छा भी—
प्रौढेच्छयातिरूढानां नारीणां सुरतोत्सवे ।
शृङ्गार शास्त्रतत्त्वज्ञै र्हेला सा प्रकीर्तिता ॥ (आप्टे) पृ. ११८०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राचीभागिनि भानुमालिनि दिशं भेजे प्रतीचीमियं
प्राचीमञ्चति चेयमञ्चति पुनस्तस्मिन्प्रतीचीमपि ।
मध्येव्योम समेत्य पश्यति समं हन्तुं समं तत्तमो
न च्छायापि बहिः प्रयाति तनुतो मध्येऽह्नि मन्ये भिया । ९६॥

असह्या सह्यापि क्व पुनरपरेण द्युतिरह-
पतेराहो सह्या दहति वपुरच्छायमभितः ।
स दूरेऽभ्यर्णेऽपि प्रबलदव[1]दावोऽयमुदयन्-
दुनोतीति क्रोधादिव सुरभिदाऽसौ कवलितः ॥९७॥

अधैर्यं यच्छन्ती ह्रियमपि दहन्ती स्मृतिहरी
क्षुधान्यादावासैः कवलननलेनेव ववृधे ।
बिभिक्षेयल्लक्ष्मीपतिरपि बुभुक्षाकुलमना
मुहुर्भक्ष्यं धूमध्वजशरणभूमी - सुरगणम् ॥९८॥

उग्रता भी प्रकट है, आकाश भी किसी प्रकाश पुञ्जके होनेसे प्रत्यक्ष हो जाता है, इन पाँचों भूतोंके द्वारा स्रष्टाने इस एक जगतको उत्पन्न किया है ॥९५॥

अनुवाद—जब सूर्य पूर्व दिशामें होता है तब यह छाया उससे प्रतिकूल पश्चिम दिशामें पड़ती है और जब सूर्य पश्चिममें होता है तब यह छाया पूर्व दिशामें पड़ती है और जब सूर्य ठीक आकाशके मध्यमें होता है तब यह शरीरके नीचे समान भागमें आ जाती है, इससे प्रतीत होता है कि छाया भी डरसे शरीर से बाहर निकलना नहीं चाहती ॥९६॥

अनुवाद—यह सूर्यकी कान्ति दूसरेसे सह्य हो या असह्य हो, छाया रहित इस शरीरको यह सूर्यकी कान्ति जला ही देती है इसी प्रकार यह प्रबल दावाग्निका ताप दूर हो या पास हो यह जला ही देता है, इस क्रोधसे मानो मुर-शत्रु श्रीकृष्णने इस दावानलको पी लिया [दावाग्निपान कथा भागवतमें प्रलम्बा-सुर वधके पश्चात् वर्णित है। (भा० १०।१९।१२-१४) ॥९७।

अनुवाद क्षुधा एक ऐसी अग्नि है जो धैर्य नहीं रखने देती, लज्जा नष्टकर देती है स्मृति भी खो देती है वह भी कृष्णजी द्वारा अग्निका कवलन देखकर बढ़ गई, भूखसे आकुल होकर लक्ष्मीपति भी यज्ञशालामें बैठे ब्राह्मणोंसे

---

(1) दावानल पान कथा भा० १० स्कं० १९ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुरलीवर्णनम्

अहह ज्यैष्ठ्यकठिनद्राघिष्ठदिनद्विगुणितजठरनिष्ठुराग्निज्वालाजालतया हतया भक्षार्थमर्थीभूय यदकृतार्था एव,गोपानामनन्तकोटिब्रह्माण्डपतिना केलिवशाद्भाण्डीरवनभागिना प्रेषितानामनवरतवीत[1]होत्र-परिचर्यापर्यायमात्रकार्याणाम् होमाचार्याणां पुरान्निर्याता इति, दूर्जयदुर्यशो दिशो दश यत्कज्जलयदुज्ज्वलीबभूव; तदेवाद्यापि धूम इति सोमकलङ्ककलायामलमुपगीयते वीतिहोत्राणाम् । द्विजपतिरिति नाममात्रमैत्री—वशादङ्कशालितापि शशाङ्कस्य । अनधिकृतजठराग्निशान्त्युपायान्तरतया तेषामशान्ततया च शान्तेरुपायं तु सुधाभिषेकैर्जगदाप्याययन्तीमेकां मुरलीमेव तामुररीचकार ॥९९॥

भोजनकी याचना करनेकी इच्छा करने लगे [यह प्रसङ्ग कविने अपूर्ण ही दिया है किन्तु इसे भाण्डीर वनकी लीला स्वीकार किया है]॥९८॥

मुरली-वर्णन

अनुवाद—अहा ! उग्र कठिन दीर्घ दिनमें दूनी उदरकी कठोर अग्निकी दुष्ट ज्वालासे भोजनके लिये याचक बनकर भी भगवान् कृतार्थ नहीं हुए, अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डके पति क्रीडाके कारण भाण्डीर वनमें प्राप्त हरिके द्वारा भेजे हुए गोपोंके निराश आनेसे निरन्तर अग्निकी सेवामें संलग्न होमाचार्योंका अपयश जिसने दिशाओंको कलुषितकर दिया था वह भी उज्ज्वल होगया,जो कि चन्द्रमाके कलङ्कके बहाने उसमें यज्ञका निर्मल चिह्न आज भी प्रतीत होरहा है। द्विजपति इस नाम मात्रकी मित्रतासे चन्द्रमाके मध्यमें वह होमाचार्योंका अपयश आज कलङ्क रूपमें चन्द्रमाने स्वीकृत किया। अति जठराग्निकी शान्तिका अन्य उपाय नहीं होनेके कारण तथा गोपोंके अशान्त रहनेके कारण अमृत वर्षासे संसारको प्लावित करनेवाली मुरलीको भगवान्ने स्वीकार किया अर्थात् मुरली - ध्वनि करने लगे ॥९९॥

---

(1) अग्निः । "अग्निर्वैश्वानरोवह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः"। अ० को० १।१।५४ व्युत्पत्ति—वीयत इति वीतिः, वीतिर्भक्ष्यंपुरोडाशादिर्हूयते ऽस्मिन्निति वीतिहोत्रः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधीनुद्दलयन्नपि विषयान्तरं विस्मारयन्नपि मनांसि जडयन्नपि झंझानिलपरम्परां मूकयन्निखिल सत्त्वकुलं स्थगयन्नपि रविरथमण्डल-माखण्डलोपलमयीमिव पुण्डरीकरमणनन्दिनीमनीहतया निर्वाहयन्, अनिर्वचनीयानन्दसन्दोहमभिनन्दयन्नपि सिद्धानां चिरशुद्धसमाधि-मुद्धूनयन् दन्तालोढनवयवसमपि चित्रार्पितमिव पशुगणमुत्कर्णयन्नेव सम्भावयन्नेव जम्भादिकाहरणं धूमध्वजावधान धनान्धानामनवरतहूय-मान - होमहुताशहेतिहुङ्कारपूर्णकर्णानां तेषामाकार्णायतनयनाकुलानि तूर्णमेव हरिमनुसन्धाप्य सन्धावयन्, आभीरसुन्दरीणां हृदयमन्दिर-मान्दोलयंस्तदनु कन्दलीमतितुन्दलीकुर्वन्नुपचित पुलकांकुरालिकुल-तया भृशमवशयन्नपि नयनानि निर्निमेषयन्नपि वदनानिगुरुगरिमानु-वाद मोहमेदुरतया मुखरयन्नपि मधुरमधुसुधाधाराद्यसाधारण मा-धुरोधाम समुदजृम्भि मुरवैरिणा मुरलीनादः ॥१००॥

अनुवाद—चिन्ता नष्ट करते हुए अन्य विषयोंको भुलाते हुए मनको जड़ीभूत करते हुए, झंझावातको भी स्तब्ध करते हुए सब प्राणिवर्गको मूक-सा करते हुए, सूर्यके रथको स्थगित सा करते हुये यमुनाको इन्द्र नीलमणिकी तरह अनिच्छाके कारण करते हुए सिद्धोंके अनिर्वचनीय आनन्द समूहका अभिनन्दन करते हुए चिरकालकी शुद्ध समाधिको विकसित करते हुए दाँतोंमें नवीन यवस, भूसाको लगाए हुए भी पशु वर्गको चित्र लिखेकी तरह ऊपर कान उठवाते हुएकी तरह जम्भादिके आनेकी सम्भावना कराते हुए, यज्ञकी अग्निमें ध्यान लगनेके कारण अन्यत्र नहीं देखनेवाले निरन्तर आहुति पड़ती हुई होमकी अग्निकी हुङ्कार से पूर्ण कर्णवाले याज्ञिकोंके कान तक फैले हुए नेत्रोंको तत्काल हरिका ध्यान दिलाकर शब्दकी ओर दौड़ते हुए तथा आभीर सुन्दरी गोपियोंके हृदय मन्दिरको हिलाते हुए कन्दली हिरनको अति रोमांकुर पंक्तिसे आकुल होनेके कारण तुन्दिल, स्थूल करते हुए तथा अवश कराते हुये नेत्रोंको पलक शून्य कराते हुए अत्यन्त गौरवकी प्रशंसाके मोहसे पूर्ण हो जानेके कारण मुखको वाचाल बनाते हुए मधुर मधु सुधाकी धारादिसे भी असाधारण अपूर्व विचित्र माधुरीका नित्रास भूत धाम मुर शत्रु कृष्णने मुरलीका नाद प्रारम्भकर दिया ["सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्" भागवत १०।२१।२] ॥१००॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तपनतनयाकूले मूले नरोरपि भङ्गिभि-
स्तिसृभिरमृतस्यन्दी सन्दीपितस्मितबिन्दुतः।
सजलजलदश्यामः कामत्रपास्पदमालिभि-
र्द्विजकुलसरोजाक्ष्याःसाक्षात्कृतो हरि रक्षिभिः ॥१०१॥

इति चरितचमत्कारजागरूका यायजूकानुवादवावदूकाः क्वचिद्‌-चिरे किञ्चिदाचरेण विपश्चितः[1] केचित् ॥१०२॥

भगवति नमो विद्येऽवद्ये मृषा निरवद्यता
तव यदि हरेर्भक्तिर्व्यक्तिर्न चेतसि किं त्वया।
भवदनुगतैः कुण्डे चण्डे हविर्भुजि हूयते
गहनशरणाः कामाद्वामा भजन्ति परं[पदम्] ॥१०३॥

प्रावृट्वर्णनम्

अथ निजपरिपरिपालनीयवनसिकलावनीधरनिखिलावनीरुह-

अनुवाद—यमुनाके तटपर वृक्षके नोचे त्रिभङ्गी गतिसे आकार बनाये सुन्दर संदीप्त मन्द हासकी छटासे अमृत धारा बहाते हुए काम तथा त्रपा, लज्जा के उत्पन्न करानेवाले स्थान सजल मेघके समान श्यामवर्ण हरिका द्विजकुल सरोजाक्षी अर्थात् विप्र पत्नी तथा उनकी सखियोंने आँखोंसे दर्शन किया ॥१०१॥

अनुवाद—इस प्रकार चमत्कार जनक चरित्रमें सावधान रहनेवाले यज्ञ करनेवाले याज्ञिकोंको प्रशसामें बोलनेवाले कोई विद्वान् कहींपर तत्काल ही कुछ यह कहने लगे—॥१०२॥

अनुवाद—हे अवद्य निन्दनीय विद्या मैं तुमको नमस्कार करता हूँ, तुम्हारी निरवद्यता अर्थात् उत्तमता सुन्दरता मृषा है (अप्रत्य है) यदि भगवान् की भक्ति तुम्हारे चित्तमें नहीं है, आपके अनुगामी जन कुण्डकी दीप्त अग्निमें हवन करते हैं और कामसे उत्कट इच्छासे वामा स्त्रियाँ अत्यन्त शरणमें पहुँचकर परपदका भजन करती हैं और प्राप्त करती हैं ।१०३।

वर्षा-वर्णन

अनुवाद—इसके पश्चात् अपने पालन योग्य वन सब पर्वत सब वृक्ष

---

(1) "विद्वान् विपश्चित् दोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः।
धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः॥ अ०को० २.७।५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निवहावनीकेदारकूपकासारगम्भीरतरतडागनागानागनदनदीनागादि-जन्तुपूगानतिगाढमापीडयन्ती निदाघमिव तर्जयन्ती महोर्जितैर्गर्जितैः पर्जन्यपरम्पराणां पृथुलतरपयोधरपयोधारासारैराराज्जगन्त्ये वाप्लावयन्ती जगतां मातेव भगवती प्रावृ[1]डाविर्बभूव बहुभूत्यै ॥१०४॥

पयोधरे सान्द्रधनुर्नखाङ्का तडिन्निचोला[2]ञ्चल बीजिताङ्गी ।
धारा वहत्स्वेदभरा चिराय रराज भुक्तेव घनागमश्रीः ॥१०५

[3]शिखण्डिमण्डलं क्वापि क्वापि मण्डूकमण्डलम् ।
जगौ यश इवात्युच्चैर्जलदस्योपकारिणः ॥१०६॥

सौर्वा वज्रतडिद्गतैः परिचलत्क्रौञ्चालिफण्यञ्चिताः
गर्जन्तो जलदा[4] नदाधिपतयो गम्भीरगर्भाम्भसः ।
निर्भिन्नाञ्जनकान्तयो लहरिभिर्धाराभिराराधिता
वर्धन्ते स्म ह्रिया बभूव परयागस्त्यो निरस्तोदयः ॥१०७॥

समूह पृथ्वी क्षेत्र कूप तालाब गम्भीर सरसी हाथी अन्य जीव नद नदी सिंहादि जीव समूहको अत्यन्त पीड़ित करती हुई और बादलोंकी ओजस्वी गर्जनसे मानो विदग्धको डराती हुई स्थूल मेघोंके जलधाराकी आसार वर्षासे सब संसारको डुबोती हुई संसारकी माताकी तरह मानों बहुत सेवा करनेके लिये भगवती वर्षाऋतु आगई ॥१०४॥

अनुवाद—पयोधर बादल रूप स्तनपर सान्द्रधनुषके आकारके नखके अङ्कको धारण करती हुई निचोल प्रच्छन्द चादरके अञ्चल कोनेसे शरीरका वीजन हवा करती हुई तथा बहते हुए पसीना रूपी धाराओंको धारण करती हुई मुक्ता नायिका रूप तडित बिजली रूपी नायिकाने घनागम बादल आनेकी शोभाको धारण किया इस श्लोकमें कविने घनागम श्रीको मुक्ता नायिका रूप बिजलीका साम्य दिया है ॥१०५॥

अनुवाद—बोलते हुए मयूरोंका समूह तथा मेंढक उपकार करनेवाले बादलोंका यशोगानकी तरह कर रहे हैं ॥१०६॥

अनुवाद—चलती हुई क्रौञ्च पंक्ति रूपी फणी सर्पोंसे युक्त वज्र रूप बिजलीके शब्दयुक्त गरजते हुए बादल तथा गंभीर जलवाले बड़े-बड़े नद अञ्जन-

---

(1) प्रावृड्वर्णनं शरदवर्णनं च भा० १० स्कं० २० अध्याये ।
(2) निचोलः—(नि+चुल+घञ्) अवगुण्ठन ।
(3) मयूरवृन्दः ।　　(4) मेघाः ।

माभूद्भग्नमिदं व्योम भूरिभारैः पयोमुचाम् ।
इतीव विदधे वेधा धाराभिः स्तम्भधोरणी ॥१०८॥
आर्द्रं वारिभिरम्बरं गुरुपरीणाहः समन्तादपि
व्यक्तिं प्राप पयोधरो विहसितं नीपैर्द्विजै[1]र्जल्पितम् ।
ध्वान्तोन्मुक्तविगाढकुन्तलभरैराच्छाद्य सद्यो वपुः
सूर्याचन्द्रमसौ निमील्य च दृशौ विश्वश्रिया च स्थितम् ॥१०९॥
तेजोभावमयं स्वयं स विदधे विश्वं तु धाराधरो
धाराभिर्जलधीबभूव जगतो शब्दानुमेयं नभः ।
सान्द्रासारवनं विलङ्घ्य सुहृदा संधुक्ष्य नीपे क्षणं
तेजः स्वान्तपुटेषु पान्थसुदृशां वातेन संदीप्यते ॥११०॥
उलङ्घ्यापि सुतुङ्गभूमिमभितो वर्त्मावरोधाहित-
क्रोधादेव तनून्निपात्य बहुधा कान्तारपारंगताः ।

की जैसी शोभावाले लहरी रूप धाराओंसे पूजित सेवित यह जल बढ़ रहे हैं इसी लज्जासे अगस्त्यजीने अपना उदय नष्ट करके अस्त होगये ॥१०७॥

अनुवाद—बादलोंके अत्यन्त बोझसे यह आकाश न टूट जाय इसीलिये मानों ब्रह्माने धारा रूप स्तम्भ समूह बनाया है ॥१०८॥

अनुवाद—जलसे आकाश भीग गया है चारों ओर लम्बे चौड़े जलयुक्त बादल व्यक्त हो रहे हैं कदम्ब हँस रहे हैं, पक्षी बोल रहे हैं, अन्धकार रूप खुले घने केशपाशसे शरीर ढककर सूर्य-चन्द्र रूप आँखोंको बन्द करके विश्वकी श्री-स्थित है ' वर्षावर्णन—भागवतके १० स्कन्धके २० वें अध्यायमें वर्णित है ॥१०९॥

अनुवाद—मेघने सम्पूर्ण विश्वको स्वयं तेजके अभावसे युक्तकर दिया है, जलकी धाराओंसे सब पृथ्वी समुद्रकी तरह होगई, केवल शब्दसे ही आकाश-का अनुमान किया जाता है सान्द्रधारा युक्त जल अथवा वनको पार करके तेजका मित्र वायु थोड़ी देर कदम्ब वृक्षपर प्रकट होकर फिर पथिकोंकी स्त्रियोंके हृदय रूप पुटमें तेजको दीप्तकर रहा है । स्त्रियाँ पतियोंके प्रवाससे चिन्ताकी अग्निसे दुःखी हैं ॥११०॥

अनुवाद—नदियाँ ऊँची भूमिको पार करती हुई मार्गको रोकना रूप

(1) पक्षिभिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्वानेषु श्रुतिबद्धवीथिषु हठाद्दात्यूहधारामुचो
रागान्धा इव संदधुर्जलनिधेरध्वानमेवापगाः[1] ॥१११॥

प्रतिगिरिश[2]रणि प्रतिवनशरणि जुघूर्णिरे शबरसेना इव धरणिधरधातुधारापरिचयपटुपाटलिपटली पाटलीभूताः हिण्डीरपाण्डरवनकुसुमक्षता वंशोत्तंसादिक निखिलविभूषाः क्वचन करिकुलमाकुलयन्त्यः क्वचन च विहङ्गपरम्परां पातयन्त्यो वलदविरलबहलकोलाहला हि वाहिन्यः ॥११२॥

नदीगर्जैरुर्व्यां दिवि च घनगर्जैर्दिविषदां
मनोगर्भस्रावः समजनि मनोजस्य परितः।
हरिर्लक्ष्मीं वक्षस्यकृत वपुरर्द्धं पुररिपुः
प्रियां गर्भस्रावात्तत इव वलद्भीतिरकरोत् ॥११३॥

अहित बुराई करनेसे क्रोधके कारण अपने शरीरको छिन्न-भिन्न करके वनके पार तक पहुँची हुई कर्ण शष्कुलिमें शब्दको ध्वनित करती हुई हठसे दात्यूह (चक्रवाक) नामक जल पक्षियोंके लिये धारायें छोड़ती हुई मानों रागसे प्रेमसे अन्धी होकर अपने पति समुद्रके मार्गपर जारही हैं ["सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभेश्वसनोर्मिमान्"। भा० (१०।२०।१४) ॥१११॥

अनुवाद—प्रत्येक पर्वत श्रेणीपर, प्रत्येक वनमार्गपर, शवर सेनाकी तरह पर्वतकी धातुओंके संघर्षसे पाटलि समूहसे पाटल वर्ण जैसी होती हुई, समुद्र फेनके समान श्वेतवर्णके वनपुष्पोंसे युक्त वंशादिके भूषणों आदिसे सुसज्जित होती हुई, कहीं गज समूहको आकुलित करती हुई, कहीं पक्षियोंके समूहको गिराती हुई, अत्यन्त कोलाहल करती हुई नदियाँ घूमती जारही हैं ॥११२॥

विशेष—पर्वत शृङ्खलाओंमें आज भी नदियोंके अनेक वर्ण दिखलाई देते हैं क्योंकि विभिन्न धातुओंका मिश्रण उनमें आज भी होता है ॥११२॥

अनुवाद—पृथ्वीपर नदी गर्जनके द्वारा तथा आकाशमें वन गर्जनके द्वारा स्वर्गमें रहनेवाली स्त्रियोंका मानसिक भावनाओं द्वारा तथा भयके कारण मनकी विकृतिसे गर्भस्राव होगया है इसीलिये हरिने लक्ष्मीको तथा शङ्करजीने पार्वतीजीको हृदयसे लगा लिया है। इस गर्भस्रावके कारण प्रियाको भय-सा उत्पन्न होगया है ॥११३॥

विशेष—अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥११३॥

---

(1) नद्यः। (2) 'शरणिः पथि चावली" इत्यजयः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[1]अथ कुर्वाणं गीर्वाणपतिमनर्हणीयमुर्वीधिरं गोवर्द्धनमेव तत्रापि स्वमात्मानमेकतो नतिमुखरमुखारविन्दमन्यतो निखिलबलिभोक्तारं स्वयमुद्भवन्तं भगवन्तमनुभूय परिभूतपुरुहूतैः प्रथममाहूतास्तदनु बहूपदिष्टा गोपगोपीगवामनिष्ठाय भृशभूयिष्ठं दृष्टवन्तः प्रौढमूढवन्तश्च प्रलयप्रतिष्ठानाः घनौघनाः पवमानाश्च ॥११४॥

उत्पाद्योत्पाद्य तुङ्गोद्भटविटपिकुलं चण्डमुड्डीनयन्तः
[2]क्ष्मापृष्ठे पातयन्तः सह गृहनिवहैस्तूर्णमाचूर्णयन्तः ।
गाहन्ते गन्धवाहाः स्वनरखगपशून्गाढमुत्पीडयन्तो
वृन्दारण्यानि वृन्दार[3]करमणगिराकल्पसंकल्पभाजः ॥११५॥

दूरोड्डीननिशान्तसन्ततिहठादुद्घाटितोत्पाटितो-
द्धूतोद्भ्रान्तनितान्तचूर्णिततरुग्रामं[4] च वृन्दावनम् ।

अनुवाद—इसके पश्चात् इन्द्रको अयोग्य करते हुए, गोवर्धन-पर्वतको एक ओर नम्रतासे बोलते हुए अपने आपको दूसरी ओर सम्पूर्ण बलि ग्रहण करनेवाले स्वयम् अवतीर्ण भगवान्को विचारकर, इन्द्रको परिभव प्राप्त करानेवाले जनोंके द्वारा प्रथम बुलाये हुए पश्चात् गाप-गोपी-गौओंका अनिष्ट करनेके लिये बहुत उपदेश दियें हुए अत्यन्त वेग धारग करते हुए प्रलयकर देन वाले बादल व पवन देखे गये । ११४।।

अनुवाद—ऊँचे वृक्ष समूहको उत्पन्न करके वेगसे उड़ते हुए, पृथ्वीपर गृह समूह व वृक्षोंको गिराते हुए व चूण वनाते हुए, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिको पोड़ित करते हुए कृष्णकी कृपासे कल्प पर्यन्त अपने सङ्कल्पको पूर्ण करते हुए यह पवन वृन्दावनके आकाशमें विचर रहे हैं ॥११५॥

विशेष ४९ मरुत् हैं। ये दिति पुत्र हैं तथापि इन्द्रके कृपा-पात्र होनेसे देव बन गये। कालिदासने भी अनेक पवनोंका उल्लेख किया है ॥११५।

अनुवाद गृहकी सन्ततिके हठसे फैलाया हुआ, अत्यन्त वृक्ष समूहके विनाशको प्राप्त एवं उजड़ा हुआ वृन्दावन, दूरतक उड़ते हुए, अत्यन्त उग्र वेग-

---

(1) गोवधन धारण कथा भा० १० स्कं० २४-२५ अध्याययाः । (2) भूपृष्ठे ।
(3) वृन्दारका दैवतानि पुंसि वा देवताः स्त्रियाम्=देवाः (अ० को० १।१।९) ।
(4) तरुवृन्दम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उद्दामद्विपकूटकुट्टितसरोजन्माटवीयां दशा-
माटीदुद्यदनल्पकल्पमरुतां संघेन रंहस्वता ॥११६॥

निर्यातनिर्यदसवः पशवः पतन्ति
पुञ्जीकृताः क्वचन कुत्रचिदस्तसङ्गाः ।
गोप्यः क्वचित्क्वचन गोपगणाश्च वाता-
ज्जाता लता इव नदीरय[1]सन्निपाताः ॥११७॥

इन्द्रमानभङ्ग

हरिर्दृष्ट्वा + + ममरपतिचेष्टामुपहसन्
धुनानो मूर्धानं ध्वनितवदनाम्भोजकुहरः ।
उदञ्चद्दोर्दण्डं विततमसितच्छत्रमभितो
हठात्तेषामूर्ध्वं द्रुतमकृत गोवर्द्धनमहो ॥११८॥

वान् प्रलय कालके वायु समुदायके साथ बड़े दिग्गज समूह द्वारा नष्ट किये हुए कमल समूह तथा उजड़ी हुई वनकी दशाका अनुभवकर रहा था ॥११६॥

विशेष—उत्प्रेक्षालङ्कार है ॥११६॥

अनुवाद—किसीके प्राण निकल गये, और किसीके निकल रहे हैं, ऐसे पशु गिर रहे हैं, कहीं पशु इकट्ठे हैं, और कहीं पर उनका साथ छूट गया है, कहीं पर गोपियाँ तथा कहीं गोप वायुसे नदीके वेगमें गिरती हुई लताओंकी तरह नदी वेगमें गिर गये हैं ।।११७॥

विशेष—प्रलयकालीन वर्षामें पशुओंकी ऐसी दशा स्वाभाविक है ॥११७

इन्द्रमान-भङ्ग

अनुवाद—हरिने इन्द्रकी चेष्टाको देखकर हँसते हुए तथा सिर हिलाते हुए और मुख-कमलको ध्वनित करते हुए भुजदण्डोंको उछालते हुए और विस्तृत 'कृष्ण छत्र' की तरह उन सब गोप-गोपियोंके ऊपर गोवर्धन पर्वतको शीघ्र उठा लिया ॥११८॥

विशेष—'छत्राकमिव बालकः'' भागवतमें वर्णन आता है कि श्रीकृष्णने गोवर्धनको छत्र-सा बना लिया ।।११८॥

(1) रयः=वेगः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गिरिद्वारा गर्वं मुररिपुरखर्वं गिरिभिदो
जिहीर्षुर्दोः पक्षं गिरिमकृत रूक्षेक्षणरुचिः।
स मेने नो जम्भच्छिदमपि न जम्भच्छिदशनीन्
रिपूणां हि प्रोत्थापनमिह सतां लाघवविधिः ॥११९॥

दोर्दण्डनालदण्डं कमलमखण्डं स भूधरो भर्त्तुः।
यदुपरि जलदकदम्बं बलदवलम्बो बभूव रोलम्बः[1] ॥१२०॥

गोवर्धनधारणम्

उत्पाट्यैककरेण कुड्मलमिवाम्भोजस्य हेलावशा-
द्गेहीकुर्वति पर्वतेन्द्रमचिराद्दोः स्तंभसंभावनैः।
किं कुर्वीत पुरन्दरो हरिभुजच्छायाभिरायोजिताः
सर्वे निर्वृतिमापिरे पशुगणा गोपाश्च गोपाङ्गनाः ॥१२१॥

अनुवाद—मुररिपु कृष्णने पर्वतके द्वारा बढ़े हुए इन्द्रके अभिमानको नष्ट करनेकी इच्छासे, नेत्रोंकी कान्तिको रुक्ष करके भुजाओंसे पर्वतको उठा लिया। उन्होंने इन्द्रको तथा जम्भ छेदन करनेवाले वज्रको कुछ नहीं माना, शत्रुओंका इस प्रकार लाघव विधान करना सज्जनोंके लिए उनका उठाना ही है ॥११९॥

अनुवाद—कृष्णके भुजदण्ड 'बालदण्ड' के समान तथा वह पहाड़ 'कमल' समान था, उसके ऊपर मेघ समूह एक बहुत बड़े 'भ्रमर' समूहके समान था ॥१२०॥

विशेष—सुन्दर उत्प्रेक्षा है ॥१२०॥

गोवर्धन-धारण

अनुवाद—एक हाथसे कमलकी कलिकाकी तरह खेलमें ही पर्वतराजको उखाड़कर भुजारूपी स्तम्भोंके सहारे स्थित करके घर जैसा बना लेनेपर फिर इन्द्र क्या कर सकते हैं ? उस समय हरिकी भुजाओं द्वारा रक्षित किए हुए गोप-गोपियाँ तथा पशु सभी सन्तुष्ट होगए ॥१२१॥

---

(1) रोलम्बः—भ्रमर। रो+लम्ब+अच् (अमर कोषमें यह शब्द नहीं है)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ससप्तसप्ता[1]निलसप्तसिन्धुघनेन सप्तर्षिनुतः सहाद्रिम् ।
स सप्तवर्षो दिवसानि सप्त बभार लोकामुमुहुर्द्विसप्त ॥१२२

निर्यत्प्राणेषु तिर्यग्गतिर्विधुरजगत्प्राणवर्गेषु दुर्गो
मोघीभूतेषु मेघेष्वचिरकवलितो द्रागन्तसप्तार्णवेषु ।
कुण्ठे वैकुण्ठबाहु स्थिरशिखरितराद्भिन्न जम्भारिदम्भे
दम्भोलौ जम्भभेदी स्वयमपि सुरभिः सा भुवीहां चकार ॥१२३

निपपात करक्रीडा कन्दुकीकृतभूधरे ।
दृग्राजीन्द्रस्य राजीवराजीव वनमालिनि ॥१२४॥

माधवस्य सविधेऽस्य सम्भ्रमान्मुद्रिता सुरपतेः समं दृशः ।
चन्द्रिकोल्लसित चन्द्रसन्निधौ मुद्रणैव गतिरम्बु जन्मनाम् ॥१२५

तरङ्गैरान्दोलो भवति जलधेरेव जलधि-
र्न तान्मुञ्चत्येभ्यः प्रभुवर न वा कुप्यति मनाक् ।
चिदानन्दाम्भोधेर्जगदमितविद्ब्रह्म मुरजि-
त्तदस्मद्रक्षाणां प्रतिफलति पक्षः प्रतिपलम् ।१२६॥

अनुवाद—सात वायु, सात समुद्र व बादलोंके साथ पर्वतके साथ सात ऋषियोंके द्वारा स्तुति किए हुए उन सात वर्षके भगवान् कृष्णने सात दिन तक पर्वतको धारण किया जिससे लोक मुग्ध होगए ॥१२२॥

अनुवाद—उस समय प्राणोंके निकलते हुए तथा वक्रगतिसे दुःखी संसार के प्राणोंके होनेपर वह पर्वत उठाया तब सभी मेघ निष्फल होगए, जिन्होंने शीघ्र ही सातों समुद्रोंको कवलितकर लिया था। श्रीकृष्णकी बाहुपर पर्वतके स्थिर होनेके कारण इन्द्रका पाखण्ड कुण्ठित होगया था, वज्र निष्फल होगया, तब स्वयं इन्द्रने तथा कामधेनुने पृथ्वीपर आनेकी इच्छाकी ॥१२३॥

अनुवाद—खेलकी गेंदकी तरह पर्वतको उठा लेनेपर इन्द्रकी दृष्टि कमलकी पंक्तिकी तरह वनमाली कृष्णके ऊपर पड़ी ॥१२४॥

अनुवाद—माधवके पास इस इन्द्रकी दृष्टि एक साथ सम्भ्रमसे मुद्रित होगई, चाँदनीसे शोभित चन्द्रमाके पास कमलोंका बन्द होना हो उचित है ॥१२५

अनुवाद - तरङ्गोंसे समुद्रका आन्दोलन होता है परन्तु फिर भी समुद्र उन तरङ्गोंको नहीं छोड़ता और हे प्रभुवर उनपर तनिक भी कुपित नहीं होता

---

(1) ४९ पवना ७×७=४९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषं विश्वद्वेषि त्रिदश[1]सुखसाध्वीमपि सुधां
दधात्यर्चिश्चन्द्रं दहनमपि चण्डीपतिरधात् ।
धरा धत्ते तुल्यं लघुतृणममूल्यं तरुमहो
प्रभुणामेतद्धि व्रतमिव समग्रेषु समता ॥१२७॥
अभारि भारश्चिरमस्य साधु कर्पूरपूरैरपि साध्वदीपि ।
सहस्रमक्ष्णां त्वयि यद्विगाह्य स्वाराज्य साम्राज्यमधः करोति ॥१२८

व्रजगमनम्

सुगीतं गन्धर्वैर्नटितमपि विद्याधर नटै-
र्विचित्रैर्वादित्रैर्नदितमभितो दुन्दुभिमुखैः ।
गवामिन्द्रं सिक्त्वा सुरभिपयसेन्द्रः ससुरभिः
स भूयः स्वर्भेजे भगवदनुभावस्मृति परः ॥१२९॥

चित् आनन्दके समुद्र आपसे यह ससार उत्पन्न है आप अमित वित्, सर्वज्ञ, ब्रह्म, मुरजित हैं, हमारी रक्षाका पक्ष आपके ऊपर प्रतिक्षण स्थित है ॥१२६॥

अनुवाद—विष विश्वका द्वेषी है, सुधा देवताओंको भी सुख देनेवाली है, चन्द्रकी किरण कालिमा रूपसे विषको तथा चन्द्रमाको दोनोंको समान रूपसे धारण करतें हैं। पृथ्वी, लघु, तृण तथा वृक्ष दोनोंको समान रूपसे धारण करती है सबमें समानता यही प्रभुओंका व्रत है ।१२७॥

विशेष—गीतामें श्रीकृष्णने कहा है—"न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः" ॥

अनुवाद—इसका भार इन्होंने बहुत दिन तक धारण किया, कपूर समूह की तरह अच्छो तरह सुन्दर प्रकाश किया यह मेरे सहस्र नेत्र आपमें निविष्ट होकर स्वराट् पदको भी आज नीचाकर रहे हैं ॥१२८॥

व्रजको जाना

अनुवाद—उस समय गन्धर्वोंने गाना गाया, विद्याधर और नटों ने नाट्य किया दुन्दुभि आदि विभिन्न वाजोंने चारों ओर बाजा बजाया तथा भगवान् कृष्णका कामधेनुके साथ सुरभिके दुग्धसे अभिषेक किया फिर वह इन्द्र कृष्णके प्रतापका स्मरण करता हुआ स्वर्गको चला गया ॥१२९॥

विशेष—भागवतमें—श्रीकृष्णका अभिषेक किया गया और उनका नाम गोविन्द रखा ।'१२९॥

---

(1) त्रिदश=देवः। "अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधा सुराः" । अ० को० १।१.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिशो दृष्ट्वा स्पष्टा मिहिर मनतिक्लिष्टमहसं
पुरस्तादाभोरा निरगुरथ गावोऽथ वनिताः ।
मुरारातेर्माया पुनरपि निरायाममकरो-
त्तथा तत्तद्वेश्म द्रुमकुलमविस्मेर कुसुमम् ॥१३०॥

आदौ प्रान्तमधाद्ह्रदान्तिकतटे पश्चात्स्वयं चंक्रमा-
द्धस्ताद्धस्तमसम्भ्रमः शिखरिणं संचारयन्सञ्चरन् ।
तस्मिन्नेव पदे तथैव निदधे भूयस्तमस्तश्रमः[1]
कः प्रत्येतु शिशुर्बभार स गिरिं सोप्युद्धतो भूधरः ॥१३१॥

गोपनन्द-संवादः

अथ गोवर्द्धन धरणि धरोद्धरण धुरीणावधाना नानाभोर सुधीरा-मधुरिम धाराधोरणीधामन्यनतीत सप्तहायने मधुसूदने कोऽयमलौकिकाचारकारीति कस्मादेवं विधोऽस्मासु जन्मधारोति बहुधा संदेह सन्दोहमावहन्तो नन्दोपकण्ठमुत्कण्ठातरलधियोऽधिगत्य पप्रच्छुरु[2]त्सुकाः सर्वे ॥१३२॥

अनुवाद—दिशाओंको स्वच्छ तथा स्वच्छ किरणोंवाला देखकर गोप-गोपियाँ तथा गौयें सब आगे निकल आईं, मुरशत्रु कृष्णकी मायाने सब ठीक कर दिया तथा प्रत्येक गृह और विकसित पुष्पवाले वृक्षोंको सबको ठीक कर दिया ॥

विशेष—वर्षाके कारण अनेक भवन नष्ट होगए थे और वनके वृक्ष भी किन्तु भगवान्की मायाने उन्हें पूर्ववत् कर दिया ॥१३०॥

अनुवाद—आदिमें ह्लदके निकट तटपर स्थान प्राप्त किया, पीछे संभ्रम शून्य होकर घूमते हुए एक हाथसे पर्वतको धारण किया, इस प्रकार सञ्चरण करते हुए तथा सबको संचरण कराते हुए श्रम रहित होकर गोवर्धन पर्वतको धारण किया यह कौन विश्वास करेगा कि एक बालकने पर्वतको उठाया, वह पहाड़ भी इतना बड़ा और विशाल था ॥१३१॥

अनुवाद—तब गोवर्धन पर्वतके उठानेमें समर्थ सावधान अनेक आभीर सुधीर मधुरताकी पवित्र धाराके धाम सात वर्षसे कम अवस्थावाले मधुसूदनमें इस प्रकारका सन्देह रखते थे कि यह अलौकिक आचरण करनेवाला कौन है, किस कारणसे हम लोगोंमें इसने जन्म धारण किया इस प्रकार बहुत सन्देह करते

---

(1) गतश्रमः। (2) भागवत १० स्कन्ध २६ अध्याये कथेयम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अयि खलु न कदाचिदाचरितं कैरपि क्वचिदपि न करिष्यते चेदृशमलोकलक्षितं कर्म्म, श्रुतमपि न सुरेषु केष्वपि क्षिति धरण-कुतूहलं क्वापीति नन्द ? जगदानन्दने तव नन्दने तनोति मनोऽतिशय-संशय प्रचयमिति, निखिलव्रजकुलवचनावधानधूयमानमूर्द्धा मूर्द्धाति-वृद्ध गर्गानुभणितमनुसस्मार ।।१३३।।

गर्गाचार्यवचनकथनम्

तदेव चाह सर्वस्मै सकलाभीरकुल - सार्वभौमो यशोदारमणः । आभीराः? शृणुत यदाह भूतभविष्यद् वर्त्तमानानामर्थानां साक्षात्कर्त्ता दाक्षायणीभर्त्तेव मुनिगर्वमाननीयो गर्गः ।।१३४।।

प्रेरितो वसुदेवेन देवेनेवानुगृह्णता ।
द्रष्टुमिष्टमहं नन्द ! तव नन्दनमागतः ।।१३५।।
अयमाद्यो हि देवानामनवद्यतया तव ।
वंशस्याभून्महोत्तंसो हंसः[1] पूर्वगिरे[2]रिव ।।१३६।।

हुए नन्दके पास आकर उत्कण्ठासे चञ्चल बुद्धिवाले तथा उत्सुक होकर सबने पूछा ।।१३२।।

अनुवाद—अयि ! कभी किसीने ऐसा आचरण नहीं किया और कहीं पर भी लोकमें नहीं देखा हुआ ऐसा कर्म कोई नहीं करेगा और किन्हीं देवताओंमें भी ऐसा पर्वतको उठानेवाला कुतूहल जनक कार्य नहीं सुना । हे नन्द ! जगत्को आनन्द देनेवाले तुम्हारे पुत्रमें मन अत्यन्त संशय धारण करता है, यह सब व्रज-वासियोंके वचनोंको सुनकर तथा सिर हिलाते हुए मूर्धन्य शिरोमणि अतिवृद्ध गर्गके वचनोंका स्मरण किया ।।१३३।।

गर्गाचार्यके वचनोंका वर्णन

अनुवाद—तब सकल गोपकुलके अधीश्वर यशोदा रमण श्रीनन्दजीने यही सबसे कहा—हे आभीरो सुनो, जो भूत वर्त्तमान और भविष्यको साक्षात् करनेवाले दाक्षायणीके भर्त्ता मुनियोंके माननीय गर्गजीने कहा है ।१३४।।

अनुवाद—अनुग्रह करते हुए देव की तरह वसुदेवका भेजा हुआ हे नन्द! अपने इष्टदेव, तुम्हारे पुत्रको मैं देखने आया हूं ।।१३५।।

अनुवाद—ये श्रेष्ठ होनेके कारण देवताओंमें सर्वप्रथम हैं और पूर्वाचल

---

(1) सूर्यः । (2) उदय पर्वतस्य ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधनीयमनेनाधिबाधनं शतधा तव ।
अस्मिञ्जाते जगज्जातमुज्ज्वलं + विधाविव ।।१३७।।
अयं भूयोभिराभीर-कुलभूषणभाषितैः ।
अस्य बालस्य नासाध्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।।१३८।।
वचोभिस्तेजोभिस्तनुभिरपि येऽमुं तनुभृतो[1]
भजन्ते तानेषोऽप्यनुभजति तैस्तैस्त्रिभिरपि ।
त्रिभिस्तैर्ये वैरं विदधति विधत्ते पुनरसौ
त्रिभिर्वैरं तेषां त्रिभुवनपतीनां किमपरे ।।१३९।।

इदमभिधाय धीरधोरणी शिरोमणौविरमति गर्गमुनौ निगदित-मिदमादरान्मया तत्पदारविन्देषु । स्वामिन्नस्माकमकस्मान्निधिरिव विधिनानुकूलेनानीय घटितोऽसि यत्तदप्येतत्तयोरेवकृतयशोदारोहिणी-गर्भावरोहणयोरनुभावोऽनुभूयते भूयान् ।।१४०।।

के हंस अथवा सूर्यके समान तुम्हारे वंशके महा अलङ्कार भूत हैं ।।१३६।।

अनुवाद—इनके द्वारा सैंकड़ों प्रकारकी तुम्हारी चिन्ताओंका विनाश होगा । चन्द्रमाके समान इनके उत्पन्न होनेपर जगत् उज्ज्वल होगया । (इस श्लोक में एक अक्षर नहीं है) ।।१३७।।

अनुवाद—आभीर कुल भूषण इस बालकके अनेक उपदेशोंसे संसार उज्ज्वल होगा, तीनों लोकोंमें इस बालकके लिये कुछ असाध्य नहीं है ।। १३८।।

विशेष—गर्गाचार्यका संकेत श्रीकृष्णके परम उपदेश गीताके सम्बन्धमें है ।।१३८।।

अनुवाद—जो शरीरधारी जन वचनसे, तेजसे और शरीरसे इसका भजन करेंगे, यह बालक भी वचन, तेज, शरीरसे उनकी सहायता करेगा तथा जो वचन, तेज, शरीरसे इससे वैर करेगा चाहे वह त्रिलोकका स्वामी क्यों न हो औरोंकी तो बात ही क्या ।।१३९।।

अनुवाद—यह कहकर धीर शिरोमणि मुनिवर गर्गजीके मौन होनेपर मैंने बड़े आदरसे गर्गजीके चरण कमलोंमें कहा - स्वामिन् ! हमारी निधिकी तरह अकस्मात् अनुकूल विधाताने आपको लाकर हमसे मिलाया है, यह भी मैं

---

(1) शरीर धारिणः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वाहं वनचरो मूढः क्व यूयं गूढदर्शिनः ।
क्व भाग्यभोग्या निधयः क्व दीनः कणभिक्षणः ॥१४१॥
मुकुरेणेव दूरस्थः पुरस्थेन दिवाकरः ।
अमुनैव कुमारेण भवान्मे सुलभीकृतः ॥१४२॥
अमुनैव सहायेन मया त्वमनुभूयसे ।
अलक्ष्याण्यपि लक्ष्यन्ते चक्षुषा ह्युपचक्षुषा ॥१४३॥

यद्यस्मद्भाग्यवशादनायासादुपस्थापितोऽसि विधिना तद्विधिबोधितेन विधिना मम च वसुदेवस्य च सुतयोरेतयोः समुचितनामकरणसंस्कारानुग्रहकारी भवितुमर्हसीति किमधिकमभिधास्ये सकलार्थसार्थ वित्तमस्याग्रे इति मदनुवर्णितमाकर्ण्य वर्णानां गुरुराकर्णपलितोऽपि तरुण इव वसुदेवाभिप्रायममायमुद्भाव्य भावयामास तत्तथा सर्वम्, मुनिरनयोस्तु नाम कर्त्तुकामः कामयामपर्यन्तमन्तमन्तश्चिन्तयामास चाह चास्मभ्यम् । अहो किं नामधेयमभिधेयमस्माभिरनन्तजन्मकर्मगुणाभिधानयोरनयोः ॥१४४॥

यशोदा रोहिणीके गर्भसे अवतार लेनेवाले कृष्ण-बलरामकी ही बहुत बड़ी कृपाका अनुभव कर रहा हूँ ॥१४०॥

अनुवाद—नन्दने यह भी कहा कि—"कहाँ मैं वनमें रहनेवाला मूर्ख और कहाँ आप जैसे गूढदर्शी, कहाँ तो भाग्यसे प्राप्त होनेवाली निधि और कहाँ कण माँगनेवाला दीन भिक्षुक ॥१४१॥

अनुवाद--दूर स्थित वस्तुको दर्पण प्रतिबिम्ब करके समीप कर देता है और जैसे सूर्य प्रकाशके द्वारा सबको चमका देता है उसी प्रकार इस बालकने आपको मुझसे मिला दिया ॥१४२।

अनुवाद—इसीकी सहायतासे मैं आपका दर्शनकर रहा हूँ आँख तथा उपनेत्र (चश्मा) की सहायतासे अलक्ष्य वस्तु भी दीख जाती है ॥१४३॥

अनुवाद – यदि हमारे भाग्यसे अकस्मात् ही विधाताने आपको भेज दिया है तो शास्त्रानुसार विधिसे मेरे और वसुदेवके इन दोनों पुत्रोंका नामकरण-संस्कार करनेकी कृपा कीजिये, अधिक हम और क्या कहें। आप सब बातोंको जानने वालोंमें श्रेष्ठ हैं, इस मेरी प्रार्थनाको सुनकर वर्णोंके गुरु कर्ण तक धवल केशवाले वृद्ध भी तरुणकी तरह छलशून्य वसुदेवके अभिप्रायको समझकर उसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तत्किं नाम यदस्य नामितगुणस्यासीदसीमं यश–
स्तन्वानैर्गुणकर्म्मजन्मभिरपि प्रख्यापितं सर्वतः ।
शुभ्रःशुभ्रतयाऽरुणोऽरुणतया पीतश्च पीतश्रिया
कृष्णः कृष्णतयेव सम्प्रति सदा नाम्नाऽयमाम्नाय्यताम् ।।१४५।।

अनन्तत्वादनन्तस्य नामानन्त्यमुदीरितम् ।
तथापि बलभद्रोऽयं बलभद्रतयोच्यते ।।१४६।।

इति मनसि समातिजागरूकं भणितमुदेति मुदे मुनीश्वरेण ।
बहिरपिनिरगादगाधमोहो मम तनयोऽयमहं पितेति सद्यः ।।१४७

किमधिकमाचक्षते भवन्तो हि विचक्षणा दीर्घदर्शिनः सर्वे ।।१४८।।

[1]कपालमालीकृतभूरिकम्रा (?) तडिल्लतालोहितलोलजिह्वा ।
[2]मघोनि मोघे मलिनोऽग्रघोषा वर्षानिशाचर्यपि निर्जगाम ।।१४९।।

प्रकार उसको विचार करने लगे। गर्गमुनिने इन दोनोंका नामकरण करनेकी इच्छासे बहुत देर तक हृदयमें विचार किया और फिर मुझसे कहा—अनन्त जन्म कर्म गुण और नामवाले इन दोनोंका हम क्या नाम रखें ।१४४।।

अनुवाद—नामके अनुकूल गुणवाले इनका क्या नाम रक्खा जाय, विस्तृत गुण, कर्म और जन्मसे इनका असीम यश प्रसिद्ध है । यह सत्वयुगमें शुभ्र होनेसे शुभ्र, त्रेतामें अरुणताके कारण अरुण द्वापरमें पीतशोभाके कारण पीत तथा कलियुगमें कृष्ण शोभाके कारण कृष्ण हैं, ये नामसे कृष्ण कहे जायेंगे ।।१४५।।

अनुवाद—अनन्त होनेके कारण अनन्तके नाम अनन्त हैं तो भी अधिक बल होनेके कारण इनका नाम बलभद्र कहा जायगा ।।१४६।।

अनुवाद—इस प्रकार मनमें अति जागरूक मुनीश्वरका कथन प्रसन्नताके लिये उदित हुआ । इस प्रकार अगाध मोह भी बाहर आया कि यह मेरा लड़का है और मैं इसका पिता हूँ ।।१४७।।

अनुवाद—अधिक क्या कहा जाय आप सब लोग दीर्घदर्शी और विद्वान् हैं ।।१४८।।

अनुवाद—कपाल मालाके कारण जो बहुत कामुक है, बिजली-रूपी लता ही जिसकी लाल-लाल जिह्वा है और इन्द्रका प्रयास निष्फल होनेपर अर्थात्

---

(1) शिवः "कपालमालाङ्कितशेखराय" ।
(2) इन्द्रे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ पौगण्डे वयसि[1] वर्त्तमानो प्रवर्त्तमानयौवन इव ललितगतिमाधुरीमधुरावलोकचातुरीमृदुहासितमनोभिरामभ्रूनिकामताण्डवादिभिराभीरसुन्दरीणां गतिवचनमनांसि समसमयमेव हरन्विहरन्नपि सह सहचराभीरपरम्पराभिरटवीभुवमवगाह्य शरदभिनह्यमानशोभाभूमानमालोकयन्नाकर्णकयन्नपि सखिलोकं वर्णयामास जलदसवर्णाकारो हरिर्बहुकालम् ॥१५०॥

लसदिन्दुसुन्दरमुखी सदम्बरा धवलाभमङ्गलघना वधूरिव ।
जितनारदद्युतिरभिन्नपारदा शरदागता सपदि शारदाच्छविः ॥१५१॥
प्रतिवारि वारिजमवारषट्पदं प्रतिशाखिमौलिकुसुमालिकौशलम् ।
प्रतिजन्तुमानसमदभ्रकौतुकं शरदाविरास रभसाय कुर्वती ॥१५२॥

वर्षा कम होनेपर, जिसकी मलयुक्त स्थानपर आगे घोष, छोटी कुटी है अथवा जिसका घोष, शब्द भयङ्कर है ऐसी वर्षारूपी निशाचरी समाप्त होगई ॥१४९॥

अनुवाद—इसके अनन्तर पौगण्ड अवस्थामें रहते हुए युवाकी तरह ललित गति तथा सुन्दरतापूर्वक सौम्य दृष्टि चतुरता मीठी मुस्कान मनको सुन्दर लगनेवाला भृकुटिका संचालन ताण्डवादिसे गोपियोंकी गति वाणी और मनको एक साथ वशमें करते हुए, विहार करते हुए सहचर गाप समूहके साथ वन भूमिमें जाकर शरद-ऋतुकी सुन्दर शोभाको देखते हुए और सुनते हुए भी मेघके समान आकारवाले हरिने बहुत देर तक अपने मित्रोंसे वर्णन किया ॥१५०॥

अनुवाद—शोभित चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली सुन्दर वस्त्रवाली और आभावाली तथा अति मङ्गलकारिणी वधूकी तरह चन्द्रमासे शोभित आकाशको सुन्दर करनेवाली बादलोंको श्वेत और मङ्गलदायक करती हुई, नारदकी श्वेत आभासे भी सुन्दर पारदकी तरह श्वेत सरस्वतीको शोभाके समान शरद ऋतु आगई ॥१५१॥

विशेष—भागवतमें शरद-ऋतुका वर्णन २० वें अध्यायमें है, गोवर्धन पूजा २४ वें अध्यायमें है ॥१५१॥

अनुवाद—प्रत्येक जल स्थानोंपर कमलोंमें भ्रमर वेगसे घूम रहे थे प्रत्येक वृक्षके शिखरपर विकसित पुष्प समूह था, प्रत्येक प्राणीके मनमें अति कौतुक करती हुई वेग बढ़ाती हुई शरद ऋतु आगई ॥१५२॥

---

(1) पञ्चमवर्षानन्तरम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सह वारिजैरजनि वारि निर्मलं
सह वारिदैरभवदर्जुनं[1] नभः ।
सह ताण्डवैस्तडिदगाच्छिखण्डिनां
सह तारया हि विरराज चन्द्रमाः ।।१५३।।

मलिनस्य भूरितरपङ्ककारिणः परिवर्द्धमानतमसः पयोमुचः ।
परिणामनिर्मलतमत्वमुत्तमं तदनन्तसेवनफलं तु मन्महे ।।१५४।।

सह संबभूव सुरभूपकार्मुकं तदनश्यदस्य तडितोऽपि सुभ्रुवः ।
परिपाण्डुरोऽपि जरसाप्यजीवनः परिहीयते न पुनराशयानघः ।।१५५

पद्मालंकृतमम्बु हंसकमनोहारि क्ष्मामण्डलं
कुर्वाणः सुमनः प्रसादमुदितं सर्वं समन्ताद्वनम् ।
शुभ्रांशुस्फुरदातपत्रलसितो नक्षत्रमालाञ्चित-
श्चञ्चच्चारुसिताभ्रचामरचयो भ्रेजे शरद्भूपतिः ।।१५६।।

अनुवाद—कमलोंके साथही जल भी निमल होगया। [शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः । भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योग निषेवया ।। भागवत १०।२०।२३] बादलोंके साथही आकाश भी स्वच्छ होगया । मयूरोंके नृत्यके साथ ही बिजली भी चली गई । तारागणोंके साथ चन्द्रमा शोभित होने लगा ।।१५३।।

अनुवाद—मलिन और अति कीचड़वाले अन्धकारकर देनेवाले बादलोंका अन्तमें अत्यन्त निर्मल और उत्तम होना यह अनन्त भगवान् कृष्णके सेवनका फल है [शनैः शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामंचवीरुधः । भा० १०।२०।३९] यह मैं मानता हूँ ।।१५४।।

अनुवाद—इन्द्रका धनुष गया, साथही राजाओंका धनुष विजयके लिये उठा, इसी प्रकार बिजलीका धनुष गया और कामिनीका धनुष उठा क्योंकि वार्धक्यसे श्वेत जीवन शून्य भी निष्पाप मनुष्य आशासे हीन नहीं होता ।।१५५।।

अनुवाद—पद्म-कमलोंसे अथवा पद्मा लक्ष्मीसे जलको शोभित करती हुई पृथ्वी मण्डलको हंसक=हंस अथवा घुंघरूके शब्दसे सुन्दर बनाती हुई सुमन=फूल अथवा सुन्दर मनकी प्रसन्नतासे उदित चारों ओर वनको बनाती हुई शुभ्र अंशु किरण अथवा शुभ्रांशु चन्द्रमारूपी छत्रसे शोभित नक्षत्ररूपी

---

(1) अर्जुनम्=श्वेतम् । —अवदातः सितो गौरोवलक्षो धवलोऽर्जुनः ।
(अ० को० १।५।१३)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

[1]सरघा बभूव कुसुमेषु भूपते-
र्वनमम्बुसंभृतनवप्रसूनतः ।
यमिनो मनोऽपि लभते स्म लक्ष्यतां
शरदागमे जगदिदं जिगीषतः ॥१५७॥

पुनरुद्बभूव विदितः स कुम्भभूः[2] परिपीय येन जलधिस्तनूकृतः[3] ।
इति भीतिभारहतवेगडम्बरास्तनिमानमापुरतितापमापगाः ॥१५८॥

गर्भं दधुः प्रावृषि सिन्धुयोगान्नद्यो भृशं भावितपार्श्ववृद्धिम् ।
प्रसूय पद्मानि पयो दधानाः पुनश्चतेभ्यस्तनिमानमापुः ॥१५९॥

पटुचञ्चरीककपटेन मेदिनी स्फुटपुण्डरीकमिषतोऽपि दीर्घिका[4] ।
सहसा प्रसार्य्य नयनानि सर्वतः शरदुत्सवं परमपश्यदुत्सुका ॥१६०॥

मालासे पूजित चमकती हुई सुन्दर सफेद बादलरूपी चँवर समूहवाली शरद-ऋतु राजाकी तरह शोभित होने लगी ॥१५६॥

अनुवाद—कामदेवरूपी राजाके जलमें उत्पन्न नवीन कमलोंसे मधुभक्षिका रूप वन समूह होगये हैं। इस जगत्को जीतनेके इच्छुक यतियोंके मन भी शरद-ऋतुमें कामदेवके लक्ष्य बन गये हैं ॥१५७॥

अनुवाद—अब वे अगस्त्यजी फिर उत्पन्न होगये जिन्होंने समुद्रको पीकर निर्बलकर दिया था, ["पीतोऽसौ कलशोद्भवेन मुनिना" अगस्त्यने समुद्र-पान किया था। (सु० भा०)] इस भयके भारसे वेग रहित होकर नदियाँ अति दुःखी और तनिमाको प्राप्त होगई ॥१५८।

अनुवाद—वर्षाकालमें समुद्रसे मिलकर नदियोंने गर्भ धारण करके कुक्षिकी वृद्धिको प्राप्त किया, कमलोंको उत्पन्न करके और उनके लिए जल या दूध धारण करती हुई निर्बलताको प्राप्त हुई ॥१५९॥

विशेष—नवीन उत्प्रेक्षा है ॥१५९॥

अनुवाद—पटु भ्रमरके बहाने पृथ्वी तथा विकसित कमलोंके बहाने वापी एक साथ आँखें खोलकर उत्सुक होकर सब ओर शरदका उत्सव देख रहीं हैं ॥१६०॥

---

(1) सरघा मधुमक्षिका। (2) अगस्त्यः। (3) स्वल्पीकृतः।
(4) वापी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तिष्ठन्तो गूढभावाः कुसुमितविपिने व्यक्तसंचारवन्तः
पान्थान्निष्पातयन्तः क्वचिदतनुशरैर्गाढमापीडयन्तः ।
पद्मिन्याः पद्मकोशं भ्रमरपरिजनारब्धकोलाहलद्रा-
गाक्कृष्योद्घाटयन्ते क्वचन परममी दस्यवो गन्धवाहाः ॥१६१॥
पस्पन्दे नारविन्दं विहरति सरसीशीकराबद्धसङ्गः
कुर्वन्नामूलमुन्मूलनमयमबलामानभूमीरुहाणाम् ।
स्वेदोच्छेदानुमेयो धृतिधरणिधरं चूर्णयत्येव तूर्णम्
न ज्ञातःकोऽपि वातः कमलपरिमली किं मृदुः किं कठोरः ॥१६२
रेजे राजेव राजा भगणगगनयोः शोभयालम्बिरत्न-
स्त्रक्श्रोणिच्छत्रशाली धरणिधरवरोत्तुङ्ग सिंहासनस्थः ।
साम्राज्ये साभिषेकं स्वतनयमुदधेः पश्यतो हृष्यतोऽन्त-
र्निःसीमेवानुरागप्रतिकृतिरुद्भूदस्य सन्ध्यारुणस्य ॥१६३॥
कोकं कुत्रापि कोकीं क्वचिदपि दमयन्पद्मिनी पद्मकोषं
बध्नन्द्रागदण्डयिष्यन्निव। विधुरुदगाद्वीक्ष्य तन्मित्रमस्तम् ।

अनुवाद—दस्युरूपी गन्धवाह पवन गूढभावसे छिपे रहते हुए कुसुमित वनमें स्पष्ट घूमते हुए कहीं तीव्र वाणोंके द्वारा अत्यन्त पीड़ित करके यात्रियोंको गिरा देते हुए अपने परिजन भ्रमरोंके द्वारा किये हुए कोलाहलवाले पद्मिनियोंके पद्म कोशोंको बलपूर्वक खींचकर ये खिला देते हैं ॥१६१॥

अनुवाद—इस समय कमल नहीं हिलता, तालाबके सीकर सूक्ष्म जल-बिन्दुओंको साथमें लेकर स्त्रियोंके मानरूपी वृक्षोंको जड़से उखाड़ता हुआ पसीना न होनेसे जाना जाता हुआ, धृति रूपी पर्वतको तत्काल ही नष्ट कर रहा है न जाने यह कमलकी गन्धवाला वायु मृदु है या कठोर है ॥१६२॥

विशेष—रूपक अलङ्कार है ॥१६२॥

अनुवाद—यह नक्षत्र गण और आकाशकी शोभासे राजाकी तरह शोभित हो रहा है, लटकती हुई रत्नोंकी मालारूपी छत्रसे शोभित पर्वतरूपी ऊँचे सिंहासनपर बैठा हुआ साम्राज्यपर अपने पुत्रके अभिषेकको देखते हुए हृदयमें प्रसन्न होते हुए सन्ध्याके समय अरुण जैसा होते हुए इसके हृदयमें अनुराग की प्रतिमा जैसी असीम प्रसन्नता होरही है ॥१६३॥

अनुवाद—कहीं कोक और कोकीको कहीं पद्मिनीके पद्मकोष दण्ड देने-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिम्बो यस्याम्बुलम्बी जलधिमधिशयानस्य भोगीन्द्रतल्पे
भित्त्वा गम्भीरमम्भो बहिरिव विदितः कौस्तुभः कैटभारेः ॥१६४
रविरस्तमाप जगदस्तमानयज्जलमाविरास जलधेस्तमोऽमिषात् ।
इति गाढवाड[1]वशिखीव चन्द्रमाः कवलीकरोति तदुदेत्य सत्वरम् ॥१६५
अवगाह्य वारि बहुसिन्धुमध्यतो घनशोणबिन्दुरयमिन्दुकुञ्जरः ।
मृगचञ्चरीकचितगण्ड[2]मण्डलो दिवसावसानरभसा[3]दुदञ्चति ॥१६६
पुरः कुपितकामिनीवदनलोभनीयः द्युति-
स्ततः कनकदर्पणप्रणयिकान्तिभारार्पणः ।
अथ प्रबल पाण्डिमस्थगितपुण्डरीकच्छवि-
र्न वीक्षणपथे क्षणं जगति केन नीतः शशी ॥१६७॥

वालेकी तरह बन्धनमें डालते हुए चन्द्रमा मित्र=सूर्यको अस्त हुआ देखकर तत्काल निकल आया, जलमें लटकता हुआ जिसका बिम्ब ऐसा प्रतीत हुआ मानो शेष शय्यापर समुद्रमें शयन करते हुए कैटभारिकी कौस्तुभमणि गम्भीर जलका भेदनकर बाहर निकल आई हो ॥१६४॥

विशेष—उत्प्रेक्षालङ्कार है ॥१६४॥

अनुवाद – सूर्य अस्त होगया, जगत्को अस्त करते हुए समुद्रका जल अन्धकारके रूपमें बाहर आया इतनेमें गम्भीर वाडवाग्निके रूपमें चन्द्रमाने उदित होकर तत्काल उसके अन्धकार रूप जलको कवलितकर दिया ॥१६५॥

अनुवाद – यह चन्द्ररूपी हाथी घनरूपी लाल बिन्दुओंसे युक्त समुद्रमें स्नान करके मृगलाञ्छन रूप भ्रमरोंसे गण्डस्थलको शोभित किए दिवसके अवसानमें वेगसे उठ रहा है ॥१६६॥

अनुवाद—सामने ही कुपित कामिनीके समान लुभानेवाली लाल शोभावाला तथा सुवर्णके दर्पणमें कामुक व्यक्तिकी कान्तिको प्रकट करनेवाला अपनी प्रबल धवल शोभासे कमलकी छविको तिरस्कृत करनेवाला यह चन्द्रमा जगत्में क्षणभर किसने अपनी दृष्टिसे नहीं देखा ॥१६७॥

---

(1) वाडवाग्निः ।

(2) कपोलमण्डलः ।

(3) वेगात् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्भिन्नध्वान्तधारायसनिगडमसावंकुशानामभावा-
दुद्दामीभूय भीमं दिशि विदिशि तथा कानने बम्भ्रमीति ।
आरात्तारालिताम्यत्त्रिदशपरिवृतः पूर्णचन्द्रद्विपेन्द्रः
श्यामश्रीकुम्भकूटस्फुटितमदझरीसंचरच्चञ्चरीकः ॥१६८॥

पूर्णं कर्पूरपूरैरिव निचितमिव क्षीरसिन्धोरसन्धि-
प्रोद्वेल्लद्भङ्गभारैः पिहितमिव घनैश्चन्दनक्षोदपङ्कैः ।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैर्घटितमिव दधत्फुल्लमल्लीरिवासी-
त्पीयूषैरुल्लसद्भिः स्नपितमिव सुधाधामतो नाम विश्वम् ॥१६९

त्राणाय नानाविधजन्तुचेष्टामिष्टामतानीत्तिमिरं तदानीम् ।
छायाछलाच्छन्ननिजस्वरूपं तमो रुषा निघ्नति यामिनीशे[1] ॥१७०॥

साकमुल्लसति नाकनिकेतान् व्योमदिव्यतटिनीतट एषः ।
पोतपालिभिरलं कलहंसो भावली न च न वा रजनीशः ॥१७१॥

अनुवाद – यह पूर्ण चन्द्ररूपी गजेन्द्र अन्धकार समूह रूपी लौह बन्धन को नष्ट करके अंकुशके न होनेसे उद्दण्ड व भयङ्कर होकर दिशा-विदिशा तथा वनमें घूम रहा है। समीपमें तारागण रूप उतावले देवताओंसे युक्त श्याम शोभावाले कुम्भ-स्थलपर बहती हुई मदधारापर घूमते हुए भ्रमरोंसे युक्त है ॥१६८।

अनुवाद सारा विश्व मानों कर्पूर प्रवाहसे भर गया हो क्षीर-सागरकी विस्तृत लहरियोंके भङ्गसे युक्त हो अत्यन्त चन्दन चूर्णके लेपसे भरा हो, श्वेत बादलोंसे भरा हो, फूली हुई मल्लिकाको धारण करते हुए की तरह सुन्दर अमृतसे बहाये हुए की तरह चन्द्रिकासे युक्त विश्वकी उस समय यह शोभा थी ॥१६९॥

अनुवाद—उस समय अपनी रक्षाके लिये अन्धकारने अपनी अभीष्ट अनेक जन्तुओंकी जैसी चेष्टाकी क्रोधसे अन्धकारको चन्द्रमाके नष्ट करनेपर छायाके बहाने अपने स्वरूपको अन्धकार छिपा रहा था। १७०॥

अनुवाद—यह नक्षत्र पंक्ति तथा चन्द्रमा नहीं है, किन्तु आकाश रूपी दिव्य नदीके तटपर बाल समूहके साथ यह कलहंस स्वर्गमें रहनेवालोंको शोभित कर रहा है। यहाँ अपन्हुति अलङ्कार है ॥१७१॥

---

(1) चन्द्रे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तारकापतिरुदेति न ताराः किन्तु कुन्तलकिणाविलमध्यम् ।
पुष्पभासितनभःशयनीये कौसुमं रतिपतेरुपधानम् ॥१७२॥
अम्बरस्फटिकभाजन भाजः प्रोच्छलत्सलिलबिन्दव एव ।
चण्डभासि जलधौ कृतझम्पे भूधरात्समुदयन्ति न ताराः ॥१७३॥

मध्ये गवां विहरतः परिपाण्डरस्य
नीलाम्बरस्य परमस्य दधार लीलाम् ।
तारापतिः समुदितः परितः परीत-
स्तारावलिभिरसिताङ्कविरोचिताङ्कः ॥१७४॥

पीयूषद्रविणविभूतिसंभृतोऽपि क्षीराब्धिप्रथितजनुश्च शीतभानुः ।
पद्मिन्या यदहरदेष भोः सुवर्णं वैवर्ण्यं तदकृत दुर्यशः कलङ्कः ॥१७५॥

अब्धेर्धनं स्मरमहौषधमामरायु-
राप्यायनं त्रिजगतां गतिमौषधीनाम् ।

अनुवाद—यह न चन्द्रमा उदित हुआ न तारागण किन्तु पुष्पोंसे शोभित आकाश रूप शय्यापर केशोंके चिह्नसे मध्यमें कालिमायुक्त कामदेवका फूलोंका बना तकिया है, यहाँ भी अपन्हुति है "प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपन्हुतिः ॥१७२॥

अनुवाद—यह तारागण नहीं हैं, आकाशरूपी स्फटिकमणिके पात्रमें पड़े हुए, उछलकर पड़े हुए जलके बिन्दु हैं जो पर्वतसे समुद्रमें कूदकर डूबनेसे झटकेसे ऊपर उठे हैं ॥१७३॥

अनुवाद—काले चिह्नसे शोभित तथा चारों ओर तारागणोंसे युक्त उदित हुये चन्द्रमाने गौओंके मध्य घूमते हुए श्वेत वर्ण नील वस्त्रधारी बलरामजीकी शोभा प्राप्त की ॥१७४॥

विशेष—तारागण गौ हैं और चन्द्रमाका चिह्न नीलाम्बर है और वह स्वयं बलराम हैं ॥१७४॥

अनुवाद—अमृतकी विभूतिसे युक्त तथा क्षीरसागरमें जन्म ग्रहण करनेवाले चन्द्रमाने पद्मिनीके सुन्दर वर्णको नष्ट किया उसी दुर्यश रूप कलङ्कने इसका वर्ण कृष्ण कर दिया ॥१७५॥

अनुवाद—समुद्रका धन तथा कामकी औषध और देवताओंकी परम आयु तथा त्रिलोकीमें वृद्धि करनेवाली औषधमें विकास करनेवाली सुधाको

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पीयूषधामनि निधाय सुधां स वेधा
मुद्रां व्यधादिव तदङ्कमिषां तदङ्के ।।१७६।।

भ्रमद्भ्रमरमन्तरं वनभुवो नभोमण्डली--
सुधाकिरणमण्डना स्फुटितपुण्डरीकं पयः ।
प्रफुल्लकुसुमावनीसुरभिगन्धवाहा दिशा
दधाति मधुमाधुरीमधिकसाधुरीतिः शरत् ।।१७७।।

अहो बहुकालमतीतोऽपि सुरभिसमयो ह्यागत एवानुभूयते मनसा ।।१७८।।

यत्र खलु---

मूलादामौलिरूढांकुरनिकुरतया दीर्घजाग्रत्तनूजा
ध्यानस्था मौनभाजो मुनय इव वनस्था नवस्थाणवोऽपि ।
अप्रादुर्भूतपुष्पा अपि वहदलघुस्नेहधारा इवार्द्रा
रुद्राक्षाबद्धहारा इव घनसरघावर्द्धितश्रेणिबन्धाः ।।१७९।।

ब्रह्माने चन्द्रमामें रखकर मुहर लगा दी है, चन्द्रमामें उसी मुहरका यह चिह्न है ।।१७६।।

अनुवाद—मध्यमें सर्वत्र भ्रमर घूम रहे हैं ! आकाश मण्डलकी अमृतमयी किरणोंसे वनभूमि शोभित है, जलमें सुन्दर कमल खिल रहे हैं । पृथ्वीपर सुन्दर फूल खिले हुए हैं दिशाओंमें सुन्दर सुगन्ध फैल रही है । अत्यन्त सुन्दर रीति वाली शरद-ऋतु स्वच्छ मधुरता धारणकर रही है ।।१७७।।

अनुवाद—अहो, बहुत समय व्यतीत होनेपर भी वसन्त समय आ ही गया, ऐसा मनसे अनुभव होरहा है ।।१७८।।

जहाँ निश्चय ही—

अनुवाद—जड़से मस्तक तक अंकुर समूह उत्पन्न होनेके कारण बड़े-बड़े शरीरसे उत्पन्न जैसे ध्यान स्थित मौन धारण किये मुनियोंकी तरह वनमें स्थित नव वृक्ष भी शोभित हैं, पुष्प नहीं निकलनेपर भी बहती हुई बड़े प्रेमकी धाराकी तरह भीगे हुए रुद्राक्षके बने हुए हारकी तरह बहुत मधुमक्खियोंकी पंक्तियाँ शोभित हो रहीं हैं ।।१७९।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मलयविलसज्जन्मा जन्मावधिद्रुममण्डलैः
सह च सहजप्रेमक्षेमक्षमं बहु निर्ममे।
मनसि पवनः स्मारं स्मारं तदेव शनैः शनैः
कुसुमविशिखा देशाद्देशान्तरं प्रतिपद्यते ॥१८०॥

मरुत्वर्णनम्

धीरः पितापि मलयो मलयोपपन्नो
धीरस्तथैव विटपी सुरभिस्वभावः।
स्थाने तदेष मलयाचलगर्भजन्मा
यन्माधवे[1] भवति धीरतरः समीरः ॥१८१॥

कुञ्जे कुञ्जेऽभिगुञ्जद्भ्रमरवति गजभ्रान्तितो दत्तझम्पः
पुन्नागानां प्रकम्पं जनयति विकसत्केसरासङ्गपिङ्गः।
आरोहत्याद्रिशृङ्गं मनसिजरभसं वर्धयन्बम्भ्रमीति
क्षुत्क्षामो लेढि तोयं मलयगिरिदरीकेसरी गन्धवाहः ॥१८२

अनुवाद - जन्मसे लेकर वृक्ष समूहके साथ मलय पवतपर विलासपूर्ण जन्म व्यतीत करनेवाला और साथमें प्रेमके आनन्दको जिसने मनाया वह पवन, यही स्मरणकर करके धीरे-धीरे कुसुमित गलियोंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जारहा है ॥१८०॥

मरुत वर्णन

अनुवाद—पिता मलयाचल भी धीर युक्त है, इसी प्रकार वृक्ष भी सुन्दर-सुगन्ध स्वभाव वाला धीर है, यह भी उचित ही है कि बसन्त आनेपर मलयाचलके मध्यमें जन्म लेनेवाला वायु भी अत्यन्त धीर है ॥१८१॥

अनुवाद - गूँजते हुए भ्रमरवाली कुञ्ज-कुञ्जमें हाथीकी भ्रान्तिसे झम्प झटका-सा देता हुआ पवन, खिले हुए केसरके मिल जानेसे पिङ्गल वर्ण जैसा पुन्नागमें कम्प उत्पन्नकर रहा है, पर्वतके शिखरपर चढ़ रहा है, कामदेवके वेगको बढ़ाते हुए घूम रहा है, मलयाचल गुफामें सिंहकी तरह यह पवन क्षुधासे क्षाम होकर जल चाट रहा है ॥१८२॥

---

(1) वसन्ते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अलिश्रेणीवर्णनम्

अलिश्रेणीवेणी स्तवक[1] परिपीनस्तनतटे
विकासे व्यानम्रां मुकुलपुलकव्याकुलतनुः ।
स्पृशन्तं वासन्तो पवनमुपकान्त पिकरुतै-
र्धुनाना मूर्धानं न हि न हि न होति स्थगयति ॥१८३॥

क्रन्दन्मौलिन्दवृन्दं हरति सुमनसां भोगभागं परागं
माध्वीकं मुग्धधीः कः पिबति ++++++++
+++++++++++++++++++++
+++ स्मिन्प्रचलति पवने भावि को वेद कीदृक् ॥१८४॥

विभिन्नदेशनायिकानांवर्णनम्

लाटी वक्षोज शाटी स्पृशति निविशते केरलीकेलिवाटीं
कार्णाटीकर्णनाटी भवति सह नटन्माधवीकुड्मलेन ।
काञ्चीनां पुष्पकाञ्चीं भजति सुमनसा प्रस्खलत्त्यच्छधूलौ
तैलाङ्गी दृग्विभङ्गीमनुभवति मधौ गन्धवाहो मदान्धः ॥१८५

अलि श्रेणी-वर्णन

अनुवाद—वसन्त-ऋतुमें फूलनेवाली वासन्ती लता भ्रमर पंक्तिकी वेणी बनाए स्थूल पुष्प गुच्छ रूप स्तनके विकसित होनेपर नम्र होती हुई कलिका-रूप पुलकसे पूर्ण शरीरवाली, स्पर्श करते हुए उपकान्त पवनको कोयलके शब्दसे फिर धुनती हुई, न न न ऐसा कहकर पवनको स्पर्श करनेसे रोकती है ॥१८३॥

अनुवाद—भ्रमर समूहको क्रन्दन कराते हुए पुष्पोंके सुन्दर परागको हरणकर रहा है, मुग्ध बुद्धिवाला कौन मधुका पानकर रहा है ऐसे वायुके चलने पर कौन जाने क्या होगा ॥१८४॥

नोट—इस श्लोकमें द्वितीयचरणका परार्द्ध भाग व सम्पूर्ण तृतीयचरण तथा चतुर्थचरणका पूर्वार्द्ध भाग प्राप्य नहीं है ॥

विभिन्न देशोंकी नायिकाओंका वर्णन

अनुवाद—यह पवन वसन्तमें अन्धा होकर लाट देश वासिनी स्त्रीके स्तनके ऊपर शाटीका स्पर्शकर रहा है, केरल देश वासिनीकी क्रीड़ा भूमिमें घुस

(1) गुच्छः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पम्पाझम्पाप्तकम्पः शिशिरभरतया सानुकम्पान्तराणा-
मङ्के पङ्केरुहाणां विदधदनुगतिं पीतवान्माघ्य माध्वीम् ।
मत्तो मत्तालिवत्तु स्खलति करुणयोत्थापिताश्चेल्लवङ्ग्या
तामङ्गीकृत्य रङ्गो दलयति पवनः कश्चले स्नेहबन्धः ॥१८६

वृक्षवर्णनम्

दृप्यत्पुन्नागनागः परिगलितजगद्गन्ध[1]वाहोऽग्रवाहः
फुल्लाशोकप्रवाहः प्रतपनदहनारब्धदिक्चक्रदाहः ।
गर्जद्भृङ्गालिनिर्यद्भटभृतभुवनः कोकिलाकाहलानां
ध्वानैरासीद् वसन्तो नृपतिरिव वियद्यापितारापताकः ॥१८७॥

पक्षिवर्णनम्

रसालैराशालंकृतपिक रसालैरुदयते
रसालैराशालंकृतिरपि रसालं कृतिरपि ।

रहा है, माधवी कलिकाके साथ क्रीड़ा करता हुआ कर्णाट वासिनीके कर्णकी क्रीड़ा कर रहा है, काञ्ची देश वासिनीकी पुष्पोंकी बनी काञ्चीका सेवनकर रहा है स्वच्छ धूलिमें फूलोंको लेकर फिसल रहा है ॥१८५॥

अनुवाद—पम्पापर वायुके झोंकेसे कम्पित होकर शीतके कारण दयालु कमलोंकी गोदमें गति करते हुए तथा माध्वीकको पीकर मतवाले भ्रमरकी तरह गिरता है, करुणा करके लवङ्गोके द्वारा उठाया हुआ, उसको स्वीकार करके फिर रङ्गमें फसकर उसे तोड़ देता है, ऐसे चञ्चलमें बताओ कौन स्नेह कर सकता है । १८६॥

वृक्षोंका वर्णन

अनुवाद—इस समय राजाकी तरह बसन्तकी शोभा है, अभिमानी पुन्नाग ही इसका हाथो है संसारकी गन्ध लेकर आगे-आगे चल रहा है, प्रफुल्ल अशोक साथमें हैं, दुःखदायी कामाग्निसे सब दिशाओंको जलाना प्रारम्भकर दिया है गरजते हुए निकलनेवाले भ्रमर रूप योधाओंसे सब लोक भर गया है, कोयलोंके बाजोंकी ध्वनिके साथ आकाशमें फहराती ताराओंकी पताका लेकर बसन्त निकला है ॥१७८॥

पक्षी-वर्णन

अनुवाद—दिशाओंको अलंकृत करनेवाले कोयलके शब्दोंके साथ आम

---

(1) "पृषदश्वोगन्धवाहानिलाशुगाः" वायुः (अ० को० १।१।६२) ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विशालाभिर्गीत व्यसनसुखशालाभिरिव तै-
रलीनामालोभिः सह सुरभिलीलाः प्रथयताम् ।।१८८।।
घनानिच्छन्नानि भ्रमरनिवहेनोपरिसदा
सदारेणास्वाद्य प्रचुरमधु सम्भूय रसता ।
अदभ्राम्राणीवाविरत रसवर्षीणि सुरभा-
वसीम भ्राजन्ते दिशि दिशि कुलानि क्षितिरुहाम् ।।१८९।।
अशोकानां प्रसूनानि प्रसूनेषोः शरा इव ।
अशोभन्त दलत्पान्थ शोणशोणिताशोणशोचिषः ।।१९०।।
चञ्चूपुटानीव न किं शुकानां पटूनि पुष्पाण्यपि किंशुकानाम् ।
सुरागभागीनि विदारयन्ति मधौ मनोबिम्बफलानि यूनाम् ।।१९१
[1]कोविदार कुसुमेन कोविदाः के विदारितहृदो न साधिताः ।
कम्पितेन पवमानझम्पतश्चम्पकेन भुवि के न कम्पिताः ।।१९२

शोभित है उन आमोंसे दिशाओंमें भी शोभा होगई है, प्रत्येककी कृतियाँ रसपूर्ण जैसी प्रतीत होतीं हैं इस प्रकार विशाल सङ्गीतके कारण सुखमें विभोर होती हुई भ्रमर पंक्तियोंके साथ सुरभि सुन्दर गन्धकी लीला बड़ी अच्छी मालूम होतीं है ।।१८८।।

अनुवाद—स्त्रियोंके साथ ऊपर घूमते हुए भ्रमर समूह मिलकर जिनके प्रचुर मधुका आस्वादन करते हैं ऐसे वने छाये हुए बादलोंकी तरह निरन्तर रस बरसानेवाले वृक्षोंके समूह बसन्त-ऋतुमें दिशाओं-दिशाओंमें असीम शोभा दे रहे हैं ।।१८९।।

अनुवाद—अशोक वृक्षके पुष्प पथिकोंके रुधिरका शोषण करनेवाले लाल कान्तिवाले कामदेवके वाणकी तरह शोभा दे रहे हैं ।।१९०।।

अनुवाद—किंशुकके (ढाकके) सुन्दर फूल क्या तोतेकी चंचु पुटकी तरह नहीं हैं जो सुन्दर रङ्गवाले युवकोंके मनरूपी बिम्ब फलको बसन्त ऋतुमें विदीर्ण करते रहते हैं ।।१९१।।

अनुवाद—कोविदार (कचनार) के फूलने किस बुद्धिमान्के हृदयको विदीर्ण नहीं किया और वायुके झोकेसे काँपते हुए चम्पकने पृथ्वीपर किसको कम्पित नहीं कर दिया ।।१९२।।

---

(1) कचनार इति ख्यातस्तरुः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रमाद्भ्रमन्तः स्फुटचम्पकेषु पक्षाहतोद्भूतरजोभरेषु ।
ज्वलच्छिखानां स्मरपावकानां पुष्पन्धया[1] धूमधियंवितेनुः ॥१९३॥

विरमतु नाम श्रीदामन्, किमनुवर्ण्यते कुसुमसायकसामन्तो वसन्तो हेमन्तोऽग्रसर इवानुभूयते सोऽयम् । यत्र खलु दिनपतिदैन्यावलोकनादिव दिवसा अपि शोकवशाः सुपरिजनोचिताचरणीयमापिरे दैन्यम् । किमपरमम्भोजिनी प्रणयिन्यपि प्रियजनपरिभव दर्शनान्निधनमेव परं साधीय इति निधनमेव साधयामास पूर्वम् । अलिकुलमपि कमलवियोगादेव समाकुलीभूय भूमीषु भूमीरुहेषु ककुभि नभस्यपि निःश्वस्य भूरि भ्रामं भ्रामं कलितकमलिनी विच्छेदावसादोच्छेदाय दूयत एव केवलम् । परितो हिमसमयसमीक्षणक्षणादेव क्षणदापि[2] क्षणदायिनी हिमानीमहसो हिमानोमहा अपि क्षणदोऽभूत् क्षणदायाश्च, इति पुनरनयोरेव दोषादोषाकरयोरसीमा भूमा बहुकालम् ॥१९४॥

अनुवाद—पङ्खोंके लगनेसे उड़ती हुई धूल वाले खिले हुए चम्पकके फूलपर घूमते हुए भ्रमर समूह जलती हुई लौ वाले कामदेवकी अग्निके ऊपर धुंएकी बुद्धि उत्पन्न कर देते हैं ॥१९३॥

अनुवाद– अये श्री दामन् ! आप विराम करो, क्या कामदेवके सामन्त वसन्तका वर्णन किया जा रहा है ? ये आगे हेमन्त सा दीख रहा है जहाँ सूर्यकी दीनता देखने से ही मानो दिनों में भी शोकके वश में होकर परिजनके आचरण योग्य दीन भावको प्राप्त कर लिया । अधिक क्या प्रेम करने वाली अम्भोजिनीने भी प्रिय जनका परिभव देखनेसे पहले निधन अच्छा है यह सोचकर पहले ही निधन स्वीकार कर लिया । भ्रमर समूह भी कमलोंके वियोगसे दुःखी होकर पृथिवी पर वृक्षों पर दिशाओं में आकाश में श्वांस लेते हुए इधर उधर बहुत घूम घूम कर कमलिनी के वियोगके दुःखको दूर करनेके लिए केवल दुःखी हो रहा है । चारों ओर शीतकाल देखनेके समयसे ही रात्रि भी सुख देने वाली अति शीतकाल के समय का तेज भी शीतके समय सुखदायी तथा रात्रिको भी सुखदायी होता है, इन्ही दोनों रात्रि व चन्द्रमा का ही हर समय असीम आनन्द है ॥१९४॥

---

(1) भ्रमराः ।
(2) रात्रि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न भानोरुद्रेकः कमलकुलमुत्खातमभितो
[1]हिमानीभिः स्मेरा सह चरति तारा सहचरी ।
अतो मन्दं दिवि चलति चन्द्रोऽलस इव
प्रमोदाग्द्राघद्राघीयस्यजनि खलु हेमन्तरजनी ॥१९५

महावंशोद्भूतः पदमपि महोच्चैरधिगतः
परद्रोहाच्चण्डं प्रतिफलमखण्डं कलयति ।
पराभूय ग्रीष्मेऽनिशमपि निशानायकमपि
प्रतिप्राप्नोत्येतत्फलमिह दिनेशः सह दिनैः ॥१९६॥

पादे पतन्नपि नयेन निरीक्षितोऽपि
दोषाकरः स बत हन्ति पुरः सरोजम् ।
दीनं दिनं दिनमणिः पुनरित्थमाप
कुण्डोदरे पिपतिषुर्दहनोपकण्ठम्[2] ॥१९७॥

अनुवाद—सूर्य में उग्रता नहीं रही, कमल समूह भी सब ओर नष्ट सा हो गया, उग्र हिमके साथ मुस्कराती हुई तारा सहचरी घूम रही है । इसीलिए ताराके हिमके साथ रहने पर चन्द्रमा अलसाया हुआ दिन में धीरे धीरे चलता है प्रसन्नता से हिमकी रात्रि बड़ी हो गई है ॥१९५ ।

अनुवाद—सूर्य बड़े वंश में उत्पन्न हुआ और इसने ऊँचा ही पद प्राप्त किया । दूसरेसे द्रोह करने पर पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है । ग्रीष्म ऋतु में रात, दिन निशानायक चन्द्रमा को तिरस्कृत करके यह सूर्य दिनवृद्धिके साथ अपना पूर्ण प्रतिशोध ले लेगा ॥१९६॥

अनुवाद—पैरों पर गिरते हुए भी तथा नीति से देखा हुआ भी चन्द्रमा ने सामने ही कमलको नष्ट कर दिया यह दुःख है । अग्निके पास कुण्डके मध्य गिरते हुए सूर्य ने फिर उस दुःखी दिनको इस प्रकार प्राप्त कर लिया ॥१९७॥

---

(1) हिमानी हिम सहतिः अ० को० १।३।१८ "महद्हिमं हिमानी"
(2) वसन्त तिलका छन्दः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पद्मिनीविरहखेदकातरः पद्मिनीपतिरनायुरादरः ।
प्रत्यहं दहनमेति मृत्यवे मृत्युतोऽपि विरहोऽतिदुःसहः ।।
कुन्दमन्दिरगतोऽपि विन्दते नैव निर्वृतिलवं मधुव्रतः ।
आदे मधु न सस्वदे पदे शश्वदेव कमलस्य धावति ।।१९९।।
माकन्दवृन्दे विकचेऽपि कुन्दे स यत्र कुत्रापि विधिक्रमेण ।
बभ्राम मैलिन्दयुवा विरामं मनः पुनः केवल पद्मिनोषु ।।२००।।
व्यतनुत सुधासेकानैकां विलासवतीं प्रति
प्रबलतुहिनक्रोडक्रीडत्तरो हिमवासरः ।
यदहनि मुहुः कान्तारान्तर्वसन्तमुपेयुषी
प्रियतममलंचक्रे निशामिव साधु सा ।।२०१।।
नीहारद्युतिदुःसहोऽग्रमिहिकाव्यग्रो हयानां गणो
दीर्घामित्यरविन्ददीर्घनयना तां याचते यामिनीम् ।

अनुवाद—पद्मिनीके विरहके दुखसे दुखी होकर पद्मिनी पति सूर्य आयु में आदर न करके प्रतिदिन मृत्यु प्राप्त करने दहन समुद्रकी अग्नि में जाता है । वियोग मृत्यु से भी अधिक कठिन है ।।१९८।।

विशेष—'वियोग .... है' यह सूक्ति है ।

अनुवाद—कुन्द पुष्पके स्थान पर जाकर भ्रमर थोड़ा भी सन्तोष प्राप्त नहीं कर पाता, वह मधु उसे स्वादु प्रतीत नहीं होता फिर वह सदा ही कमलके स्थान पर दौड़ता रहता है ।।१९९।।

अनुवाद—माकन्दके समूह पर खिले हुए कुन्द पर जहाँ कहीं पर भी भाग्यके क्रम से भ्रमर युवक भ्रमण ही करता है मन तो उसका केवल पद्मिनी में ही निवास करता है ।।२००।।

अनुवाद प्रवल तुषारकी गोद में क्रीड़ा करने वाला हिमवासर एक विलासवती प्रियतमाके सम्मुख अनेक प्रकारके सुधा सेक क्रीड़ा विलास प्रकट करता है । दुर्गममार्ग वाले कान्तार में निवास करते हुए प्रियतमको रात्रिके समान वह प्रियतमा दिन में ही अलंकृत कर देती है । २०१।।

अनुवाद—तुषार की द्युति से कठोर तथा हिमके कारण जिसमें अश्व समूह व्यग्र हो जाय ऐसी दीर्घ रात्रिको कमलके समान दीर्घ नेत्र वाली कामिनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्योन्यं भुजसन्धिसन्धितवपुर्वक्त्रावसक्तानन्नं
निर्भेदं प्रतिपद्य गच्छति तयोर्व्यापूर्णदीर्घ स्पृहा ॥२०२

मृग्यते मृगदशामृगा (प्रिया) नने सा निशानभिमतैव कोकयोः ।
एकमेव बत वस्तु कुत्रचित्कालकूटकटु कुत्रचित्सुधा ॥२०३॥

इति सरभसमभिलपितुमारभमाणो मुहुरपि मूर्धानमाधुनानो मधुरिपुरुपनीय कामपि स्मृतिमाकस्मिकीमाह श्रीदामानमुत्स्मिताननो नाम । अहो श्रीदामन्महदुपस्थितं महदुपस्थितं कौतूहलपरम्पराणाङ्कारणमसाधारणं किमपि ॥२०४॥

चौर लीला

[1]न किं ते हेमन्ते हृदि भवति हे मन्त्रित गुरोः
कीशोरीणां चोलीहरणमुरु लाभादपि निधेः ।

चाहती है जिसमें दोनों भुजाओं की सन्धि से जुड़े हुए शरीरके दोनोंके मुख परस्पर मिलकर अभिन्न होकर प्रिय तथा प्रियतमा दोनोंकी बढ़ी हुई इच्छाओंको पूर्ण कर सकें ॥२०२॥

अनुवाद—मृगनयनी प्रियाके मुख पर निशाको ढूढ़ रही है जिस निशाको कोक ओर कोकी नहीं चाहते । एक ही वस्तु कहीं कालकूट विष है और कहीं वही वस्तु अमृतके समान है ॥२०३॥

अनुवाद—मधुरिपु कृष्ण सिरको कंपाते हुए बड़े वेग से यही कहना चाहते थे कि अकस्मात् कुछ स्मरण करके मुस्कराते हुए श्रीदामा से कहने लगे—हे श्री दामन् ! बहुत बड़े कौतूहलोंका करने वाला एक असाधारण कारण उपस्थित हो गया, उपस्थित हो गया ॥२०४॥

चोर लीला

अनुवाद—हे गुरु से मन्त्रणा करने वाले ! निधिके लाभ से भी अधिक उत्कृष्ट किशोरी बालाओंका चोली हरण हेमन्त ऋतु में क्या तुम्हारे हृदय में

---

(1) गोपी वस्त्र हरण कथा भा० १० स्कन्ध २२ अध्याय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्रुमारूढो गूढः क्वचन रसमूढः किसलयै-
रपश्यस्तास्तोये जलमुचि चलद् विद्युत इव ॥२०५॥

गच्छन्तीनां मृदु भुजलताश्रेणिबन्धाभिरामं
प्रातः प्रातर्मिहिरदुहितुः कूलकौतूहलायाः [लीनाम्]
अर्वाचीनव्रज-मृगदृशामङ्घ्रि भूषालिघोषा
वर्षन्तीव श्रुतिमधिसुधावर्षतोऽद्यापि ता मे ॥२०६॥

वीतचोलमपकुन्तलबन्धं श्वान्तमम्भसि विदुर्न तदङ्गम् ।
चैलमोषमपि[1] घोषकुमार्यः[2] केलिमाहुरिह विस्मृतिमूलम् ॥२०७

वीक्ष्य ताः प्रकुपितो विहरन्तीः स्वैरमम्भसि हि मे पवमानः ।
वर्द्धयन्मिहिरजालहरीर्द्राक् व्यातनोद्‌वरतनोस्तनुकम्पम् ॥२०८

नहीं आता ? वृक्ष पर कहीं नव किसलयों में छिपे हुए आनन्दमें विभोर तुम बादलोंमें चञ्चल बिजलीकी तरह कन्याओंको देखो ॥२०५॥

अनुवाद—कोमल भुजलताओं द्वारा पंक्ति बाँधकर प्रातःकाल यमुनाके तटपर पहुँचने का कौतूहल धारण करके जाती हुई व्रजकी मृग सदृश नेत्रवाली कन्याओंके चरण भूषणोंके शब्दघोष आज भी मेरे कानोंमें अमृतवर्षा कर रहे हैं ॥२०६॥

अनुवाद—गोप कुमारियाँ इस प्रकार जल विहार कर रही हैं कि वस्त्र भी उतर गये हैं, केशबन्ध खुल गये हैं, अपने अङ्गों का भी ध्यान नहीं है। वस्त्रों के उतरने पर भी अपने आपको भूलकर जल-क्रीड़ा कर रही हैं ॥२०७॥

अनुवाद—शीतकालमें इच्छापूर्वक जलमें विहार करते हुए उनको देखकर पवन कुपित हो गया, यमुनाकी लहरियों को बढ़ाते हुए उसने कन्याओंके शरीरमें कम्प उत्पन्न कर दिया। २०८॥ [श्रीमद्भागवत् पुराणमें चीरलीला प्रसङ्ग में गोपबालाओंका यमुना स्नान वर्णित है, यह स्नान हेमन्त ऋतुके मार्गशीष मास में हुआ था और इसमें वे शीतसे काँप उठी थीं।—

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रज कुमारिका।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाकात्यायन्यर्चन व्रतम्॥

---

(1) वस्त्रहरणम्।
(2) गोपबालाः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एकदैव परिवृत्य पपातोड्डीय वारिनटितप्रतिबिम्बम् ।
अम्बरादिव तदम्बरभूमौ वल्लवीनयनखञ्जनपंक्तिः ।।२०९।।

दिङ्नभः पुलिनतोयतटान्तव्यापिनी व्रजवनीरमणीनाम् ।
स्मर्यते तदनुधावति[1] धावद्दृष्टि पङ्क्तिरपरोत्पलसृष्टिः ।।२१०।

कुमारिकाभिर्वृक्षे वस्त्रदर्शनम्

[2]नीपशाखिनी तदम्बरमस्मान्वीक्ष्य ताः स्मितमधु व्यधुरन्तः ।
दन्त-दष्ट रसनाञ्चलमिष्टं तेन मुष्टमधुनाऽपि मनो मे ।।२११।।

ह्रीरुदेति सविरोधमुदग्रे याचितुं वसनमसनाभिः ।
साऽपि चेदभिजिता मुखपद्मं नैव मुञ्चतिमनाक्स्मितबन्धः ।।२१२

अनुवाद—एक बारमें ही जलमें हिलता हुआ प्रतिबिम्ब उड़कर घूमकर गिरा, गोप कुमारियोंकी खञ्जन सदृश नयन पंक्ति भी आकाश से आकाशकी ही तरह वहीं गिरी ।।२०९।।

अनुवाद—उस प्रतिबिम्बके दौड़ते हुए ब्रज भूमिकी उन रमणियोंकी दौड़ती हुई दृष्टि भी दिशा, आकाश, रेत एवं जल तट पर व्याप्त होने वाली इस प्रकार गिरते हुए प्रतीत हुई जिससे दूसरी कमलोंकी सृष्टिका स्मरण हो जाता था ।।२१०।।

अनुवाद—कदम्बके वृक्षपर उस वस्त्र समूह तथा हमको देखकर दाँतोंसे रसनाके अग्रभागको काटते हुये, ऐसा सुन्दर मधु मुस्कान किया, जिससे अब भी मेरा मन, चुराया हुआ प्रतीत हो रहा है ।।२११।।

अनुवाद—वस्त्रोंकी याचना करनेको आगे विरोध करती हुई लज्जा उदित हो रही है, वह भी अगर जीती जाय तो मुस्कानका बन्धन जरा भी मुख कमलको नहीं छोड़ता ।।२१२।।

---

(1) शत्रन्त सप्तमीयम् ।
(2) कदम्बवृक्षे:

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काचिदेष सखि नन्दकुमारः कः क एवमपरां मुहुराह ।
पश्यति स्म बहुकाऽपि निगूढं मां कदम्बमधिरूढमरूढा ॥२१३॥

अम्बरं वितर वातरंहसा वेपितं[1] वपुरुपैति किं ब्रुवे ।
नीतमम्बरमखेलि कौतुकाज्जातमेतदिदमाहकाचन ॥२१४॥

इति मधुरमुदीरितगोपः किशोरीणामहमवधाय सुधातोऽपि रसायनमसाधारणमभ्यधां किमपि ॥२१५॥

गोपिकानामुक्तिः

धूलि धूसरमकारि समीरैरित्युपाहृतमिहैव नतभ्रु ।
[2]एहि वस्त्रमिदमस्ति गृहाण स्वैरमेव न विरुणद्धि च कोऽपि ॥२१६

पाणिमात्रवसनाऽपि गिरा मे वाक्प्रपंचविरमादुदतिष्ठत् ।
साऽप्ययाचत यदेत्यनिचोलं तत्तु सौरत सुखादपि काम्यम् ॥२१७

अनुवाद—फिर कोई सखी दूसरी से बोली—हे सखि क्या यह नन्द-कुमार है ? और कोई कदम्ब पर छिपे खड़े हुये मुझको स्वयम् पृथिवी पर खड़ी हुई देखती थी ॥२१३॥

अनुवाद—और कोई यह कहती थी, कि वस्त्र दे दो, देहिवासांसि धर्मज्ञ (भा० १०।२) हे धर्मज्ञ ! हमें वस्त्र दे दो] वायुके वेगसे शरीर काँप रहा है । मैं क्या कहूँ, कपड़े ले लिये, खेल भी हो गया, कौतुकसे यह सब हो गया ॥

अनुवाद—इस प्रकार गोप किशोरियोंके मधुर वचन समझकर अमृतसे भी सुन्दर रसायन असाधारण कुछ वचन मैंने कहे ॥२१५॥

गोपियों की उक्ति

अनुवाद—नम्र भृकुटि वाली ! वायु ने इन वस्त्रोंको धूलि धूसरित कर दिया है, इसलिये मैंने ये उठा लिए हैं, ये वस्त्र हैं, इनको ले लो, आओ इच्छापूर्वक ग्रहण करो, कोई रोकता नहीं है ॥२१६॥

अनुवाद—मेरे वचन समाप्त होते ही मेरे कथनसे केवल हाथसे शरीरको ढके हुये, जब वस्त्र शून्य शरीरसे अपने कपड़ोंको माँगा, वह सुख सुरत सुखसे उत्तम था ॥२१७॥

---

(1) कम्पितम् टुवेपृ कम्पने
(2) आगच्छ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मीलिताक्षमवनामितकुञ्चत्कायमौलिरचिताञ्जलिबन्धम् ।
तन्नमस्करणमस्ति मनःस्थं नित्यनव्यमिव गोपकिशोर्याः ॥२१८॥

संवादः---

अम्बरेण रहिता अपि तास्ताः पश्यति स्मितमुखं पुर एव ।
तत्तनूषु तरसा पुलकौघैर्गाढमक्रियत कञ्चुकबन्धः ॥२१९॥

पार्वती भजनकामितमन्तर्मण्डली मृगदृशामनुकूलम् ।
मद्वितीर्णमवकीर्ण कदम्बं साम्बरं त्वमनुताम्बरमेव ॥२२०॥

ब्रूत वामनयना व्रतकामं पृच्छतीति मयि ता मुहुरेव ।
नावदन्यदधिकोदित लज्जास्तेन नाभिदधिरे बत किम् किम् ॥२२१

व्रत फलमुपलभ्य सुभ्रुवस्ता वसनजुषोऽपि न वेश्म गन्तुमैच्छन् ।
मयि कृतसमये कथं कथञ्चिन्निजभवनं ययुरङ्घ्रिभिर्न चित्तैः ॥

अनुवाद—आँखे बन्द करके झुके हुए और तिरछे शरीर और मस्तक किए, हाथ जोड़कर, मनमें ही स्थित जो उस गोप किशोरीका नमस्कार था वह नित्य नया और सुन्दर है ॥२१८॥

संवाद

अनुवाद—वस्त्रसे रहित उन सबको तथा मुस्कराते हुये मुखको वह सामने देखते थे, उनके शरीर पर रोम समूहने शीघ्र ही घना कंचुक रूप बन्धन कर दिया था ॥२१९॥

अनुवाद—मृगनयनी गोप किशोरियोंकी मण्डलीने पार्वतीके भजनसे जो अनुकूल कामना की थी वह हमारे दिये हुये वस्त्र सहित उस कदम्बको उन्होंने वस्त्र ही माना और वर माना ॥२२०॥

अनुवाद—हे वाम नयना किशोरियो ! अपने व्रतकी कामना बताओ, ऐसा मेरे पूछने पर जो उन्होंने लज्जा होनेके कारण कुछ नहीं कहा, उससे बताओ उन्होंने क्या नहीं कह दिया ॥२२१॥

अनुवाद—व्रतके फलको पाकर भी उन सुन्दर भृकुटि वाली स्त्रियोंने वस्त्र पहनकर भी घर जाना नहीं चाहा, मेरे शपथ करने पर भी अपने घरको पैरों से गई, परन्तु चित्त से नहीं गई ॥२२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वामभ्रुवः प्रचलिता अपि ता गृहेषु
भ्रान्त्या वनं विविशुरायुरापगायाम् ।
हित्वा विभूषणमुपेत्य पुनस्तदाहु-
रातेनिरे मयि च दृष्टि सरोज वृष्टिम् ।।२२३।।

यां तु चिन्तयति गोप किशोरी विभ्रती ममवरं वरमन्तः ।
सा शरज्जयति हंस निनादैः पुष्पकेतुमभि[1] जागरयन्ती ।।२२४।।

इति सरसवादमादरादभिधाय सायमवधाय माधवो धेनु धोरणीमादाय मोदाय च निखिलचराचराणामनुवादयन् माधुरीणामधरीकरण मधुरीमधुरीणाधरलीनामुरलीमुरुलीलयानुशीलयामास बल्लवावासम् ।।२२५।।

अथ कदाचिदभिरामाराम भूमिरुह[2] ग्रामच्छायाकुलविश्राम-धामसु यमुनाकूल एव तरुणतटकदम्बतरुमूलेष्वनुकूलेष्वभि नवजलद-तमालकोमलकमनीय नीलिमानं नीलमणि मान मानयन्तधो मधुसूदनम्

अनुवाद—वह गोप किशोरियाँ घर गईं, परन्तु भूलकर विभूषण छोड़कर वनमें घुस गईं, फिर यमुनापर आगईं, आकर विभूषण ग्रहण किए तथा उन्होंने मेरे ऊपर दृष्टिरूपी कमलोंकी वर्षाकी [भागवत पुराणमें इस प्रकारका न तो कृष्णके मुखसे वचन है और न ऐसा भाव ही, वहाँ तो केवल कथा प्रसङ्गमें वस्त्रहरण लीला है और यह काव्य है, अतः कविकी सहज कल्पना है ।।२२३।।

अनुवाद—मेरे उत्तम वरको हृदयमें धारण करतीं हुईं गोप किशोरी जिस शरद ऋतुकी चिन्ता कर रहीं थीं, वही 'शरद' हंसोंके निनादसे कामदेवको जगाती हुई आगई ।।२२४।

अनुवाद—ऐसे सरल वचनोंको बड़े आदरसे कहकर, सायंकाल जानकर माधवने धेनु समूहको लेकर, सब चर-अचरकी प्रसन्नताके लिये मधुरताको अधर करनेवाली मधुरिमाकी अग्रणी, अधरपर रक्खी मुरलीकी सुन्दर लीलासे, गोप निवासको आनन्दितकर दिया ।।२२५।।

अनुवाद- इसके अनन्तर किसी समय सुन्दर बगीचेके वृक्ष समूहकी छायामें आकुलजनोंके विश्राम स्थानपर यमुनाके तटपर बड़े-बड़े अनुकूल कदम्ब

---

(1) कामदेवम् । (2) वृक्षः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तमेकाकिनमावसन्तम् समतीतत्रिभग वया अपि प्रतिभा प्रागल्भ्यस्फुरदधर पुरीतटीब पटीयसी काऽपि शनैः शनैः समुपतस्थे रहःस्थमाभोरी[1] । आगत्य चावलोक्य चाह--अहो नन्दनन्दनोऽसि, भवन्तमनुसन्धायान्धैव कतिकति दुरहवनोऽभिधावन्तीधोरेतरदति श्रान्तास्मि । तदहं क्षणं विश्रान्ति सुखमनुभूय निवेदयिष्यामीति । हरिरन्तश्चिन्तयति । अहो समजनि कोऽपि कुतूहलानामयं पन्था भवतु नाम ॥२२६

अयं तत्सम्बन्धी यदि भवति पन्थाः समुदितो
मदन्तर्यश्चिन्तामनुभवति चिन्तामणिमिव ।
अकस्मादस्माकं सदयमनुकूलेन विधिना
तदा जाने पाणेरुपरि निधिरानीय घटितः ॥२२७॥

अथ वल्लवी निवेदयतिः—"वेणुवादनेन दशावर्णनं"

अधिवेणु तनोषि नन्दसूनो मृदु झं कारमवारमप्रयासः ।
नवगोपचमूरुलोचनानां हृदि दावानल एव जाज्वलीति ॥२२८॥

वृक्षकी जड़में नवीन मेघ व तमालके समान कोमल कमनीय नीलिमा धारण करनेवाले, उसके नीचे अकेले बैठे हुए माधवके पास बीती हुई अवस्थावाली होते हुए भी बुद्धिकी प्रगलभतासे अधर पुट तटके फड़कनेकी तरह चतुर एकान्तमें बैठे हुए माधवके पास धीरे-धीरे कोई आभीरी गोपी उपस्थित हुई, आकर और देखकर बोली—अहो ! तुम नन्दके नन्दन हो, आपको ध्यानकर करके अन्धेकी तरह कितने-कितने बुरे मार्गोंपर उतावली-सी दौड़ती हुई थक गई हूँ, सो मैं थोड़ी देर विश्रामका सुख लेकर निवेदन करूँगी । हरि मनमें सोचने लगे—यह कोई कुतूहलका मार्ग, या विष उत्पन्न होगया, अस्तु जो कुछ हो ॥२२६॥

अनुवाद—मेरे हृदयमें चिन्तामणिकी तरह जिस विषयकी चिन्ता हो रही है, यदि यह मार्ग उससे ही सम्बन्ध रखता है तब तो यह समझना चाहिये कि अकस्मात् ही दया करते हुए अनुकूल विधाताने हमारे हाथपर कोई निधि लाकर रख दी ॥२२७॥ इसका वह गोपी निवेदन करती है—

वेणुवादन दशा वर्णन

अनुवाद हे नन्दसूनो ! जब तुम वंशीमें बिना प्रयासके, न रोकने

---

(1) गोपी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीतमम्बरमनीतिरीदृशी दहते[1] दहन एव दाहभूः ।
अम्बरं वितर तेन सम्वृताः सन्तु गोपसुदृशोऽपि निर्वृताः ।।२२९।।
नन्द नन्दन ? भवान्निरञ्जनः सन्तु खञ्जनदृशो निरञ्जनाः ।
त्वत्समानबिधिनैव किन्तु तत्ताप सन्तति कथासु विस्मयः ।।२३०
अहो अनुरागातिशयो नाम
वरमम्ब वरं वृणे कुमारं व्रजराजस्य किशोर कं व्रजस्य ।
अभिधातुमिदं पुरस्तु देव्याः पुलकव्याकुलविग्रहा न शेके ।।२३१
सुतनोरास्य महास्यं नयनमलास्यं तनूरनाभरणा ।
प्रति वृन्दावन भवनं विलुठति धूलीषु धूसरीभूय ।।२३२।।

राधादशावर्णनम्

तन्द्रीं चन्द्रमुखी जहौ भयमधाच्चन्द्राच्च चन्द्रावली
राधात्वधि पयोधि मध्यपतिता लीलावती मुह्यति ।

योग्य कोमल झङ्कार, निकालते हो तब मृग जैसे नयनवाली गोपियोंके हृदयमें दावानल जलने लगती हैं ।।२२८।।

अनुवाद—वस्त्र ले लिए यह अन्याय है, जलानेवाली अग्नि जैसो जला रही है, वस्त्र दे दो जिससे गोपियाँ सन्तुष्ट हो जाँय और सब वस्त्र पहन लें ।।२२९।।

अनुवाद—हे नन्द नन्दन ! आप निरञ्जन है, खञ्जनके समान नेत्र-वाली गोपियाँ भी निरञ्जन हो जाँय, आपके ही समान विधिसे वह भी हो जाय । किन्तु ताप उत्पन्न करनेकी बातमें आश्चर्य हो रहा है ।।२३०।।

अहो यह अतिशय अनुराग है

अनुवाद—हे अम्ब ! मैं ब्रजके किशोर तथा व्रजके राजा नन्दके कुमारको वरदानमें माँगती हूँ । यह मैं रोमाञ्चसे शरीर पुलकित होनेके कारण देवीके सामने नहीं कह सकी ।।२३१।।

अनुवाद—सुन्दर शरीरवाले कृष्णका हास्य-शून्य मुख और चंचलता-शून्य शरीर, ऐसी दशामें वह वृन्दावनके प्रत्येक गृहमें धूलिसे धूसरित होकर लोटता रहता है ।।२३२।।

राधाकी दशाका वर्णन

अनुवाद—चन्द्रमुखीने आलस्य छोड़ दिया, चन्द्रावली चन्द्रसे डरने

---

(1) अत्रात्मनेपदं चिन्त्यम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालं चैक कलावती शशिकलाग्रस्तैवमास्ताशया
गौरीगायति ते गुणं गुणवती गाथा च शेषायते ॥२३३॥

[1]कलधौतलतेव काप्यकम्पा भुविशम्पेव चिरं परा चकम्पे।
अपरांप्रति चाम्पकीवं माला बत हालाहलमेव वर्षतीव ॥२३४॥

पिदधाति परा सुधाकरे कृतवातायनभेददीधितौ।
बहदस्त्रमजस्त्रमाकुलः प्रणिधानैक धनः सखीजनः ॥२३५॥

मदना मदनानलावलीढा विषयः कामरुषोऽपि कामसेना।
ललिता ललितानि विस्मरन्ती तव रूपैक निरूपणं कुरुते ॥२३६॥

दिवसादिव सा भयं निशातः कलयामास कलेशचन्द्रिकापि।
कमला कमलादपैति कामं बत वामं कमहो वयं वदामः ॥२३७॥

व्यजनैर्विजनैः सखीजनैः सजनैः सद्मभिरङ्गमार्जनैः।
न हि निर्वृतिमाददे क्षणं शरविद्धेव मृगी मृगीक्षणा ॥२३८॥

लगी है, राधा, चिन्तारूपी समुद्रमें पड़ी है, लीलावती, मोहमें पड़ी है शशी इसी प्रकार आशामें ग्रस्त है, गौरी, तुम्हारे गुण गा रही है, गुणवाली गाथा फिर भी शेष है ॥२३३॥

अनुवाद—कोई सुवर्णलताकी तरह कम्पसे शून्य है, दूसरी बिजलीकी तरह पृथ्वीपर काँप रही है, चम्पककी जैसी माला किसीको मानों हलाहला विष जैसा बरसा रही है ॥२३४॥

अनुवाद-कोई झरोखेके छेदसे किरणोंके आनेसे चन्द्रमाको ढक रही है, अपने परम धन कृष्णके ध्यानमें सखियाँ आकुल हैं, सदा आसू बहा रहीं हैं ॥२३५॥

अनुवाब—मदना, कामाग्निसे व्याप्त है, कामपर क्रोध करनेवाला कामदेवकी सेनाका ध्यानकर रहा है, ललिता, अपने ललितभावको भूलकर तुम्हारे रूपका निरूपणकर रही है ॥२३६॥

अनुवाद—कलेश (कलानाथ) चन्द्रमाकी चाँदनी भी दिनकी तरह रात्रिसे डरकर रही है, कमला कमलसे इच्छानुसार हट रहो है। खेद है, कि हम अब किसकी उलटी बात है कहें ? ॥२३८॥

अनुवाद—पंखोंसे, एकान्तसे, सखीजनोंके उपायसे, मनुष्योंसे, घरोंसे, अङ्गोंके मार्जनसे, किसी प्रकार भी बाणसे विद्ध मृगीकी तरह क्षणभरको भी सन्तोष नहीं है ॥२३८॥

---

(1) सुवर्णम्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अटवीविटपी[1] विलूनशाखः सरसो निःसरसीरुहा बभूव ।
उपचारविधौ विधौ हि वामे बत वृन्दावनवामलोचनानाम् ॥२३९

सौगन्ध्यैरलिमन्धयञ्शिशिरयन्नभ्यङ्गभासङ्गतः
शम्पायाः स्मरसम्पदः समुदभूत्कम्पाय पम्पानिलः ।
निःश्वासैः सह दुसहः पुनरसौ तस्याः सखीनां क्षणा-
दुत्तापं रचयाञ्चकार जगतां ज्वालेन दावानली ॥२४०॥

बहु वर्षति चन्दनं सखी मनुते भानुमती हुताशनम् ।
तदनङ्गकला कलेवरेऽजनि धूपैः श्वसितेन धूयते ॥२४१

करतलपमिलत्कपोलपाली नयनाम्भोलहरीभवत्कफोणिः[2] ।
अचलत्तनुवल्लिरनिर्निमेषा शशिलेखा लिखितेव लक्ष्यते सा ॥२४२

अक्षि चन्द्रमसि वर्ष्म मारुते कर्णमर्पयति कोकिलारुते ।
किं करोमि विरहेण कातरा वाममाचरति कामकन्दली ॥२४३॥

अनुवाद— वृन्दावनकी गोपियोंकी चिकित्साके लिए विधाता उल्टा होनेपर वनके वृक्षोंकी सब शाखायें तोड़लीं, तालाबोंके सब कमल तोड़ लिए फिर भी शान्ति न मिली ॥२३९॥

अनुवाद— सुगन्धसे भ्रमरोंको अन्धा बनाते हुए शरीरमें लगकर उसको शीतल बनाते हुए कामकी सम्पत्ति बिजली आदिमें कम्प उत्पन्न करनेके लिये पम्पाकी वायु उत्पन्न होरही है । निःश्वासोंके साथ वह वायु असहनीय होगया है । दावानलकी तरह प्रतीत होनेवाले उस वायुने अपनी ज्वालासे संसारको बहुत ताप उत्पन्न कर दिया है ॥२४०॥

अनुवाद—सखी चन्दन बरसाती-सी खूब लगाती है परन्तु भानुमती उसे वियोग दशामें अग्नि मानती है वह कामकी कला शरीरसे उत्पन्न होगई है, धूपके द्वारा श्वाससे और बढ़ती है ॥२४१॥

अनुवाद—हाथकी शय्यापर कपोल रखे हुए नेत्र जलकी लहरी कोहनी तक बहाते हुए शरीरको अचल बनाए शून्य चन्द्रलेखाकी तरह लिखित सी दशामें वह दीख रही है ॥२४२॥

अनुवाद—चन्द्रमामें आँखें लगाये सुन्दर शरीरको वायुमें सुखाती,

---

(1) वृक्षः । (2) स्यात् कफोणिस्तुकूर्परः । अ० को० २।६।८० (कोहनी) कं=सुखं स्फोरयति, केन सुखेन फणति=कफोणिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहु यच्छति पल्लवं नवं परिदाह्योऽयमिति क्रुधा मुधा ।
भुवि दर्पणबिम्बबिम्बिते सति चन्द्रे चकितैव सुन्दरी ॥२४४॥
गमनेन सहैव नन्दसूनोर्व्यसनापन्नमनोभिरङ्गनाभिः ।
भवतः करतः करे गृहीतो नवनीलस्मरशस्त्रकालसर्पः ॥२४५॥
स्पन्दमावहति चेन्मणिबन्धः प्रत्ययो भवति चेतसि बन्धोः ।
जीवनीयमिति जीवित भूयः किं निवेद्यमनवद्यगुणायाः ॥२४६॥
वेणुगीतमधिगत्य दूरतो द्वारतोऽपि बहिरङ्गणादपि ।
आगता अपि न शेकुरस्त्रुभिर्नेत्रवर्त्मनि गते त्वयीक्षितुम् ॥२४७॥
उपपद्य तदेव दंदहीति ज्वलनः प्रेम च वामलोचनानाम् ।
स तु नीरस एव सारसाक्ष त्वयि तास्ताः सरसाः परं गरीयान् ॥२४८

भूतमेकमपस्नेहं दंदहीति हुताशनः ।
पञ्चभूतानि भूतानां प्रेमायमपरोऽनलः ॥२४९॥

कोयलके शब्दोंमें कान लगा रही है, क्या करूँ, वह विरहसे दुःखी कामदेवकी कलिका उलटा ही आचरणकर रही है ॥२४३॥

अनुवाद—यह गोपी जलाने योग्य है इसलिये बहुतसे नव पल्लव क्रोधसे इसको काम देता है पृथ्वीपर दर्पणमें चन्द्रमाके प्रतिबिम्बत होनेपर यह सुन्दरी चकित हो जाती है ॥२४४॥

अनुवाद—नन्दसूनु कृष्णके जानेके साथही व्यसनसे दुःखी मनवाली गोपियोंने नया नीला कामदेवका कालसर्प रूपी शस्त्र आपके हाथसे अपने हाथमें पकड़ लिया ॥२४५॥

अनुवाद—प्रकोष्ठ (कलाई) कुछ स्पन्द होते ही चित्तमें कृष्णके आनेका विश्वास होता है। हे जीवित, अब जीना चाहिये यह सोचती है इससे अधिक और शुद्ध गुणवालोकी क्या बात कहूँ ॥२४६॥

अनुवाद—वेणुगीतको दूरसे सुनकर दूरसे बाहर आंगनसे भी आई हुई भी नेत्रोंमें आँसुओंके आजानेके कारण तुमको देखनेमें समर्थ नहीं हो सकी ॥२४७

अनुवाद—वही आंसुओंकी आग आकर वाम लोचनाओंके प्रेमको जला रही है, हे सारसाक्ष वह नीरस है तुममें वे गोपियाँ सरस प्रेम करतीं हैं परन्तु अग्नि वह बहुत बड़ी है ॥२४८॥

अनुवाद—पाँचभूतोंमें एक भूत अग्नि स्नेह शून्य है वही बहुत जला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किमखिलमभिधेयमित्थमाकुलमेव सकलं वृन्दावनगोपकिशोरी-वृन्दम् । परन्तु वृषभानुकुलजलधिजनिरप्रतिरूपरूपरसकन्दली राधा संसारासाधारणमाधुरीधामपरमसुखसाधा बाधावशादावेदयामास मे किमपि गूढम् ॥२५०॥

तरुस्कन्धारूढः क्वचन दलगूढः सरभसं
पयोमानाः पश्यन्वसनरहिताः स्मेरनयनः ।
अकस्मादेवास्मन्नयनपथिकोऽद्यापि हृदि मे
स मेघश्रीमोघीकरणरुचिरेकोऽधिवसति ॥२५१॥

दलयत्यनिलोऽपि देहमिन्दुर्दयनेन्दीवरमेव दंदहीति ।
गिरमुद्गिरतीव कोकिलापि भ्रमरोऽपि भ्रमरोपमातनोति ॥२५२
भवनं च वनं च निर्विशेषं विषमेषुर्विषमेव वन्हिरिन्दुः ।
अलयः प्रलयप्रवर्त्तिनोऽमी फणिफूत्कारगणः समीरणोऽपि ॥२५३॥

रही है, भूतोंमें सबमें प्रेम है, यह अनल भूत दूसरा है इसमें स्नेह नहीं है ॥२४९॥

अनुवाद—अधिक क्या कहें इसी प्रकार वृन्दावनकी सब गोप किशोरियोंका समुदाय बहुत दुःखी है परन्तु वृषभानुके कुलरूपी समुद्रमें उत्पन्न होनेवाली अनुपमेय रूप रसकी कलिका राधा ससारकी असाधारण माधुरीका केन्द्र परमसुख देनेवालीने बाधाके कारण मुझसे कुछ गूढ़ वचन कहे हैं ॥२५०॥

अनुवाद—कहीं पेड़की शाखापर बैठा हुआ वेगसे पत्तोंमें छिपा हुआ प्रेम भरे नयनवाला वस्त्रशून्य गोपियोंको देखता हुआ, मेघकी शोभाको भी व्यर्थ करनेवाली शोभावाला कोई अकस्मात् ही आज भी मेरे नयनोंका पथिक होकर मेरे हृदयमें बस रहा है ॥२५१॥

अनुवाद वायु भी शरीरको सुखाए डालता है, चन्द्रमा नेत्र कमलोंको जलाए डालता है, कोयल भी वाणीको उगल-सी रही है, भ्रमर भी भ्रमका आरोपकर रहा है ॥२५२॥

अनुवाद - घर और वन एक जैसा मालूम होता है, कामदेव विष तथा चन्द्रमा अग्नि होरहा है, भ्रमर प्रलय किए देते हैं, वायु भी सर्पकी फुसकार जैसा मालूम होता है ॥२५३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इति वि दतनिखिलान्तस्तत्त्वा तत्तापयापनग्रहिला भवन्तं महौषधमिव मृगयमाणाचिरेण प्रतिपद्यमानाऽस्मि । समुचितमवधीय[1] माधव ? विधीयतामचिरेण । अथ स्मितमधुरमुखेन्दुर्नन्दनन्दनस्तामुवाच मधुमुचा वाचा ॥२५४॥

अवधेहि विधेहि राधिकाया हृदि बाधाप्रशमं मदीयवाचा ।
सुदृशामिह विप्रयोगवन्हौ प्रतिकारः प्रियवत्प्रियप्रियोक्तिः ॥२५५

राधा महिमा

श्रुती राधानामश्रवणसमकालं पुलकिता
मनोऽभून्निर्मग्नं प्रमदजलधौ मे निरवधौ ।
दृशौ दृश्युत्कण्ठे वपुरपि तदासङ्गरसिकं
मदातमा तादात्म्यं भजति भणितैर्दू ति तदलम् ॥२५६॥

अनुवाद—इस प्रकार हृदयके सब तत्वको जानकर इस सन्तापको दूर करनेके विचारसे इसकी महान् औषधि आपको ढूढ़ती हुई शीघ्र ही मैं आपके पास उपस्थित हुई हूं । हे माधव ! इसको अच्छी तरहसे विचार करके शीघ्रही उपाय कीजिये । मुखरूपी चन्द्रमें मन्द मुसकान करते हुए, नन्द नन्दन मधुर्वर्षिणी वाणी द्वारा कहने लगे ॥२५४॥

अनुवाद—ध्यान दीजिये, राधाके हृदयमें मेरी वाणीसे बाधाको शान्त कीजिये; सुनयना स्त्रियोंकी वियोगाग्निका उपाय प्रेमीकी प्रियवाणी ही होती है ॥२५५॥

राधा-महिमा

अनुवाद--कृष्ण कहते हैं हे दूती राधाका नाम सुनते ही मेरे कान पुलकित होगये, प्रेमरूपी असीम समुद्रमें मेरा मन मग्न होगया, आँखें देखनेको उत्कण्ठित होगईं, शरीर भी उसके मिलनेको रसिक हो उठा, मेरी आतमा उसकी आत्मामें तदाकार होगई है, अधिक कहनेसे क्या ? ॥२५६॥

---

(1) श्रुत्वा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विगाढव्यालोढा सुखयति हि पीयूषसरसी
दृशोन्दोरागूढा कलयति कला कामपि मुदम् ।
श्रुतापि ध्यातापि प्रथयति परानन्दलहरी-
परीणाहं राधा परमियमसाधारणनिधिः ॥२५७॥

शीतांशोरपि शीतलं सुमृदुलं सम्यक् शिरीषादपि
द्राक्षातोऽपि बिलक्षणं सुरधुनी क्षीरादपि क्षेमदम् ।
माध्वीकाधिकमाधुरीकमधरीकुर्वत्सुधासौभगं
राधानाम मनोभिराममपरं वस्तु प्रशस्तेः पदम् ॥२५८॥

अभ्युत्थानविधानसाधनपदे पाणी धनुर्योजितौ
विश्वोद्वीक्षणवीक्षणे च हृदयात्मानौ च बाणो धनुः ।
मध्वीकं च सुधा च पुष्पधनुषो बाह्यान्तराप्यायिनी
दिव्ये नव्यमहौषधी विजयते राधेति वर्णद्वयी ॥२५९॥

अयि खलु[1] संचारिणी नामानुक्रमेणानुमीयते रूपमपि तस्याः ।
निरूपणीयेतरदेवस्याखिलस्यापि आभीरी सोल्लासं निवेदयामास ॥

अनुवाद—अमृतकी सरसी (तालाब) स्नानसे या चखनेसे सुख देती है, चन्द्रमाकी कला आँखोंमें पड़कर विचित्र सुख देती है, सुनी हुई तथा ध्यानकी हुई आनन्दकी एक विशाल लहरी राधा यह असाधारण निधि है ॥२५७॥

अनुवाद—चन्द्रमासे भी शीतल शिरीषसे भी अत्यन्त कोमल द्राक्षा (दाख) से भी विलक्षण, गङ्गाजलसे भी अधिक कल्याणप्रद, माध्वीकके रससे भी अधिक मधुर सुधाकी सुन्दरताको नष्ट करता हुआ राधाका नाम मनको अच्छा लगनेवाला प्रशंसाका परम स्थान है ॥२५८॥

अनुवाद—अभ्युत्थान करनेके साधन अथवा धनुषको जोड़नेवाले दोनों हाथ, विश्वको देखनेके दो नेत्र अथवा हृदय और आत्मा अथवा धनुष और बाण अथवा कामदेवके बाहर और भीतर व्याप्त होनेवाले अथवा दिव्य नव्य दो महौषधियाँ ये राधा नामके दो वर्ण हैं, इनकी जय हो ॥२५९॥

अनुवाद—अयि दूती नामके ही अनुक्रमसे उसके रूपका भी अनुमान किया जा सकता है, वह आभीरी निरूपण योग्य सबका बड़ी प्रसन्नतासे वर्णन करने लगी ॥२६०॥

---

(1) "दूतीसंचारिके समेत्यमरे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राधा केश वर्णनं

तद्धम्मिल्लरुचा शुचातिविधुरा चक्रन्द कादम्बिनी
धारास्रैश्चमरी च काननचरी भूता[1] लिरुच्चामरम् ।
गाहन्ते कुसुमान्तराणि मधुपास्तापी कलापी वने
मर्त्तुं द्राक्कवलीकरोति गरलव्यालोलमाशीविषम् ॥२६१॥

राधा वदन वर्णनम्

नन्दनन्दन ! तदाननत्विषा यत्तुषारकिरणो मलीमसः ।
उत्रमस्त्रकमदस्त्रमुत्सृजन् शून्य एव चिरमेव घूर्णते ॥२६२॥
राधिकामुखमुदीक्ष्य लज्जयामज्जदम्भसि मुमूर्षु वारिजम् ।
तत्र वार्यवरुणद्धि यद्धि तं चञ्चरीकविषमित्युपाददे ॥२६३॥
आननेन विजितेन्दुमाधुरी लोचनेन च हृतैण[2] चातुरी ।
एतयोरिति मिथो युतिर्यतः सन्धिरुल्लसति तुल्यतापयोः ॥२६४॥

राधा केश वर्णन

अनुवाद—उसके वालोंकी शोभाको देखकर शोकसे दुःखी होकर मेघ-माला क्रन्दन करने लगी. चमरी वनमें घूमनेवाली ऊपर पूँछ करके आँसू छोड़ने लगी, भौंरे दूसरे फूलोंपर जाने लगे, तापसे दुःखी मोर वन में मरनेको तत्काल विषसे पूर्ण सर्पोंको कवलित करने लगे ॥२६१॥

राधा वदन वर्णन

अनुवाद -हे नन्दनन्दन ! उसके मुखकी कान्तिसे चन्द्रमा मलीन हो गया और किरणोंसे निरन्तर आँसू छोड़ता हुआ शून्यमें घूमता रहता है ॥२६२॥

अनुवाद—राधाके मुखको देखकर लज्जासे मृत्यु चाहता हुआ कमल पानीमें डूबा । वहाँ जब जलने उसे रोका तब उस भ्रमर रूपी विषको उसने ग्रहण कर लिया ॥२६३॥

अनुवाद - मुखसे चन्द्रमाकी मधुरताको जीता, नेत्रसे मृगकी चतुरता छीन ली, इन दोनोंका जब परस्पर सङ्ग होता है तभी तुल्य तापवाले इन दोनोंकी सन्धि बड़ी अच्छी शोभा देती है । यही चन्द्रमें मृगका निवास है ॥२६४।

---

(1) आलिर्वयस्या । (2) मृगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राधा नयन शोभा

चाञ्चल्यं खलु खञ्जनेषु हरिणीनेत्रेष्वपि द्राघिमा
सौभाग्य सरसीरुहेषु शफरीवृन्देष्वमंस्त श्रियः।
किन्तु श्रीवृषभानुभूनयनयोः कोणेऽपि को नेक्ष्यते
वैदग्धीमहिमा जयन्ति हि चतुः षष्ठिः कलाः सृष्टयः ॥२६५॥

एकार्द्धं स्तनपाणिपादनयनभ्रूकर्णगण्डस्थलं
भिन्नार्द्धस्फुरितस्य तत्तदखिलस्योपम्यमालम्बते।
इत्थं खञ्जनगर्वगञ्जनदृशस्तस्या यदि स्यात्तुला
स्यादङ्गस्य तदा द्वितीयरहितं यत्तद् द्वितीयं हि तत् ॥२६६॥

अवयव वर्णनम्

स्थलाम्भोजे रम्भायुगमितविपर्यासमवनी–
नभः कूपो वल्ली तदुपरि बभौ कोकमिथुनम्।

राधा नयन शोभा

अनुवाद—खञ्जन पक्षीमें चञ्चलता है, मृगके नेत्रोंमें दीर्घता है, कमलोंमें सौभाग्य है शफरी समूहमें शोभा है किन्तु राधाके नेत्रोंके कोणमें भी कौन नहीं देखता, ऐसी वैदग्धी महिमा है, चौंसठ कलाओंकी सृष्टि उसमें है उनकी जय हो ॥२६५॥

अनुवाद—आधे शरीरके प्रथम भागके एक एक स्तन पाणिपाद नयन भ्रू कर्ण और गण्ड स्थल, दूसरे आधे भागके द्वितीय स्तनादिके उपमा रूपमें आ सकते हैं, इस प्रकार खञ्जनके गर्वको नष्ट करनेवाले नेत्रोंवाली उस राधाके अङ्गोंकी उपमा दूसरी नहीं है, यदि है तो उसके द्वितीय अङ्ग ही उपमामें आ सकते हैं ॥२६६॥

अवयव वर्णन

अनुवाद—स्थलमें चरणरूप कमल हो उसके ऊपर विपरीत कदलीके स्तम्भरूप दो पैर तव पृथ्वी रूप सम स्तर फिर आकाश कूपरूपी नाभि फिर लता-रूप शरीर उसपर कोकका जोड़ारूपी दो स्तन फिर ग्रीवामें तीन रेखाके ऊपर मुखरूपी चन्द्रमामें कमलरूप नेत्र उसमें ही इन्दुकी कलारूप मस्तक, तम अन्धकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्रिरेखीन्दुश्चेन्दीवरमपि कलेन्दोरथ तमः
श्रुता वा दृष्टा वा न खलु भुवि सा सृष्टिरपरा[1] ।।२६७।।

हरिस्तु सपुलकमनुभूतमुद्भावयामास ।

चलन्ती पादार्धं वलदलसभारा यदवद-
द्वयस्यः किं हास्यः कथमिह विधास्ये गतिविधिम् ।
उदञ्चत्कालिन्दीलहरिरधुनान्दोलयति मा-
मनभ्यासादभ्यागतमिव तदद्यापि हृदि मे ।।२६८।।

दहने हेमपरीक्षा प्रेमपरीक्षा परं विरहे ।
द्वयमपि दहति द्वितयं द्वितयं द्वयमुज्ज्वलीकुरुते ।।२६९।।

अनुसंचर संचारिणि संचारय चारुलोचनामचिरात् ।
घनकुचजघनभरार्त्तां बिभ्रत्तां न चक्षमे गन्तुम् ।।२७०।।

सपुलकमाभीरकुशलकिशोरीसंचारिणी भणति स्म-
सममेव द्वयोः प्रेम समैव विरहव्यथा ।
ावस्था समैवोक्तिः समयोः समुदञ्चति ।।२७१।।

रूप केश हों तव उपमा बन सके पृथ्वीपर ऐसी दूसरी सृष्टि नहीं है । अब कृष्णने रोमाञ्च सहित अनुभव किया हुआ रूप वर्णन किया ।।२६७।।

अनुवाद–आधा पैर चलती हुई आलस्यके भारसे झुकती हुई उसने कहा—हँसी करनेसे क्या लाभ । यह कैसे चल मिलेगा, उठती हुई यमुनाकी लहरी अभ्यागतकी तरह मुझको अभ्यास न होनेसे इस समय हृदयमें हिला रही है।।

अनुवाद—अग्निमें सोनेकी परीक्षा होती है और प्रेमकी परीक्षा विरहमें होती है, दोनों-दोनोंको जलाते हैं और दोनोंको उज्ज्वलकर देते हैं ।।२६९।।

अनुवाद–हे दूती ! तुम जाओ और सुन्दर नेत्रवालीको शीघ्र ले आओ घने स्तन और जंघाओंके भारसे दुःखी उसको धारण करके मैं चलनेमें समर्थ नहीं हूँ ।।२७०।।

अनुवाद- रोमांचित होकर आभीर कुलकी किशोरी कहने लगी—दोनों का समान ही प्रेम है और विरह व्यथा भी समान है, समान दोनोंकी अवस्था भी उक्ति भी समान ही होरही है ।।२७१।।

---

(1) "स्त्रीरत्न सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे" कालिदास ने भी सृष्टि से भिन्न शकुन्तला का रूप माना । (शाकु०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रसिकपुरन्दर ! पशुपपुरन्दरानन्दसन्दोह सन्दीपन तव संदेशार्पण सुधाभिषेचनादावर्त्तयामि राधाया[1] विरहबाधातो निर्गच्छतः प्राणान् ॥२७२॥

अथ मधुमथनमधुरतरानुवादमादरादनुस्मरन्ती सविस्मयं मन्दं मन्दं पथि गच्छन्ती मूर्द्धानं मुहुराधूनयन्ती चेतसि चिन्तयामास किमपि मुहुराभीरी ॥२७३॥

दृष्ट्वा विग्रहसौभगं रतिपतिव्रीडावलीढां तरो-
रालीढां तनुमत्यजत्सह धनुर्भ्रू भङ्गभाजो हरेः ।
मर्यादां च कुलव्रतं च विपुलं धैर्यं च हित्वा भव-
त्स्थाने तद्यदिमं प्रति व्रजसरोजाक्षी कुलं व्याकुलम् ॥२७४॥

न कूले कालिन्द्या न च पटुनि मूले विटपिनां
निकुञ्जे नो गुञ्जन्मधुलिहि मनोनिर्वृतिभवः ।
समन्तात्पन्थानं मुहुरपि दिगन्तान्कलयतो
गतायामाभीर्यामुदभवदधैर्यं मुरभिदः ॥२७५॥

अनुवाद—हे रसिक शिरोमणि ! हे गोपोंके अधीश्वर !! आनन्द समूहके बढ़ानेवाले !!! तुम्हारे सन्देश रूप अमृताभिषेकसे राधाके विरह व्यथासे निकलते हुए प्राणोंको वापस ला रही हूँ ॥२७२॥

अनुवाद—इसके अनन्तर मधु मथन कृष्ण ! मधुर वचनोंको आदरपूर्वक स्मरण करती हुई, विस्मयपूर्वक धीरे-धीरे मार्गमें चलती हुई, बार-बार सिर हिलाती हुई, वह आभीरी कुछ सोचने लगी ॥२७३॥

अनुवाद—धनुषरूपी भृकुटीके भङ्गको धारण करनेवाले हरिके शरीर की सुन्दरताको तथा कामदेवको भी लज्जित करनेवाले कदम्ब वृक्षपर बैठे शरीर को देखकर ब्रजकी गोपाङ्गनायें मर्यादा कुलव्रत तथा विपुल धैर्यको छोड़कर आकुल होगईं, यह उचित ही है ॥२७४॥

अनुवाद—उस आभीरी दूतीके चले जानेपर न यमुनाके तटपर, न सुन्दर वृक्षोंकी जड़में, न गूँजते हुए भोंरोंवाली निकुञ्जमें, उनका मन सन्तुष्ट होता था, चारों ओर बार-बार मार्गको दिशाओंको देखते हुए मुरशत्रु कृष्णको बड़ा अधैर्य घबराहट-सी उतालवापन होरहा था ॥२७५॥

---

(1) राधाके साथ क्रीडा भागवतमें नाम्ना नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कलङ्ककणकैतवाद्भुवनजैत्रलेखाङ्कितः
शशी कुसुमधन्वनो विजय केतुरभ्राजत ।
तमो जलधि कुम्भभूर्विरहि धूमकेतुर्दिशां
प्रसाधन सुसाधनं स्तवक कर्णभूषा निशः ।।२७६।।

क्वचिद्भ्रमरभाङ्कृतिः क्वचन चन्द्रिकाहंकृतिः
क्वचिद्विकचमल्लिका नवदला क्वचिद्वल्लिका ।
क्वचित्कुमुदिनी वनी सुरभिरेति शीतोऽनिलः
कृतं मुरभिदः शरैः स्मृतिभुवा विलूनं मनः ।।२७७।।

त्रियामायां यामे गतवति विरामे जनगतां
गतानां हृद्वामे शकलयति कामे च विशिखैः[1] ।
जगद्धैर्यध्वंसो सह ललित हंसो गमनया
रिरंसी श्री वंशोमकृत शरणं शीलितवनः ।।२७८।।

वंशीरवः

धैर्यं निर्दलयन्मनो विकलयन्प्रत्यङ्गमुत्तुङ्गयन् ।
लोमाञ्चं परिपञ्चयन्नपि मनोजन्मानमेणीदृशाम् ।

अनुवाद—कलंकके चिह्नके बहाने तीनों लोकोंको जीतनेके चिह्नसे शोभित चन्द्रमा, कामदेवका विजयध्वज शोभित होरहा है, यह समुद्रसे उत्पन्न विरहियोंको दुःख देनेवाला, दिशामें धूमकेतु तथा निशारूपी नायिकाके शृङ्गारको पूर्ण करनेका साधन गुच्छारूप कर्णभूषण है ।।२७६।।

अनुवाद—कहीं भ्रमरोंकी भाँय-भाँय, कहीं चन्द्रिकाकी हुङ्कार, कहीं खिली हुई मल्लिकायें, कहीं नवीन दलवाली लतायें, कहीं कुमुदिनीकी गन्धवाली शीतल वायु आरही है, इस प्रकार मुरशत्रु कृष्णका मन, कामदेवने बाणोंसे छिन्न-भिन्नकर दिया ।।२७७।।

अनुवाद—रात्रिके एक प्रहर व्यतीत होनेपर, विपरीत कामदेवके द्वारा बाणोंसे हृदयको विदीर्ण करनेपर ललित हंसीके समान गमन करनेवाली राधाके साथ रमण करनेकी इच्छावाले, संसारके धैर्यको नष्ट करनेवाले तथा वनको शोभित करनेवाले कृष्णने अपनी सुन्दर वंशीको उठाया ।।२७८।।

वंशी धुन

अनुवाद—धैर्यको नष्ट करते हुए मनको विकल करते हुए प्रत्येक अङ्ग

---

(1) बाणैः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन्दं मन्दमुदञ्चति स्म जगतोमस्पन्दयमंदय-
न्वातं श्रीवृषभानुभूगुणगणाशंशी स वंशीरवः ॥२७९॥

धूलोधूसरिता धरासु शयिता व्यस्ताः समस्ताः क्षणा-
दुत्पेतुर्मुरलो मनोज्ञ ललिता धाराभिरारात्स्त्रियः ।
द्राघीयोदिन दुर्धरारुण - कराक्रान्ताः समन्ताद्यथा
सान्द्राभिर्निशि चन्द्रिकाभिरचिराद् बद्धालयः शालयः ॥२८०॥

वर्त्मावर्त्म विदुर्न किन्तु मुरली संगीत भंगीकला-
मङ्गीकृत्य हरेः कुरङ्ग नयनाः सर्वा समं निर्ययुः ।
उल्लङ्घ्यापि निसर्गदुर्गपदवीं दुर्वार धारामुचां
धारा धोरणिधूयमानधृतयो नद्यः समुद्रं यथा ॥२८१॥

गोपीनांवने आह्वानम्

आययुर्मृगदृशो निशि कुञ्जं मञ्जुगुञ्जदलि संचितपुञ्जम् ।
काम कोटिकमनीयतमश्रीः श्रीपतिर्जयति यत्ररिरंसी ॥२८२॥

को विकसित करते हुए, रोमाञ्चको बढ़ाते हुए तथा हरिणकी नयनवाली गोपियों के कामदेवको भी बढ़ाते हुए, पृथ्वीको जड़ बनाते हुए और वायुको मन्द करते हुए, राधाके गुणका वर्णन करनेवाला, मधुर वंशीका निनाद, धीरे-धीरे उठने लगा ॥२७९॥

अनुवाद—तत्काल गोपियाँ, मुरलीकी मनोहर ललित धाराओंसे पृथ्वी पर गिर गईं, धूलि-धूसरित होगईं, सब क्षणभरमें अस्त-व्यस्त होगईं, बड़े दिनोंको नहीं धारण करने योग्य लाल किरणोंसे आक्रान्त शालिकी तरह रात्रिमें चारों ओरसे चिकनी सुन्दर चाँदनीसे पंक्ति बाँधे हुए होगईं ॥२८०॥

अनुवाद—मार्ग और कुमार्गको न जान सकीं, किन्तु हरिके मुरलीके संगीतकी कलाको सुनकर ये कुरङ्ग नयना गोपियाँ सब एक साथ निकल पड़ीं, जैसे नहीं रोकने योग्य धारा छोड़नेवाले बादलोंके स्वाभाविक कठिन मार्गको पार करके जल धाराओंसे धीरजको नष्ट करती हुई भी नदियाँ समुद्रमें पहुँच जातीं हैं ॥२८१॥

गोपियोंका आह्वान

अनुवाद—सुन्दर गुञ्जन करते हुए भ्रमरोंके समूहवाली कुञ्जमें वे

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

एकाकिनी भवनतो बहिराजगाम
नाम व्रजप्रणियिनी प्रियपीत चेताः ।
वर्त्मान्तरे पुनरनेकसहस्र संख्या
संख्या बभूव सविधे मधुसूदनस्य ।।२८३।।

पुरुप्रेमभाराः पुरानिर्विचारा वनं भेजिरे सुभ्रुवः कान्तिसाराः ।
प्रभासम्पदारब्ध चाम्पेयकम्पाः पृथुप्रावृडभ्रं यथादभ्रशम्पाः ।।२८४

नभः पूर्व शैलादिवापूर्वशोभाः शुभा सर्गतारा विधु प्रेमलोभाः ।
वचो ह्रीणवीणा नवीना प्रवीणावनं वेश्मतोऽगुर्गणा वल्लवीनाम् ।।२८५

अपश्यन्न यस्मिन्न देहालसेहा महाहेमहाराञ्चितं वीतगेहाः ।
मुकुन्दं सुकुन्दादमन्दाभदन्ता भृशं तापहन्ता रमकान्तकान्तम् ।।२८६

सब गोपियाँ रातमें हीं आगईं, जहाँ करोड़ों कामदेवोंसे सुन्दर शोभावाले तथा रमणकी इच्छावाले श्रीकृष्णजी विराज रहे थे ।।२८२।।

अनुवाद—प्रियके द्वारा जिसका चित्त पिया गया है, ऐसी व्रज प्रणयिनी राधा, अकेली भवनसे बाहर आगईं । हरिके पास आते-आते मार्गमें अनेक सहस्र संख्या होगई ।।२८३।।

अनुवाद—जिस प्रकार बड़े वर्षा-ऋतुके बादलोंमें बिजली शोभा देती है, उसी प्रकार अपनी प्रभासे चम्पाके पुष्पको भी कम्पित करनेवाली, अति प्रेमका भार धारण किये विचार शून्य होकर कान्ति शोभा ही मुख्य सार धारण किये सुन्दर भृकुटिवाली गोपियाँ वनमें उपस्थित होगईं ।।२८४।।

अनुवाद—पूर्व शैलसे जैसे आकाशकी शोभा होती है, चन्द्रमाके प्रेमकी शोभा अपूर्व शोभावाली ताराओंकी तरह अपने वचनसे वीणाको भी लज्जित करनेवाली प्रवीण और नवीन गोपियोंके समुदायके समुदाय घरसे वनको आ गये ।।२८५।।

अनुवाद—शरीरके आलसकी परवाह न करते हुए, घरकी इच्छा छोड़कर, कुन्दसे भी अच्छे उत्तम दाँतवाली गोपियोंने, सुवर्णके सुन्दर हारोंसे शोभित तापको नष्ट करने वाले, एकान्तमें प्रेम करने वाले कृष्णका आकर दर्शन किया ।।२८६।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तासां श्रृङ्गारशोभा

दृष्ट्वा दिष्ट्यैव दृष्ट्या कुवलय सुभगं गञ्जिताम्भोग सृष्ट्या
तुङ्गैरङ्गैस्त्रिभङ्गीं विदधत-मनुजुभ्रू विभङ्गोत्तरङ्गम् ।
मूले नीपस्य कूले दिनमणिदुहितुः[1] कोटिकन्दर्प दर्प–
द्रोहं मोहं दधुस्ताः क्वचनरचना वासना निर्जगाम ॥२८७॥

अथ संचारिणी चारु चातुरी साधुरीतिभिः ।
राधामाधाय सविधेऽभिदधे रस-वारिधेः ॥२८८॥

इयं राधाबाधाशतमपि समाधाय भवना–
द्वनान्तः कान्तारैः कथमपि तवानायि सविधे ।
खलश्रेणी मध्यान्मणिरिव समिद्धाहि शिरसो
रसोपेत्य प्रीत्यै तव ममविधेयं च व्यरमत् ॥२८९॥

अमुष्या किं ब्रूमो गति शिथिलता किं मृदुलता
निशोऽनैषोद्यामं कियति पथियाता श्रमवती ।
जहौ दाम क्वापि क्वचन मणिमञ्जीरमपरं
क्वचित्किंचित् किं तैस्त्रिभुवनविभूषा स्वयमिति ॥२९०॥

अनुवाद—कमल समूहको तिरस्कृत करनेवाली दृष्टिसे कुवलयके समान सुन्दर तथा उन्नत अङ्गोंमें त्रिभङ्गी स्वरूप धारण करते हुए, टेढ़ी भृकुटिकी भंगिमासे शोभित करोड़ों कामदेवके दर्पका दलन करनेवाले, भाग्यसे ही सुन्दर हरिका दर्शन करके वे गोपियाँ मुग्ध होगईं, बोलनेकी इच्छा न जाने कहाँ गईं ॥२८७॥

अनुवाद—इसके बाद वह दूती चतुरताकी सुन्दर रीतिसे रसके समुद्र हरिके पास राधाको लाकर कहने लगीं ॥२८८॥

अनुवाद—सैकड़ों बाधाओंका समाधान करके घरसे कठिन मार्गोंमें होते हुए वनके मध्यमें तुम्हारे पास इस राधाको लाईं हूं । दुष्टोंकी पंक्तिके मध्यसे इस प्रकार लाई, जैसे सर्पके सिरसे मणि लाई जाय, यह प्रेम करनेवाली तुम्हारी प्रीतिके लिए हो, मेरा कार्य अब समाप्त हुआ ॥२८९॥

अनुवाद—इसकी कोमलता व शरीरकी शिथिलताको क्या कहूँ. रात्रिका एक प्रहर बीता था, कुछ ही मार्ग चलनेसे थक गईं कहीं हार छोड़ा. कहीं मणि

---

(1) यमुना ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सावित्रलेखाजनि चित्रलेखाद् भूतामिताभामनुभूय भूयः ।
तिलोत्तमा नैकतिलोत्तमा सा मदालसा वीतमदालसैव ॥२९१॥
मेनामेनाङ्कलक्ष्मीमपि च पथि न ते कुर्वते लोचनानाम् ।
ये त्वासां हेमभासां सुमुखविधिवशाद दृक्पथे निष्पतन्ती ॥
रम्भा रम्भेव यासां भवति गणनया सोर्वशी चोर्वशी सा ।
श्रीसाम्यं भूरिकाम्यं मनसि वितनुते का शची का घृताची ॥२९२॥
सर्वासां भावमासां भृशमभणमिमाः प्रापिताः स्थापितास्ते
वंशीध्वानैः सुधाभिः श्रुतिबिल विलसद् द्वारतोऽन्तर्गताभिः ।
सम्भोदस्निग्धमुग्धध्वनिभिरिव हरे चातकीस्तुल्य कालं
चण्डांशुत्तापितास्ताः स्फुरदधररसैः प्रापिताः पारयन्तु ॥२९३॥
न हि स्नेहो देहे रतिरपि न गेहे स्मृतिरपि
त्वदन्यस्मिन्यस्मान्मतिरपि तदस्यामिति हरे ।

मञ्जीर छोड़े, कहीं कुछ छोड़ा, उन सबसे क्या, यह राधा तो स्वयं त्रिभुवनका भूषण है ॥२९०॥

अनुवाद—अद्भुत और अमित शोभाको देखकर चित्रलेखा सूर्यकी छाया जैसी लेखाकी तरह होगई, अनेक तिलोत्तमा जैसी आभा तिलोत्तमाने देखी, मदालसाका मदका आलस समाप्त हो गया ॥२९१॥

अनुवाद जिन्होंने इसकी स्वर्ण जैसी शोभाको देखा इनके सम्मुख मेनका इनकी शोभाके अंशके बराबर भी नहीं सुन्दर मुख होनेके कारण दृष्टिके सम्मुख आती हुई रम्भा, कदली, स्तम्भके समान जड़ होगई, गिनतीमें उर्वशी रह गई, उनकी शोभा मनमें बड़ी इच्छा उत्पन्न करती थी, शची और घृताची उनके सम्मुख कुछ नहीं थीं ॥२ २॥

अनुवाद—इन सबका भाव मैं आपके सामने बताती हूँ, जो आपके पास प्राप्त कराके स्थापित कराई है । वंशी ध्वनि से तथा कानोंके बिलमार्ग द्वारा अन्दर गई हुई सुधासे, बादलोंकी स्निग्ध और मुग्ध ध्वनिसे, चातकोंकी तरह एक साथ सूर्य किरणोंसे, तपी हुई की तरह स्फुरित ओष्ठ द्वारा प्राप्त हुई, प्रसन्न रहें ॥२९३॥

अनुवाद - शरीरमें तथा घरमें प्रेम नहीं, कुछ स्मृति नहीं, तुम्हारे अतिरिक्त किसीका भी स्मरण नहीं, हे हरे ! इसमें आपके अतिरिक्त कुछ ज्ञान नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अमूषां यास्तोषा गणितगुणदोषा निरविश-
न्नरण्ये स्वैरिण्यः किमपरमनन्यैकशरणाः ॥२९४॥

दूती-संवादः

अलमलमतुलितजल[1]वाहव्यूह सुभग कलेवर ! वाग्जालैरहमासामविरतविरह प्रतीकार परिचर्यापर्याकुलास्मि, चिरपरिजागरसागरावगाह विकलास्मि, क्वचन तरुतलावलम्बिनी [2]यामिनीमपयापयामि निद्राभि नव दरिद्रा । वचो गणविनिस्यूतमनाः श्रीमधुसूदनो दूत्या स्मित मनोहारिभूत्याह परिमोहयन् । तव सविधचरी वृषभानुकिशोरी[3] काननचरी भूयानुभवति सहचरीभावम् । एता अपि तावदाभीरवर नागर्यो धैर्यौदार्य्य सौकुमार्यैकभूमयोऽनुभूयन्ते निकटचर्य्य एव आज्ञापालनकर्य्य एव ॥२९५॥ एतासामपि जननीजननीतिविलक्षणसम्बन्ध विशेषभागिनी भाविनी भवती एताः पृच्छतु कथमेकान्तविजनतया नगरवहिस्तया च तरुणतरु खण्डमण्डितया च मण्डप इव क्वचिदपि निकुञ्जपुञ्जरञ्जित वने समासीनमुदासीनमिव मामनुमादयति ।

गुण दोषको समझनेवाली कहीं वनमें चलीं गईं अब इनका आपके अतिरिक्त कोई शरण नहीं है ॥२९५॥

दूती संवाद

अनुवाद –अतुलित मेघ समूहके समान सुन्दर शरीरवाले आपके अधिक कहनेसे क्या, मैं इनके निरन्तर वियोगके दुःखका उपाय व सेवा करनेके कारण व्याकुल होरही हूँ, बहुत जागनेके कारण दुःखी होगई हूँ, निद्रा नहीं आनेके कारण विकल हूँ कहीं पेड़के नोचे सहारा लेकर रात्रि व्यतीत करूँगी (कृष्ण) उसकी वाणीसे आकृष्ट मन होकर और दूतीके मुस्कानकी शोभासे मुग्ध होकर बोले - तुम्हारे समीप रहनेवाली वृषभानुसुता राधा वन चारिणी होकर सहेली भावको निभा रही है और यह आभीर गोपियाँ धीरता सुकुमारता उदारता परममूर्ति निकट रहनेवाली आज्ञापालन करनेवाली यह सब प्रतीत होरही है इन सबका मातृत्व लोक व्यवहार अन्य सम्बन्धसे विशेष कल्याण करनेवाली आप इनसे पूछें—

---

(1) मेघः ।
(2) रात्रिम् ।
(3) राधा ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वावदूके ! भवति तदहो न लौकिकं न वैदिकं चैतत् । दूती तद्भणित मन्यार्थयन्ती विज्ञापयामास ॥२९६॥

उभे एताः खलु दास्य एव, आसामिनत्वादुपवन्नमेवोदासीनत्वम् । कथमुदासीनमौदासीन्यमेतासु प्रकाशयति ॥२९७॥

उन्मूलयति हृन्मूलं मुरली [1]खुरली तव ।
उदासीनत्वमासीनो वने त्वमवगाहसे ।२९८॥
नन्दनन्दन ! ते वंशी वतंसीकृत्य निःस्वनम् ।
समुदासीनयत्येव हरिणीरपि कामिनीः ॥२९९॥

प्रवालश्री भारं लघयति पदाम्भोरुहरुचि-
स्तिरश्चक्रे चञ्चन्नखरकरचक्रं मणिरुचः ।
निचोलं ते चामीकरकिरणवामीयतितरा-
मुदासीनो नो चेत्त्वमसि विमुखो वस्तुषु कथम् ॥३००॥

जनशून्य एकान्त तथा नगरके बाहर बड़े-बड़े वृक्ष समूहसे शोशित मण्डपको तरह किसी निकुञ्ज समूहसे शोभित वनसे उदासीनकी तरह बैठे हुए मुझको क्यों मत्त बना रहीं हैं, हे बोलनेवाली श्रीमती ! यह न लौकिक है और न वैदिक है, दूती ने इन बचनोंका दूसका अर्थ करते हुए कहा—॥२९६॥

अनुवाद—ये दोनों ही आपकी दासियाँ हैं इनके स्वामी हानेके कारण आपकी उदासीनता उचित ही है, इनमें उदासीनताको क्यों प्रकाशित करते हैं ॥

अनुवाद—खुरतीति खुरः, तं लिनातीति खुरली=खोदनेवाली, आपकी मुरली हृदयकी जड़को खोदनेवाली है, उदासीनतापूर्वक वनमें बैठे हुए आप अवगाहनकर रहे हैं ॥२९८॥

अनुवाद—हे नन्द नन्दन ! तुम्हारी वंशी शब्दको भूषित करके कामिनी हिरनियोंको भी सबसे उदासीन बना रहीं है ॥२९९॥

अनुवाद—आपके चरणकमलोंकी शोभा प्रवालकी शोभाको तिरस्कृत करती है, चमकते हुए नखवाले हाथ मणियोंकी शोभाको लघुकर देते हैं, आपका पीत दुपट्टा सुवर्णकी किरणोंको भी दवा देता है नहीं तो आप वस्तुओंमें उदासीन क्यों होते ॥३००॥

---

(1) खुरैः सह लाति पौनःपुण्येन यत्र—खुर+ला+क+ङीप्
(शस्त्र तथा धनुषका सैनिक अभ्यास) आप्टे—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्ण-वचनम्

अथ दूतीवाग्भङ्गीमवधाय विस्मयमङ्गीकुर्वाणो हरिराह । अयि खलु दूति तव वाग्भङ्ग्यैव गोपकुरङ्गीदृशो वनजुषो विधीयन्ते स्म । दूतीचतुरशिरोमणे नमस्तुभ्यम् । अहमतः कुत्रापि विश्रान्तिमनुभवामीति तथा विदधे । हरिराभीरीभिरभितो विहारिणीभिः, सौदामनीभिरिव निबिडनवाम्बुवाहः, करेणुभिरिव करियूथपस्ताराभिरिव ताराधिपः, परिवेष्टितो वनभवि विजहार बहुवेलम् ॥३०१॥

जालं मनः प्रेमपयोधिमानमुद्धर्त्तुकामेन मनोभवेन[1] ।
व्यतानि लोमाञ्चमिषान्मुरारेर्गोप्याश्च गाढं परिरम्भणेन[2] ॥३०२॥

प्रौढप्रेमतरुप्रसूनमुकुलप्रायं प्रमोदार्द्रयोः
प्रस्वेदाम्बुकणावलम्बपुलकाभोगं बहिर्भावयन् ।
अन्योन्याधरमाधुरीजलनिधावन्योन्यमाधापयन्-
राधामाधवयोश्चिरं गुरुपरीरम्भः स्म सम्भासते ॥३०३॥

अनुवाद—इसके पश्चात् दूतीकी वचन चातुरीको समझकर आश्चर्य करते हुए हरि बोले—अयि दूती ! तुम्हारी वाक् चातुरीने ही गोप-पत्नियोंको वन विहारिणी बना दिया है । हे दूती चतुर शिरोमणे मैं तुमको नमस्कार करता हूँ । अब मैं कहीं थोड़ा विश्राम करलूँ ऐसा ही मैं करूँगा । बिजलीसे साथ घने नये बादलोंकी तरह, हथिनियोंके साथ गज यूथपतिकी तरह, ताराओंके साथ चन्द्रमाकी तरह आभीर पत्नियोंके साथ उसी तरह युक्त होकर बहुत देर तक वनमें घूमते रहे ॥३०१॥

अनुवाद—मनके प्रेमरूपी समुद्रका अभिमान नष्ट करनेकी इच्छावाले कामदेवने रोमाञ्चके बहाने मुरारि और गोपीके आलिङ्गनके द्वारा एक जाल फैला दिया ॥३०२॥

अनुवाद—बढ़े हुए प्रेमरूपी वृक्षके पुष्प कलिकाके समान प्रेमसे आर्द्र दोनोंका स्वेदरूपी जल कणके द्वारा पुलक विस्तार बाहर निकालते हुए दोनोंके अधर माधुरीरूप समुद्रमें दोनोंको डुबोते हुए राधा और माधवका देर तक बहुत बड़ा आलिङ्गन प्रतीत होरहा था ॥३०३॥

---

(1) कामेन । (2) आलिङ्गनेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नानाक्रीडावर्णनम्

पश्यन्कामपि सस्मितं मधुमुचा वाचा विसिञ्चन्परा-
माकर्षन्नपरां पटैः स्तनतटे काञ्चिन्नखेनोल्लिखन् ।
चुम्बन्कामपि नाम कामपि समालिङ्गन्स तुङ्गस्तनीं[1]
रामोल्लासवशीकृतो दिविषदां चिक्रीड चूडामणिः ॥३०४॥

अहो कौशलमाभीरकिशोरीकेलिसम्पदः ।
कायव्यूहमुरीचक्रे[2] चक्री यदनुभूतये ॥३०५॥

प्रतिगोपीद्वयमध्यस्थितमाधवरासमण्डलं रेजे ।
कनकसरोजावलितं जगत इवन्दीवरं दाम ॥३०६॥

व्रजमहिलापुटपुटितं व्रजपतितनुराजिमण्डलं रेजे ।
वृतमिव कनकलताभिः श्यामलमणिकन्दलीचक्रम् ॥३०७॥

विविध क्रीड़ाओंका वर्णन

अनुवाद—किसीको मुस्कराकर देखते हुए मधु बरसाती हुई, वाणीसे किसीको सींचते हुए, किसीको वस्त्र पकड़कर खींचते हुए, किसीके स्तनतटपर नखसे लेखन करते हुए, किसीका चुम्बन करते हुए, उच्च स्तनवाली किसीका आलिङ्गन करते हुए, गोपियोंके आनन्दसे वशमें होकर देव शिरोमणि क्रीड़ाकर रहे थे ।।३०४

अनुवाद—अहो गोप-किशोरियोंकी क्रीड़ा सम्पत्तिकी कैसी शोभा है, भगवान् कृष्णने जिसका अनुभव करनेके लिये बहुतसे शरीर धारण करना स्वीकारकर लिया ॥३०५॥

अनुवाद—प्रत्येक गोपियोंके बीच स्थित होकर माधवने रासमण्डलको शोभित किया, संसारके सुवर्ण कमलोंसे शोभित नीलकमलकी तरह उसकी शोभा थी ॥३०६॥

अनुवाद—सुवर्णकी लताओंसे मणि कलिका समूहकी तरह व्रजकी गोपियोंके मध्य कृष्णके शरीरका मण्डल शोभित होरहा था ॥३०७॥

---

(1) उन्मतकुचाम् ।
(2) स्वीचक्रे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चक्रमुल्लसतति गोपकिशोरीवर्ष्मभिर्घनरुचोपघनानाम् ।
चन्द्रकालिभिरिवाहिरिपूणां बर्हमण्डलमखण्डमण्डले ॥३०८॥

रासक्रीडा

राधया सह रराज माधवो मध्य एव मदमुग्धसुभ्रुवाम् ।
वर्द्धमानपरिधेरिवान्तरे रोहिणीसहितरोहिणीपतिः ॥३०९॥
कल्पितं रहसि तत्क्षणक्षणस्पन्दनन्दसुतसुन्दरीजनैः ।
मेघमण्डलमकम्पशम्पया सम्प्रयातमिव चक्रमाबभौ ॥३१०॥

देवदशा

शिञ्जन्मञ्जीरकाञ्चीमणिमयवलयं गण्डपालीविलोलो-
त्तंसं दत्तप्रशंसं मुहुरपि हरिणा नर्त्तितं वल्लवीभिः ।
गीर्वाणार्वनि[1]नाद्या दिशि दिशि कुसुमं जातहर्षा ववर्षुः
केचित्केचिच्च चित्रार्पितवपुष इवातेनिरे श्रेणिबन्धम् ॥३११॥

अनुवाद—गोपियोंके शरीरके द्वारा कृष्ण ऐसे शोभित थे जैसे घन जैसी शोभासे छोटे-छोटे बादलोंके समूहका चक्र उस अखण्ड मण्डलमें मयूरोंके पूँछके चदोलोंसे पुच्छ मण्डल शोभित हो ॥३०८॥

रास-क्रीड़ा

अनुवाद—मदसे मुग्ध गोपियोंके मध्यमें राधाके साथ माधव ऐसे शोभित थे जैसी बढ़ी हुई परिधिके भीतर रोहिणीके साथ चन्द्रमा शोभित हो ॥३०९॥

अनुवाद—उस समय आनन्द विभोर होकर नन्दसुत कृष्णका गोपियोंके साथ रासमण्डल इस प्रकार शोभित हुआ जैसे नहीं काँपती हुई बिजलीके साथ मेघ मण्डल शोभित हो ॥३१०॥

देव-दशा

अनुवाद—बजते हुए मञ्जीर काञ्ची मणिमय कङ्कड़ तथा गण्डवाली पर हिलते हुए भूषण हैं जिनमें प्रशसा करते हुए गोपियोंके साथ कृष्णने ऐसा नृत्य किया जिससे देवता किन्नरादिने प्रसन्न होकर दिशाओं-दिशाओं में फूल बरसाये और कोई-कोई चित्रमें लिखे शरीरकी तरह पंक्ति बाँधे खड़े रहे ॥३११॥

---

(1) अर्वानिना अश्वमुखाः किन्नराः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रोणीबिम्बेषु काञ्चीकलकलकपटाद्युध्यतो वल्लवीना-
मुच्चैरुच्चैरवधि स्मरधरणिपतेर्डिण्डिमाडम्बरेण ।
अप्यासां वाहिनीनामिव समरसमालोकनात्तोषभाजः
प्रेमाम्भः पूरदम्भादुपचित्तमभितः पुष्पवर्षोत्करेण ।।३१२।।

वेणीश्रेणीभिरेणी[1]शिशुचपलदृशां ताडितं कैटभारे-
र्देहेष्वत्यर्थनृत्यभ्रमिरभसभरैः सर्वतः सर्पिताभिः ।
चेतोभूभूमिजानेश्चिरविरहवशाद्रोषभाजः कशाभिः
कुर्वाणस्येव दण्डं पुनरिह विरहाभावसम्भावनाय ।।३१३।।

अन्तर्धान वर्णनम्

अथ मधुरिपुराभीरीरासरभसरसमनुभूयासां विरहवशात्प्रेमाण मुद्दीपयिष्यन्निव विरहविक्लवोक्तिमाकर्णयिष्यन्निव राधायामसाधारणं प्रेम संदर्शयन्नन्तर्दधे सह तया स तत्रैव ।।३१४।।

अनुवाद—गोपियोंके कटि प्रदेशपर काञ्चीके कल-कल शब्दके बहाने युद्ध करते हुए कामदेव राजाकी इस सेवाके संग्रामको देखनेसे सन्तुष्ट उनका महान् शब्द होरहा था, प्रेमसे जल प्रवाहके बहाने चारों ओर पुष्पोंकी वर्षाका बहुत बड़ा समारोह बन गया था ।।३१२।।

अनुवाद—मृग शिशुके समान चपल नेत्रवाली गोपियोंसे वेणी श्रेणा (केशों) से अति नृत्यमें घूमनेके वेगके भारसे सब ओर हिलती हुई गोपियोंके द्वारा कैटभारि कृष्णके शरीरमें केशोंसे जो ताड़न किया वह मानों चिरकालके विरहसे क्रोधित कामदेवको विरहको अभावको संभावनासे कोड़ोंसे ताड़ित किया या ।।३१३।।

अन्तर्धान-वर्णन

अनुवाद—इसके अनन्तर मधुरिपु कृष्ण गोपियोंके रासके आनन्दका अनुभव करके विरहके कारण प्रेमको उद्दीपित करते हुएकी तरह विरह विक्लव वचनोंको सुननेकी मानों इच्छासे राधामें असाधारण प्रेमको प्रकट करते हुए राधाके साथ अन्तर्हित होगये । ३१४।।

---

(1) मृगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राधया सह विहार

पुलिने पुलिने वने वने यमुनायाश्च तटे तटे चरन् ।
विजहार सहैव राधया स्पृहणीयः स्पृहयेव मूर्त्तया ॥३१५॥

कुसुमाय च पल्लवाय चैषा स्पृहयामास कुतूहलेन यस्मै ।
उपहृत्य जलस्थलद्रुमेभ्यस्तनुमस्याः किलभूषयन्स तेन ॥३१६

विदितश्रमवारिबिन्दुवृन्दं वपुरिन्दीवरचारुलोचनायाः ।
क्षणमम्बुरुहेण सोदरेण क्षणमावीजयदेव दानवारिः ॥३१७॥

घनयोः स्तनयोश्चकार हारं कवरीगर्भकदाम चातताम् ।
जघनस्य च मेखलां व्यतानीत्त्रुटितेषु स्फुटमेषु मल्लिकाभिः ॥३१८॥

श्रवणे जघने स्तने च मल्लीमयभूषाः स्वयमेव संविधाय ।
श्रमसंचरसंभ्रमेण भूयः कतिधामार्ज्जि मुधा न माधवेन ॥३१९॥

राधाके साथ विहार

अनुवाद—पुलिन-पुलिनपर, वन-वनमें, यमुनाके तट-तटपर, घूमते हुए, मानो मूर्ति धारण किये हुए, इच्छाकी तरह राधाके साथ विहार करते रहे ॥३१५

अनुवाद—फूलको अथवा पत्रको जिस किसीके लिए कुतूहलसे उसने इच्छाकी, जल स्थल व वृक्षसे लाकर उसीसे इसके शरीर उन्होंने भूषित किया ॥३१६॥

अनुवाद—कमल सदृश नेत्रवाली राधाके श्रमके स्वेद बिन्दुवाले शरीर की थोड़ी देर कमलसे अथवा क्षणभर उसीके समान किसी अन्यसे कृष्णने हवा की ॥३१७॥

अनुवाद—घने स्तनोंपर हारकर दिया, केश वेशवाले दाम बन्धनको विस्तृतकर दिया, जङ्घाओंकी मेखलाको भी विस्तृतकर दिया, इनके टूट जानेपर मल्लिकासे इन्हें ठीककर दिया ॥३१८॥

अनुवाद—कानोंमें जघन प्रदेशपर, स्तनपर मल्लिकाके भूषणोंको स्वयम् ही ठीक करके श्रमसे भ्रमीके कारण कितने ही बार माधवने बार-बार उनको स्वच्छ किया ॥३१९॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रभसश्रमगौरवाकुलाग्रालकसज्जीकरणेऽभिषज्यमानः ।
स तु तान्द्रुतमेव दुर्व्यवस्थांश्चपलानेव चकार कम्प्रपाणिः ॥३२०॥
मृगनाभिरसेन राधिकाया मुखचन्द्रे मकरीं चिकीर्षुरासीत् ।
न शशाक चिरेण कर्तुमीशोऽप्यहह स्वेदतरङ्गधौतलेखाम् ॥३२१॥
त्रुटितेऽपि हठेन गाढनीवीगुणबन्धे मणिमेखला मयूखे ।
मुहुरम्बरशङ्कया स तेन बत नीवीपरिमोचनानुबन्धाम् ॥३२२॥
घनयोः स्तनयोः सुपीनयोरपि मुक्ताफलदामहीनयोः ।
निदधे न हि दाम माधवो घनघर्माम्भसि तद्भ्रमाकुलः ॥३२३॥

गोपीनां दशा वर्णनम्

अन्तर्दधति मधुद्विषि हिमरोचिषि[1] रोचमानेऽपि ।
विगतासव इव सर्वा निर्व्यापारास्तमो ददृशुः ॥३२४॥

अनुवाद—वेग श्रम और गौरवसे आकुल हुए आगेके बालोंको ठीक करनेमें लगे हुए माधवने शीघ्रही हिलते हुए बिगड़े हुए उनको काँपते हुए हाथोंसे ठीककर दिया ॥३२०॥

अनुवाद—कस्तूरीके रससे राधाके मुखचन्द्रपर वह मकरी बनना चाहते थे परन्तु स्वेदकी तरङ्गसे रेखाओंके धुल जानेके कारण देरमें भी उसको नहीं बना सके ॥३२१॥

अनुवाद—दृढ नीवीका बन्धन टूटनेपर मणि मेखलाकी किरणोंसे वस्त्रकी भ्रान्ति होनेपर वह नीवीका परिमोचन नहीं जान सके ॥३२२॥

अनुवाद—मुक्ताफलकी मालासे हीन तथा घन और पीन स्तनोंपर स्वेदकी जल बूँदोंमें मुक्ताफलकी भ्रान्ति करके माधव मुक्ताहार न डाल सके ॥३२३॥

गोपियोंकी दशाका वर्णन

अनुवाद—इस प्रकार राधाका शृङ्गार करते हुए कृष्णके अन्दर वनमें रहते हुए और चन्द्रमाके प्रकाश करते हुए भी सब गोपियाँ प्राणहीनकी तरह व्यापार शून्य होकर अन्धकार ही देखने लगीं ॥३२४॥

---

(1) चन्द्रे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निद्रितेव विनिपत्य भूतले धूलिधूसरवपुः समाकुला ।
एष याति स इति प्रलापिनो काऽपि नीरजमुखी समुत्थिता ॥३२५

भूतले पतितया शुचोढया स्वप्नतो हरिमुपेत्य मूढया ।
शून्य एव परिरभ्य निर्भरं दो[1]र्द्वयेन परयापि निर्वृतिः ॥३२६॥

ध्यानलब्धपरिरब्धमुकुन्दानन्दतुन्दिमवलत्तनुवल्ली ।
काऽपि दीर्घनयना नु सुदीर्घयोगिनीव परमैहत नैव ॥३२७॥

माधवेन रयतोऽभिधावता धावितुं सपदि साकमक्षमा ।
अन्वगात्तमतिमन्दगामिनी देहभारमपहाय कामिनी ॥३२८॥

धूलिधूसरितचारुमल्लिका वल्लिका इव निकामसुभ्रुवः ।
अभ्रतो विगलिता इवालयो विद्युतां भुवि न ता विरेजिरे ॥३२९

अनुवाद—कोई कमलके समान मुखवाली निद्रितकी तरह भूमिपर गिरकर आकुल होकर यह जारहा है ऐसा प्रलाप करती हुई उठी ॥३२५॥

अनुवाद—कोई स्वप्नमें हरिको पाकर मूढ़ होकर शोकसे भरकर भूमि पर गिर गईं, और शून्यमें ही दोनों हाथोंसे निर्भर आलिङ्गन करके अत्यन्त सन्तुष्ट होगई ॥३२६॥

अनुवाद—ध्यानमें कृष्णको प्राप्त करके और परम आनन्दसे शरीरको प्रफुल्लित करके कोई दीर्घ नेत्रवाली महायोगिनीकी तरह आनन्दित होकर इच्छा शून्य होगई ॥३२७॥

अनुवाद—वेगसे दौड़ते हुए माधवके साथ दौड़नेमें असमर्थ होती हुई अतिमन्द गामिनी कामिनी राधा देहके भारको न मानकर उनके पीछे-पीछे गई ॥३२८॥

अनुवाद—धूलिमें धूसरित हो मल्लिका जिसकी ऐसी लताकी तरह कोई सुन्दर भृकुटिवाली मेघसे निकली विद्युत पंक्तिकी तरह पृथ्वीपर गिरी हुई शोभित होती थी ॥३२९॥

---

(1) भुजद्वयेन ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक एव मिलने मुरवैरी तन्मयं तु विरहे जगदेव ।
इत्यमन्यत वरं विरहं[1] सा कापि साधुगतिगञ्जितहंसा ॥३३०

वनेऽन्वेषणम्

काकलीभिरचिरेण कोकिला व्याकुलाः श्रुतगताभिरङ्गनाः ।
शूलपालिभिरिवात्यहंक्रिया झंक्रियाभिरलयोऽप्यकुर्वत ॥३३१
सप्रबोधमतयो बत शून्या वीक्ष्य सर्वहरितः परितस्ताः ।
सैकते पदपदानि पदव्यां कुर्वते स्म मृगितानी मृगाक्ष्यः ॥३३२

चिह्नावलोकनम्

अंकुशध्वजसरोजसुवज्रव्यज्यमानचरणाङ्कमशङ्काः ।
वीक्ष्य वीक्ष्य पुलिने यमुनायाः काननानि विविशुः कुसुमानाम् ॥३३३
आलि पश्य वनमालिपदाङ्कं वज्रपंकजसृणिध्वजधाम ।
ऊचुरेष सुखयत्यपि गाढं पीडयत्यपि मिथो मुहुरेवम् ॥३३४॥

अनुवाद—मिलनमें कृष्ण एकही रहता है और वियोगमें सारा जगत् कृष्णमय होजाता है इसलिये सुन्दर गतिसे हंसको तिरस्कृत करनेवाली किसी गोपीने मिलनसे विरहको अच्छा माना ॥३३०॥

वनमें खोज

अनुवाद—कानोंमें पड़ी हुई कोकिल काकलीसे गोपियाँ व्याकुल होरहीं थी, शूल पंक्तिसे अहङ्कारकी तरह भ्रमरोंने अपनी झङ्कारसे भी गोपियोंको व्याकुल कर रक्खा था ॥३३१॥

अनुवाद—समझदार गोपियाँ चारों ओर सब दिशाओंको शून्य देखकर रेतीले मार्गमें कृष्णके पदचिन्होंको वह मृगनेत्रवाली ढूँढ़ रही थी ॥३३२॥

चिह्नोंका अवलोकन

अनुवाद—अंकुश ध्वज कमल वज्र चिन्होंसे कृष्णके चरण चिह्नोंको देख-देखकर निश्शङ्क होकर यमुनाके किनारे पुष्पोंके वनमें घुस गईं ॥३३३॥

अनुवाद—हे सखि ! देखो, ये वज्रकमल अंकुश ध्वज ये वनमाली कृष्णके चरण चिह्न हैं और कहतीं थीं कि ये चिह्न देखनेपर सुख देते हैं और फिर वियोगके कारण पीड़ा भी देते हैं ॥३३४॥

---

(1) संगम विरह विकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः
सगेसैवतथैका विरहे सा तन्मयं जगत् । [कवेः सूक्तिः]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इदमच्युतपादलक्ष्मणः सविधे लक्ष्म परं च लक्ष्यते ।
गुरुगुल्फपदेऽल्पमग्रतः सखि दुःखोपरि दुःखमादधे ॥३३५॥

केवलं मधुरिपोरिदमस्मिन्पादयोः पदमुदेति विगाढम् ।
प्रेयसीमयमुवाह सरागस्त[1]र्कयामि लतिकामपि नागः ॥३३६॥

रसालसां प्रेमवशां विशालश्रोणीभरां पीनपयोधरां च ।
निष्कम्पशम्पामिव वारिवाहः समं जडिम्ना खलु तानुवाह ॥३३७॥

अस्पन्दमानाङ्गमबन्धनीवी स्विद्यत्तनून्निद्रतनूजराजि ।
हैमीव रेखा निकषान्तराले बालेयमङ्के निममञ्ज शंके ॥३३८॥

पुनः पदानीह तयोः पदानां पुरो भवन्त्यालिदृशोः पदानि ।
रसालसत्वादवशो न शेके पदात्प्रयातुं स पदान्तराणि ॥३३९॥

अनुवाद—ये कृष्णके चरण चिह्नके पास दूसरा चिह्न दीखता है, हे सखि ! ये बड़े गुल्फवाले पदपर आगे छोटा है ये दुःखके ऊपर दुःख देनेवाला है ॥३३५॥

अनुवाद—केवल इसमें मधुरिपु कृष्णके पैरोंके बीचमें गहरा पद प्रतीत होरहा है, इससे रागयुक्त होकर यह किसी प्रेयसीको लेगये हैं, हाथी लताको जैसे लेगया हो यह मैं सोचती हूँ ॥३३६॥

अनुवाद—रससे अलसाई प्रेमके वशीभूत विशाल श्रोणीवाली पीन स्तनवालीको नहीं हिलने डुलनेवाली जड़तायुक्तको ऐसे लेगये जैसे बादल निष्काम बिजलीको धारण करें ॥३३७॥

अनुवाद—अङ्गोंको नहीं हिलाकर, नींवीके बन्धन-रहित स्वेदयुक्त शरीर तथा रोमाञ्चयुक्त वह बाला गोदमें ऐसे बैठी है जैसे निकषोपल (कसौटी) पर सोनेकी रेखा चमक रही हो ॥३३८॥

अनुवाद—हे सखि फिर उन दोनोंके पदोंके चिह्न आगे भी दृष्टिके सामने आए फिर आनन्दके कारण अवश होकर आगे वह स्थानसे नहीं चल सके ॥३३९॥

---

(1) मन्ये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पणीकृतप्राणकुलादिकाया यो दृष्टिभारं मम नैव सेहे ।
उवाह यामालि तमालनीलः स एव सृष्टेरुपरीयमिष्टा ॥३४०॥

इदमालि धृतालिमालकं हरिलीलाकमलं महीतले ।
महदस्त्रामिवानुभूयते भुवनोन्माथिमनोजभूपतेः ॥३४१॥

विदधे रभसेन ताडनं कतिधानेन मुधा न माधवः ।
समवीजयदप्युरःस्थलीः सखि केलीष्वमुनैव कोटिधा ॥३४२॥

अयि नीरजमेदिनीतले पतनं सत्यपि साधु जीवने ।
नहि जीवनमेव जीवनं प्रिययोगं हि वदन्ति जीवनम् ॥३४३॥

सखि शोण[1]मशोकपल्लवं कलयामास नवं स पल्लवः ।
अथ कञ्ज[2]ममुञ्चदञ्जसा[3] सुदृशासज्य कथापि मामिव ॥३४४॥

अनुवाद – प्राण और कुलादिको त्यागनेवाली मेरी दृष्टिके भारको भी जो न सह सके वह तमालके समान नीलवर्णवाले जिसको लेगये वही इस सृष्टिके ऊपर सर्वाधिक भाग्यवाली है ॥३४०॥

अनुवाद-हे सखि ! भ्रमर मालाको धारण किए यह पृथ्वीपर कृष्णका नीला कमल है जो भुवनको मन्थन करनेवाले कामदेव राजाका बड़े अस्त्रकी तरह प्रतीत होरहा है ॥३४१॥

अनुवाद –माधवने कितनी बार इससे व्यर्थ ही वेगसे ताड़न किया है, हे सखि ! इसीसे क्रीड़ामें अनेकों बार उरःस्थलका बीजन भी किया है ॥३४२॥

अनुवाद—अयि ! नीरज जीवन होनेपर पृथ्वी तलपर गिरना भी अच्छा है क्योंकि जीवनको ही जीवन नहीं कहते किन्तु प्रियके योगको ही जीवन कहते हैं ॥३४३॥

अनुवाद - हे सखि ! उस पल्लवने नवीन लाल अशोकके पल्लवको अच्छा समझा, किसी सुन्दर नेत्रवालीसे मिलकर मेरी तरह उसने कमलको छोड़ दिया, उस राधारूप सुन्दर पल्लवको पाकर मुझ प्राचीन पल्लवको कृष्णने छोड़ दिया, यह ध्वनि है ॥३४४॥

---

(1) रक्तं । (2) पद्मं ।
(3) सरलतया ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उरसि श्रवसि[1] स्वयं दधे शतधास्येऽपि करे सहस्रधा ।
अधुना स्वयमौज्झदम्बुजं प्रभुरागो हि न सर्वदा स्थिरः ॥३४५॥

नखक्षतादि वर्णनम्––

मम शोकमशोक खण्डय स्वयशोभिश्च दिशोऽभिमण्डय ।
सफलीकुरु नाम तन्निजं प्रथयालोकपथं मधुद्विषः ॥३४६॥

इदमार्द्रमुदीक्षते नखक्षतमङ्गे तव मञ्जुवञ्जुलः ।
यददत्तकरं त्वयीश्वस्त्वमशोकस्त्वियतैव गीयसे ॥३४७॥

त्यज मौनमशोक शोभते नहि मौनव्रतमार्त्तिवर्त्तिषु ।
इयमाह हरेः समागमं विरहः प्रापि तवैव दुःसहः ॥३४८॥

त्वमशोक शोकदहनैः समाकुलो ननु शोणशोचिरपुराणपल्लवैः ।
विरहो हरेरिह तु हेतुरस्य वा सहचारिणीचरणघातयातना ॥३४९॥

अनुवाद—जिस कमलको हृदयपर, कर्णपर, मुखपर, हाथपर, सैंकड़ों बार, सहस्रों बार धारण किया, उसी कमलको स्वयं छोड़ दिया, प्रभुका राग सर्वदा स्थिर नहीं है ॥३४५॥

नखक्षतादि-वर्णन

अनुवाद—हे अशोक ! मेरे शोकको दूर करो, अपने यशसे दिशाओंको शोभित करो, अपने नामको सफल करो, कृष्णके दर्शन-मार्गको प्रकट करो ॥३४६

अनुवाद—सुन्दर अशोक तुम्हारे शरीरपर यह आर्द्र नखक्षत दिखाई दे रहा है, ईश्वर ! तुम्हारे ऊपर किसीने हाथ नहीं लगाया, इतनेसे ही तुम अशोक कहलाते हो ॥३४७॥

अनुवाद—हे अशोक मौन छोड़ दो, दुःखी जनोंमें मौन व्रत शोभा नहीं देता, यह हरिका प्राप्त समागम बता रही है, उसका विरह तुमको भी दुःसह है ॥३४८॥

अनुवाद—हे अशोक तुम भी शोककी अग्निसे आकुल हो क्योंकि नव पल्लवोंकी लाल शोभासे युक्त हो, तुमको हरि विरह है, सहचारिणी राधाके चरणोंके घातकी यातना तुमको मिल चुकी है, जिससे तुम्हारी शोभा लाल है, अब तुमको उनका वियोग है ॥३४९॥

---

(1) कर्णे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मयि दूयमानमनसि त्वमीदृशो प्रियवर्त्म वर्त्मविदपि ब्रवीषि न ।
इति मञ्जुवञ्जुल तवाञ्जनाविलं कुयशोऽभिशोभितमभूदलिच्छलि ॥

सुमनो विनोदितमनो मनीषिभिः[1]
सुमनास्त्वमेव सुमनोभिधीयसे ।
हरिवर्त्म वर्त्तय पुरोनुभूयते,
सहसैव येन सरसीरुहेक्षणः ॥३५१॥

सुमनो यदि त्वमपि मौनमीहसे,
निरणायि नो दिनदुरीहतैव तत् ।
अनूभूयते हि सुमनाश्च दुर्मना–
खलु दुर्मनाश्च सुमना दिनक्रमात् ॥३५२॥

अचरत्स मे सहचरः क्व चातुरो-
मपि शंस तत्सहचरि प्रसीद नः ।
सहचारिणी हृदयवेदनां पुनः-
सहचारिणी जगति वेद नापरः ॥३५३॥

अनुवाद—वियोगसे दुःखी मनवाले मुझको तुम प्रियका मार्ग जानते हुए भी नहीं बताते, तुम ऐसे होगये, हे सुन्दर अशोक ! इसीलिए भ्रमर पंक्तिके बहाने अञ्जनकी तरह मलिन अपयशसे तुम युक्त होगये हो ॥३५०॥

अनुवाद—हे सुमन ! तुम विद्वानोंके मनका विनोद करते हो । तुम ही अच्छे मनवालोंके द्वारा सुमन अच्छे मनवाले कहे जाते हैं । हरिका मार्ग बताओ जिस मार्गसे वह कमलके समान नेत्रवाले गए हैं वह मार्ग तुम्हें मालुम है ॥३५१॥

अनुवाद—हे सुमन ! यदि तुम भी मौन धारणकर रहे हो तो हमें निश्चय होगया कि हमारे दिन अच्छे नहीं हैं, दिनोंके क्रमसे कभी अच्छे मनवाले बुरे हो जाते हैं और बुरे मनवाले अच्छे हो जाते हैं ॥३५२॥

अनुवाद—मेरा साथी कहाँ हैं, उसकी चातुरी बताओ, तुम उनके साथी हो हमपर प्रसन्न हो जाओ, हृदयमें साथ रहनेवाली वेदनाको साथी ही जान सकता है, संसारमें दूसरा नहीं जान सकता ॥३५३॥

---

(1) विद्वद्भिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इयतासि कौसुमपरागरागिणी-
सहसैव कण्टकितदेहभागिनी ।
वद येन मे सहचरः पथाचरद्-
गतिचातुरीं रसिकराजशेखरः ॥३५४॥

तव दुःखभाक्त्वमिव रूपमीक्षते
हरिविप्रयोगविधुरा त्वमप्यसि ।
इति चन्द्रमास्तुहिनतुन्दबिन्दुभि-
स्तव भाष्यसंभृतमभूद्दलेक्षणम् ॥३५५॥

विभिन्नवृक्ष वर्णनम्

सहकार[1] कारय सहैव तेन मे
समुदीक्षणः क्षणमविक्षतक्षणम् ।
तव मञ्जरी मधुरपिञ्जरीभवन्मुख-
मञ्जुरीति विजरीहरीति सः ॥३५६॥

अतिसौरभ त्वमसि तस्य सौरभैरति-
गौरवैर्विरहतोऽतिसौरभः ।

अनुवाद—इतनेसे ही तुम पुष्प-परागसे प्रेम करनेवाली तथा कण्टकित देहवाली होगई हो मेरा साथी रसिकराज शिरोमणि कहाँ है बताओ, किस मार्गसे गतिमें चतुरताकर रहा है सुमना शब्द स्त्रीलिङ्ग भी है ॥३५४॥

अनुवाद—हरिके वियोगसे तू भी दुःखी है, दुःखी जैसे तेरे रूपको चन्द्रमा भी तुषारके मोटे बिन्दुओंसे देख रहा है तेरा पत्ररूपी नेत्र इस बातको विस्तृत भाष्य रूपसे बता रहा है ॥३५५॥

विभिन्न वृक्षोंका वर्णन

अनुवाद—हे सहकार तू देखनेवाला है, थोड़ी देर अखण्डित रूपमें उनसे हमें मिला दे, तेरी मञ्जरीसे मधुर पिञ्जरित होते हुए मुखकी शोभाके साथ वह विशेष विहारकर रहा है ॥३५६॥

अनुवाद—तुम उसके अति गुरु सौरभसे ही अति गन्धवान् हो, शोक

---

(1) आम्र ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्षतशोचने हि भवतो बिलोचने-
कृतरोचने त्वयि विषादमोचने ।।३५७।।

वनमालमालक निभाल कैटभ-
द्विषदङ्गसंगममृते दशेति ते ।
तव सौरभं ह्यगरुगन्जिगौरवं-
वपुरञ्जनप्रचयगञ्जनच्छवि ।।३५८।।

इह कोविदारकृतकोबिदारता तव-
कोविदार न मनो विदारय ।
रसकोविदारपथमुत्सुको वद प्रमदा-
वह प्रमदयाप्रमोघताम् ।।३५९।।

पुन्नागस्त्वमसि तरो पुन्नागः सोऽपि नागरो जगति ।
उपदिश कां दिशमागान्मित्रमसिस्त्वं हि गतिवेदि ।।३६०।।

श्रीफल नाम तवेदं शमयति खेदं हठादेव ।
न हि कीर्तिगुणहीने जगदुपकारी स यो गुणीभवति ।।३६१।।

नष्ट करनेवाले तुम्हारे नेत्रमें तथा विषाद-शून्य प्रसन्न तुममें अति सौरभ है, इससे मालूम होता है कि तुम उनको जानते हो ।।३५७।।

अनुवाद—देखो वनमाल-मालक ! हरिके भारी सङ्गमके बिना तुम्हारी यह दशा होगई है, तुम्हारी गंध अगरुके गौरवको नष्ट करती है तथा अञ्जन समूहकी शोभाको नष्ट करनेवाला तुम्हारा शरीर है ।।३५८।।

अनुवाद—विद्वानोंका साथ करनेसे तुमको विदारता प्राप्त हुई है, इसलिये हे कोविदार ! मनको दुःखी न करो, रसकोविदके मार्गको उत्सुक होकर बता दो. हे प्रमद ! प्रमदाके साथ अमोघताको धारण करो ।।३५९।।

अनुवाद—हे तरो ! मनुष्योंमें गजके समान श्रेष्ठ तुम पुन्नाग हो, जगत् में चतुरहो, तुम हमारे मित्रहो, उसकी गति जानते हो, किस दिशाको वह गया है हमें बताओ ।।३६०।।

अनुवाद—हे श्रीफल ! तुम्हारा यह नाम हठपूर्वक खेदको शान्त करता है जो जगत्का उपकारी और गुणवान् है वह कीर्ति और गुणसे हीन नहीं होता ।।३६१।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरुवक ? कुरु बकरिपुणा मिलनमकस्मात्सहास्माकम् ।
समुदञ्चतु तव सुयशो मम च दृशोरुत्सवो बहुशः ॥३६२॥
केतक कलितनिकेतक आसीदाशीलितभ्रमणः ।
किमिह कतूहलशाली वनमाली लीलया प्रियासहितः ॥३६३॥
मम केतक केतकीनिचेतः कलयामास तवावलोकनाय ।
समुदेति मुदे हि ते प्रसूनं प्रियपीतांशुकपीतिमप्रकाशि ॥३६४॥
त्वयि केतकि तन्नखाङ्कुरेखा जयलेखा इव पुष्पसायकस्य ।
रचयन्ति तवेव हन्त गाढं वपुरुत्कटमुत्कचन्मनो मे ॥३६५॥
अयि नाग युगः स नागगत्या न किमत्यादरतस्त्वया निरैक्षि ।
समुदीक्षित एव स त्वया यत्सचमत्कारतयासि धूतमूर्धा ॥३६६॥
प्रियक प्रियकर्म मे कुरु प्रियवर्त्मैव पुरः प्रवर्त्तय ।
++++++++++++++++++++++ ॥३६७॥

अनुवाद—हे कुरुवत् ! तुम वकरिपुके साथ अकस्मात् हमारा मिलन करादो, तुम्हारा यश फैल जाय और हमारी आँखोंका बहुत बड़ा उत्सव हो जाय ॥३६२॥

अनुवाद—हे सुन्दर गृहवालेकेतक ! तुम भ्रमण करनेवाले हो क्या यहाँ लीलासे कुतूहल करनेवाला प्रियाके साथ वनमाली कृष्ण है ॥३६३॥

अनुवाद—हे केतक ! तुम्हारे साथ केतकी है इसलिये मेरा चित्त तुम्हें देखनेको उत्सुक है, तुम्हारा पुष्प प्रियके पीले दुपट्टेकी पीतिभाको प्रकाशित करनेवाला मुझे अच्छा लगता है ॥३६४॥

अनुवाद—हे केतकी ! तुममें उसके नखोंकी अङ्क रेखा कामदेवके जय-लेखाकी तरह है और मेरे शरीरको तुम्हारी ही तरह रोमाञ्चित और मनको अति प्रसन्न बना रही है ॥३६५॥

अनुवाद अयि नागकेशर ! वह युग राधा और कृष्ण गजकी गतिसे जाते हुए क्या आदरसे तुमने नहीं देखे ? तुमने अवश्य देखे जो तुम चमत्कृत होकर सिर हिला रहे हो ॥३६६ ।

अनुवाद—हे प्रियक ! मेरा प्रिय कर्म करो, आगे प्रियके मार्गपर मुझे ले चलो । (इस श्लोकमें प्रथम द्वितीय दो ही चरण है तृतीय चतुर्थ-चरण नहीं हैं) ॥३६७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अधिरुह्य भवन्तमन्तकोऽजनि शीलादिकसम्पदा हरिः ।
भवदासवविह्वलो बलो विषमस्तेन समो हलिप्रियः[1] ॥३६८॥

न च सद्मनि नापि चत्वरे स विहारी न पुरे न गोपुरे ।
रमते त्वयि संमते परं वितर त्वं प्रियक प्रियं मम ॥३६९॥

घटिताकृतिरस्ति दारुणा तव तस्यापि तरो स्वयंभुवा ।
युवयोरुचिता सह स्थितिर्विषमाशीविष[2] एव दीप्यते ॥३७०॥

करकन्दुक एव पुष्पकेतोः कलिका ते गुलिकायसो ज्वलन्ती ।
कथमत्र पतेद्वियोगिपिण्डो यदि गण्डोच्चलकुण्डलो न रेमे ॥३७१॥

न लवङ्ग लवं गमिष्यतीदं प्रमदस्य प्रमदाजनस्य चेतः ।
दयितेन विनाङ्ग भृङ्गनादैः किमु गन्धैः किमु किञ्च गन्धवाहैः[3] ॥३७२

अनुवाद—शीलादि सम्पत्तियुक्त हरि आपपर चढ़कर अन्तक बन गये और आपके आसवसे बलराम विह्वल होगये, इससे तुम विषम और हलिप्रिय-हरिप्रिय भी कहाये ॥३६८॥

अनुवाद—वह विहारी कृष्ण न घरमें हैं न चबूतरे पर हैं, न पुरमें हैं, न गोपुरमें हैं, वह प्रिय तुममें रमणकर रहा है तुम उसे देदो, हे प्रियक ! हमारा तुम प्रिय करो ॥३६९॥

अनुवाद—हे तरो ! ब्रह्माने तुम्हारी और उसकी आकृति कठोर बनाई है, तुम दोनोंकी साथमें स्थिति भी ठीक है, विषम विषपूर्ण सर्पही अधिक चमका करता है ॥३७०॥

अनुवाद—तुम कामदेवके हाथकी गेंद हो, और तुम्हारी कलिका जलती हुई लोहेकी गोली है, यदि तुम गण्ड स्थलपर हिलता हुआ आकुण्डल न हो तो वियोगियोंका समूह यहाँ क्यों गिरे ॥३७१॥

अनुवाद—हे लवङ्ग हर्षयुक्त प्रमदाजनका चित्त प्रियके बिना तनिक भी इधर नहीं लगेगा, फिर भृङ्गनाद गन्ध तथा गन्धवाह वायु सब निरर्थक है नसे क्या प्रयोजन ॥३७२॥

(1) बलभद्रः । (2) सर्पः । (3) पवनैः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इदमालि तमालपल्लवानां मृदुतल्पं शुच एव कल्पते नः ।
दलितं वलितं विघट्टितान्तः कृतचित्रं कुसुमैश्च चन्दनैश्च ।।३७३।।

गुणवत्यपि मालिकेऽपि साध्वी सुमनः शालितया समुज्झितासि ।
निरणायि मया दयाविहीने समता नाथ हरौगुणा गुणानाम् ।।३७४।।

निरणायि परे विदन्ति नो मम शोकस्तव कोकिगोचरः ।
अनुभूतिजुषो हि जानंते परिमाणं परदुःखसम्पदः ।।३७५।।

प्रति कुञ्जगृहं प्रतिद्रुमं च प्रतिवर्त्म प्रतिवल्लिमण्डलं च ।
प्रमदाभिरिवोन्मदाभिराभिः फलयन्तीभिरधावि दीर्घकालम् ।।३७६।।

कलधौतलतेव धूसरा रजसेभानयितेव वल्लरी ।
धरणौ चपलेव निश्चला विलपन्तीभिरुदैक्षिराधिका ।।३७७।।

अथ चारुचमूरुलोचनामिदमूचुः कृतभूरिशोचनाः ।
तव चेयमुदेति दुर्गतिर्न खलु श्यामरुचौ व्यवस्थितिः ।।३७८।।

अनुवाद—हे सखि ! यह तमाल पत्रोंकी कोमल शय्या हमारा शोकही बढ़ा रही है, इसमें चन्दनसे और पुष्पोंसे जो चित्र हैं, उनसे हृदय दुःखी तथा शीण होगया है ।।३७३।।

अनुवाद—गुणवान् मालाकारमें साध्वी भी तुम, अच्छे कुलकी होते हुए भी छोड़ दी गई हो, मैंने निश्चय किया कि दयाहीनमें समता नहीं होती तथा हरिमें गुणोंका प्रेम नहीं है ।।३७४।।

अनुवाद—यह निश्चित है कि दूसरे लोग यह नहीं जानते कि हमारा शोक चकवी जैसा है, दूसरेके दुःखको वे ही जानते हैं जिनको दुःखका अनुभव हो चुका होता है ।।३७५।।

अनुवाद—प्रत्येक कुञ्जमें, प्रत्येक वृक्षपर, प्रत्येक घरमें, प्रत्येक लता-मण्डलमें उन्मत्त होकर दर्शन इच्छासे ये गोपियाँ बहुत देरतक दौड़तीं रहीं ।।३७६

अनुवाद धूलिसे धूसरित स्वर्ण लताकी तरह तथा हाथीके द्वारा खींची हुई लताकी तरह, पृथ्वीपर पड़ी हुई बिजलीकी तरह, निश्चल राधाको विलाप करती हुई गोपियोंने देखा ।।३७७।।

अनुवाद—तब मृगके समान नेत्रवाली राधासे वे गोपियाँ अति शोक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहदस्त्रपयाः कृतानुतापं गणयन्ती मनसा च तं दुरापम् ।
निजगाद विषाद विह्वला सहचर्याः सविधे मुहुःस्वचर्याम् ॥३७९॥

शयितं सहतेन मुक्तदम्भं परिरम्भाननु भूतभिन्नभावम् ।
वदनाब्ज निवेशिताननाब्जं ग्रथितान्योन्य भुजोपधान बन्धम् ॥३८०॥

इति वेद्मि न वेद्मि कामसौ कलयामास कलां कला[1]निधिः ।
अपि न क्षणमक्षिचेतसी जलदश्यामलिमा तु मुञ्चति ॥३८१॥

इदमंसतटे तदंशुकं सखि पीतं सहसैव पीतचेतः ।
प्रतिभूरिव भाति भूषणानामपि भूषाप्रबलन्निवानुरागः ॥३८२॥

संचितं स च मे सुमेचकं कलयामास तनौ कलामयः ।
न तदैक्षत नूनमेकता तनु शोभावसनाभयोरभूत् ॥३८३॥

करती हुई यह कहने लगीं तेरी ऐसी दुर्गति होरही है श्याम रूचिवाली कृष्णकी कोई व्यवस्था उचित नहीं है ॥३७८॥

अनुवाद—अश्रु बहाती हुई, पश्चात्ताप करके मनसे हरिको प्राप्त करना दुर्लभ समझकर, विषादसे दुःखी होकर, सखियोंके सामने अपनी दशा सुनाने लगीं ॥३७९॥

अनुवाद—छल छोड़कर, भिन्न भाव न समझकर, आलिङ्गन करते हुए मुखकमल मुख पद्मका निवेश करते हुए, आपसमें भुजाओंका तकिया लगाकर उनके साथ शयन किया ॥३८०॥

अनुवाद—यह सब जानती हूँ, पर यह नहीं जानतीं कि उस कला-निधि ने कौन-सी कलाका प्रयोग किया कि मेघकी तरह उसकी श्यामलता क्षणभरको भी मेरे चित्त और आँखोंको नहीं छोड़ती ॥३८१॥

अनुवाद—यह कन्धेपर पीला दुपट्टा इसने सहसा चित्तको पी लिया है, यह भूषासे प्रबल होते हुए अनुरागकी तरह है, यह भूषणोंके प्रतिनिधिकी तरह प्रतीत होता है ॥३८२॥

अनुवाद—उस कलामय अनुरागने काले घुंघराले बालोंको मन्त्री निश्चित किया है, पीतांशुक मेचक दोनोंकी एकताने यह नहीं देखा, शरीर शोभा-मय बन गया है ॥३८३॥

---

(1) चन्द्रः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हृदयं प्रविवेश निर्दयं सखि भित्वा भुजबन्धजं ततः ।
इयता हृदि वेदना स मे समकालं द्वयमप्युदञ्चति ॥३८४॥

दददञ्जनमक्षिणि क्षणादविशत्प्राग्बहिरीक्षितो मृषा ।
अपि चक्षुषि मुद्रणाजुषि पतिपन्नः कथमन्यथा स मे ॥३८५॥

इदमक्षि दिदृक्षु घूर्णते स तु चक्षुःपथ एव लक्ष्यते ।
हृदि सोऽस्ति भुजस्तु वञ्चितो हरि नीतिर्विचसां न गोचरः ॥३८६

तन्मयावस्था

इदमादिकमधिकमालपन्तो राधा,सा च बाधा कुलाभीर किशोरी-परम्परा तदनुरागातिशयमनुवर्णयन्तो तन्मयतामेव तत्क्षणाद्भेजे, विदधे च विविधविचेष्टामिष्टामेतस्य पूतनाविघातनादिमनार्य्यमना एव, मुहुरपि मुखरीकृत मुरलीकतयातरलो चकार वन - गहनमपि, हरिरवधाय राधादिकगोपसुधाकरमुखीनामसाधारण प्रेमवाधां स्वय-

---

अनुवाद—हे सखि ! वह निर्दय मेचक सचिव भुजबन्धसे युक्त हृदयको भेदन करके उसमें घुसगया, इससे हृदयमें उठी वेदना दोनोंको एक साथ बाहर निकाल रही है ।।३८४।।

अनुवाद—आँखोंमें अञ्जन लगाते हुए ही वह क्षणभरमें आँखमें घुस-गया, बाहर वृथा ही देखता रहा, नहीं तो आँख बन्द करनेपर भी वह मुझे क्यों दीख रहा है ॥३८५॥

अनुवाद—देखनेकी इच्छावाली आँख घूम रही है, वह नेत्रके मार्गमें ही दीखता है, हृदयमें भी वह है, भुजा उसकी नहीं दीखती, हरिकी कीर्ति वाणीसे नहीं कही जा सकती ।।३८६।।

तन्मयावस्था

अनुवाद—इस प्रकार कहती हुई राधा, और वह बाधासे आकुल आभीर किशोरियोंकी परम्परा, उनके प्रेमकी अधिकताका वर्णन करती हुई, तत्काल ही तन्मयताको प्राप्त होगई और असन्तुष्ट मनसे अनेक प्रकारकी अभीष्ट चेष्टाओंसे कंसकी भेजी हुई पूतना, असुर-सेनादिके विनाश हेतु चेष्टाओंको करने लगीं। बार-बार मुरली बजाने आदिकी चेष्टाओंसे गम्भीर वनको चञ्चलकर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मपि प्रेमौपाधिकमाधिमुपलभमानो वर्णयामास किमपि निगूढम्[1]।।३८७

व्याघूर्णयति समन्तात्पातयति महीतले विमोहयति ।
कारयति बहुविकारं जन्मस्थलमासवाद् गुरुप्रेम ।।३८८।।

चेतनां हरति पृच्छति बाधामन्तरिन्दु किरणादपि दाहः ।
कण्ठकुण्ठगरलस्य पुरारेः प्रेम नाम विषमेतदसह्यम् ।।३८९।।

अथ कदापि राधात्मनि माधवधियात्मानमव भूषयिष्यन्ती ।
केशरतरोः शाखामाकृष्य कुसुममवचेतुमुपचक्रमे नाम ।।३९०।।

उद्भ्रूकूलमुदङ्घ्रिमूलमदयद्वक्षोजमुर्वीतल-
व्यालम्बि प्रपदं नितम्बगरिमव्यानम्रगुल्फं मुहुः ।
कर्षन्त्याः कुसुमानि मुक्तकबरि स्विद्यन्मुखं प्रस्खल-
त्क्षौमान्तं श्लथबाहुवल्लरि मुहुर्दृष्ट्वा हरिस्ताम्यति ।।३९१।।

'हरि' भी राधादि चन्द्रमुखी गोपियोंका असाधारण प्रेम जानकर प्रेमसे होनेवाले अधिक दुःखको प्राप्त करते हुए कुछ गूढ़ वर्णन करने लगे ।।३८७।।

अनुवाद—बढ़ा हुआ प्रेम चित्तको चारों ओर घुमाता है, पृथ्वीपर गिराता है, मोहमें डालता है, आसवसे भी अधिक जन्मस्थल हृदयमें वह 'प्रेम' बहुत विकार कर देता है ।।३८८।।

अनुवाद—चेतना नष्ट करता है, बाधा बढ़ाता है, गरलसे कुण्ठित कण्ठवाले पुरारिशिवके-चन्द्रमाकी किरणसे भी दाह उत्पन्न करता है, प्रेम नामका विष बड़ा असह्य है ।।३८९।।

अनुवाद—इसके पश्चात् राधाने अपनेको माधव समझकर भूषित करनेकी इच्छासे केसर वृक्षकी शाखाको खींच कर पुष्प चुनना आरम्भ किया ।।३९०।।

अनुवाद—पुष्प चयन करते हुए राधाके भृकुटि उठाये, चरणका मूलभाग (एड़ी) उठाये, स्तनभाग ऊपर किये, पृथ्वी तलपर पञ्जोंतक वस्त्र लटकाये, नितम्बकी गुरुतासे गुल्फभाग तक झुकाये, खुले हुये बाल, पसीनेसे भींगा हुआ मुख, लटकता हुआ दुपट्टा, एवं शिथिल बाहु लताको देखकर, हरिको खेद होरहा था ।।३९१।।

---

(1) वस्त्रं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकृष्यैककरेण केसरतरोः शाखाग्रमाचिन्वती
शिञ्जत्कङ्कणमन्यपाणिकमलेनोच्चैः प्रसूनं मुहुः ।
उद्भ्रान्तभ्रमरेष्वशोककुसुमभ्रान्त्या दशत्स्वङ्गुलीः
सीत्कारं शतधापि हन्त विदधे राधा स बाधां दधे ।।३६२।।

कर्षन्त्याः कुसुमानि केसरतरोः शाखास्समाकर्षणा–
त्साहाय्यस्य कृते सृतेक्षणपथे मुग्धस्मितं माधवे ।
दित्सन्तीमिव यान्तमन्तरुदयत्संभ्रान्ति सीमन्तिनी–
श्शश्वन्न्यस्यति मोघमंगुलिपुटं मुक्ताम्बरे मूर्धनि ।।३६३।।

राकाचन्द्रमसीव शीलितदृशि ग्रीष्मोग्रदावानल
ज्वालाव्यग्रचकोरिका जलमुचीवार्त्तास्तृषा चातकीः ।
स्मेराम्भोज इवोपवासिमधुपश्रेण्यो रयाच्छ्रीपते–
रङ्गे चेलुरटद्भ्रुवो व्रजभुवो वामभुवां दृष्टयः ।।३६४।।

अनुवाद—एक हाथसे केसर वृक्षके शाखाके अग्रभागको खींचकर, दूसरे हाथसे कङ्कणोंके बजते हुए फूलोंको तोड़ती थी, अशोकके पुष्पोंकी राधाके हाथोंमें भ्रान्ति करके अंगुलीमें भ्रमरके काटनेपर राधाने अनेक बार सीत्कार किया। राधाके हाथको पुष्प समझकर भ्रमरके काटनेसे हरिने स्वयं दुःख प्रकट किया। इस श्लोकमें कविने भ्रान्तिमानके साथ-साथ हरिको राधाका हाथ भ्रमर द्वारा काटे जानेके कारण दुःखी दिखाया है ।।३६२।।

अनुवाद—केसर वृक्षकी शाखाको खींचकर फूल तोड़ते हुए राधाकी सहायता करनेके लिए माधवके दृष्टि डालनेपर फूल देनेकी इच्छा करती हुईकी तरह राधाके पीछे कृष्णके जाते हुए, हृदयमें भ्रान्ति करते हुए, वह राधा सिरका वस्त्र हट जानेपर, झूँठ ही देनेका आडम्बर करती हुई अंगुलिपुट कृष्णके हाथपर रखती थी, देती नहीं थी ।।३६३।।

अनुवाद—ग्रीष्मके दावानलकी ज्वालासे दुःखी चकोरी जैसे आँखोंको प्रसन्न करनेवाले पूर्णिमाके चन्द्रमापर तथा दुःखी प्यासी चातकी जैसे बादलपर व व्रती भ्रमर पंक्ति जैसे विकसित कमलपर दृष्टि डालती है वैसे ही भृकुटि घुमाते हुए व्रजकी गोपियोंकी दृष्टि कृष्णके अङ्गपर पड़ी ।।३६४।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चारुचन्द्रमिव चन्द्रिका निशि प्रावृषि प्रभुमपामिवापगाः ।
वारिवाहमिव चञ्चलाश्चलाः[1] प्रापिरे प्रियतमं व्रजप्रियाः ।।३९५।।

द्रष्टुमश्रुणि विरोधिनि क्रुधा विद्विषोश्च विनिमेषसंज्ञयोः ।
दृष्टिसृष्टिकरमिष्टमान्यतस्ता निनिन्दुररविन्दसम्भवम् ।।३९६।।

विरहबहलमन्युच्छिन्नहृद्ग्रन्थयोऽपि
व्रजनगरकिशोर्यो नाभवन्वक्तुमीशाः ।
मधुमथनदृगन्ताश्रान्तमन्दस्मितश्री-
परिहृतहृदयत्वाद्भेजिरे चित्रभावम् ।।३९७।।

दृग्बाणायसकोटयो व्रजकुलस्त्रीणां मनः कुञ्जरा-
लानानि क्रकचानि धैर्यधरणीजस्यापुरस्यान्तरम् ।
व्यापारानिलकालकालभुजगाः प्रेमाग्रदूत्योस्तनो-
स्तेजोऽग्नेः सृतयोऽतिसत्वरतया लक्ष्याः कटाक्षाःसमम् ।।३९८।।

अनुवाद –रात्रिमें चाँदनी जैसे सुन्दर चन्द्रमाको प्राप्त करती है, वर्षा-में नदी जैसे समुद्रको तथा चपल बिजली जैसे मेघको प्राप्त करती है वैसी ही गोपियोंने प्रियतम कृष्णको प्राप्त किया ।।३९५।।

अनुवाद - दर्शनमें आँसुओंके विरोध करनेपर पलक नामवाले दोनों शत्रुओंकी नेत्ररूपी कमलमें दृष्टिकी सृष्टि करनेवालेकी दर्शन न होनेसे गोपियोंने निन्दा की ।।३९६।।

अनुवाद विरहकी अधिकताके दुःखसे हृदयकी ग्रन्थि नष्ट हो जानेपर भी ये व्रजकी गोपियाँ कुछ भी न कह सकीं, हरिके नेत्रभागमें निरन्तर होनेवाली मन्द मुसकानसे हृदयके अपहृत हो जानेके कारण चित्रलिखी-सी रहगईं ।।३९७।।

अनुवाद—व्रजगोपियोंके दृष्टिरूपी लौह बाण मनरूपी हाथीकी शृङ्ख-लायें यही क्रकच भेदक आरेके समान, ये धैर्यरूप भूमिमें उत्पन्न अत्यन्त धैर्यशाली हरिके हृदयमें घुस गये । चेष्टा हाव भावरूपी काल सर्प, प्रेमरूप अग्रदूतीके शरीर के कटाक्ष तथा उनकी कटाक्षरूपी रूपीतेजकी सृति पंक्ति एक साथ हरिके शरीरमें प्रवेशकर गईं ।।३९८।।

---

(1) "आप्लृ लम्भने इति चौरादिकाद्धातोः 'स्वरितेदयमित्येके' इत्युक्तिबलादा-त्मनेपदम्" ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नानाकेलिकलाकला[1]पमभितो+ +नुकूले तरोः
कूले नन्दसुतः कलिन्ददुहितुः कृत्वा स ताभिः समम् ।
तस्याः काञ्चनकान्तिगञ्जनरुचां श्रेणीभिरेणीदृशां
शम्पाभिः सह बारिधेरिव पयोवाहः पयोऽगाहत ।।३९९।।

अमुना यमुनापयोऽन्तरे विहरन्त्यः सह गोपसुभ्रुवः ।
परितः परिरेभिरेऽन्तरा लहरीरेव हरिभ्रमान्मुहुः ।।४००।।

जलगूढवपुर्विकासि वक्त्रं विहरन्तीषु मुकन्दसुन्दरीषु ।
विरराज कलिन्दनन्दिनी सा विकचाम्भोजवनीव यामिनीषु ।।४०१।।

मुहुरम्बुजमाचुचुम्ब मुग्धः परिरेभे नलिनीमलीनुदस्य ।
अलयोऽपि मुखेषु गोपिकानां स्फुटपङ्केरुहशङ्कयानिपेतुः ।।४०२।।

विचकर्ष करेण कोरकं कमलिन्याः पुलकालिसङ्कुलः ।
व्रजवामदृशः स्तनाशया जहसुस्ता निभृतं नतभ्रुवः ।।४०३।।

अनुवाद—यमुना तटपर वृक्षके नीचे कृष्णने उन गोपियोंके साथ अनेक प्रकारकी क्रीड़ायें कीं, सुवर्ण कान्तिको फीकी करनेवाली शोभासे युक्त मृग जैसे नेत्रवाली राधारानी गोपियोंके साथ मेघ बिजलीके साथ समुद्रजलमें जैसे क्रीड़ा करता है वैसेही भगवान् क्रीड़ा करने लगे ।।३९९।।

अनुवाद--हरिके साथ यमुनाके जलमें विहार करते हुए गोपियोंने बीचमें हरिकी भ्रान्तिमे हरि समझकर लहरियोंसे ही आलिङ्गन करतीं रहीं ।।४००।।

अनुवाद—शरीरको जलमें छिपाकर मुख बाहर निकाले गोपियोंके जल विहार करते हुए वह यमुना रात्रिमें खिले कमल समूहवालीकी तरह शोभित थी ।।४०१।।

अनुवाद—मुग्ध हरि कमलको गोपी मुख समझकर चुम्बन करते थे तथा भ्रमर उड़ाकर नलिनीका आलिङ्गन करते थे, भ्रमर भी खिले कमलकी शङ्कासे गोपियोंके मुखपर गिरते थे । ४०२।

अनुवाद—रोमांचयुक्त हरिने कमलिनीकी कलीको गोपियोंका स्तन समझकर हाथसे खींचा । तब वे गोपियाँ चुपचाप हंसने लगीं ।।४०३।।

---

(1) वृन्द ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जलमञ्जलिनाञ्जनाभमास्येऽमितहास्ये सुदृशः स्वयं विकीर्य्य ।
उदडीनयदेष चञ्चरीकभ्रमशाली करपल्लवेन भूयः ।।४०४।।

हरिरूपनिरूपणैकताना कलयन्ती जगदेकनीलिमेव ।
स्थलमप्यवगाहते स्म काचिज्जलमोहाकुलचेतसा कृशाङ्गी ।।४०५।।

हरिनिर्भरसङ्गसम्भ्रमोद्यत्पुलकग्रन्थिलकायकन्दलीका ।
अवगाह्य पयो वयोऽभिरामा व्रजवामाशु जडोबभूव काऽपि ।।४०६।।

हरिणा हरिणायतेक्षणाभी रचितालङ्कृतिरर्कनन्दिनी सा ।
परिभूय बभौ नभोऽपि राजत्तरतारावलि पूर्णिमाहिमांशु ।।४०७।।

पशुपालविशाललोचनाभिः सरसाभिः पयसाभिऽषिच्यमानः ।
अपि तेन स तास्तथाभिषिञ्चन्करिणोभिर्विरराज दिक्करीव ।।४०८।।

कलधौतलतानुकारिणीभिस्तनुभिर्गोपचमूरुलोचनानाम् ।
अनुभावितवैद्युत प्रभाभिर्यमुनैवाम्बुमुचो रुचो बभार ।।४०९।।

अनुवाद—हासयुक्त हरिके मुखमें गोपियोंने अंजन सदृश यमुनाका नीलजल अंजलिसे डाल दिया, हरिने भ्रमरके भ्रमसे हाथसे उसे उड़ा दिया ।।

अनुवाद—हरिके नील रूपमें ध्यान लगाये गोपियाँ सब जगत्को नील-युक्त समझती थीं, कोई कृशाङ्गी जलके मोहसे आकुल चित्त होकर स्थलमें ही अवगाहन करतीं थीं ।।४०५।।

अनुवाद—हरिके निरन्तर सङ्गसे उठते हुए रोमाञ्चकी ग्रन्थियोंसे युक्त शरीर रूप कलिकाओंवाली कोई सखी गोपी सुन्दर अवस्थावाली जलमें स्थान करके जड़ीभूत सी होगई ।।४०६।।

अनुवाद—मृगके समान दीघ नेत्रवाली गोपियोंसे हरिके द्वारा अलंकृत की गई वह यमुना थी, उस ससय आकाश तारागणसे पूर्णिमाके चन्द्रको भी तिरस्कृत करते हुए की तरह शोभित था ।।४०७।।

अनुवाद—विशाल लोचनवाली सरस गोपियोंके द्वारा हरि अभिषिक्त किये गये थे जिससे वह हथिनियोंके द्वारा अभिषिक्त हुए दिग्गजकी तरह शोभित थे ।।४०८।।

अनुवाद—सुवर्णलताका अनुकरण करनेवाले मृगनेत्री गोपियोके शरीरसे यमुनाने बिजलीकी प्रभासे शोभित मेघकी शोभाको धारण किया ।।४०९।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरहेजलविहार

व्रजचारुचमूरु[1]लोचनानां यमुनावारिणि मग्नविग्रहाणाम् ।
स तु चुम्बितुमास्यचन्द्रबिम्बं प्रतिबिम्बं शतधा चुचुम्ब चेन्दोः ॥४१०

अवशं वपुरप्युपेतबन्धा [2]कवरी निर्गलितेव वेषरीतिः ।
अपि चोलमपव्यवस्थमासां जलकेलीषु रतान्तकान्तिरासीत् ॥४११॥

युतिमिच्छति चक्रवाकचक्रे स्तनचक्रेषु चमूरुलोचनाभिः ।
अभिजृम्भितसंभ्रमाभिरामं शतधाऽपि प्रिय एष पर्य्यरम्भि ॥४१२॥

उदयद्गजगण्डमण्डलीव स्फुरदुर्वीधर शृङ्गधोरणीव ।
कुचकोटभिरुच्चकाश वीची विदलत्कञ्चुलिकासु तासु कृष्णा ॥४१३

विरहं हरिणा सहाशु कुर्वन्स निजान्तःशुचिमुज्जिहीर्षुरिन्दुः ।
सुदृशां मुखचन्द्रचन्द्रिकाभिः परिभूतोऽभजदस्तभूधरान्तः ॥४१४॥

दुःखमें जलविहार

अनुवाद—यमुना जलमें मग्न शरीरवाली व्रजकी मृगनयना गोपियोंके मुखचन्द्रका चुम्बन करनेको हरिने अनेक बार भ्रान्तिसे चन्द्रमाके प्रतिबिम्बका चुम्बन किया ॥४१०॥

अनुवाद—शरीर अवश होगया केश वेश शिथिल होगया, वेष-भूषा सब विगड़ गई, बाल अव्यवस्थित होगये, जल-क्रीड़ामें गोपियोंकी रतान्तके जैसी शोभा होगई थी ॥४११॥

अनुवाद—ये दो चकवा-चकवी मिलना चाहते हैं, इस प्रकार दो स्तनोंमें भ्रान्तिकी शोभा प्रकट होनेपर मृगनयना गोपियोंने सैकड़ों बार प्रिय हरिका आलिङ्गन किया ॥४१२॥

अनुवाद—स्नान करते समय कंचुकीके हट जानेपर स्तनोंके कारण उठते हुए हाथियोंकी गण्ड मण्डलीकी तरह, अथवा उठते हुए पर्वत शृङ्ग पंक्तिकी तरह, लहरवाली यमुना शमित थी ॥४१३॥

अनुवाद—हरिके साथ वियोग प्राप्त करता हुआ तथा अपने हृदयकी पवित्रता प्रकट करता हुआ चन्द्रमा गोपियोंके मुखचन्द्रकी शोभासे तिरस्कृत होकर अस्ताचलके अन्दर चला गया ॥४१४॥

---

(1) मृग । (2) वेणी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपहाय जलावगाहलीलां परिधायांशुकमङ्गना हरिश्च ।
अवशा इव ते पुरः समीयुः प्रतिभूकृत्य परस्परं मनांसि ।।४१५।।

इति रासोत्सवः ।।

[इति श्रीमन्मित्र मिश्रकृतावानन्दकन्दचम्पू काव्ये षष्ठोऽयमुल्लासः ।। ६ ।।]

अनुवाद—हरि तथा गोपियोंने जलक्रीड़ा छोड़कर, वस्त्र पहिनकर, अवशकी तरह, आपसमें अपने अपने मनको साक्षी करके सब अपने नगरको चले गये ।।४१५।।

इति रासोत्सवः ।।

।। इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतवानन्दकन्दचम्पूकाव्ये-
षष्ठोऽयमुल्लासः ।।

इति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदशास्त्रि विरचिते श्री श्रीवरानन्दिनी भाषा टीका
सहिते आनन्दकन्दचम्पू काव्ये श्रीरासोत्सव वर्णनं नाम
।। षष्ठ उल्लासः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ सप्तम उल्लासः

समान्तदक्षीणां विषयविमुखत्वात्परिजने
गृहान्तर्विश्रान्ते शिरसि दिनकान्ते विरमति ।
अशिञ्जन्मञ्जोरस्थगितमणिकाञ्चीकलकला,
वनान्तः श्रीकान्तं न हि पशुपकान्ताप कतिधा ॥ १ ॥

हंसानां कलहोऽङ्घ्रिहंसकरवं काञ्चीकलापध्वनिं
कुञ्जाटव्यभिसर्पिषट्पदघटाझङ्कारकोलाहलः ।
कुर्वाणे दिवसाभिसारमबलावृन्देऽरविन्दावली
वातोद्धूतपरागरागलहरी गोपायते विग्रहम् ॥ २ ॥

पानीयानयनच्छलं परिजने सद्मापि पुष्पाहृते
नव्योद्यत्तरुवाटिकावकलनव्याजं समातन्वती ।
आसाद्य प्रियमिन्दुसुन्दरमुखी चिक्रीड गूढं वने
रागश्चेतसि चेद्गुरुश्चतुरता सिद्धेरसाध्यं किमु ॥ ३ ॥

अनुवाद—विषयसे विमुख होनेके कारण चारों ओर सभी परिजनोंके घरके अन्दर विश्राम करनेपर दिनकान्त सूर्यके सिरके ऊपर आजानेपर मञ्जीर के मौन रहते हुए तथा मणि मञ्जीरका कल-कल समाप्त किए पशुप कान्ता गोपीने कई बार देखकर भी वनके अन्दर श्रीकान्त हरिको नहीं प्राप्त किया ॥१॥

अनुवाद—हंसोंका कलह तथा चरण नुपूरका शब्द काञ्चो कलापकी ध्वनि तथा कुञ्ज अटवीमें घूमते हुए भ्रमर समूहकी झङ्कारका कोलाहल होते हुए दिनमें अबला वृन्दके अभिसार करनेपर अरविन्द समूहकी वायुसे उठी हुई पराग-की लहरने अभिसार करते हुए गोपियोंके शरीरको छिपा दिया ॥ २ ॥

अनुवाद—पानी लानेके बहाने तथा पुष्पके बहाने परिजन वर्गके घर चले जानेपर नये उगते वृक्षोंकी वाटिका देखनेका बहाना करती हुई चन्द्र सदृश मुखवाली गोपी प्रियको प्राप्त करके छिपकर वनमें क्रीड़ाकरने लगी । चित्तमें राग हो और चतुरता अधिक हो तो कुछ असाध्य नहीं, सिद्धि हो सकती है ॥ ३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[1]सान्द्रीभूय विधुं विधूय मिहिरस्याच्छाद्य बिम्बं हठा-
द्धाराभिर्विदधदगभीरतिमिर[2]क्रोडावगूढं जगत् ।
गम्भीरध्वनिभिर्विधाय बधिरं धाराधरो देहिनं
व्यातेने रजनी दिनेषु सुदृशः स्वेच्छाभिसारोत्सवम् ॥४॥

राधाभिसारः

मञ्जीरं मणिमेखलामपि दिवानाशो न वासो जहौ
विद्युन्मालिनि गर्जशालिनि पयोवाहे वियद्गाहिनी ।
श्रीराधाभिससार माधवमथ क्रीडन्तमेनं तया
पश्यन्तोऽपि जना घनाघनमहो विद्यूद्वहं मेनिरे ॥ ५ ॥

अथ व्रजकुलकमलदलायताभिरामेक्षणाभिराभीरपुरन्दरनन्दने सह विहरति विचरति च तारावलीभिरिव ताराधिनायके दिवसकर-दुहितुरनतिदूर एव कुबेरानुचरो हरिसहचारिणीः सुधामदेव इव, धर्मसम्पदं कलिरिव समयमभीक्षमाणो जिहीर्षुरासीदसंख्यवनगूढः शंख[3]चूडश्चिरकालम् ॥ ६ ॥

अनुवाद—प्रेम मग्न होकर चन्द्रमाको छिपाकर सूर्यके बिम्बको हठपूर्वक मेघमें छिपाकर, धाराओंसे संसारको गम्भीर अन्धकारमें लीन करके गम्भीर ध्वनि से मेघने सबको बधिर बनाकर रातने दिनमें ही कामिनीको स्वेच्छाभिसारका उत्सव करा दिया । ४ ॥

राधा-अभिसार

अनुवाद—दिन अस्त होनेपर मञ्जीर मणि मेखला वस्त्र भी नहीं छोड़े, गरजते हुए बिजलीयुक्त बादलके आकाशमें व्याप्त होनेपर श्रीराधाने माधव-के पास अभिसार किया । राधाके साथ क्रीड़ा करते हुए माधवको लोगोंने देखते हुए भी बिजलीसे युक्त घने बादलोंको ही समझा, राधामाधवको नहीं जान पाये ॥ ५ ॥

अनुवाद—इसके बाद व्रजकुलकी कमल दलके समान दीर्घ और सुन्दर नेत्रवाली गोपियोंके साथ गोपेश्वर कृष्णके विहार करनेपर और तारा समुदायके साथ चन्द्रमाके विचरते रहनेपर यमुनाके समीपमें ही कुवेरका अनुचर शङ्खचूड़ मदसे हरिके साथ रहनेवाली गोपियोंको कलि जैसे धर्म सम्पत्तिको छीन लेता है वैसेही समयको देखते हुए चुरानेकी इच्छासे आया ॥ ६ ॥

(1) घनीभूय । (2) अन्धकारः । (3) शखचूड वधकथा भा. १०स्कं ३४ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वचिदपि समयेऽटवीषु बहुविटपिघटान्तरितस्फुटकुसुमपटुघटित-वनवाटिकासु नानाकुसुममभिचिन्वानाः प्राणाधिकतया हरिगुणगणनैक-तानाः काश्चन मधुमथन मुकुन्दमाधव प्राणाधिनाथेति नादैरापूरयन्ती-राशा दृशापि कुसुमपरम्परा इवामोदैः समीरोऽहरद् हरीक्षितो दूरतया गुह्यकापसदो निगुह्यात्मानम् ।। ७ ।।

आकार्ण्य ध्वनिमेणशावकदृशामाशासु धावन्हरि-
द्वित्रैरेव पदैर्गजं हरिरिव द्रागेव जग्राह तम् ।
मूर्धानं चरणाभिघातविधिना द्वेधा विधायाददन्-
मुक्तावच्च शिरोमणिं पुनरगात्ताभिः समं तद्रहः ।। ८ ।।

अरिष्टवधः

अथ कतिपयदिवसेष्वतीतेष्वतिशयबलपुष्टभूयिष्ठमदगरिष्ठोजगता-मनिष्टोऽरिष्टो[1] नाम दानवो दण्डधर इव चण्डतरखण्डमूर्त्तिधरो-ऽखण्डसुरखण्डिताशेषमहीखण्डो मधुमथननिधनविधानानुसंधानधनो

अनुवाद—किसी समय वनमें अनेक वृक्ष समूहमें छिपे खिले पुष्पोंसे युक्त वनकी वाटिकायें नाना पुष्पोंका चयन करती प्राणोंसे भी अधिक हरिके गुण-गानमें ध्यान लगाती कोई गोपियाँ मधु मथन मुकुन्द माधव प्राणाधिनाथ इस नादसे दिशाओंको भरती और दृष्टिसे भी जैसे वायु सुगन्धसे पुष्पोंको ले जाता है वैसेही दूरसे हरिसे देखा जाता हुआ भी नीच गुह्यक शङ्खचूड़ अपने आपको छिपाकर लेगया ।। ७ ।।

अनुवाद—मृगनयनी गोपियोंकी इस ध्वनिको सुनकर दिशाओंमें दौड़-कर हरिने दो-तीन पदमें ही सिंह जैसे हाथीको पकड़ता है, उसी तरह शीघ्र उसको पकड़ा और चरणके आघातसे सिरके दो खण्ड करके गज मुक्ताकी तरह उसकी शिरोमणि निकालकर उन गोपियोंके साथ एकान्तमें चले गये ।। ८ ।।

अरिष्ट-वध

अनुवाद—फिर कुछ दिनोंके बीतनेपर अधिक बलसे पुष्ट बहुत मद-युक्त संसारका अनिष्टकारी अरिष्ट नामका दानव दण्डधरकी तरह चण्ड अखण्ड

---

(1) भा० १० स्कं० ३६ अध्याये कथा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धूनयन्नवनिधरधोरणीं धराधरकुहरगरीयो घोण[1]दरीद्वारदुरोहमान झञ्झायमान परम्पराभिराविरभूदभूतपूर्वानुभवप्रमादविभवः ।।९।।

उज्जाग्रद्रोमराजीत्रुटिततरुघटस्तुङ्गश्‍ृङ्गाग्रघात–
व्यग्रोर्वीभृद्भिरुर्वीपतिशिरसि ससुद्घाट्य दर्वीकराणाम् ।
श्वासोड्डीनाभ्रमभ्रंकषककुदगराद्दुर्गमस्वर्गमार्गो
नर्दद्ग्रीर्वाणगर्वद्विषदुरुवपुराभोगभाग्दिग्विभागः ।।१०।।

न्यञ्चद्भूभारभुग्नीभवदुरगधवोद्भूतदर्वीकरार्वी–
गर्वीति त्रस्यदुष्णद्यु तितुरगगणोत्तानचञ्चद्विषाणः ।
रोदः संरोधिरौद्राकृतिरुदितककुव्द्यग्रगीर्वाण वर्गो-
भूयिष्ठानिष्टनिष्ठस्त्रिभुवनभयभूराविरासीदरिष्टः ।।११।।

खुराग्रेणोग्रेण क्षितिमभिखनन्तं खरवल-
द्विषाणाग्रव्यग्रोच्छलितगिरिमुद्दालधितलम् ।

मूर्तिधारी सब देवोंका खण्डन करनेवाला सम्पूर्ण पृथ्वीको दुःखदायी मधु मथनके विनाशकी युक्ति सोचनेवाला पर्वत श्रेणीको कंपाते हुए पर्वत गुफाके समान गहरी नाकके द्वारसे निकली झंझावातकी तरह वायुसे अभूतपूर्व मदवाला प्रकट हुआ ।।९

अनुवाद—ऊँचे श्रृङ्गोंके अग्रभागके आघातसे व्यग्र पर्वतोंके द्वारा उठती रोम राजी सदृश पत्र समूह युक्त वृक्षोंके समूहको तोड़नेवाला सर्पोंके श्वाससे उड़ते हुए बादलोंको हटाकर राजाओंके सिरपर आक्रमण करनेवाला, ऊपर मेघ-तक उठी हुई अपनी ककुदसे स्वर्गके मार्गको भी रोकनेवाला शब्द करते हुए देव-ताओंके गर्वको नष्ट करनेवाला विशाल शरीरके परिमाणसे दिशाओंको भय उत्पन्न करनेवाला वह अरिष्टासुर आया ।।१०।।

अनुवाद—नीचे झुकती हुई भूमिके भारसे टेढ़े अथवा दुःखी शेषनागके दर्वीकर सर्पके सदृश गर्ववाला, डरते हुए उष्ण द्यु तिवाले अश्वके कर्णके समान ऊपर उठे हुए तथा चमकते श्रृङ्गवाला आकाशमें व्याप्त घेरे हुए-सा रौद्र आकृति-वाला उठती हुई ककुद ठाठीसे देवताओंको भय उत्पन्न करनेवाला अति अनिष्ट-कारी त्रिभुवनको भयदायक अरिष्टासुर आगया ।।११।।

अनुवाद—खुरके अग्रभागसे पृथ्वीको खोदते हुए शीघ्रतासे घूमते हुए श्रृङ्गके अग्रभागसे पर्वतको उछालते हुएकी तरह ऊपर पूँछ उठाए, उसको गोप-

---

(1) नासिका ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुमुत्तुङ्गे शृङ्गे पशुपशिशुरङ्गेन कलयन्-
धुनानोऽतिध्वानं मृगमिव मृगेन्द्रो हरिरहन् ॥१२॥

केशोवधः

अथायातः [1]केशो तुरगवरवेशी विरचयन्
खुरीखेलां वेलां भुवि चरणहेलार्त्तपवनः ।
श्रुती कृत्वोत्ताने नभसि विधुनाने हरिहया-
नधः कुर्वन्नुच्चैः श्रवसमलमुच्चैस्तरतया ॥१३॥

पुरः पश्चात् श्यावो[2] दृढनिबिडमध्योढलघिमा
महोत्तुङ्गः पृष्टे शिरसि च गरिष्टेऽसित[3]रुचिः ।
गुरूदग्रग्रीवश्चरणवलयीव द्विनयनो
हयः केशी चित्रादपि जगति चित्राकृतिरभूत् ॥१४॥

शिशु कृष्णने ऊँचे शृङ्गमें पकड़कर शब्दपूर्वक घुमाते हुए सिंह जैसे मृगको मारता है उसी तरह हरिने उसे मार दिया ॥१२॥

केशी-वध

अनुवाद—इसके पश्चात् सुन्दर घोड़ेका वेश बनाये पृथ्वीपर थोड़ी देर खुरोंसे खेल करता हुआ चरणोंकी हेलासे मानों पवनको आर्त्त करता हुआ, आकाशमें सूर्यके अश्वोंको भी कंपाते हुएकी तरह अपने कानोंको खड़ा किये हुए अति ऊँचा होनेके कारण इन्द्रके उच्चैःश्रवा घोड़ेको तिरस्कृत करता हुआ-सा केशी आगया ॥१३॥

अनुवाद—आगे और पीछे भागमें श्याव, कुछ काला पीला मध्यभागमें दृढ़ और घनी लघिमा धारण किए बहुत ऊँचा अति गुरु पृष्ठ और शिरो भागपर कृष्ण शोभा धारण किए गुरु और ऊँची ग्रीवावाला चरणोंमें वलय जैसा धारण किये दो आँखवाला वह केशी नामवाला घोड़ा संसारमें चित्रसे भी विचित्र आकृतिवाला था ॥१४॥

---

(1) भा० १० स्क० ३७ अध्याये कथा ।

(2) श्यावः कृष्णपीतः ।

(3) कृष्णरुचिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरस्ताद्विस्तारैः स्तन इव परस्तादपि पृथुः
सुपीनश्रोणीव प्रणय इव तुङ्गो मृगदृशः ।
तनीयोमध्यश्रीस्तनुरिव तरस्वी मन इवा-
निवारश्चेतोभूरिव दनुजवाहः समजनि ॥१५॥

यदि चलति कदापि द्विपादिव, तदा पदा विलङ्घ्य रंहसा गिरिसंघसागरानपि सप्तपदीमिव सप्तद्वीपान्तरमपि तदिदमनन्ततलमपि निखिलमाशावलयमपि न गतिषु पारितोषमेत्य रोषवलित इव गन्तव्यस्थलविरहमनुभूय दूयमानमानसो भूयो भूयोऽपि तव धिगनन्ताभिधानमित्यनन्तामधिक्षिपन्निव त्रिभुवनतनिमविधानमधुरीणां धातारमास्कन्दन्निव लिखति खरखराग्रैरव्यग्रमुर्वीतलमेव बहुवेलम् ॥१६॥

क्षणं खुरखरीखरः क्षणमनन्तवाहान्तर-
प्रपातहठलम्पटः क्षणमदभ्रझम्पोत्कटः ।
हयः क्षणमसौ हरिच्चरितचन्द्रचक्रभ्रमि
द्विपादिव महीतले क्षणमभूत्कृतागस्थितिः ॥१७॥

अनुवाद—आगे विस्तारसे स्तनकी तरह पीछेसे भी स्थूल तथा पीन मोटी कटिवाला, मृगनयनीके प्रेमकी तरह ऊँचा मध्य भागकी पतली शोभावाले शरीरकी तरह, मनकी तरह, वेगवान्‌की तरह नहीं रोकने योग्य वह दैत्य केशी था ॥१५॥

अनुवाद—यदि कभी दो पैरवालेकी तरह चलता था तब पैरसे वेगके कारण पर्वत समुद्रोंको भी लाँघकर तथा सातों द्वीपोंको सप्तपदीकी तरह लङ्घन करके तथा इस अनन्त तलवाले दिङ्मण्डलको भी लाँघकर, फिर भी चलनेमें सन्तोष प्राप्त न करके, क्रोधीकी तरह, गन्तव्य स्थानके अभावका अनुभव करके मनसे दुःखी होता हुआ, तेरे इस अनन्त नामको धिक्कार है ऐसे अनन्त भगवान्‌की निन्दा करता हुआ, त्रिभुवनकी तनुताके विधानमें चतुर ब्रह्माकी निन्दा करता हुआ तीव्र खुरोंके अग्रभागसे निश्शङ्क होकर बहुत देरतक पृथ्वीको खोदता रहता था ॥१६॥

अनुवाद—थोड़ी देरतक खुरोंसे कठोरतापूर्वक खर-खर करता हुआ थोड़ी देरतक अनन्त भगवान्‌के वाहनको बीचमें गिरानेका हठ करता हुआ थोड़ी देरतक अत्यन्त उत्कट झटका देता हुआ, थोड़ी देरतक दिशाओंमें घूमते हुए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सायमुपनगरीषु गतिचातुरीभिरभिभूय व्रजभूमिचारिणां मनो नयनानि बन्दीकृत्येव विहरन्, मधुरिपुमुपलभ्यारभ्यातिहेषारवमेषां बधिरतामुद्भावयन्नाशातलमाकाशवलयमापूरयन्नपि कृशयन्नपि जलधर जलधिगभीरघोषान्, रोषाकुलो निःशेष[1]व्यात्तवदनतया भयानकः प्रकटितविटपकटुकठोरदंष्ट्राकुठार - निष्ठुरं द्रष्टुमना दुष्ट दनुजहयपतिरुद्दधाव भूयिष्ठम् ॥१८॥

[2]हयास्ये हास्येन स्फुरति मधुरास्यो मधुरिपु-
र्भुजादण्डं दूराव्द्यतरदवलम्ब ददद्दिव ॥१९॥
द्विजैर्द्रागुड्डीनं चलितमचिराद् गोभिरभितः ।
स लेभे धामोच्चैः प्रभुरकृपया किं न कुरुते ॥२०॥

चन्द्रमाके चक्र भूमिकी तरह चरित्र करता हुआ, द्विपादकी तरह पृथ्वी तलपर वह घोड़ा स्थित रहा ॥१७॥

अनुवाद—सायंकालको नगरीके पास अपनी गतिकी चतुरतासे व्रजभूमि में रहनेवाले लोगोंके मनको हटाकर, आँखोंको बन्द जैसा करके विहार करता हुआ, मधुरिपु कृष्णको प्राप्त करके और अपना ह्रेषारव (हिनहिनाना) आरम्भ करके वधिरपन जैसा उत्पन्न कराता हुआ, दिशाओंको तथा आकाश मण्डल को ह्रेषारवमे कृश करता हुआ, क्रोधमें आकर सम्पूर्ण मुखको फैला देनेके कारण अत्यन्त भयानक विटपरूपी व्रजवासियोंके लिये कटु-कठोररूपी दंष्ट्रा वाला कठोरतासे देखनेकी इच्छावाला, दुष्ट दैत्य केशी, अश्वरूप में बहुत गरजता रहा ॥१८॥

अनुवाद—मधुर मुखवाले मधुरिपु कृष्णने उस दैत्यके चञ्चल मुखमें दूरसे ही अवलम्ब (सहारा) देते हुएकी तरह अपना हाथ डाल दिया। उस समय तत्काल सब पक्षी उड़ गये, गौयें चारों ओर भागगई, और उस दैत्यने कृष्णके हाथसे प्राण छोड़कर उच्चस्थान प्राप्त किया, प्रभुके कृपा न करनेपर क्या-क्या अनिष्ट नहीं होता । १९–२०॥

---

(1) विस्तीर्ण ।

(2) अश्वमुखे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अथ निपतति विगतासुतया हयवेषिणि केशिनि दनुजपतावचिरोपस्थितविध्वंसकंसलक्ष्मीरिव सपदि चकम्पे शम्पेव वसुधेयम् ॥२१॥

यदवधि वसुधा दधार कम्पं तदवधिकं सतनुस्तनूढघर्मा ।
किमजनि कमलैव भोजभर्त्तुर्मधुरिपुसङ्गमरङ्गसात्विकश्रीः ॥२२॥

अक्रूराय कंसादेशः

अथ सपदि स विचार्य भूर्य्यमात्यवर्यैः सह निजकार्य्यसिद्धये स नन्दनन्दननन्दानयनमाचार्य द्विरदकुलापीडकुवलयापीडचाणूरमुष्टिकप्रभृतिमहामल्लप्रोत्थापनमेव निर्णीय समाहूयाक्रूर[1]मादिदेश किमपि निगूढमहाक्रूरः ॥२३॥

नाशं बकीबकमुखेषु गतेषु तेषु
चाणूर मुष्टिकबलं स जयाय मेने ।

अनुवाद—इसके पश्चात् उस अश्वका वेश धारण करनेवाले दनुजपति केशीके गिरनेपर, शीघ्र उपस्थित होनेवाले विध्वंससे कंसकी लक्ष्मोकी तरह तत्काल बिजलीकी तरह यह पृथ्वी काँपने लगी ॥२१॥

अनुवाद—जितनी देरतक पृथ्वीमें कम्प हुआ तब तक मानों शरीर धारण करके शरीरी जैसे धर्मको धारण करती हुई भोजपति कंसकी लक्ष्मी ही मधुरिपु कृष्णके सङ्गमके आनन्दसे सात्विक शोभावाली ही क्या होगई ॥२२।

अक्रूरको कंसका आदेश

अनुवाद—इसके बाद उस कंसने अपने बड़े-बड़े मन्त्रियोंसे शीघ्र विचार करके अपनी कार्य सिद्धिके लिये नन्दनन्दन कृष्ण और नन्दको बुलाना निश्चय करके, गजकुलको पीड़ित करनेवाले कुवलयापीड़ चाणूर मुष्टिकादि महामल्लोंको उठाना सोचकर उनको बुलाकर फिर अपनी दुष्टताको छिपाकर उसने आदेश दिया ॥२३॥

अनुवाद—पूतना, बकादिके नष्ट होजानेपर कृष्णके एक ग्रासके समान चाणूर और मुष्टिकको कंसने अपनी जयका साधक माना, जिस प्रकार चन्द्रमा,

---

(1) अक्रूरकथा भा० स्कं० ३८–४१ अध्यायेषु वर्त्तते ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्दौ गतेऽस्तमवलेपि सरोजबन्धौ[1]
खद्योतरोचिरिव घोरतमोजिगीषुः[2] ॥२४॥

अक्रूर व्रजनगरं व्रजा वजन्तु द्राक्पर्याकलितकरा व्रजव्रजास्ते ।
नन्दाद्याः सहकृत नन्दना परश्वःसंभावी यदिह धनुर्महामहो नः ॥२५॥

भोजभूपतिगिरं तु गान्दिनीनन्दनो द्रुतमधत्त मूर्धनि ।
प्रातरध्वनि चकारं चंक्रमं संक्रमं रविरिवाघनिष्क्रमम् ॥२६॥

दक्षिणं प्रचलदक्षि गान्दिनीनन्दनेक्षणमधत्त तत्क्षणे ।
प्रैरयच्चरणमुग्रतो यदा तोयदाभपुरुषं स भावयन् ॥२७॥

आचुम्ब्य चक्षुरथ दिक्षुरसौ निधाय
सम्यग्विधाय शुभसूचकदर्शनानि ।
ध्यात्वा किमप्यभिदधत्पुलकप्रपञ्ची
सञ्चीयते स्म स चिराय मुदां चयेन ॥२८॥

सूर्य और अग्निका प्रकाश न होनेपर खद्योत प्रकाशसे कोई घोर अन्धकारको नष्ट करना चाहता हो ॥२४॥

अनुवाद हे अक्रूर ! तुम शीघ्र व्रजनगरमें जाओ, वे सब व्रजके रहनेवाले समूह शीघ्रही 'कर' लेकर यहाँ आवें, नन्द आदि सब अपने पुत्रोंको साथ लेकर आवें, यहाँ परसों बहुत बढ़ा धनुर्यागका महोत्सव होगा ॥२५॥

अनुवाद—भोज भूपतिकी वाणीको गान्दिनीनन्दन अक्रूरने शीघ्रही अपने सिरपर धारण किया और सूर्यके पापनाशक संक्रमणकी तरह अक्रूरने प्रातःकाल मार्गमें अपनी यात्रा प्रारम्भ की ॥२६॥

अनुवाद—फड़कती हुई दाहिनी आँखने तत्काल ही गान्दिनीनन्दन अक्रूरकी दृष्टिको प्रसन्नकर दिया वह मेघके समान श्याम कृष्णकी भावना करते हुए उग्रतापूर्वक अपने चरणोंको आगे प्रेरित करने लगे ॥२७॥

अनुवाद—आचुम्बन करके अर्थात् अच्छे लक्षणोंकी भावना करके दिशाओंमें नेत्र डालकर शुभ सूचना देनेवाले दर्शनोंकी अच्छी तरह आशा करके, कुछ ध्यान करके कहते हुए, पुलकसे शरीरको भूषित करके, हर्ष समूहसे वह अक्रूर उस समय गद्गद्से हो जाते थे ॥२८॥

---

(1) सूर्ये । (2) जेतुमिच्छुः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्भिन्नाञ्जनपुञ्जगञ्जनरुचिभ्रू भङ्ग दृग्भङ्गयो-
राचार्यः कलितत्रिभङ्गललितो गोधूलिभिर्धूसरः ।
प्रस्थानक्षण एव दक्षिणमहोयचचक्षुरालम्बमे
लास्यारम्भणमित्थमेव स पुरोभावीति संभाव्यते ।।२६।।

अक्रूरभाववर्णनम्

अञ्जनं विरचितानुरञ्जनं प्राप्स्यसि प्रथित - खेद - भञ्जनम् ।
अप्यताण्डवमितोव मन्महे मन्महे न तव हे विलोचनम् ! ।।३०।।

रङ्गा रचिततरङ्गाः सपदि कुरङ्गा वदन्ति हरिसङ्गान् ।
मयि राज्ञामियमाज्ञा कीदृश भाग्यादभून्न विज्ञातम् ।।३१।।

बलपुलकवरैव मे जडिम्ना नयनपयोवहवेपथो प्रसीद ।
नयनपथगते व्रजाधिनाथे न तु भजतानुभवे विरोधिभावम् ।।३२।।

अनुवाद—सम्पूर्ण अञ्जन पुञ्जकी शोभासे उत्तम शोभावाला भ्रूभङ्ग और नेत्र भङ्गका आचार्य, धारण की हुई त्रिभङ्गी शोभासे, सुन्दर गोधूलिसे धूसरित वह कृष्ण, हमारा इष्टदेव है, हे दक्षिण नेत्र, तुम प्रस्थान कालमें जिसका ध्यानकर रहे हो, इस प्रकार का तुम्हारा लास्यचञ्चलता भविष्यके आनन्दको बता रहा है ।।२६।।

अक्रूरके भावका वर्णन

अनुवाद—हे विलोचन ! तुमको विलोचन नहीं, किन्तु ताण्डवशून्य चञ्चलता-शून्य भविष्यके सूचना देनेकी प्रक्रिया मानता हूँ, कि उस खेद दूर करने में प्रसिद्ध अञ्जन सदृश श्याम अनुराग करनेवाले उस कृष्णको प्राप्त करोगे, यह तुम्हारी प्रथम सूचना है ।।३०।।

अनुवाद—तरङ्ग जैसे कूदनेवाले आनन्ददायक यह 'हिरिण' हरिका संग होगा यह बता रहे हैं । यह राजाकी आज्ञा कौनसे भाग्यसे हुई, यह मैं नहीं जानता ।।३१।।

अनुवाद—हे नेत्रके आँसू बहानेवाले कंपन ! तुम प्रसन्न होजाओ मेरी जड़तासे यह पुलक बलपूर्वक हुआ है, ब्रजाधिनाथ कृष्णके दर्शनमें तुम किसी विरोधी भावका अनुभव मत करो ।।३२।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वाहं मोहमयः क्व बोधिनिचयध्येयः स्वयं माधवो
भूयाल्लोचनगोचरोऽयमिति मे का नाम संभावना ।
कः प्रत्येतु विलोकते कमलिनीबन्धुं तमन्धं तमो
नह्यन्धः प्रभुरीक्षितुं क्वचिदभूद्रत्नं पुरोवर्त्यपि ॥३३॥

द्रक्ष्यामि क्षितिषु क्षणं चरणयोर्लक्ष्माद्य लक्ष्मीपते-
र्दम्भोलिध्वजपङ्कजांकुशपदाभिख्यापरिख्यापितम् ।
स्पृक्ष्यामि प्रपतन्नुपेतपुलको वक्ष्यामि मूर्ध्ना रजः
स्रक्ष्यामि प्रमदं च द्रक्ष्यति यमी यं नो जनुःकोटिभिः ॥३४॥

विश्राम्यद्गतिमुद्रितस्मृतिसमुत्तानश्रुतिप्रस्फुर-
ल्लोमाञ्चाकृतिसाश्रुसन्ततिगवां धाराभिराराध्यते ।
सा वंशीकलमाधुरी मधुरिपोः स्यान्मे सुधाजित्वरी
कर्णद्वारचरी सुरासुरपतेराज्ञातिभाग्यादभूत ॥३५॥

उद्यद्घर्मघनाणुधोरणिदधद्धेनोश्च रेणोः कणा-
न्व्यालोलालकसंकुलालिकतयोन्मृष्टार्द्धगोरोचनम् ।

अनुवाद—कहाँ मैं मोहयुक्त जड़ और कहाँ योगियोंसे ध्यान करने योग्य माधव, यह कब सम्भावना थी कि वे माधव मेरे दृष्टिगोचर होंगे, कौन यह विश्वास करेगा कि गहन अन्धकार उस कमलिनी बन्धु सूर्यका दर्शन करेगा, अन्धा कभी आगे पड़े रत्नको अथवा प्रभुको देखनेमें समर्थ नहीं हो सकता ॥३३॥

अनुवाद—थोड़ी देरतक पृथ्वीपर पड़े हुए लक्ष्मीपति कृष्णके चिह्नोंके दर्शन करूँगा, जो वज्र ध्वज कमल अंकुश नामसे प्रसिद्ध हैं, चरणोंमें गिरते हुए रोमाञ्चित शरीरसे उनका स्पर्श करूँगा, सिरपर चरण धूलिको धारण करूँगा, मनमें हर्ष करूँगा जिनको संयमी कभी करोड़ों जन्ममें भी नहीं देखपाते, उनको देखूँगा ॥३४॥

अनुवाद—विश्रान्त गति, स्मृतिका मुद्रण कानोंको ऊपर उठाना निकले रोम समूहसे युक्त आकृति एवं अश्रु प्रवाहयुक्त वाणीसे इन सबसे उस प्रभुकी आराधना होती है, वह अमृतको जीतनेवाला कृष्णकी वंशोका ध्वनि माधुर्य मेरे कर्ण कुहरमें पड़ेगा, इसलिये बड़े भाग्यसे सुरासुर पतिकी आज्ञा मुझे हुई है ॥३५॥

अनुवाद—उदित होते हुए स्वेद बिन्दुओंसे युक्त गोधूलिके रजकण धारण करते हुए चञ्चल केशोंसे मस्तक ढका होनेके कारण आधा मस्तकका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्मेरापाङ्गबलत्तरङ्गनयनं यत्रेक्षणं प्रेक्ष्यते
वाप्यग्रन्थितपक्ष्म तन्मुखमहो स्यान्मे स कीदृक् क्षणः ॥३६॥
संसाराद्बहिरासते विदधते ध्यानैकतानं मनो
योगीन्द्राश्चरणं च गोचरयितुं नैव क्षमन्ते क्षणम् ।
रेदुःसाहसमूढमानसपरीरम्भोऽपि सम्भाव्यते
किं ब्रूमो बत पंगुरिच्छति गिरीनुल्लंघितुं रंहसा ॥३७॥

वृन्दावने गमनम्

इदमादिकमधिकमनुध्यायं ध्यायमनवहितप्राह्णमध्याह्नपराह्न-समयाह्निकमविदितक्षुधाबाधादिकमम्भोजिनीकुलबान्धवे चरमगिरि-चूडाचक्ररत्नायमाने महायानेन यमुनातटनिकट एव वृन्दावनोपकण्ठ-मुपलेभे गान्दिनीनन्दनो नाम ॥३८॥

ददृशेऽथ दृशेह मानया पदलक्ष्मैव विलक्षणं हरेः ।
अवतीर्य रथाद्वितीर्य दृग्जलपुष्पं समपूजि तेन तत् ॥३९॥

गोरोचन भी पोंछ-सा दिया है, मन्द मुसकान कटाक्षपूर्ण चंचल नयनयुक्त तथा ग्रन्थिशून्य पलकवाली दृष्टियुक्त उस मुखको जब मैं देखूँगा अहो ! वह क्षण मेरे लिये कैसा होगा ॥३६॥

अनुवाद—जो संसारसे बाहर रहते हैं और एक तान होकर ध्यानमें मन लगाते हैं सो योगीजन इस प्रकार चरणोंके दर्शन करते हैं वे भी क्षणभर भी दर्शन नहीं कर पाते, रे दुःसाहस मूढ़ मनसे भी जिनका आलिङ्गन सम्भव नहीं है, क्या कहें पंगु मनसे पर्वतको भी लङ्घन करनेकी इच्छाकर रहा है ॥३७॥

वृन्दावनमें जाना

अनुवाद—इस प्रकार अधिक ध्यान करते-करते दिनके पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न कालका भी ध्यान नहीं करके भूख-प्यासादि बाधाका भी ध्यान भूलकर सूर्यके अस्ताचलपर आरूढ़ होनेपर महायानके द्वारा यमुनातटके निकट वृन्दावनके समीप गान्दिनी नन्दन अक्रूरजो आगये ॥३८॥

अनुवाद—इसके अनन्तर इच्छा करती हुई दृष्टिसे हरिके चरण चिह्नों का दर्शन किया, रथसे उतरकर नेत्रोंके जल और पुष्पसे अक्रूरजीने उन चिह्नों की पूजा की ॥३९॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उरसा शिरसा च गान्दिनीतनयोऽवन्दत चेतसा दृशा ।
अवशो निपतन्नशोभतोत्पुलकौघैस्तरुरंकुरैरिव ॥४०॥

तदुदीक्षितुमक्षि लोलुपं तदुपासङ्गकृतेऽङ्गमुत्सुकम् ।
उभयत्र सतास चेतसा प्रतिनद्योरिव मध्यगोद्रुमः ॥४१॥

दृशि वक्षसि मूर्ध्नि तत्पदान्तिक धूलीमयमाददे मुदा ।
न तदङ्कमशङ्कमानसोऽजनि संस्प्रष्टुमपि प्रभाववित् ॥४२॥

न विवेद निचोलमव्यवस्थं च्युतबन्धं चिकुरं च मुग्धचेताः ।
हरिमीक्षितुमुद्धताभिलाषः सहसोन्मत्तवदाप नन्दवासम् ॥४३॥

नन्दव्रजवर्णनम्

क्वचन मदकलाच्छवत्समण्डलैरुत्युच्छ्रमुच्छलद्भिरुपचितपरमोत्साहपरिणाहम्, क्वचिदुधोभरमन्द संचारुचटुलतरधेनुधोरणीकम्, क्वचिदविरलममदत्तान्योन्यसमरापन्नाति चण्डषण्ड[1] मण्डलीकम्

अनुवाद—हृदयसे, चित्तसे, सिरसे, दृष्टिसे अक्रूरजी ने चिह्नोंकी वन्दना की, अवश होकर गिरते हुए, अंकुरोंसे वृक्षकी तरह रोमांचसे अक्रूरजी शोभित थे ॥४०॥

अनुवाद—उनके देखनेको आँखें उत्सुक थीं उनका आलिङ्गन करनेको अङ्ग उत्सुक था, चित्त आँख और अङ्ग दोनोंमें व्याप्त था, इसलिये दो नदियोंके मध्यमें आए वृक्षकी तरह उनकी शोभा थी ॥४१॥

अनुवाद—उनके चरणोंकी धूलिको अक्रूरने नेत्रोंमें हृदयपर मस्तकपर लगाया । शङ्कित मन होकर प्रभाव वेत्ता अक्रूरने उनके चिह्नोंका स्पर्श नहीं किया ॥४२॥

अनुवाद—मुग्ध चित्तवाले अक्रूरजीने गिरते हुए वस्त्रको तथा बन्धन खुले बालोंको भी नहीं जाना, हरिके दर्शनकी अभिलाषा किये शीघ्र ही नन्दके आवास स्थानको गये ॥४३॥

नन्द व्रज वर्णन

अनुवाद—कहीं मदसे शोभित उछलते हुए सुन्दर वत्स समूहसे विस्तृत तथा विशाल आकार वाला, कहीं अधस (ऐन गायका) के भारसे मन्द गतिवाली

---

(1) षण्डा वृषभाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वचिदुपचितपवमानदोधूयमानकरीष धूमसन्तानश्यामलिमसमाहूत बर्हियूथम्, क्वचन च तरुणाभीरवीरदुह्यमान सुधासमानापरिमाण-दुग्धमुग्धध्वनिसंदिह्यमान हिमगिरि तटवहमानगङ्गाप्रवाहम्, क्वचन च रचितातिचण्डचंक्रमणचमत्कार धेनुधारानुधावद्धीरेतरधूतकल-धौतलगुडकराभीरकिशोरपरम्परम्, क्वचन कुचकलशविरोचमान-व्रज वामलोचना चरित चतुराननाद्यविदित चक्रपाणि चरण गुणानु-वादसादरारम्भम्, क्वचन सुरकेसरिकैशोरावधिकर्म्मकौशलमकौशला-पसारणमनुगीय क्रोडाधिरूढा प्रौढ किशोरान्निद्राविद्रावित द्रवणाया-सान कुर्वतीभिरशोभितमपि नीरन्ध्रपशुपकुल पुरन्ध्रीभिः क्वचन पुर-पयोधिनन्दिनी सीमन्तसीमशोलितामन्दसिन्दूर बिन्दु सन्दोह सन्देह घटनपटीयोदीप पटलीदीपन व्यग्रपाणिकमलभूयिष्ठसुचरित्र गोष्ठीक-मनु बभूव गान्दिनीनन्दनो गोष्ठम् ।।४४।।

चंटुल धेनु समूहवाला कहीं निरन्तर मदमत्त परस्पर युद्धके इच्छुक अति उग्र वृषभ समूहकी मण्डलावाला, कहीं तीव्र वायुसे फैले हुए शुष्क गोमयकी धुँएकी श्यामलतासे मयूर समूहको बुलाता हुआ और कहीं युवक आभीर वीरोंके द्वारा दुहा हुआ अमृतके समान अपरिमित दुग्ध उसकी मुग्ध ध्वनिसे हिमालयके तटपर बहती हुई गङ्गाका सन्देह-सा कराता हुआ और कहीं अत्यन्त उग्र चमत्कारपूर्ण भ्रमण करनेवाली गौओंके पीछे दौड़ते हुए चञ्चल सुवर्णकी लगुड हाथमें लिए हुए गोपकिशोरोंकी परम्परावाला और कहीं कलश सदृश कुचोंसे शोभित, व्रजकी वाम लोचनाओंसे किया हुआ ब्रह्मादिके द्वारा भी अज्ञात चक्रपाणि भगवान् कृष्ण के गुणानुवादसे शोभित और कहीं असावधानता हटाकर कृष्णके बाल्यकालसे लेकर कर्म कौशलका गान करके गोदमें बैठे बालकोंकी निद्रा टूटनेका कार्य न करती हुई निरन्तर गोप कुलकी स्त्रियोंसे शोभित और कहीं नगरकी गोपियोंके केश वेशकी भूषासे शोभित अतिशय सिन्दूरके बिन्दु समूहका सन्देह करनेवाले, सुन्दर दीप समूहके जलानेमें लगे कर कमलसे उत्तम चरित्रवालोंके सुन्दर गोप समूह युक्त गोष्ठका गान्दिनीनन्दन अक्रूरने अनुभव किया ।।४४।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृष्णशोभावर्णनम्

व्रजाधिनाथमन्दिरे व्रजन्व्रजेन्द्रनन्दनं
व्रजेन्द्रियाभिनन्दनव्रजानुकूलचन्दनम् ।
कटीतटीनटीभवद्‌घटीपटीतडिद्‌घनम्
वपुर्विभाति भूतभाघनो भवद्‌घनाघनम् ॥४५॥

झणज्झणद्‌ध्वनन्मणीमनोज्ञकिङ्किणीधरं
कलत्क्वणत्क्रमोल्लसत्पदानुरूपनूपुरम् ।
विलोल कुण्डलप्रभाप्रभातगोपगोपुरम्
गजेन्द्र मन्दगामिनं महेन्द्रदर्पदामिनम् ॥४६॥

ललाटपट्टरोचमानपाटलाभरोचनम्
दयावलोकलोपिताखिलो+हानशोचनम् ।
हिरण्यहारहारिभाविभासमान वक्षसं
भुजाग्रलग्नकङ्कणच्छटोद्‌भटोद्यदङ्गदम् ॥४७॥

कृष्ण शोभा वर्णन

अनुवाद—व्रजके अधिनाथ नन्दजीके घरमें चलते हुए व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण अत्यधिक शोभित होरहे हैं. ब्रजके लोगोंकी इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले व्रजके अनुकूल चन्दनके समान शीतलता प्रदान करनेवाले हैं। कटि तटपर हिलती हुई घटीकी पटी वस्त्र बादलमें बिजलीकी शोभा देती है, घनो शोभासे युक्त घने बादलकी तरह उनका शरीर शोभा देता है ॥४५॥

अनुवाद—झन-झन ध्वनि करती हुई, मणियोंसे सुन्दर किङ्किणीको धारण किये है, तथा सुन्दर शब्द करते हुए क्रमसे शोभा देते हुए, पैरोंके अनुरूप ही घुंघरू बोल रहे हैं। चञ्चल कुण्डलोंकी कान्तिसे गोप और गोपुर सबकी अद्‌भुत ही शोभा होरही है। वे गजेन्द्रके समान मन्द मन्द चलनेवाले हैं और महेन्द्रके अभिमानको नष्ट करनेवाले हैं ॥४६॥

अनुवाद—ललाट पट्टपर लाल पाटल वर्णकी रोचनाकी रुचि बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। दयाकी दृष्टिसे देखनेसे सब लोगोंका सम्पूर्ण शोक दूरकर दिया है, सुवर्णके सुन्दर हारसे वक्षस्थलकी शोभा मनको वशमें करनेवाली है तथा मनको बहुत हरनेवाली हैं। भुजाके अग्र भागपर पहिना हुआ कङ्कण बड़ी छटा देता है उससे अङ्गदकी शोभा और भी बढ़गई है ॥४७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्फुरारविन्दगञ्जिना स्मितच्छटातिमञ्जुना
जगन्मनोनुरञ्जिना महातमोभिभञ्जिना ।
शुभंयुनाभिरोचमानमाननेन चक्षुषा ।
अधीरधेनुरेणुभिर्विधूसरीकृतालकं
समस्त लोक पालकं वयस्य गोपबालकम् ।।४८।।

सुपुष्पदाम गुञ्जया विघुर्णितालि पुञ्जया
निगूढयापि चूडया विगाढ मूढ सौभगम् ।
ददर्श दर्शतामसीतमः समूहमूहयन्
महो वहन्तमन्तिके सहैव गान्दिनी सुतः ।।४९।।

दधानमभ्रमेचकं शितिप्रभाभिषेचकं
पटौ कटौ सुचेलकं कृतानुजानुमेलकम् ।
अयोमयोरुशृङ्खलामिवातिशुभ्रकुञ्जरं
मनोनिरोधपञ्जरं बलं च चन्द्रपाण्डरम् ।।५०।।

अनुवाद—खिले हुए कमलको तिरस्कृत करनेवाले, महान् अन्धकारको भी हटानेवाले, कल्याण करनेवाले, मुख तथा नेत्रसे जिनका रूप बड़ा शोभित होरहा है, अधीर होकर दौड़ती हुई गौओंकी धूलिसे जिनके केश धूसरित होगये हैं, वे समस्त लोककी रक्षा करनेवाले हैं तथा गोपोंके बालकोंके वयस्य हैं ।।४८।।

अनुवाद—खिले हुए पुष्प तथा घुघुचियोंसे जिसपर भ्रमर समूह घूम रहे थे ऐसी माला जिनकी निगूढ़ होकर अच्छी तरह चोटीमें गुथी है, उस चोटीसे जिनका सौन्दर्य और भी बढ़गया है अमावस्याकी रात्रिके अन्धकार समूहकी तरह तर्कना करते हुए गान्दिनी पुत्र अक्रूरने अद्वितीय तेज धारण करते हुए कृष्णको समीप में देखा ।।४९।।

अनुवाद—नीली प्रभाका अभिषेचन-सा करते हुए सुन्दर घनके समान काले केश धारण किये, पटी व कटिमें सुन्दर वस्त्र धारण किये, जानु तक लटकते हुए वस्त्रवाले श्वेत हाथी जैसे लौहकी बनी बड़ी शृङ्खलाको धारण किये हो उसी प्रकार वस्त्र धारण किये मनको रोकनेके पिंजड़ेके समान तथा चन्द्रके समान उज्ज्वल श्रीबलरामजीको देखा ।।५०।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रागाकर्णित विश्ववर्णित घनश्यामाभिरामे मनो
दृष्ट्वान्तं परिचीय जातजडिमा भूमावसौ निष्पतन् ।
बाहुभ्यां परिरभ्य निर्भरमुरोभागे समुत्थापितो
द्रागेव स्मितमञ्जुकञ्जुनयनेनाहो तपः कौशलम् ॥५१॥

नन्दद्वारा सत्कारः

प्रौढप्रेमसमारूढजडिमा गान्दिनीसुतः ।
प्रबभूव तनौ नैव भूयः किमभिधास्यति ॥५२॥

तालाङ्कोऽपि दधावङ्के मीलत्पङ्केरुहेक्षणम् ।
आलिलिङ्गकृतानन्दः श्रीनन्दो गान्दिनीसुतम् ॥५३॥

कृतोपवेशस्य सुवेशमत्या पत्या समं दत्तवरासनेषु ।
पानीयमानीय पदे सुधौते यशोदया दीप्तयशोदयापि ॥५४॥

अनुवाद—पूर्वकालमें सुना हुआ विश्वमें वर्णन किया हुआ श्याम तथा सुन्दर रूपको मनने देखकर अन्तमें परिचय प्राप्त करके अक्रूरजी जड़ जैसे होकर पृथ्वीपर गिर गये, तत्काल दोनों हाथोंसे उठाकर हृदयसे निर्भय आलिङ्गन करके मन्द मुस्कानसे तथा कमल सदृश नेत्रकी सुन्दर दृष्टिसे प्रेम किया। अहो तपका बड़ा प्रभाव है ॥५१॥

नन्द द्वारा सत्कार

अनुवाद—अत्यन्त बढ़े हुए प्रेमसे गान्दिनी सुत अक्रूरजीको जड़ता जैसी प्राप्त होगई, इन्हें अपने शरीरपर भी अधिकार नहीं रहा फिर आगे ये क्या कहेंगे ॥५२॥

अनुवाद—तालांक श्रीबलरामजीने भी नेत्र बन्द किये अक्रूरजीको अपने अङ्क (गोदमें) धारण किया तथा श्रीनन्दजीने भी बड़े आनन्दके साथ गान्दिनी सुत अक्रूरजीका आलिङ्गन किया ॥५३॥

अनुवाद—सुन्दर वेशवाली यशोदाके द्वारा पतिके साथही सुन्दर दिये हुई आसनपर बैठे अक्रूरजीके पानी लाकर दीप्त यशवाली यशोदाने दोनों पैर धोये ॥५४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुशलप्रश्नः

सुधामुचोवाच स चारु वाचा रुचा सदाचारपरः स्फुरन्तम् ।
दिष्ट्यासि दृष्टा महतोनुभूतिर्भवेद्विना नैव तपोविभूतिम् ।।५५।।

विधाय सम्यग्व्यवसायमेनं स भोजयामास यथेष्टमिष्टम् ।
पप्रच्छ सोत्साहमभीप्सितानि हितानि तस्यागमकारणं च ।५६।।

स गान्दिनी सुनुरनूनशीलो नन्दं बभाषे ज्वलिताधिकीलः ।
आशीविषेणेव सहाधिवासी जनो न कः सीदती भोजभर्त्रा ।।५७।।

धनुर्यज्ञोत्सवसूचनम्

धनुर्महो मे भविता परश्वो युक्तं करैःश्वो व्रजमानयस्व ।
सगोरसं नन्दसरामकृष्णमाज्ञापयामास स मां प्रतीति ।।५८।।

आज्ञातं प्रथितधनुर्महेन राज्ञा
विज्ञातं भवतुभवद्भिरित्यभिज्ञाः ।

कुशल-प्रश्न

अनुवाद—सदाचार परायण श्रीनन्दजीने अमृत वर्षिणी वाणीसे बड़े प्रेमसे प्रसन्न अक्रूरजीसे कहा—भाग्यसे ही आपकी महान् अनुभूतिको देखा है जो बिना तपके असम्भव है ।।५५।।

अनुवाद—इस प्रकार अच्छी तरह उनका सत्कार करके उन्हें अभीष्ट सुन्दर भोजन कराया फिर बड़े उत्साहसे अभीष्ट कल्याणकी बातें तथा आनेका कारण पूछा ।।५६।।

अनुवाद—उत्तम स्वभाववाले अक्रूरजी हृदयके ज्वलित दुःखसे युक्त होकर नन्दजीसे बोले—सर्पकी तरह राजा कंसके साथ रहनेवाला कौन मनुष्य दुःखी नहीं होता ।।५८।।

धनुर्यज्ञोत्सवकी सूचना

अनुवाद—"परसों मेरा धनुर्याग होगा टैक्स लेकर कल यहाँ ब्रजमें बुला लाओ गोरसके साथ कृष्ण व रामको साथ लाना है" यह कंसने मुझे आज्ञा दी है ।।५७।।

अनुवाद—प्रसिद्ध धनुर्याग करनेवाले राजाने यह आज्ञा दी है, आप सब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गन्तव्योषसि मथुरा करान्गृहीत्वा
घोषेऽस्मिन्द्रुतमिति घोषयन्तु घोषान् ॥५९॥

कृष्णगमनवृत्तान्तश्रवणेनव्रजदशा

बलेन प्रत्यूषे सह मधुपुरीं यास्यति हरि-
र्मनागित्याघोषे श्रुतिकुहरकोशे गतवति ।
बलायुः श्रीमोषा विहित मतिशोषा द्रुतमहो
न घोषे योषाणामहह कति दोषाः समभवन् ॥६०॥

अथ कापि कला कलापिनी द्रागधृतिद्रावितचेतनासमुद्रा ।
निहिते स्वयमप्युरोजभारे मणिहारे फणिसंभ्रमी बभूव ॥६१॥

अपराधिविधूयमानधैर्या जलबुद्धयाशु हुताशमाददे ।
परिवेषयितुं गुरोर[1] मत्रे न परा वेद कराच्च्युतं च पात्रम् ॥६२॥

पशुपालविशालपङ्कजाक्षी सपदि क्षीणकलेवरा परासीत् ।
न्यपतन्नचिरात्कराद्धरायां मणिमुद्राङ्गदकङ्कणादयोऽपि ॥६३॥

ज्ञानवान् लोग यह जानलें, सवेरे टैक्स लेकर मथुराको चलना है यह घोषणा इस घोषकुलमें शीघ्र ही करादो ॥५९॥

कृष्ण-गमनका वृत्तान्त सुनकर व्रजकी दशा

अनुवाद—सवेरे बलके साथ हरि मथुरा जायेंगे, यह शब्द तनिक कर्ण कुहरमें पड़ते ही बल आयु शोभा सब समाप्त होगई, बुद्धि कुण्ठित होगई, अहो तत्काल ही उस घोषमें स्त्रियोंके लिये न जाने कितनें दोष एक साथ उत्पन्न होगये ॥६०॥

अनुवाद—इसके पश्चात् कोई कलाओंके ज्ञानमें चतुर गोपी तत्काल धैर्यहीन होकर चेतनाशून्य होगई, वक्षस्थलपर स्थित मणियोंके हारमें उसे सर्पकी भ्रान्ति होगई ॥६१॥

अनुवाद—किसी अन्य गोपीने चिन्तासे धैर्य नष्ट करके जल समझकर अग्निको ग्रहणकर लिया, पात्रमें गुरु लोगोंके परोसनेके लिए हाथसे गिरे हुए पात्रको नहीं जान सकीं ॥६२॥

अनुवाद—किसी गोपकी विशाल कमल जैसी आँखोंवालीका शरीर

---

(1) अमत्रं भाजनम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषमेणविशेषनाभिपंकम् व्रजपंकेरुहलोचना शशंके ।
अपराऽपि हिमांशुमंशुमन्तं पवनं प्राणवनीहुताशहेतिम् ॥६४॥

भवनं च वनं च भिन्नमन्या न हि मेने मनसैणशावनेत्रा ।
विगतेहतयापरापवित्रीकृतगात्रीव नितान्तचिन्तयासीत् ॥६५॥

अपरा कृतरन्धनानुबन्धा स्वयमन्धाभवदिन्धनं तदार्द्रम् ।
अकरोदति रोदनाम्बुपूरैरपि निर्वाणमदभ्रवीतिहोत्रम् ॥६६॥

अपरापि गुरोः पुरो ददानेन्धन मार्द्रं दहनेषु रन्धनेषु ।
अचिरेण मुमोच लोचनाम्भोलहरिं प्रेम न किं चरी करोति ॥६७॥

दिनमुखमनुभूय गान्दिनीभूरथ व्यरचयदान्हिकमाशुपूर्वमह्नः ।
अनुसरदुपनन्दनन्दमुख्यव्रजमचरत्सह नन्दनन्दनेन ॥६८॥

तत्काल क्षीण होगया, मणिकी अंगूठी अङ्गद कङ्कणादि सब हाथके भूषण हाथसे निकलकर पृथ्वीपर गिर पड़े ।६३॥

अनुवाद—कमलके समान नेत्रवाली ब्रजकी किसी गोपीने कस्तूरीके लेपको विष समझा, दीप्त किरणवाले चन्द्रमाको तथा पवनको क्रमशः प्राणरूप वनके लिये अग्नि तथा शस्त्र समझा ॥६४॥

अनुवाद—मृग शिशुके तुल्य नेत्रवाली किसी गोपीने मनसे वन और घरको अन्य नहीं समझा, इच्छाओंके नष्ट होनेसे अत्यन्त चिन्तासे कोई गोपी पवित्र शरीरवालीकी तरह संकुचित होगई ॥६५॥

अनुवाद—दाल-शाक रांधनेका विचार करनेवाली कोई गोपी रोते-रोते अन्धी होगई, उसने रोनेके अश्रु प्रवाहसे ईंधन गीलाकर दिया, और जलती हुई सब अग्नि आँसुओंसे बुझगई ॥६६॥

अनुवाद—दूसरी गोपीने रांधते हुए, अग्निमें गुरु लोगोंके सामने गीला ईंधन लगा दिया, और आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह छोड़ने लगी, प्रेम किस जड़को चर नहीं बनाता ॥६७॥

अनुवाद—प्रातःकाल ही अक्रूर ही सूर्य निकलनेसे पूर्व नित्य कर्मसे निवृत्त होगये और पीछे चलते हुए नन्द उपनन्द तथा कृष्ण-बलरामादिको साथ लेकर ब्रजको चल दिये ॥६८॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रथवरमधिरुह्य रेजतुस्तावसितसितौ वसुदेवपुण्यकेतू ।
मुरहरहलिनौ सहाधिरूढावुदयगिरीन्द्रमिवाभ्रशुभ्रभानू ॥६९॥

अनुचलदनुकूलगोपगोष्ठीचरण समुद्धतधूलि धोरणीभिः ।
सपदि परिवृतो रथो मुरारेरहह मनोभिरिवैण लोचनानाम् ॥७०॥

यदि सह युवतीजनैर्यशोदा द्रुतमभविष्यदचेतना न मोहैः ।
कथमपि किमसौ तदा कदापि क्षणमपि शक्ष्यति केशवःप्रयातुम् ॥७१॥

अधिरुह्य सुतुङ्गसौधशृङ्गं दयितस्यन्दन सन्निविष्टदृष्टिः ।
हरिणायतलोचनासमूहो विदधे व्योमतरङ्गिणीसहस्रम् ॥७२॥

आवासाद्बहिरेत्य सत्वरमपव्रीडं दुकूलाञ्चल-
व्यालीढक्षितिमुक्तकुन्तलभरं पादाग्रबद्धस्थिति ।
प्राचीनाहितदेहवल्लि मुहुरुद्ग्रीबं यदेणीक्षणा-
पश्यत्तद्बुबुधे दुरुद्धरतया शल्याद्गरीयोहरिः ॥७३॥

अनुवाद– कृष्ण और श्वेत वसुदेवकी पुण्य ध्वजाके समान वे दोनों कृष्ण और बलराम उदयाचलपर आरूढ़ सूर्यचन्द्रकी तरह साथ ही सुन्दर रथपर चढ़े शोभा देते थे ॥६९॥

अनुवाद—पीछे चलते हुए गोप समूहके चरणोंसे उठी धूलसे मृगनयनी गोपियोंके मनोंसे मानों मुरारिका रथ घिरा हुआ शोभा दे रहा था ॥७०॥

अनुवाद—यदि युवति समूहके साथ यशोदा तत्काल मोहसे अचेत न हो जाती तो क्या कभी क्षणभरको भी कृष्ण जा सकते थे ? ॥७१॥

अनुवाद—अति उच्च महलके शिखरपर चढ़कर प्रियके रथपर दृष्टि लगाये मृगके समान दीर्घ नेत्रवाली गोपियोंके समूहने मानों सहस्रों आकाश गंगायें उत्पन्न करदीं, कविने गोपियोंकी दृष्टि धाराको नदीके प्रवाहसे उत्प्रेक्षित किया है ॥७२॥

अनुवाद—घरसे बाहर निकलकर, दुपट्टेका अञ्चल पृथ्वीतक लटकाये, केश समूह खोले, पैरोंके अग्रभागसे खड़ी पीछेकी ओर लतारूप देहको झुकाये, इसके बाद फिर ऊपरको ग्रीवा करके जो मृगनयनी गोपीने देखा तो उसने जाना कि 'हरि' न निकलने योग्य होनेके कारण काँटेसे भी अधिक दुःखदायी हृदयमें गढ़ गये हैं ॥७३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरिणापि निरैक्षि हारिणाक्षी हरिणाक्ष्यापि हरिः समं समैक्षि ।
उभयोरपि तत्तु मर्मभूमीरुहमूलोत्खनेन खनित्रमासीत् ॥७४॥

हरिवीक्षणलोभनिष्क्रियाक्षी द्रुतसंचारभिया रथस्य बाला ।
श्वसितं प्रतिरुध्ययोगभाजामुपलेभेपरितोऽचि रादवस्थाम् ॥७५॥

विगताशन मालुठत्कलापं रथधूलीः किमिदंन्वितीक्षमाणाः ।
व्रजवामदृशामदृष्टचेष्टाः समदुःखा इव बर्हिणो बभूवुः ॥७६॥

श्वसितानिलसानुकूलताभिर्मथुरामाप्स्यत माधवः क्षणेन ।
यदि न क्षितिरस्त्रुभिः सपंका प्रतिरोधानकरिष्यदाश्वभूषाम् ॥७७॥

अनुदीक्ष्य रथं रथाङ्गपाणेर्निपपात क्षितिषु क्षता सुकल्पः ।
द्रुतमेणकिशोरदृक्कलापो विललाप प्रललाप हन्त भूयः ॥७८॥

अनुवाद—हरिने मृगनयनीको देखा, मृगनयनीने हरिको देखा, दोनोंने एक साथ देखा, दोनोंका वह देखना गर्मस्थलपर उत्पन्न अंकुरको खोदनेवाले खनिजके समान था ॥७४॥

अनुवाद—हरिके टकटकी बाँधे दर्शनके लोभसे पलकोंकी क्रियाशून्य वह गोपी रथके शीघ्र चलनेके डरसे श्वांस रोककर तत्काल योगियों जैसी अवस्थाको प्राप्त होगई ॥७५॥

अनुवाद—यह क्या हुआ ? कृष्ण कहाँ गये ? यह देखते हुए मोर भोजन छोड़कर रथकी धूलिमें पूँछसे लोटते हुए चेष्टाशून्य होकर गोपियोंके समान ही दुःखवाले हुए ॥७६॥

अनुवाद—श्वांसकी वायु अथवा श्वास और वायु अनुकूल होनेसे हरि शीघ्रही मथुरा आजाते, यदि अश्रुओंसे कीचड़ होकर पृथ्वी इनके चलनेमें विघ्न न करती ॥७७॥

अनुवाद—क्षतासु, मृत सदृश होकर गोपी समूह हरिके रथको न देखकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तत्काल मृगनयनियोंके नेत्रोंने बहुत विलाप और प्रलाप किया ॥७८॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्पन्देऽपि दृशोरसूयत मनोऽयं द्रष्टुमिष्टं मुहु-
र्यस्यालिङ्गनसङ्गलाघवमधुश्वासेऽपि चासीद्व्यथा ।
अङ्गस्य व्यवधाविधायकतया यस्याङ्गरागेऽप्यभू-
द्द्वेषः सोऽयमुपैति हन्त मथुरां त्वं जीव धिग्जीवसि ॥७९॥

कृष्णप्रस्थानवर्णनम्

सूते स्यन्दनचण्डचंक्रमणतो दृष्टा मुधा दृष्टयो
दीयन्ते तमनुप्रयान्ति यदमी निःश्वासझञ्झानिलाः ।
प्राणानामधुना प्रयाणमुचितं तेनैव सार्द्धं बहि-
र्निर्व्रीडत्वमिदं तु हन्त पुनरप्यायान्ति यत्तं विना ॥८०॥

द्रष्टुमिष्टतमदेशमग्रतो झम्पतः पतति केशवे क्षणम् ।
गाहते तमभिलङ्घ्यरंहसा तत्पुरैव परमास्पदं रथः ॥८१॥

अनुवाद—दृष्टिके तनिक फड़कनेपर जो यह जीव अपने इष्टके दर्शन करनेको उत्सुक था, जिसका आलिङ्गन संगके लाघव अथवा न्यूनताके आभास होते ही दुःखी होता था, दर्शनके व्यवधान अथवा रुकावटकी सम्भावनामें भी जिसको अङ्गरागमें द्वेष होजाता था, वही कृष्ण आज मथुरा जारहा है, हे जीव ! तुम फिर भी जी रहे हो, तुम्हें धिक्कार है ॥७९॥

कृष्ण प्रस्थान वर्णन

अनुवाद—रथके वेगयुक्त गमनसे हो दर्शनकी इच्छा होती थी और उनको देखनेको दृष्टि व्यर्थ ही दिन भर डालते थे, आज उनके पीछे हमारे शोकके श्वांसोंकी झंझावात जारही है वह चले गये हमें छोड़ गये, यही शोक है। इस समय उनके हो साथ प्राणोंका प्रयाण भी उचित था, निर्लज्जता यही है प्राण हरिके विना ही फिर आरहे हैं यही दुःख है ॥८०॥

अनुवाद—आगे शीघ्र ही अभीष्ट स्थान देखनेको वेगसे कृष्णके जानेपर उनका लङ्घन करके पहले ही दर्शन करने आगे रथ जारहा है यह रथ बड़ा प्रशंसा पात्र है ॥८१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मध्याह्ने विश्रामः

अथ तपति ललाटपट्टमातपैर्भगवति मरीचिमालिनि कालनीति विज्ञो विज्ञापयामास प्रज्ञावतामग्रणोः सूतः । भगवन्नयमम्भोजिनीकुलवल्लभो नभोमध्यमध्यास्य वियद्वाहिनीपयस्यास्यादिप्रक्षालने नाश्वानाश्वास्य विश्राममनुभवति माध्याह्निकाह्निकायैव । तदिह भवानपि समुचितमाह्निकमह्नाय निर्वाहयितुमर्हतीति । हरिरवधाय निधाय दिक्षु चक्षुरम्भोजमाहेन्द्रमहोसत्यं सत्यम् ॥८२॥

छायाभिर्व्यधुरध्वनीननिवहायासच्छिदां ये द्रुमा
मूलस्यापि निजस्य ते पुनरमी रक्षासु दक्षा न हि ।
विश्वोत्तापहृदम्बुसंभृतमभूत्सन्तापभारैरहो
कालः कोऽयमितीव निष्क्रियवपुर्मूको बकोध्यायति ॥८३॥

पातालान्तः समान्ताज्जिगमिषव इवारब्धकुल्यावगाहाः
सान्तर्दाहावहारा दलपुटपुटिताः पत्त्रिणो मुष्टचेष्टाः ।

मध्याह्नमें विश्राम

अनुवाद—इसके अनन्तर सूर्य भगवान्के अपने आतपसे ललाट पट्टके तपानेपर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ काल और नीतिको जाननेवाले सूतने प्रार्थनाकी—हे भगवान् ! यह कमल कुलवल्लभ सूर्य आकाशके मध्यमें स्थित होकर आकाश वाहिनी गङ्गाके जलमें मुखादि प्रक्षालनसे घोड़ोंको सन्तुष्ट करके मध्याह्न कालमें विश्रामकर रहे हैं । आप भी उचित आह्निक कृत्य शीघ्र ही पूर्णकर लीजिये, हरिने यह जानकर दिशाओंमें दृष्टि डालकर सूर्यको देखकर कहा अहो सत्य है, सत्य है ॥८२॥

अनुवाद—जो वृक्ष अपनी छायासे पथिक समूहके आतपको शान्त किया करते थे, आज वे ही वृक्ष अपनी मूलकी रक्षामें भी समर्थ नहीं हैं, विश्वके सन्ताप को दूर करनेवाला जलभी सन्तापके भारसे युक्त होगया है अर्थात् गर्म होगया है, यह कैसा समय आगया, शरीरको क्रियाशून्य करके मौन होकर बगला मानों यही ध्यानकर रहा है ॥८३॥

अनुवाद—कुल्या, लघुजल प्रणाली बहती हुई पातालके अन्दर प्रवेश करती हुई-सी दीख पड़ती है, अन्दर दाह सहित अवहार वक्र जलपक्षी दीख रहे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्गन्तो मार्ग एव प्रतिविटपितलं रंहसा मार्गसंघा-
श्छायामायासभाजो ययुरहह महुः फेनिलान्याननानि ॥८४॥

अक्रूराय जले दर्शनम्

अथ गान्दिनीनन्दनः कालिन्दीपयसि निमज्ज्य, निखिल परमान्द-सन्दोहकन्दं तस्मिन् गोविन्दं समाकलय्य किमिदमिति निमज्ज्य पर्याकुलयदेनमेव देवाधिदेवम् । अथ मनसि विचार्य कार्यं पुनरेतदेतस्यैवेति द्रुतमुपचितसंभ्रमचकितमनास्तमेव सनातनं प्रतितुष्टाव भूमभूयिष्ठम् ॥८५॥

अक्रूरस्तुति

हे विश्वरूप सुरभूपनुताङ्घ्रिपद्म पद्मापते पतितपावन दानवारे ।
हे कैटभद्विषदिभोद्धरणानिवार संसारभारमपसारय ते नमोऽस्तु ॥८६॥
हे पूतनादमन दारुणचक्रवातसम्पातनप्रथितशाकटभङ्गरंहः ।
विद्विष्टदुष्टबकसेवकतुष्टरूपं कस्तावकं जगति वेद नमो नमस्ते ॥८७

हैं पत्र पुटमें नन्दकी तरह पक्षी चेष्टाशून्य होगये हैं, प्रत्येक वृक्षके नीचे वेगसे मार्गमें यात्री छाया ढूढ़ते हुए दुःखी होते हुए आगये हैं जिनके मुखसे झाग निकल रहे हैं ॥८४॥

अक्रूरको जलमें दर्शन

अनुवाद—इसके पश्चात् गान्दिनी नन्दन अक्रूरने यमुनाके जलमें स्नान करके सम्पूर्ण परम आनन्दकन्दके समूह गोविन्दको डुबकी लगाये अन्दर जलमें देखकर फिर डुबकी लगाकर इन्हीं देवाधिदेव कृष्णको आकुलित होकर देखा, फिर मनमें इन्हींका यह कार्य है यह सोचकर, शीघ्र ही भ्रान्तिसे चकित मनवाला होकर अत्यन्त मायासे अगम्य भगवान्की स्तुति करने लगे ॥८५॥

अक्रूर-स्तुति

अनुवाद—हे विश्वरूप ! हे देव ! नृप द्वारा चरण-कमलोंकी स्तुति किये हुये हे लक्ष्मीपते ! हे पतित पावन ! हे दानवारे ! हे कैटभ द्विष् ! हे गजेन्द्रोद्धारक ! इस कठोर संसारके भारको दूर करो, तुम्हें नमस्कार है ॥८६॥

अनुवाद—हे पूतना दमन ! हे दारुण चक्रवातके विनाशक, हे शकटासुर विनाशक ! विद्वेषी तथा सेवक दोनोंसे प्रसन्न होनेवाले ! आपको कौन जान सकता है, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥८७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे दण्डिताघ दलिताघ पदावलम्ब-
घातप्रलम्ब हतमत्सरवत्स वीर।
हे चण्डकुण्डलिविखण्डन पुण्डरीक-
दीर्घेक्षण क्षयितदाव नमो नमस्ते ॥८८॥
दुर्दन्तिधेनुकविधूनन शुद्धबोध
गोवर्द्धनोद्धरण संक्षतशङ्खचूड।
मूढीकृताम्बुरुहसंभव देवचक्र
चूडामणे निगमगूढ नमो नमस्ते ॥८९॥
हे केशिनाशन विनष्टगरिष्टदुष्टा-
रिष्ट प्रहृष्टनरकिन्नरदेवसृष्टे।
शेषाङ्कतल्प परिकल्पितसन्निवेश-
हे केशव भ्रमितविश्व नमो नमस्ते। ९०॥

अनुवाद—हे अघासुर [अघासुरमें श्लेष है, अघ नाम पापीका भी है और श्रीकृष्ण पापहन्ता हैं, दूसरे अर्थमें अघासुर नामका एक दानव था सर्पके आकारमें वह वृन्दावनमें आया था उसे कृष्णने मारा था] तथा पापोंका नाश करनेवाले ! हे पदके आघातसे प्रलम्बके नाशक ! [प्रलम्बको कृष्णने नहीं बलरामने मारा था ऐसा भागवतमें वर्णन है। पर रथमें दोनों बैठे थे अत अक्रूरजीने दोनोंको लक्ष्य किया है] हे वत्सासुर नाशक ! हे वीर ! हे उग्र सर्प विखण्डन ! हे कमलके समान दीर्घ नेत्रवाले ! हे दावाग्नि विनाशक ! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥८८॥

अनुवाद--हे दुर्दमनीय धेनुकके विनाशक ! हे शुद्ध-बुद्ध ! हे गोवर्धनके उठानेवाले ! हे शङ्खचूड़के विनाशक ! हे ब्रह्माको मोहमें डालनेवाले ! हे देव चक्र-चूणामणे ! हे निगमसे भी छिपे हुए ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥८९॥

विशेष--धेनुकासुरका वध, बलरामने किया था ॥८९॥

अनुवाद--हे केशिनाशन ! हे भयङ्कर दुष्ट-अरिष्टके विनाशक ! हे नर किन्नर देवको प्रसन्न करनेवाले ! हे शेष शय्याशायी ! हे केशव ! हे विश्वके भ्रामक ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥९०॥

विशेष--केशीको मारनेके कारण कृष्णका नाम 'केशव' पड़ा है। यह कंसका सेवक था और कृष्णको मारनेके लिये वृन्दावन आया था। आज इसके वध स्थान को "केशोघाट" कहते हैं ॥९०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हे केलिकल्पितनिरल्पितमीनरूप
संसारकूपगतमुद्धर मामरूप ? ।
मुग्धो विधिस्त्वयि भवस्तव वेद नान्तं
भ्रान्तं मनो मम तु वेत्तु कथं नमस्ते ॥९१॥

मामच्छकच्छपकलेवर पाहि कच्छे
सौकार्यमस्तु भवने तव शूकराङ्ग ? ।
अंहोनृसिंह हर वामन वा मनो मे
वामं विधेहि विबुधेश नमो नमस्ते ॥९२॥

श्रीराम राम बलराम गुणाभिराम
त्वन्नाम संस्फुरतु चेतसि मे निकामम् ।
बुद्धो मया भवतु बुद्ध मया न कल्कं
कल्किन्मनो भवति मेऽस्तु नमो नमस्ते ॥९३॥

अनुवाद—हे क्रीड़ामें कल्पित विचित्र मीनरूप [गीतगोविन्दकारने भी लिखा है—'केशवधृत मीन शरीर जय जगदीश हरे !'] धारण करनेवाले ! हे रूप हीन ! संसार कूपमें पड़े मेरा उद्धार करो । ब्रह्मा भी आपके विषयमें मूढ़ हैं, शङ्करजी भी आपके अन्तको नहीं जान पाते, मेरा भ्रान्त मन आपको क्या जान सकता है, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥९१॥

अनुवाद—हे स्वच्छ कच्छप शरीरधारी ! मेरी रक्षा करो। हे शूकर अङ्ग वाले मैं आपके द्वारपर हूँ, मुझे तटपर सरलतासे पार करो । हे नृसिंह ! पापोंको दूर करो । हे वामन ! मेरे विपरीत मनको शुद्ध करो । हे विबुधेश ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥९२॥

विशेष—मन्दराचल धारण करनेके लिये कच्छपावतार हुआ था ॥९२॥

अनुवाद—हे श्रीराम ! राम !! बलराम !!! गुणाभिराम !!!! तुम्हारे ये नाम मेरे चित्तमें सदा जागते रहें, मैं आपको जान सकूँ, मेरा मलीन मन पवित्र हो जाय, मैं आपको नमस्कार करता हूं ॥९३॥

विशेष—परशुराम, यह विप्रावतार है ॥९३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इति स्तुत्वाक्रूरो जलनयनपूरोपलिपिलः
प्रतस्थे प्रेमार्द्रः सहरिबलभद्रो मधुपुरीम् ।
अनुस्मारं स्मारं चरितमनिवारं यदुपते-
र्न पत्थानं वेद स्खलदखिलवेदव्यतिकरः ॥६४॥

अक्रूरस्य कंस समीपे गमनम्

मथुरामनुभूय माधवोऽवददक्रूरमिदं पुरो व्रज ।
सबलेन मयागमिष्यते सममाभीरगणेन सन्निधौ ॥६५॥
मधुसूदनसूक्तिमाददे स तु गङ्गामिव मूर्द्धिनशङ्करः ।
पुरमाविशदाशु घोषयन् हरिरामागनं पदे पदे ॥६६॥
अथ तावतिकुञ्जराविव गत्याखिलचित्तहारिणौ ।
मुखरीकृत मञ्जुनूपुरौ सुरराजौ पुरराजमीयतुः ॥६७॥
मथुरापुरि राजको रिपू रजको राजत एव नापरः ।
अत एव तमग्रतो गतं नपटादानहठादपातयत् ॥६८॥

अनुवाद—इस प्रकार स्तुति करके अक्रूर नेत्र जलके प्रवाहसे युक्त होकर तथा प्रेममें पूर्ण होकर कृष्ण और बलभद्रको साथ लिये मधुपुरीको चल दिये। निरन्तर यदुपति कृष्णके चरित्रका स्मरणकर करके द्रवीभूत होरहे थे सम्पूर्ण वेदोंके विचित्र वर्णनमें उलझते हुए उन अक्रूरजीने उस समय ठीक-ठीक मार्ग भी न जान पाया ॥६४॥

अक्रूरका कंसके पास जाना

अनुवाद—मथुरा पहुँचकर माधवने अक्रूरजीसे यह कहा कि तुम आगे चलो, मैं बलरामजीके साथ तथा आभीर गणके साथ तुम्हारे पास आऊँगा ॥६५॥

अनुवाद—शङ्करजोने जैसे गङ्गाजीको सिरपर धारणकर लिया, वैसे ही मधुसूदनजीकी उक्तिको अक्रूरजीने सिरपर धारणकर लिया और वह पद-पदपर कृष्ण और बलरामका आगमन घोषित करते हुए नगरमें प्रविष्ट होगये ॥६६॥

अनुवाद—इसके बाद वे दोनों कृष्ण-बलराम बड़ी हाथीके समान अपनी चालसे सबके चित्तको प्रसन्न करनेवाले तथा पैरोंमें सुन्दर नूपुरोंको गुञ्जित करते हुए सुरराज राम और कृष्ण पुरराज व्रजमें प्रविष्ट हुए ॥६७॥

अनुवाद—मथुरा नगरमें एक प्रसिद्ध रजक ही शत्रुके समान था, दूसरा कोई विरुद्ध नहीं था, इसलिये सर्व प्रथम उसको वस्त्र न देनेका आग्रह करनेसे हरिने मार दिया ॥६८॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालाकारानुग्रहः

सुमनोभिरुपेत्य तुष्टिमासीत्स तु मालाकृति दत्तसाधुदृष्टिः ।
अपि वैरिणमेव सेवमाने सुमनः शालिनि नानुकम्पते कः ॥९९॥

अध्वमध्यमितयोः पुरी तयोरीक्षणविधाविनां नृणाम् ।
देहयष्टिनिहितां मुखाम्बुजैस्तोरणं स्रजमिवासृजद्द्विधा ॥१००॥

एतयोर्नगर मध्यमेतयोर्वर्धमानघनतामसीमयोः ।
पौरमोद तटिनीतटद्वयीवाविरास जनधोरणी द्विधा ॥१०१॥

तिरोभूतव्रीडा हतनिखिलपीडा विघटित–
प्रियारब्धक्रीडा गुरुजघनरीढोदय करी ।
जयन्ती मान्थर्य्यं युवतिषु हरन्ती तदपरां
चिकीर्षामीर्ष्याभिर्मधुरिपुदिदृक्षैव ववृधे ॥१०२॥

मालाकार-अनुग्रह

अनुवाद—मालाकी कृतिपर सुन्दर दृष्टि डालनेवाले भगवान् पुष्पोंसे ही उसपर प्रसन्न होगये, जो वैरीकी सेवा करनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले हैं उनपर कौन दया नहीं करता ॥९९॥

अनुवाद—उस मथुरा नगरीमें मार्गमें जाते हुए कृष्ण और रामके दृष्टि के सम्मुख दौड़ते हुए मनुष्योंके शरीरपर पड़ी मालाकी तरह मुख-कमलोंसे बहिर्द्वारको शोभा देनेवाली दो प्रकारकी मालाकी तरह बनगया, शरीरकी माला एक वहिर्द्वारकी माला लोगोंके मुखकमलसे बनगई ॥१००॥

अनुवाद—असीम शोभावाले इन दोनोंके नगरके मध्यमें आते हुए (आ+इतयोः, ऋ वृद्धिको प्राप्त) इन दोनोंके दोनों ओर नागरिकोंकी प्रसन्नता रूप नदीके दोनों तटोंकी तरह जनपंक्ति शोभित थी ॥१०१॥

अनुवाद—लज्जा समाप्त होगई, सब पीड़ा नष्ट होगई, गुरु जघनका अपमान करनेवाली प्रियकी क्रीड़ा समाप्त होगई, शिथिलताको समाप्त करती हुई स्त्रियोंके अन्य कार्य करनेकी इच्छाको ईर्ष्यासे दूर करती हुई केवल कृष्णके दर्शनकी इच्छा ही बलवती होकर बढ़ रही थी ॥१०२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

युवानं व्यातेने स्थविरमपि पंगुं च विदधे-
स रंहोजङ्घालं पटुनयनमप्यन्धमकरोत् ।
विदूरादाकृष्टीरकृतकुलपङ्केरुहदृशां
लघूचक्रे धैर्यं मधुमथन सन्दर्शनरसः ॥१०३॥

मुरारिरेतीति यदास वाणी सा राजधानी प्रमदा तदानीम् ।
दिदृक्षुरक्षीणि मुखं मुरारेर्गवाक्षलक्षस्य मिषाव्यतानीत् ॥१०४॥

मञ्जीरध्वनिमेखलाकलकलव्याजेन वामभ्रुवां
यान्तीनां निरवद्यवाद्यमुदभूत्साक्षाद्दिदृक्षावशात् ।
प्रस्वेद प्रकरप्रपातकपटादि वृष्टिष्टश्च पौष्पीह वा-
न्मङ्गल्या मधुमर्दने मधुपुरीरथ्यामुरीकुर्वति ॥१०५॥

कृष्णदर्शनाय माधुरीणांदशा

अपि पतितमधः शिरोदुकूलं स्खलदपि कुन्तलदाम मुक्तबन्धम् ।
हरिवदनविधुं विलोकयन्तो च्यतमपि नीविगुणं न वेद मूढा ॥१०६॥

अनुवाद—मधु मथन कृष्णके दर्शनके रसने वृद्धको युवा बना दिया तथा पंगुको वेगसे बलवान् जङ्घावाला बना दिया, तथा अन्धेको सुन्दर नेत्रवाला बना दिया, कुलीन कमलके समान नेत्रवाली स्त्रियोंको दूर-दूरसे आकृष्ट करके वहाँ इकट्ठाकर दिया तथा धैर्यको कम कर दिया, सब अधीर होगये ॥१०३॥

अनुवाद—'मुरारि आरहे हैं' यह वाणी जब सुनी तब उस प्रसन्न मथुरा राजधानीने मुरारिका मुख देखनेकी इच्छा से लाखों गवाक्षोंके बहाने अपनी लाखों आँखें फैला रक्खी थीं ॥१०४॥

अनुवाद—मञ्जीरोंकी ध्वनि तथा मेखलाकी कल-कलके बहाने दर्शन करनेकी इच्छाके कारण जाती हुई स्त्रियोंके साक्षात् सुन्दर बाजे बज रहे थे। मथुराकी गलीमें मधु मर्दन श्रीकृष्णके जानेपर प्रस्वेद समूह गिरनेके बहाने मङ्गलदायक पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी ॥१०५॥

कृष्ण-दर्शनसे स्त्रियोंकी दशा

अनुवाद—कहीं सिरका दुपट्टा गिरगया, बन्धनसे टूटकर केशदाम गिर गया, हरिके मुखकमलको देखते हुए स्त्रियोंने गिरते हुए नीवीके बन्धनको भी न जान पाया ॥१०६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

असूर्यं पश्यामि स्मितमधुरमस्याननविधुं
दिदृक्षुः प्रागेव प्रबलजन संघट्टमभजत् ।
न गेहाद्देहल्याः पदमपि न या वेद जनुषा
जगाहे सा हेमद्युति सुभगदेहा पुरपथम् ।।१०७।।

स्वेदार्द्रा तनुवल्लरी नवनवोदञ्चत्तनूजांकुरा
दृष्टिर्मुष्ट तरङ्गसृष्टिरुदयत्प्रेमांशुधाराधुनी ।
नीवी विच्युतबन्धनैव कवरी शैथिल्यमाबिभ्रती
चेतः कोटिमनोजकुण्ठितमभूद्दृष्टे हरौ सुभ्रुवाम् ।।१०८।।

मूढे गूढय मौलिमशुंकतटेनासौप्रियः प्रेक्ष्यते
वामे वारय पाणिना ग्लपयति ज्योतीरवेराननम् ।
क्षीबे नीविवगुणं पुर्नानियमय क्षौमाञ्चलं न्यञ्चति
श्रोण्यास्ते शतधेत्यभाण्यपि सखी श्रोण्या न धन्याश्रृणोत् ।।१०९

अनुवाद—मुस्कानसे मधुर इनके मुखकमलको सूर्यसे पृथक् देख रही हूँ, कोई पहले ही देखनेकी इच्छासे बड़े प्रबल जन समूहमें घुसगई जो जन्मसे लेकर अब तक घरकी देहलीसे एक पग भी बाहर नहीं गई थी वह सुवर्णके समान शरीरकी शोभावाली नगरके मार्गमें पहुँच गई ।।१०७।।

अनुवाद—शरीर लता पसीनेसे आर्द्र होगई, नये रोमाञ्च उदित होगये, दृष्टिकी चञ्चलता समाप्त होगई, प्रेमकी किरणोंकी धारारूपी नदी बहने लगी । नीवीका बन्धन गिरगया, केशपाश सब शिथिल होगये, करोड़ों कामदेवके समान कृष्णको देखकर चित्त कुण्ठित होगया, कृष्णके दर्शन करनेसे स्त्रियोंकी यह सब दशा होगई ।।१०८।।

अनुवाद—अरी मूढ़े ! दुपट्टेके कोनेसे मस्तकको ढकले, वह प्रिय दीख रहा है, अरी वामे ! सूर्यकी किरणें मुखको तपा रहीं हैं, इसे हाथसे रोक ले, अरी मतवाली ! नीवीका बन्धन फिर बाँधले, दुपट्टेका अञ्चल तेरी कमरसे खिसक रहा है, यह अनेक बार सखीने सखीसे कहा किन्तु वह धन्य थी, देखनेमें इतनी तल्लीन थी कि उसने कुछ नहीं सुना ।।१०९।।

विशेष—यह वर्णन कादम्बरीकी छटासे मिलता है ।।१०९।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मधुरिपु मधुरिमलहरीतरलीकृत चेतसो नार्यः ।
अलसावशंत्व जृम्भामोदायितमूर्त्तयो न किं प्रोचुः ।।११०।।

एतावत्कालमासीदपि नयनजुषामन्धता ++
मेतेषां स्रष्टुरस्मिन्नहह मधुपुरे निष्फला दृष्टिसृष्टिः ।
एतासां सोपवासावलिरपि सुदृशां दृक् चकोर्याः सुधांशोः
सौन्दर्यानां प्रतार्या निरधिगत सुखा नान्वभूत्सा व्यमुञ्चत् ।।१११

युक्तं युक्तमहो विमुक्तमखिलं श्रेणिभिरेणीदृशा-
मेतस्मै कुलशीलकौशलमसीमानन्द वृन्दावने ।
अस्मिंल्लोचनगोचरे त्रिजगती सौन्दर्य शोभाकरे-
कुर्वीत प्रमदा-वदानुशरणं का धैर्य-मर्यादयोः ।।११२।।

कुब्जालीला

अथ गण्डमण्डल विलोलकुण्डलं
कृत सिंहखेलगतिरिङ्गतः पथि ।

अनुवाद—मधुरिपुकी मधुरताकी लहरसे, चञ्चल चित्तवाली स्त्रियाँ, अलसित तथा अवश एवं जंभाई आमोद में भरी होनेके कारण कुछ न बोलीं ।।११०।।

अनुवाद—इतने समय तक हरिको देखते हुए लोगोंको अन्य कुछ नहीं दीखता था, दूसरी ओर वे अन्धेके समान थे, इनके बनानेवाले ब्रह्माकी इस मथुरा नगरीमें दृष्टिकी सृष्टि निष्फल रही, उनकी बनाई दृष्टिसे कृष्ण ही दीखे और कुछ न दीखा । इन सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियोंको अन्य ओरसे उपवास हो रहा कुछ न दीखा, हरि ही दीखे, नेत्ररूपी चकोरीको चन्द्रमाके सौन्दर्यमें धोखा ही रहा । हरिके मुखने सम्पूर्ण सुख ले लिया, अन्य सब छोड़ दिया ।।१११।।

अनुवाद—अहो ! यह बिलकुल ठीक ही किया कि मृगनयनी स्त्रियोंने इसके लिए कुल शीलादि सब, इस असीम आनन्द देनेवाले वृन्दावनमें छोड़ दिये । तीनों लोकोंमें सौन्दर्यकी शोभाके आकर, इन कृष्णकी आँखोंके सामने आनेपर कौन स्त्री धैर्य और मर्यादाका अनुसरण करेगी, यह कहिये ।।११२।।

कुब्जा-लीला

अनुवाद—गण्ड मण्डलपर सुन्दर कुण्डलके हिलाते हुए सिंहकी तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षिति पस्य वेश्म गमनानुषज्जया
सह कुब्जयाजनि हरेः समीक्षणम् ॥११३॥

हरिराह चन्द्रमुखि देहि चन्दनं
सह मालयैव हृदयाभिनन्दनम् ।
कुसुमानि भामिनि समानि तारया
वद कस्य वेश्मनि विशेषमेष्यसि ॥११४॥

सोवाच स्मितमुधयाभिषिच्य वाचं
काचं मे निधिरमिलद् गवेषयन्त्याः ।
यस्येदं मम हि करोतु किं स कंसः
सर्वं ते नयतु भवान्भवावतंसः ॥११५॥

आसज्यत्तनुमतनोरिवोग्र मौर्वी
ग्रीवायामुदधिसुतोपलालिताङ्घ्रेः ।
सा नाम द्रुतमनुराग बद्ध रामा
श्यामाङ्गे व्यतनुत कुङ्कुमानुरागम् ॥११६॥

क्रीड़ा-युक्त चालसे चलते थे । मार्गमें राजाके घर जानेको तैयार कुब्जासे, हरिका साक्षात्कार हुआ ॥११३॥

अनुवाद—हरि बोले–हे चन्द्रमुखि ! चन्दन देदो । मालाके साथ हृदयका अभिनन्दन प्रेम भी दो । यह सुन्दर तारा सदृश पुष्पोंको – हे भामिनि ! विशेषकर किसके घर ले जाओगी ॥११४॥

अनुवाद –वह कुब्जा, मन्द मुसकानसे अभिषिक्त करके वाणी बोली—काँच ढूँढ़ते हुए मुझको निधि मिलगई है, जिसके लिये यह चन्दन है, वह कंस मेरे लिये क्या करता है. आप संसारके भूषण हैं, आप इसे ग्रहण करें ॥११५॥

अनुवाद · कामदेवकी उग्र मौर्वीकी तरह, लक्ष्मी द्वारा सेवित चरणवाले, हरिकी ग्रीवामें तनु (अर्थात् छोटी) कोई माला डाली और अनुरागसे पूर्ण होकर श्यामके अङ्गमें कुंकुमरूपी अनुरागका लेपकर दिया ॥११६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पदाग्रं कुब्जायाः स मृदुचरणाब्जाभिमृदितं
प्रकुर्वाणो गुल्फास्तदनु समुदस्यापि चिबुकम् ।
ऋजूचक्रे चक्री वपुरधिकवक्रीकृतमपि
त्रिलोकी सौन्दर्यालयपदचिरादेव तदभूत् ॥११७॥

धनुर्भङ्गः

निशाविलासाय विलासनेत्रया निमन्त्रितः स्मेरदृगंचलेन सः ।
चचाल भूपाल धनुर्दिदृक्षया विपक्ष पक्षक्षय मुख्य दीक्षया ॥११८॥
विवेश कोदण्ड गृहं प्रचण्डवेतण्ड शुण्डायित बाहुदण्डः ।
समुल्लसत्कुण्डलमण्डिगण्डो बभौ स हेलोद्धृत चापदण्डः ॥११९॥
स चारु चामीकर पीतवासा रराज चक्री कृतचित्र तापः ।
सौदामनीदाम दधद्दधानः सुत्रामकोदण्डमिवाम्बुवाहः ॥१२०॥

अनुवाद—चक्रधारी कृष्णने कुब्जाके पैरके अग्रभागको अपने कोमल चरणकमलसे दबाते हुए, ठोड़ीको कुछ ऊपर उठाकर, अति टेढ़े हुए शरीरको सीधाकर दिया, तभी वह त्रिलोकीके सौन्दर्यको धारण करनेवाले पदकी तरह होगई ॥११७॥

धनुष-भङ्ग

अनुवाद—विलासयुक्त नेत्रवाली उस कुब्जाने, अपने मुस्कराते दृगञ्चल से, रात्रि विलासके लिए हरिको निमन्त्रण दिया। राजाके धनुषको देखनेकी इच्छा से तथा शत्रुके पक्षके नाशकी मुख्य दीक्षा प्राप्त करनेवाले कृष्णजी आगे चले ॥११८॥

अनुवाद—फिर कृष्ण प्रचण्ड शुण्डके समान भुजावाले धनुष गृहमें चले गये, वहाँ शोभित कुण्डलसे मण्डित गण्ड स्थलवाले हेलासे धनुष उठाकर शोभित हुए ॥११९॥

अनुवाद—सुन्दर सुवर्णके समान पीतवस्त्र धारण किये श्रीकृष्ण विद्युत्की मौर्वीवाले, इन्द्र धनुषको धारण किये, मेघकी तरह अत्यन्त शोभित हुए ॥१२०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हठाद्धठारब्धगभीरहुङ्कृतिः कठोरटङ्कार विमूढदिक्पतिः ।
धनुर्द्विखण्डीकृतवान्स लीलया मृदुं मृणालीमिव मत्तदिग्गजः ॥१२१॥

कूर्मो निर्धूतमर्मा मुकुलितनयनः कुण्ठयामास कण्ठं
प्रोन्मीलद् दृक्सहस्रद्वयमुरगपतिः सावधानी बभूव ।
दम्भोलिर्जम्भभेत्तुर्द्रुतमपतदधः पाणितः शम्भुरासी-
द्गौर्या गाढावगूढो विदलयति हरौ चण्डकोदण्ड दण्डौ ॥१२२॥

दृक्कोणो नैव शोणः समजनि न मनाग्भ्रूपुटेकोपिभङ्गो-
नैवास्यं वीतहास्यं क्षणमलिक तटे भ्रूकुटेर्न प्रसङ्गः ।
टाङ्कारो जाग्रदुग्रप्रभृति दिगधिपारब्धकिं किं निनादं-
विश्राम्यत्कंसवादं धनुरसुररिपुर्द्रागखण्डीचकार ॥१२३॥

आस्यं पश्यति दर्पणे विरचयत्याकल्पमल्पेतरं
तल्पं कल्पयति प्रसून सुभगं निर्माति नम्रस्रजः ।

अनुवाद—हठपूर्वक गम्भीर हुङ्कार करते हुए तथा कठोर टङ्कारसे दिक्पालोंको भी मूढ़ बनाते हुए, मत्त दिग्गज जैसे कोमल मृणालको तोड़ता है उसी तरह खेलमें ही उन्होंने धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥१२१॥

अनुवाद—कच्छपके मर्मस्थल हिलगये, आँखें बन्द होगईं, कण्ठ कुण्ठित होगया, शेषनागजीके सहस्र फनोंके दो सहस्र नेत्र सहसा खुलगये, इन्द्रका वज्र हाथसे एक साथ नीचे गिरगया, गौरीने शङ्करजीका भयके कारण गाढ़ आलिङ्गन कर लिया, इस प्रकार प्रचण्ड धनुषको हरिके तोड़नेपर सहसा सबमें भयका संचार होगया ॥१२२॥

अनुवाद—दृष्टिका कोण लाल नहीं हुआ, भृकुटि पुटपर कोई विकार नहीं आया, मुख भी हास्यसे शून्य नहीं हुआ, क्षणभर भी मस्तकपर भ्रूका भङ्ग प्रतीत नहीं हुआ, शङ्करजी आदि तथा दिग्गजादिका क्या-क्या शब्द हुआ, कंसका संवाद सब शान्त होगया । कृष्णजीने धनुषको टूटे हुएको अखण्डितकी तरह कर दिया ॥१२३॥

अनुवाद—कुब्जा मुखको शीशामें देखती है, अपने वेशको सुन्दर बनाती है, अपनी शय्याको पुष्पोंसे सजाती है, सुन्दर माला बनाती है, धूपसे तथा रत्नोंके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धूपैर्धूपयति प्रदीपयति सा रत्न प्रदीपैर्गृहं
बारम्वारमुपैति मन्दिरबहिः पन्थानमुद्वीक्षते ॥१२४॥

रात्रौ कुब्जा भवने गमनम्

द्विखण्डी कृत्य कोदण्डं पुण्डरीक निभेक्षणः।
निशायां मण्डयामास कुब्जायाः केलि मण्डपम् ॥१२५॥

कुवलयापीडवधः

अथ सुखसमतीतयामवतीको जगतीभारक्षपनिनीषुरीश्वरोद्वारि द्विरदवरवारितायां भोजभूपतेरवततार सह सीरिणा मुरवैरी। अपश्यदपि दुष्टाम्बष्ठाधिष्ठितानिष्ठुराचारनिष्ठितधरणिधर गरिष्ठमतिभूयिष्ठमदवृष्टिपङ्किलीभूतभूपृष्ठमाघ्राय दिग्गजगणगन्धमन्धोभूय समुद्ग्रीवीभवन्तमिव, प्रथयन्तमिव पूर्वपरकायत्वमुत्तमाधमाङ्गत्वम् क्रमसमुन्नतनतसुवृत्तपूर्वापरभाग परिणामं प्रकटितजय सिन्धु नन्दिनी श्यामलरोम राजिस्फुरदुरोज शातकुम्भकुम्भद्वयमिव, समुदितनीलीनीलिमशालि शुण्डादण्डमण्डितमपिविजृम्भमाणसिंदूरपूरपूरशोणिमपरि-

---

दीपकोंसे धूपित करती है, व प्रकाशित करती है, बार-बार आती है और रास्ता देख रही है ॥१२४॥

रात्रिमें कुब्जाके घर प्रवेश

अनुवाद—कमलनेत्र श्रीकृष्णजीने धनुषके दो टुकड़े करके रात्रिमें कुब्जाके क्रीड़ा गृहको सुशोभित किया ॥१२५॥

कुवलयापीड-वध

अनुवाद—फिर सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करके पृथ्वीके भारको दूर करनेकी इच्छावाले श्रीकृष्ण श्रेष्ठ गजके द्वारा रुके हुए भोज राजाके द्वारपर बलरामजीके साथ आये। दुष्ट अम्बष्ठ (पीलवान) से युक्त कठोर आचारवालोंसे पूर्ण राजाओंसे गरिष्ठ तथा अति महामदकी वर्षासे कीचड़वाली भूमिको सूँघकर ही तथा दिग्गजोंकी गन्धसे अन्धा होता हुआ, ऊपरको ग्रीवा उठाये पूर्वपर, ऊँच-नीच सब अङ्गोंको विस्तृत-सा करता हुआ, क्रमसे ऊपर नीचे गोल सब भागोंको ठीक करता हुआ, लक्ष्मीजीकी श्यामल रोम पंक्तिपर स्तनरूपी सुवर्ण कलशको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुष्टकुम्भकूटं कूटमिव मूर्तिमन्तमिव गम्भीरमम्भोधरधरमिव विविधविचेष्टारम्भं कुम्भीन्द्रं नाम [1]कुवलयापीडम् ॥१२६॥

यः खलूद्दण्डशुण्डादण्डतयोद्यद्दण्डदण्डधर इव चण्डिमानमावहति बहुवेलम् ॥१२७॥

यमतिपरिलम्बमानगुरुपरिमाणलाङ्गूल लांगूलतया जगत्प्राणपानप्रवर्त्तमान कुम्भीनसारम्फसम्भारभोमभूमिधरमिवानुभवति त्रिभुवनमेव ।१२८॥

येन च कच-काच-मेचकाकारतया त्रिभुवनभयभवन चतुः स्तम्भायमान चतुर चरणतया चतुष्पादं धर्ममभिभूय स्वयमेव चतुष्पादीभवताऽधर्मेणेवाभिभूयते भूरभितः ॥१२९॥

यस्मै च परम दुर्जेयतया दूरादेव देवा अपि, समरधुरन्धरा गन्धसिन्धुरा अपि, नीरवीराः अपि, नमस्कुर्वते सभयाः ॥१३०॥

विजित करनेवाले अपने गण्डस्थलको प्रकट करता हुआ-सा उदित नीलिमासे शोभित, शुण्डा दण्डसे युक्त, विस्तृत सिन्दूरके प्रवाहकी लालिमासे अपने कुम्भस्थलको शोभित किये पर्वत शिखरकी तरह मूर्तिमानकी तरह, गम्भीर मेघकी तरह, विविध चेष्टा करनेवाले कुवलयापीड़ नामवाले महा कुम्भीन्द्र गजेन्द्रको श्रीकृष्णजीने देखा ।.१२६॥

अनुवाद—जो उद्दण्ड शुण्डा दण्ड होनेके कारण प्रचण्ड यमराजकी तरह अपनी चण्डिमाउग्रताको बहुत देरतक दिखाता रहा ॥१२७॥

अनुवाद—अति लम्बी गुरु परिमाणवाली भारी पूँछ होनेके कारण जगत्के प्राण पीनेको तैयार लगा हुआ कुम्भीनसजल जन्तुकी तत्परतासे भयङ्कर पर्वतकी तरह त्रिभुवनने जिसे अनुभव किया ॥१२८॥

अनुवाद—जिसने केश काचके समान श्याम आकार होनेके कारण भय देनेवाले, चार स्तम्भोंकी तरह प्रतीत होनेवाले चार चरणोंसे मानों चार पैर धारण करनेवाले अधर्मने, चारों ओरसे पृथ्वीको घेर रक्खा है ॥१२९॥

अनुवाद—जिसके लिये अत्यन्त अजेय होनेके कारण दूरसे देवता भी और संग्राम जीतनेवाले धुरन्धर गज भी तथा बड़े वीर पुरुष भी डरकर दूरसे ही नमस्कार करते थे ॥१३०॥

---

(1) कुवलयापीड वध कथा भा०, १० स्कं० ४३ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यस्माच्च चरममहीधरादिवास्तमीयुषो हिमरोचिषो विवरद्वय-मार्गतो द्विधाभूय निर्गतौ मयूखपुञ्जाविव कुञ्जावुल्लसतः । यस्य तुङ्गिमानमनुभूय भूमिधरणव्याजादाममञ्जुरध एव भूमेर्बलभूमशालिनोऽपि दिग्गजाः सर्वे ॥१३१॥

यस्मिंश्च श्यामधामनि व्योमनीवासीनः ।
सकलमनुभवति लघुतरमेव धरणिधरकुलंधीरः ॥१३२॥

पर्जन्यावार्यगर्जैः प्रकटकटतटोदानधाराभिरञ्च-
द्दन्तक्रौञ्च प्रपञ्चैः कनकजरसनादामसौदामनीभिः ।
शुण्डालाङ्गूलदण्डालघुतरचरणस्तंभगम्भीरमेघ-
श्रेणीभिर्द्वारि देवो घनसमयमिवापश्यदुच्चैर्द्विपेन्द्रम् ॥१३३॥

ध्वनन्मञ्जुमञ्जीरझङ्कारधारा-
क्वणत्किङ्किणीदाम कोलाहलेन ।
प्रतीभभ्रमोज्जाग्रदुग्र क्रुधान्धो
हरिं धावतिस्मातिरंहो स कुम्भी ॥१३४॥

अनुवाद—जिस (गजेन्द्र) से पश्चिमाचलसे अस्त होते हुए चन्द्रमाके दो छिद्रोंसे दो जगहसे निकले मयूख पुञ्जकी तरह दो कुञ्ज शोभा दे रहे थे। जिस (गजेन्द्र) की ऊँचाईका अनुभव करके भूमि धारण करनेके बहाने मानों बलकी अधिकता होते हुए भी सब दिग्गज पृथ्वीके नीचे डूब रहे थे। १३१॥

अनुवाद—आकाशकी तरह श्याम तेजवाले जिस (गजेन्द्र) पर बैठे हुए धीर पुरुष सम्पूर्ण पर्वत समूहको लघुतर समझते थे ॥१३२॥

अनुवाद—मेघके समान नहीं रोकने योग्य गर्जन रूप गज चिंघाड़से प्रकट होती हुई गण्ड स्थलकी मदधारा रूप वर्षासे, सुन्दर दाँतवाले क्रोंच रूप हंसों से तथा सुवर्णकी शृङ्खला दामरूप बिजलीसे, शुण्डा लाङ्गूल दण्ड दीर्घ स्तम्भ सदृश चरण रूप गम्भीर मेघ पंक्तिसे, उस बड़े द्विपेन्द्रको वर्षा कालके समान देखा ॥१३३॥

अनुवाद--बजती हुई सुन्दर मञ्जीरकी झङ्कारकी धारा तथा बोलती हुई किङ्किणीकी दामके कोलाहलसे तथा प्रतिपक्षी गजकी भ्रान्तिसे, बढ़े हुए उग्र क्रोधसे अन्धा होकर वह हाथी बड़े वेगसे हरिके ऊपर झपटा ॥१३४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रणारम्भसंरम्भदम्भी स कुम्भी
भृशं भीमरंहोभिरन्ध्रेण लङ्घ[1] ।
हठादेव दैत्यद्विषात्युद्भटानाम्-
रुषा पश्यतामुत्कटौजोभुजानाम् ॥१३५॥

क्षणं दन्तकोटौ नटत्कैटभारिः
क्षणं कुम्भकूटे रटत्केसरीव ।
चतुर्णां पदानां क्षणं मध्यभागी
नरो नेति गीतो न कैर्कैरभीतः ॥१३६॥

अदभ्रं नतोर्वीभरव्याग्रदर्वीकराधीशकुण्ठीभवत्कूर्मकण्ठम् ।
बलद्भूधरालीकरालीकृताशं द्वयोराविरासीन्महायुद्धमिद्धम् ॥१३७॥

क्षणं शुण्डादण्डं क्षणमपि सलांगूललतिकां
दधानः पक्षीन्द्रः फणिनमिव चिक्षेप रभसात् ।
उदञ्चच्चीत्कारं करिवरमवारं स्वयमपि
क्षणं सेहे दन्ताहतिमपि दुरन्तां करिपतेः । १३८॥

अनुवाद—युद्धके आवेशसे बड़े क्रोधसे भरा हुआ वह हाथी तत्काल ही उग्रवेग एवं बलसे हठपूर्वक बड़े-बड़े उद्भट ओज भरी भुजाओंवाले वीरोंके देखते हुए दैत्य शत्रु श्रीकृष्णने दबा दिया ॥१३५॥

अनुवाद—क्षणभर उसके दाँतोंपर कृष्ण प्रहार करते थे, कभी गण्ड-स्थलपर सिंहकी तरह झपट मारते थे, कभी उसके चारों पैरोंके बीचमें आजाते उस समय इनको निर्भय देखकर किस-किसने इनका गान नहीं किया ॥१३६॥

अनुवाद—अत्यन्त झुकी हुई पृथ्वीके बोझसे दुःखी शेषनागके द्वारा नीचे कूर्मके कण्ठको कुण्ठित करनेवाला तथा हिलते हुए पर्वतोंसे दिशाओंको भयभीत बना देनेवाला उन दोनों कृष्ण और कुवलयापीड़का बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ ॥१३७

अनुवाद—क्षणभर उसके लांगूल तथा शुण्डादण्डको पकड़कर गरुड़ जैसे सर्पको फेंकता है वैसेही उसको फेंक देते थे। बड़ी चीत्कार करते हुए उस हाथीको फेंकते थे उस गजपतिके दन्ताघातको भी उन्होंने सहन किया ॥१३८॥

---

(1) "लङ्घि" इत्यत्राडभावश्चिन्त्यः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फूत्कारोड्डीनभूमीरुहनिकटगिरिग्राममङ्घ्रिप्रपात-
न्यञ्चच्चञ्चन्महीकं प्रलयवनमिवारब्धगम्भीरघोषम् ।
उद्यलाङ्गूलतुङ्गध्वजमहह गजः क्रूरदन्ताभिघातं
धावं धावं व्यधत्तोरसि हसितमुखो हेलयैवाग्रहीत्सः ॥१३९॥

हेलाखेलावलीढान्तरमसुररिपुर्दन्तिदन्ताग्रशुण्डा-
संस्पृष्टस्पृष्टपृष्टो व्यथित इव पतन्नुत्पतन्नुद्दधाव ।
प्राप्तं मत्वा प्रमत्तद्विपपतिरवनीभेदमीदृग्विधत्ते
दंष्ट्राग्रेणोग्रनादं विकलमहिकुलं यद्भिया बंभ्रमीति ॥१४०॥

उत्पाट्यैककरेण दन्तवलभीं पङ्कान्मृणालीमिव
स्वीचक्रे क्षितिचक्रभर्त्तुरिवतां चक्री यशः कन्दलीम् ।
++++++++++++++++++++++
++++++++++++++++++++++ ॥१४१॥

निपपति नृपद्वारि निर्दन्तो दन्तियूथपः ।
कंसस्य कीर्तिभूमेव लूनपक्ष इवाचलः ॥१४२॥

अनुवाद—फूत्कारसे उड़ते हुए वृक्ष तथा पर्वतवाले तथा चरणके प्रहारसे झुकती चमकती हुई पृथ्वीवाले प्रलय वनकी तरह वह गम्भीर घोष-वाला युद्ध होरहा था उसमें उठी हुई लांगूल ही ध्वजा जैसी प्रतीत होरही थी, हाथी दौड़ दौड़कर क्रूर दाँतोंका प्रहार हृदयपर कर रहा था, खेलमें ही हँसते हुए कृष्ण उसे पकड़ लेते थे ॥१३९॥

अनुवाद—हेलापूर्वक युद्ध क्रीड़ामें अवसर पाकर असुर रिपु श्रीकृष्ण हाथीके दाँत तथा शुण्डाके अग्रभागका स्पर्श करके तथा पृष्ठभागको छूकर व्यथित की तरह गिरते कूदते दौड़ जाते थे प्रमत्त वह हाथी भी उनको प्राप्त हुआ जान-कर दंष्ट्राके अग्रभागसे ऐसा पृथ्वीपर आक्रमण करता था, जिससे नीचे डरकर शेषनागके फण घूमने लगते थे ॥१४०॥

अनुवाद—पङ्कसे मृणालीकी तरह एक हाथसे उसकी दन्तवलभीको उखाड़कर पृथ्वीके चक्रवर्त्ती राजाकी तरह यशको प्राप्त किया ॥१४१॥

नोट--उपर्युक्त श्लोकके तृतीय तथा चतुर्थ चरण अप्राप्त हैं ॥१४१॥

अनुवाद—वह गज यूथपति दाँत उखाड़े जानेसे राज्यके द्वारपर कंसकी कीर्ति समूहकी तरह गिर पड़ा ॥१४२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तद्दन्तावलदन्तकन्दलधरस्कन्धोद्धुरः श्रीधरो
विश्वोद्धारधुरन्धराकृतिभृतः क्रोडस्य दध्रे श्रियम् ।
नव्योद्यद्गि++मधातुलहरीव्यक्तीभवद्रक्तिम–
प्राचीपर्वतगर्वमाहरदसृग्भारारुणस्त्रग्भरः ॥१४३॥

ऊढसिन्धुरधुरन्धरदन्तप्रौढकन्धरमगाहत रङ्गम् ।
सोऽथ सिन्धुमिव मल्लसुवेषो बाहुसन्निहितभीषणशेषः ॥१४४॥

पातालदिव दिक्तलादिव नभो देशादिवाभ्यागता–
वुत्पन्नाविह पन्नगादिव दिशामीशादिवार्कादिव ।
कावेतावतिलोकदेवभुजगाशाधीशलक्ष्मीभरा--
वित्यन्तः परिचिन्तितौ परिषदां चक्रे श्चमच्चक्रतुः ॥१४५॥

रङ्गे प्रवेशः

देवक्यानकदुन्दुभीयहृदयस्नेहं हठाद्वर्द्धयन्--
कामं कन्दलयन्स्त्रियां यमिधियामन्तः परं शीलयन् ।

अनुवाद—उस हाथीके दन्त शकलको धारण किये एवं कंधेपर रक्खे श्रीहरि विश्वके उद्धारका भार धारण करनेकी आकृतिसे युक्त उन्होंने वाराह भगवान्‌की शोभाको धारण किया। नए नए उदित होते हुए पर्वतकी धातुकी शोभासे प्रकट होती हुई लालिमासे युक्त पूर्वाचलकी शोभावाला, रक्त भारसे लाल माला जैसी धारण करनेकी शोभाको धारणकर रहे थे ।'१४३॥

अनुवाद—मल्लका सुन्दर वेश धारण किये तथा बाहुमें भयङ्कर शेष-नागको लिये हरि समुद्रकी तरह हाथीके उत्तम दाँतोंको प्रौढ़ कन्धरापर रखे हैं, जहाँ ऐसी रङ्ग-भूमिमें कृष्णजी घूम रहे थे ॥,४४॥

अनुवाद—यह पातालसे अथवा दिशाओंके तलसे अथवा आकाशसे आये हैं ? ये नाग अथवा दिग्पाल अथवा सूर्यसे उत्पन्न हुए हैं ? यह कौन हैं ? यह लोकसे अधिक देवों नागों अथवा दिग्पालकी शोभाको धारण करनेवाले हैं, इस प्रकार सभासदोंके द्वारा विचार किये हुए दोनों चमत्कारकर रहे थे ॥१०५॥

रङ्गमें प्रवेश

अनुवाद—हठपूर्वक वसुदेव-देवकीके हृदयके प्रेमको बढ़ाते हुए स्त्रियोंके कामको अंकुरित करते हुए संयमी जनोंकी बुद्धिको प्रसन्न करते हुए, मल्लोंको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मल्लांश्च ज्वरयन्नरांश्च तिरयन् द्रावकंसमुत्प्राणय-
न्कुर्वन्विश्व चमत्कृतिं यदुपतिर्युद्धस्थलं गाहते ॥१४६॥

अथ निखिलमनोहरावतंसं दिशि दिशि जनितजनप्रशंसं दृशंनिधाय तमवधायातिनृशंसोऽपि कंसोऽभिशंसति स्म मनसि निगूडमधिरूढ चमत्कारसंभारः ॥१४७॥

ग्रस्तेव ग्रथितेव हन्त लिखितेवास्मिन्निखातेव च
स्यूतेवापि च विस्मृतेव त समाकृष्टेव मुष्टेव च ।
निर्मग्नेव निरुद्धरेव जगतीदृष्टिर्दरीदृश्यते
दम्भस्तम्भमुपैति सम्प्रति स मे कोऽयं तमालद्युतिः ॥१४८॥

अथ [1]मल्लानवधाय क्रुधाभिधावतोऽविधूतचेतसामतिसाधीयसामुदञ्चति स्म निभृतमेव प्रतिमञ्चमयं च वाक्प्रपञ्चः ॥१४९॥

दुःखी करते हुए, मनुष्योंको विस्मित करते हुए, कंसको अति चिन्तित करते हुए, विश्वको चमत्कृत करते हुए, यदुपति युद्धभूमिमें विचार रहे हैं ॥१४६॥

अनुवाद—इसके पश्चात् सबके सुन्दर भूषणकी तरह दिशाओंमें सर्वत्र प्रशंसित होते हुए श्रीकृष्णको दृष्टि लगाकर और मनमें छिपा हुआ अत्यन्त चमत्कार धारण किये अति दुष्ट कंस भी इस प्रकार कहने लगा ॥१४७॥

अनुवाद—ग्रस्तकी तरह, गुथी हुई की तरह, लिखी हुई की तरह, इसमें गड़ी हुई की तरह, तथा सिली हुई की तरह, और भूली हुई की तरह, खिची हुई की तरह, चुराई हुई की तरह डूबी हुई की तरह, नहीं निकालने योग्यकी तरह, संसारकी दृष्टि दीख रही है। तमाल जैसी कान्तिवाला यह कौन है जो इस समय आडम्बरका स्तम्भ बन गया है ॥१४८॥

अनुवाद—क्रोधपूर्वक चारों ओर से दौड़ते हुए मल्लोंको देखकर प्रत्येक मञ्चपर कम्पित चित्तवाले तथा अति सरल चित्तवाले लोगोंकी इस प्रकार बात-चीत होने लगी ॥१४९॥

---

(1) मल्लनियुद्धवर्णनं भा० १० स्कं० ४४ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मल्ल वधः

अर्वाचीनतमालकोमलतनुः क्वायं क्व मल्ला गुरु-
ग्रावग्रन्थिकठोरविग्रहजुषो घोरस्फुटन्मुष्टयः ।
वज्रं क्व क्व नु मञ्जरीसुमनसामाः कंस कोऽयं क्रम-
स्तैरेतस्य समं नियुद्धविषमं यद्युद्धमाबद्ध्यते ॥१५०॥

बह्वास्फोटस्फुटितककुभो झम्पतः कम्पितक्ष्मा
मूर्द्धाघातत्रुटितगिरयो वज्रनिर्घोषघोराः ।
चाणूराद्याः पृथुतरभुजस्तम्भकुम्भीन्द्रशुण्डा-
श्चण्डास्फालान्बहु विदधिरे बद्धयु[1]ल्लासमल्लाः ॥१५१॥

कृत्वाग्रे वाममुष्टिं फलकमिव करे दक्षिणं तीक्ष्णमुष्टिं
बद्ध्वा निश्चन्द्रहासावपि कलितमहाचन्द्रहासाविवोग्रौ ।
चाणूरः कैटभारिः सभरभुवि हली मुष्टितो बद्धरुष्टि-
र्युद्धाविष्टौ दिशोऽष्टौ तलबहलरवैर्ध्मापयन्तावभूताम् ॥१५२॥

मल्ल-वध

अनुवाद—नवीन तमालके समान कोमल शरीरवाला कहाँ यह बालक, और कहाँ कठोर पत्थरकी ग्रन्थियुक्त दृढ़ शरीरवाले घोर बंधी मुट्ठीवाले ये पहलवान कहाँ वज्र और कहाँ फूलोंकी मञ्जरी, हे कंस ! तुम्हारा यह क्या क्रम है कि उन पहलवानोंके साथ इस बालकके युद्धके विषयमें जो चर्चा होरही है ॥१५०॥

अनुवाद—बड़े आस्फोटोंसे दिशाओंको गुञ्जित करनेवाले झटकेसे पृथ्वीको कँपा देनेवाले, शिखरपर आघात करके पर्वतको तोड़नेवाले, वज्रके समान घोर निर्घोष करनेवाले खम्भके समान, तथा कुम्भीन्द्रकी शुण्डाके समान, पृथुल-भुजावाले, चाणूरादि युद्धके उल्लासवाले, पहलवान बहुत प्रबल ताल ठोक रहे हैं ॥१५१॥

अनुवाद—आगे वाम मुष्टि करके और हाथमें दक्षिण मुष्टि फलककी तरह बाँधकर हासशून्य होते हुए भी चन्द्रके समान हास करते हुएकी तरह अति उग्र चाणूर और कृष्ण तथा बलराम और मुष्टिक क्रोध करते हुए की तरह युद्धमें आविष्ट अधिक तालके शब्दसे आठों दिशाओंको गुञ्जित कर रहे हैं ॥१५२॥

---

(1) युधो लासाः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मूर्ध्ना मूर्द्धानमिद्धध्वनिपरुषमुरश्चोरसोर्वापि चोरु-
जङ्घाकाण्डेन जङ्घां पदमपि च पदा बाहुना बाहुदण्डम् ।
पार्श्वं पार्श्वेन शश्वत्तलमपि तलतो मुष्टिना मुष्टमुच्चैः-
पृष्टं पृष्टेन पिष्टोरगरमणफलं निघ्नतोर्युद्धमासीत् ॥१५३॥

आलक्ष्यालक्ष्य साक्षादवसरमभितो घूर्णतां तूर्णबारं-
पूर्णामर्षप्रमर्षप्रचलितमनसां रङ्गमध्यस्थलीपु ।
मुष्टिप्रक्षेपतुल्यक्षणजनितघनस्फारफूत्कारवारे[1]
वीराणां बाहुदण्डा दधुरधिकसमाबद्धयुद्धा हि भावम् ॥१५४॥

गजाविव जिगीषिणौ घटितलोहदण्डाविव
द्रुमाविव जनुक्रमाकलितगाढसम्वेष्टनौ ।
मिथो भुजभुजङ्गमावलितवन्धमन्धौ रुषा
कृतोरुपदयन्त्रणौ भुवमुभावलंचक्रतुः ॥१५५॥

अन्योन्यमुष्टिपरिपिष्टशरीरयष्टि-
मव्यक्तरक्तचययुक्ततया युवानः ।
उद्गाढगैरिकनगा इव शोणबिन्दु-
सन्दोहसुन्दरमजा इव ते विरेजुः ॥१५६॥

अनुवाद— उग्र ध्वनि करते हुए कठोरतापूर्वक सिरसे सिरको, हृदयसे हृदयको, अरुसे अरुको, जङ्घासे जङ्घाको, पैरसे पैरको, बाहुसे बाहुको, पार्श्वसे पार्श्वको, तलसे तलको, मुष्टिसे मुष्टिको, पृष्ठसे पृष्ठको रगड़ते हुए, उरग रमण कृष्णको दबानेके लिये युद्ध होरहा था ॥१५३॥

अनुवाद—अवसर देख-देखकर चारों ओर शीघ्रतापूर्वक घूमते हुये तथा क्रोधपूर्ण इस संघर्षसे चञ्चल मनवाले, मुष्टिके प्रहारके साथही घने विस्तृत फूत्कार समूहके उत्पन्न होनेपर उस रङ्गभूमिके मध्यमें वीरोके बाहुदण्ड अधिक युद्धके उत्साहसे युक्त होरहे थे ॥१५४॥

अनुवाद—जीतनेकी इच्छावाले हाथियोंकी तरह लोह दण्डसे बने हुए की तरह प्रारम्भमें गाढ़ वेष्टन करते हुए वृक्षोंकी तरह, भुजरूपी सर्पोंसे बन्धन-सा करते हुए पृथ्वीको शोभितकर रहे थे ॥१५५॥

अनुवाद - आपसकी मुष्टिसे पिसे हुए शरीर रूपी यष्टिसे निकले रक्त

---

(1) प्रवेकः प्रवरः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाणूरः क्षणमुपरि क्षणं मुरारि—
स्तालाङ्कः क्षणमपि मुष्टिकः क्षणं सः ।
भूपृष्टे कति न वितेनिरे विगाढ—
व्याघृष्टीरहह जिगीषया युवानः ॥१५७॥

चाणूरे चूर्णितोरौ विदधति मुखतो मुष्टिके रक्तवृष्टिं
पिष्टप्रत्यस्थिकूटे पतति भुवि शले तोशले तौ पलेशः ।
रङ्गन्तौ रङ्गधूलीधवलितवपुषौ वीक्ष्य लोलावतंसः
कंसः प्रोवाच कांश्चिन्नयत बहिरिमौ शान्तमद्यास्तु युद्धम् ॥१५८॥

इत्थं दुर्नयदुर्निवारमचिरादाकर्ण्य दुर्वर्णितं
धावित्वाऽभिपतन्तमन्तकमिवालक्ष्यैतमक्षोभणः ।
भोजक्ष्मा[1] पतिरग्रहीदसिमसीमाभालिरभ्रंलिहन्—
रुद्रः क्रुद्ध इव त्रिशूलमखिलप्रक्षोभणप्रेक्षणः ॥१५९॥

समूहसे युक्त होनेके कारण वे चारों युवा बड़े गेरूके पर्वतकी तरह, रक्त बिन्दुओंसे शोभित हाथीकी तरह शोभित होरहे थे ॥१५६॥

अनुवाद—कभी क्षणभर चाणूर ऊपर होजाता था क्षणभरको मुरारि ऊपर आजाते थे, इसी तरह कभी ऊपर बलराम, कभी मुष्टिक था। इस तरह उन युवकोंने जीतनेकी इच्छासे भूपृष्ठपर कितने-कितने गाढ़ घर्षण नहीं किये अर्थात् बहुत किये ॥१५७॥

अनुवाद—चाणूरकी जङ्घाके टूट जानेपर तथा मुष्टिकके मुखसे रक्त-वृष्टि होनेपर प्रत्येक अस्थिके टूटनेसे दोनों चाणूर मुष्टिकके गिरनेपर फिर शल और तोशल उन दोनोंके भी नष्ट होनेपर फिर रङ्गकी धूलिसे धवलित शरीरवाले राम और कृष्णके रङ्गभूमिमें घूमते हुए को देखकर भूषणोंको हिलाते हुए उस दुष्ट कंसने किन्हींसे कहा कि इनको बाहर ले जाओ आज युद्ध शान्त हो ॥१५८॥

अनुवाद—इस प्रकार बुरे न रोकने योग्य अनुचित वचनोंको सुनकर तत्काल दौड़कर यमकी तरह झपटते हुए कृष्णको देखकर अक्षुब्ध होकर असीम आभावाले अति भयङ्कर दृष्टि करते हुये अत्युच्च आकार बनाते हुये, क्रुद्ध होकर रुद्र जैसे त्रिशूल उठाते हैं वैसेही तलवार उठाली ॥१५९॥

---

(1) वारः समूहः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्मोकादिव भीमभोगिनमुपाकृष्याशु कोशादसिं
कल्पान्तभ्रमदर्ककर्कशमहो दुःप्रेक्ष्य दुःप्रेक्षणः ।
जग्राह ग्रहराजराजदमितव्योमेव वामे करे
मध्योन्नद्धमणिप्रवेक[1]फलकं भोजाधिराजः क्रुधा ॥१६०॥

कंसयुद्धचेष्टा

भूभृद्वंशवतंसकंसनृपतेर्दुर्वारदोर्दण्डयो-
श्चर्मासी दधतुः प्रचण्डिमचमत्कारं समुद्दण्डयोः ।
एकः कुण्डलितः परोऽतिविततः श्रोणीभृतः शृङ्गयो-
राविर्भूय भुजङ्गमाविव जगत्प्राणाशिनौ भीषणौ ॥१६१॥

असिं करालं फलकं विशालं समुद्बभार द्वयमेककालम् ।
विवर्त्तयिष्यन्निव विश्वचक्रं चक्रीश[2] कूर्माधिपती क्रुद्धान्धः ॥१६२॥

अनुवाद—कंचुकसे भयङ्कर सर्पकी तरह कल्पान्तमें भ्रमण करते सूर्यके समान कर्कश तलवारको खींचकर बाँयें हाथमें ग्रहण कालके अवसरपर राहुसे व्याप्त आकाशकी तरह मध्यमें सुन्दर मणियुक्त फलक त्सरुको क्रोधसे ग्रहण किया ॥१६०॥

कंस युद्ध चेष्टा

अनुवाद–राजवंशके भूषण कंस राजाके समुद्दण्ड भुजदण्डमें ढाल तलवार बड़ा प्रबल चमत्कार करने लगी। एक ढाल कुण्डलित है दूसरी तलवार बड़ी लम्बी है, वे दोनों ऐसे शोभित थे जैसे श्रोणी भृतके शिखरपर जगत्के प्राणों को नष्ट करनेवाले भयङ्कर दो सर्प आकर शोभित होगये हों ॥१६१॥

अनुवाद–सर्पराज और कूर्मराजकी तरह भयङ्कर तलवार और विशाल ढालको दोनोंको एक साथही विश्वके बदलनेवाले कंसने क्रोधमें अन्धे होकर धारण कर लिया ॥१६२॥

विशेष—तलवार सर्प है, ढाल कच्छप है ॥१६२॥

---

(1) कंस वध वर्णन कथा भा० १० स्कं० ४४ अध्याये ।
(2) चक्रीशः सर्पराजः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृथुफलकमतीव संबभासे दधदपि भीषणभासचन्द्रहासम् ।
समुदयशिखरीव भूपसिंहः समसमयोदितसैंहिकेयकेतुः ॥१६३॥

चञ्चच्चर्मासिदण्डो भ्रुकुटिकटिपरिभ्राम्यदाशो नतभ्रू-
र्भेजे भोजाधिराजस्त्रिभुवनमभितः कम्पयञ्झम्पगर्जैः ।
उद्भूतानल्पकल्पाम्बुधिरिव विकनावर्त्तनृत्यत्तरंगो
दुर्वारौर्वाग्निपिङ्गोच्छलदलघुरुचिर्वेगगम्भीरघोषैः ॥१६४॥

अभणदपि दुर्भाणभावितमदो मदकल इव गम्भीरनादप्रतिनादि-
ताशेषयादःपतिर्यदुपतिमहह भोजाधिपतिर्भूयः ॥१६५॥

त्रस्यद्दिक्पालपालीविहितहितनुतिः सर्वभूसार्वभौमः-
स्तम्भोकुम्भीन्द्रकुम्भस्थलदलननगोद्भेददुर्वारधारः ।
सोल्लासं चन्द्रहासः पशुपशुतरणा रम्भदम्भाद्भवन्तं
दृष्ट्वा धावन्तमुच्चैरुपहसतिलसद्धीरकार्चिर्मिषेण ॥१६६॥

अनुवाद—भयङ्कर चमकती हुई तलवार तथा विस्तृत ढालको धारण करते हुए वह राजा एक समयमें उदित राहु-केतुवाले बड़े वृक्ष अथवा पर्वतकी तरह वह कंस शोभा देता था ॥१६३॥

अनुवाद—चमकती हुई ढाल-तलवार हाथमें लिये भृकुटि और कटिसे सारी दिशाओंको घुमाता हुआ, भ्रू लटकाये झटकेके गर्जनसे चारों ओर त्रिभुवन को कंपाता हुआ, वेगवान गम्भीर घोषसे दुर्वार बडवानलकी उठती बड़ी शोभा-युक्त तथा विस्तृत जल भ्रमके द्वारा नाचती तरङ्गोंवाला उत्पन्न विस्तृत कल्पान्त के समुद्रकी तरह शोभित था ॥१६४॥

अनुवाद—दूर्वचनोंसे अभिमानको प्रकट करते हुए मदसे मत्त होकर गम्भीर नादसे सम्पूर्ण जल जन्तुओंके पति समुद्रको गुञ्जित करता हुआ सब भूमिका स्वामी वह कंस बोला ॥१६५॥

अनुवाद—डरते हुए सब दिक्पालोंके द्वारा स्तुति किया हुआ सारा पृथ्वीका स्वामी वह कंस कहने लगा—स्तम्भित होते हुए हाथियोंके कुम्भ स्थलके दलन करनेवाले पर्वतों या वृक्षोंसे दुर्वार धारावाला ये चन्द्रहास बड़े उल्लासके साथ दौड़ते हुए आपको देखकर चमकते हुए हीरक जैसी निकलती हुई किरणके बहाने जोरसे हँस रहा है ॥१६६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

द्राग्दूरादेव दावद्रुतदलिततया विद्विषां देहद्दृप्य-
द्रक्तासारान्ममासौ भुजभृतरभसो नापिबच्चन्द्रहासः ।
इत्थं दीर्घोपवासव्रतजनितमहाजाठराग्नेरसह्या-
देह्येह्याभीर मा भैस्तव रुधिरसुधापारणामारभेत ।।१६७।।

सौन्दर्याद्दण्डपाणेरियमसिलतिका मज्जतोऽस्यामलज्जाः
स्वर्या मज्जन्ति नार्यः स्फुरदुरसि परिष्वज्य रम्भादयोऽपि ।
तत्त्वं धन्योऽसि यत्ते व्रजकुलजनुषो नन्दनोद्यानवाप्या--
माभीरीदृक्चकोरीचुलकितमनसोऽप्यद्य भावी स मोदः ।।१६८।।

चण्डमानपवमानरंहसा शैलशृङ्गमिव तुङ्गमम्बुदः ।
आससाद सहसा नृकेसरी राजसौधमखिलैरलक्षितः ।।१६९।।

वातोद्भ्रान्त दुरन्ततोयदतडिच्चक्रायमाणश्चिरं
चर्मासी रचयन्नसीम परितो बभ्राम चित्रं कृती ।

अनुवाद—दूरसे ही शीघ्र दावानलसे भाग जाने व चले जानेके कारण शत्रुओंके शरीरसे वेगसे निकलती हुई रक्त धाराओंको मेरी भुजाओंमें उछलते हुए भी मेरे चन्द्रहासने नहीं पिया। इस प्रकार दीर्घ उपवास व व्रतसे उत्पन्न जठराग्निसे अर्थात् भूँखसे हे आभीर ! आओ आओ, मत डरो। तुम्हारे रुधिर रूपी अमृतकी पारणाको यह मेरा चन्द्रहास प्रारम्भ करेगा ।।१६७।

अनुवाद—सुन्दरतासे यह असिलता दण्डपाणिकी प्रिया जैसी है इसमें स्नान करनेवाले अथवा इसके द्वारा मरकर जानेवालेके साथ स्वर्गकी रम्भादि स्त्रियाँ भी विकसित हृदयमें आलिङ्गन करके स्नान करती है, अर्थात् उससे प्रेम करती है। तुम धन्य हो, व्रज कुलमें उत्पन्न हुए और सुन्दर उद्यानकी वापीमें आभीरीकी दृष्टि रूपी चकोरीके द्वारा तुम्हारा मन चुलुकित अर्थात् चुल्लूसे पिया गया है, तुम्हारे साथ रम्भादिकोंका स्वर्गमें विनोद होगा, अर्थात् मरोगे ।।१६८।।

अनुवाद—प्रवल वायुके वेगसे ऊँचे शैलके शिखरपर चढ़े हुए वादलकी तरह मनुष्योंमें सिंहके समान सबसे अलक्षित होकर सहसा राजमहलमें आगये हो ।।१६९।।

अनुवाद—वायुसे घूमते हुए घने बादल व बिजलीके चक्रकी तरह, बहुत देरतक घुमाते हुए, असीम आश्चर्य उत्पन्न करते हुये, कुशल कंसने चारों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किं कुर्वीत जगन्ति हन्त हरिणा पूर्णानि पश्यन्निजा--
मात्यौघान्निजपानमत्त इव स क्रोशावशस्तद्भ्रमात् ॥१७०॥

तूर्णंतस्य विघूर्णतोऽसिलतया सार्धं समं चर्मणा
लेभे नावसरं प्रतीक्ष्य सुचिरं व्याहन्तुमेकक्षणम् ।
मोघीकृत्य सहस्रधापि वसुधाधीशस्य भीमायुधं
निःसीमास्य युधा क्रुधाप्यतिमुदं चक्रे स चक्रायुधः ॥१७१॥

हस्ताम्भोजलताभिघातनिपतत्कोटीरमुद्धाटयन्--
शौटीरं नृपतेः करेण कलयन्कालाहिचक्रं तलम् ।
तं लाङ्गूलनिरुद्धभोगिनमिवाचर्योछ्वसन्तं हरि-
र्भूयः कालियकेलिकौशलमुरी कुर्वन्निवाशोभत ॥१७२॥

पृथ्व्यां निपात्य तमुपेतमदं तदङ्के
विश्वम्भरो भरमधत्त तदा पदा सः ।
चातुर्यमाचरदतीव तदा तदात्मा
यत्नात्तदन्तरमगाहत जेतुकामः ॥१७३॥

ओर ढाल-तलवारको घुमाया । सब जगत्को हरिसे पूर्ण देखते हुए भी स्वयं मद्य-पानमें मत्त क्रोश अथवा क्रोधसे अवश होकर उस भ्रमसे अपने अमात्य समूहसे व्याप्तकी तरह देखे, उसे ······· क्या किया जाय ॥१७०॥

अनुवाद—ढाल और तलवारके साथ बहुत देरतक उसके तेजीसे घूमते हुए, अवसर देखकर भी देरतक उसे मारनेका एक क्षण भी समय प्राप्त न हुआ । कंस राजाका वह भयङ्कर युद्ध सहस्रवार भी निष्फल करके उस युद्धसे श्रीकृष्णने कंसको अति प्रसन्नकर दिया । अपनी रक्षाकर उसने अपनेको धन्य माना ॥१७१॥

अनुवाद—कर कमलके अभिघातसे गिरते हुए, प्रान्त भागको संभालते हुए, राजाके असि चालन चातुर्यको हाथसे काल सर्पकी तरह समझते हुए, उस कंसको पूँछमें पकड़े सर्पकी तरह ऊपरको सांस लेते हुए उसे कालिय नागकी तरह क्रीड़ामें कुशल हरिने पकड़ते हुए शोभा प्राप्त की ॥१७२॥

अनुवाद—मदको प्राप्त हुए उस कंसको पृथ्वीपर गिराकर उसके ऊपर विश्वम्भरने पैरसे अपना सारा भार रख दिया । उस समय तादात्म्यको प्राप्त हरिने बड़ी चतुरताकी । जीतनेकी इच्छासे बड़े यत्नपूर्वक उसके अन्दर प्रविष्ट होगये ॥१७३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कंसवधः

उपेन्द्रो भूमीन्द्रं करदलितमूर्धानमजहाद्-
यथेन्द्रो पारीन्द्रं दिगुपचितमुक्तामलयशाः ।
स तं नैवामुञ्चत्कथमपि जिगीषुः प्रकटित-
प्रतापा + ज्योतिर्मयमहह सूपं विरचयन् । १७४॥

लघूकृत्वा भारं शिरसि तमवारं फणिपते-
र्वतंसे भूपानां समरभुविकंसे निपतति ।
दिविष्ठा भूमिष्ठा जपरसितनिष्ठा मुमुदिरे-
किरन्तो भूयिष्ठं कुसुममुपरिष्टान्मुरभिदः ॥१७५॥

इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्दकन्द चम्पू-
काव्ये सप्तमोऽयमुल्लासः ॥ ७ ॥

कंस वध

अनुवाद—कृष्णने हाथसे सिर टूटे हुए कंसको ऐसे छोड़ दिया, जैसे सिंह दिशाओंमें मुक्तारूप अमल यशको विस्तृत करके मृत हाथीको छोड़ देता है। परन्तु उस कंसने कृष्णको नहीं छोड़ा, वह तो जीतनेकी इच्छावाला अपने प्रताप को प्रकट करते अपना यश प्रकट करता हुआ कृष्णकी ज्योतिमें विलीन होगया।

नोट—इस श्लोकमें एक अक्षर अप्राप्य है ॥१७४॥

अनुवाद—इस प्रकार शेषनागजीके सिरपर बड़े भारको कम करके संग्राम भूमिमें राजाओंके भूषण कंसके गिर जानेपर स्वर्गमें रहनेवाले तथा पृथ्वी-पर रहनेवाले, जपमें निष्ठा रखनेवाले सभी कृष्णके ऊपर बहुत ही पुष्पोंकी वर्षा करते हुए प्रसन्न हुए ॥१७५॥

इति सप्ताचार्य डॉ० श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेद शास्त्रि विरचिते श्री श्रीवरानन्दिनी भाषाटीका सहिते आनन्दकन्द चम्पू काव्ये कंसवधवर्णनं नाम
सप्तम उल्लासः ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अष्टम उल्लासः

उग्रसेन संवादः

अथ विघटय्यासह्य शौटीर्यपर्याप्त्यधिकरणमपर्याप्त्यदौर्जन्यावार्य्य-मौखर्यमसौकर्य्यैकनिकार्य्यमपगतमर्य्यादमसत्कार्यवाटोपरिपाटीपटीयां - सं धरणितरोऽसकं परिलसदुग्रसेनं तमुग्रसेनं च धरणिधवाधिपत्ये निर्वर्त्य व्यपगतदुर्दान्तामित्रयोः पित्रोश्च निगडबन्धयन्त्रणामवमोच्या-शोच्यान्तरमात्मानं जगदात्मापि जगदीश्वरो मेने ॥ १ ॥

त्रिजगदुपरि वर्त्तमानोऽपि दण्डायमानो निपतति स्म देवाधि-देवोऽपि वसुदेवदेवकीपादपल्लवेषु वल्लभः कमलायाः। भृशमिद-मवदच्च तच्चरणयोः प्रसारितपाणिपल्लवोपकण्ठं वैकुण्ठकण्ठोरवोऽप्य-कुण्ठमायामोदितमानुषारम्भ सम्भारः ॥ २ ॥

षड्बालाः कुलपांशुलेन निहताः कंसेन पापीयसा—
मुक्तंसेन कृते ममैव निगडैर्गाढं युवां पीडितौ ।

उग्रसेन सम्वाद

अनुवाद—नहीं सहने योग्य व्यवहारसे पूर्ण, असीम दुर्जनता तथा कटु भाषणयुक्त अति कठोर अत्याचारवाले मर्यादा रहित, निंन्दनीय व्यवहारोंमें अति चतुर उस कंसका विघटन करके अच्छी उग्रसेनावाले उन उग्रसेनको पृथ्वीके आधिपत्यपर नियुक्त करके, नष्ट हो चुके हैं उग्रशत्रु जिनके, ऐसे माता-पिताके कठोर बन्धनकी उग्रमन्त्रणाको छुटाकर अशोचनीय हृदयवाले अपने आपको जगत् के आत्मा जगदीश्वर कृष्णने माना ॥ १ ॥

अनुवाद—तीनों जगत्के ऊपर रहनेवाले भगवान् देवाधिदेव लक्ष्मीके पति श्रीकृष्ण जी वसुदेव देवकीके चरणकमलोंमें दण्डकी तरह गिर जाते थे और उनके चरणोंमें हाथ फैलाकर गोपोंके पास वैकुण्ठके सिंह अकुण्ठित मायासे मनुष्योंके योग्य लीलासे सबको प्रसन्न करके बार-बार यह कहते थे ॥ २ ॥

अनुवाद—पापियोंके शिरोमणि कुल दूषक उस कंसने छे बालक मार दिये और मेरे कारण आपको निगड़ बन्धनसे मुक्त किया, हे माता-पिता ! कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वक्तव्यं पितरौ न किंचिदितरौचित्यं च चित्तं ययौ
यत्क्षन्तव्यमिति[1] ब्रवीतुमहह व्रीडेऽहमोडे कथम् ।। ३ ।।

जातः शैशववैभवेन सुखयत्येवात्मजन्मा स्फुट-
व्याहारस्मितजानुपाणिगमनक्रीडादिनादौ मनः ।
पित्रोः प्राप्तवयाः प्रयाति परमालम्बत्वमुज्जृम्भय-
न्नैश्चिन्त्यं सुजनुः परन्तु कुजनुः खेदाय मादृग्विधः ।। ४ ।।

पश्यन्तावपि तानि तानि चरितान्यन्तर्वलद्विस्मयं-
जानन्तावपि नैष मानुष इति ब्रह्मैव साक्षादिति ।
देवक्यानकदुन्दुभी सुत इति स्नेहाद्व्यधत्तां हरे-
राश्लेषं विदुषोऽपि किं किमहो स्नेहैर्न विस्मार्य्यते ।। ५ ।।

देवकीवसुदेवयोर्हर्षवर्णनम्

अथ हरिरखिलानुरञ्जनानि कुर्वाणः सहली मनुजलोलया पित-रावुपासीनो मथुरामध्यासीत् । अपि शीलित कीनाशकारागारान् षट्-

---

अन्य उचित वक्तव्य कहने योग्य चित्तमें नहीं आरहा है आप क्षमा करें। यह कहनेमें भी लज्जित होता हूँ, स्तुति कैसे करूँ ? ।। ३ ।।

अनुवाद—अपना पुत्र उत्पन्न होते ही बाल-लीलासे माता-पिताको सुख देता है फिर अपनी बोली, मुस्कान घुटनों व हाथोंसे चलना, क्रीडादिसे प्रसन्न करता है, फिर कुछ बड़ा होकर माता-पिताका सहारा बनता है, फिर युवा होकर माता-पिताको अच्छा पुत्र निश्चिन्तकर देता है, परन्तु हम जैसा दुष्ट पुत्र केवल खेदके लिए होता है ।। ४ ।।

अनुवाद - तरह-तरहके चरित्र देखते हुए अन्तहृदयमें आश्चर्य करते हुए यह मनुष्य नहीं है साक्षात् ब्रह्म ही है, यह जानते हुए भी, वसुदेव देवकी "यह पुत्र है" यह जानकर हरिका आलिङ्गन करते थे, स्नेह विद्वान्के द्वारा भी क्या-क्या भूल नहीं कराता ।। ५ ।।

देवकी वसुदेव-हर्ष-वर्णन

अनुवाद—इसके पश्चात् हरि सब प्रकारके मनोरञ्जन करते हुए बलरामजीके साथ नरलीलासे माता-पिताकी सेवा करते हुए मथुरामें रहते थे ।

---

(1) ब्रवीतुमिति प्रयोगश्चिन्त्यः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किशोरानालोकयामास मातरमसीममहिमराशिः । अप्युपासीनसन्दीपितनिखिलविद्याविपणिरधिगतनिरवद्याशेषविद्याविद्योतमानमानसो दक्षिणीकृत्य दक्षिणाशाधिपति मुखपतितापत्य मत्यार्थिने गु[1]रवे विवेशावासमचिरादेव देवकीवसुदेवयोरीशः ।। ६ ।।

द्वारकानिर्माणः

अथ कतिपय दिवसेषु जायमानेषु तनया वैधव्याभव सम्भाव्यमानापरिमाणमन्युना विरचितनिखिलवसुन्धराधीशसन्धिनिर्बन्धेन महामदान्धेन मदकलगन्धसिन्धुरसन्धावमानशैन्धवारन्ध्रधारोद्धत--धूलीकृतान्धकारैरन्धीकृतलोकबन्धुगन्धर्वेण कृतयादवकुलकदनानुसन्धानेनाखर्वगर्वोद्धरस्कन्धेन जरा[2]सन्धेन धावं धावं सप्तदशकृत्वो वन्ध्योद्यमीभूतेनोत्थाप्यमानं यवनवसुन्धराधुरन्धरं मान्धातृकुलसिन्धुकुमुद्वती बन्धुमुचु-

फिर असीम महिमासे युक्त हरिने कंसके कारागारमें उत्पन्न छै बालकोंको माताके लिए दिखाया । फिर सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञाता सन्दीपन आचार्यको सेवासे प्रसन्न करके उत्तम सम्पूर्ण विद्याओंसे अपने अन्तःकरणको विद्योतित करके यमराजके मुखमें गये हुए अपने पुत्रको माँगनेवाले गुरुको दक्षिणाके रूपमें देकर शीघ्रही वसुदेव देवकीके आवासपर श्रीकृष्णजी चले गये ।। ६ ।।

द्वारका-निर्माण

अनुवाद—फिर कुछ दिन बीतनेपर तनयाके वैधव्यसे अनुचित सम्भावना किए हुए अपरिमित क्रोधसे युक्त हुए, तथा सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामीके सन्धि द्वारा आग्रहवाले, मदसे सुन्दर गन्धवाले हाथीसे भी उत्तम अश्वोंकी छिद्र रहित निरन्तर गतिकी धारासे उठी हुई धूलिके अन्धकारसे लोक बन्धु तथा गन्धर्वोंको भी अन्धाकर देनेवाले यादव कुलके विनाश करनेकी भावनाका निश्चय करके अत्यन्त बढ़े हुए अभिमानसे उन्नत स्कन्ध उठाये जरासन्धने दौड़-दौड़कर सत्रह बार उद्योगके निष्फल होनेपर भी पृथ्वीके धुरन्धर योद्धा काल यवनको उठाकर फिर उस काल यवनको मान्धाताके कुलरूपी सिन्धुमें कुमुदवतीके सदृश उत्पन्न मुचुकुन्दकी जंभाईके साथ निकली आँखोंकी अग्निसे ईन्धनके समान नष्ट कराके

(1) गुरुपुत्रानयनकथा–भा० १० स्कं० ४५ अध्याये ।
(2) जरासन्धकाल यवनमुचुकुन्द कथा भा० १० स्कं० ५०–५२ अध्यायेषु ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कुन्द क्रोध सध्मातनयनहुताशनेन्धनीकृत्य श्रीबन्धुः सिन्धुसविध एव द्वारकानामपुरीमुरीचक्रे चिरं चक्री ।। ७ ।।

भूमिभारोद्धारं कृत्वा वैकुण्ठं प्राप्य पुनः मथुरायां प्रासादे वासः

अथ विघटितभूमीसुतप्रभृतिभूमीपतिभूमनिःसीमभूमीभारसम्भारो वैकुण्ठपुरमारोहति स्म कण्ठीरवं कुण्ठीकृत्य निहत्य करटीन्द्रमृगेन्द्र-मूर्धानं भगवान कुण्ठमहिमा स वैकुण्ठः । पुनरपि निखिलमहाचक्र-चक्रवर्त्तिचूडामणि नौदार्यधैर्य्यमर्यादावितरणमुख्यलक्ष्य गुणधोरणी-रत्नखनिना अपि सकलवसुन्धराधुरन्धराकारदोर्विशेष - शेषफणिना प्रतिबल मदकलसंघसंघातिसिंहेन वीरसिंहेनोपसादितप्रासादवरमास-साद स प्रसादमनाः स्फुटमवसादयन्नयनवतोऽविद्या दयादः पतिर्मति-वेषपेशलो नाम केशवः कुतुकी ।। ८ ।।

नारदकृत प्रासादवर्णनम्

तद्वैकुण्ठमथाप तापदमनं वैकुण्ठमुत्कण्ठितो–
द्रष्टुं कण्ठग्रहीतवल्लकिभवेनाकुण्ठ कण्ठीरवः ।

श्रीबन्धु चक्र धारण करनेवाले श्रीकृष्णजीने द्वारिका नामकी पुरीमें बहुत दिन तक अपना निवास किया ।। ७ ।।

भूमिका भार नष्ट करके पुनः मथुराके प्रासादमें वास

अनुवाद—भौमासुरादि राजाओंका बहुत बड़ा सीमा रहित पृथ्वीका भार नष्ट करके कण्ठीरवको कुण्ठित करके और गजेन्द्र तथा मृगेन्द्र जैसे निन्दनीय बलवान राजाओंको मारकर अकुण्ठित महिमावाले भगवान् श्रीकृष्णजी वैकुण्ठपुर को चले गये । फिर भी सम्पूर्ण महाचक्रके चक्रवर्त्तियोंके भी चूड़ामणि उदारता धीरता, मर्यादा वितरणमें मुख्य लक्ष्य तथा बहुतसे गुणरूपी रत्नोंकी खान सकल पृथ्वीके धुरन्धर आकार धारण करनेवाले विशेष शेषनागकी तरह पदसे शोभित प्रतिपक्षी समूहके विनाशक सिंहकी तरह वीर सिंहके द्वारा परिष्कृत सुन्दर प्रासाद पर प्रसन्न होते हुए स्फुट अविद्या अज्ञानादिको नष्ट करते हुए कुतुकी केशव सुन्दर वेषसे विभूषित होकर चले गये ।। ८ ।।

नारद कृत प्रासाद-वर्णन

अनुवाद—वैकुण्ठनाथ भगवान् कृष्णका दर्शन करनेके लिए उत्कण्ठित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्याभिः स विशारदोऽनवरतं जिव्हानटच्छारदो ।
नामोद्गारविसारिकुन्दविशदज्योतीरदो [1]नारदः ॥ ९ ॥

शुचेव श्यामाङ्गी परिगलितसङ्गीत रभसा
क्वचिद्भृङ्गी नैकः स्वनति बत पैकः क्वचिदपि ।
बहिर्द्वारोपान्ते हरिविरहतान्ते च तुलित–
क्षमामज्जद्यूपे जयविजयरूपे निपतितः ॥१०॥

कुम्भीकृत्वैकमङ्घ्रिं हृदि धरणिलुठत्पक्षति द्वन्द्वकोटि–
र्विष्टभ्य क्षोणिपृष्टं विमतकृतिपदान्येन कष्टव्रतीव ।
ग्रीवामावर्त्य भर्तुश्चरणकिणघनेचारु निक्षिप्य पक्ष-
प्रान्ते चञ्चूपुटान्तं लिखित इव लसत्यूढतन्द्रःखगेन्द्रः ॥११॥

निद्रातीव निवृत्तनिःस्वनमनालीढक्रियं मुद्रित–
द्वारच्छद्ममुखोरुपद्ममभितः सद्मानि पद्मापतेः ।
देवर्षि समुदीक्ष्य कोशकुहरेऽव्यस्त्राणि शस्त्राणि च–
द्रागारूढविगाढविस्मयभरो भेजे स्वयम्भू पुरम् । १२॥

होकर कण्ठमें माला डाले अकुण्ठ कण्ठीरवके समान, विद्याओंमें पारङ्गत, जिह्वा-पर सरस्वतीका वरदान प्राप्त किये निरन्तर नामके उच्चारणसे कुन्दके समान दाँतोंकी ज्योति विशद करते हुए श्रीनारदजी वैकुण्ठमें पहुँचे ॥ ९ ॥

अनुवाद - सङ्गीतके आवेगको छोड़कर शोकसे कोई श्याम अङ्गवालीकी तरह भृङ्गी अकेला ही नहीं बोलता है, और कहीं पिक भी नहीं बोलता है, बाहर द्वारके समीप हरिके वियोगसे दुःखी पृथ्वीके अन्दर डूबते हुए यूपकी तरह कोई जय विजयके रूपमें पड़ा है ॥१०॥

अनुवाद –एक पैरको कुम्भके समान गोल करके हृदयमें और पृथ्वीपर दोनोंकी चोंचको लोटते हुए दूसरे पैरसे कष्टव्रतीकी तरह पृथ्वीके ऊपर रखे हुए ग्रीवाको मोड़कर स्वामी भगवान्‌के चरण चिह्नोंपर पङ्खोंकी जड़में चोंचसे लिखते हुएकी तरह तन्द्रामें कुछ लिख-सा रहा है ॥११॥

अनुवाद—निद्राके कारण अत्यन्त शब्दसे शून्य तथा क्रियासे शून्य बन्द हुए द्वारके बहाने मुख पद्म बन्द किये ऐसे लक्ष्मीपतिके वरको देखकर तथा कोश

---

(1) नारदस्तुतिः भा० १० स्कं० ६९ अध्याये ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दृष्ट्वा विस्मयवन्तमन्तिकमुपायान्तं विदूराद्विधिः—
सद्योऽचिन्तयदन्तरन्तमगमच्चिन्तादुरन्ताम्बुधेः ।
वत्सागच्छ गिरानयाच्छहृदयः सम्भाव्य संभावित-
प्रादक्षिण्यपटुप्रणामकमथालिङ्गत्तमङ्गोद्भवम् ॥१३॥

अथ कमलजनिरुदस्यैकदोष्ठाधरपुटक पटबन्धं वाणीचतुरायतनी-मिव चतुराननीं विकाशमुपनीय स्नेहादरकमनीयमभाणीत्सभानीति-विद्वान् भविष्यद्भूतवर्त्तमानार्थविदामग्रणीः स मुनीन्द्रम् ॥१४॥

ब्रह्मवचनम्

विकाररहितस्यापि वारिधेरिव वाडवः ।
अन्तरूष्मा तवाकस्मान्मया समनुभूयते ॥१५॥

गाम्भीर्यं तच्च धैर्यं तदपि च शुचिता साप्य सत्त्वावसादा—
मर्यादा सैव सम्यक् समुदयति स हि श्रीसमुल्लास राशिः ।

में अस्त्र-शस्त्रोंको देखकर तत्काल अत्यन्त आश्चर्य युक्त होकर श्रीनारदजी ब्रह्माके स्थानपर चले गये ॥१२॥

अनुवाद--आश्चर्यसे युक्त पासमें आये हुये नारदजीको ब्रह्मा दूरसे ही देखकर तत्काल ही चिन्तारूपी दुःखके समुद्रके अन्दर डूबकर सोचने लगे। स्वच्छ हृदय होकर आओ वत्स यह कहकर सत्कार करके फिर ब्रह्माकी प्रणाम-पूर्वक प्रदक्षिणा करनेके बाद ब्रह्माने उनका आलिङ्गन किया ॥१३॥

अनुवाद—इसके पश्चात् एक समय ओष्ठके अधर पुटका पटबन्ध ऊपर उठाकर वाणीके चतुर स्थानकी तरह ब्रह्माणी सरस्वतीको विकसित करके अत्यन्त विद्वान् भूत, भविष्य वर्त्तमान वेत्ताओंमें अग्रणी वह ब्रह्मा स्नेहके कारण आदर और सुन्दरतापूर्वक नारदसे कहने लगे ॥१४॥

ब्रह्म वचन

अनुवाद—विकार रहित होते हुए भी समुद्रमें वाडवाग्निकी तरह तुम्हारे हृदयमें अकस्मात् ऊष्मा खेदका अनुभव कर रहा हूँ ॥१५॥

अनुवाद—तुम्हारा वही गाम्भीर्य है वही धैर्य है सत्व और अवसाद शून्य वही पवित्रता है वही मर्यादा तथा हर्ष समूह भी वही है परन्तु आज हृदय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अद्यान्तः शल्यशैलं भुवनमनुभवत्युच्छलद्धेनुवत्स-
स्वाच्छाम्भोधेरिवाच्छान्तररुचिररुचेः किं प्रचेतोगृहस्य ॥१६॥

नारदप्रश्नः

देहदीधितिविधूतशारदः शारदामृतमयूखपारदः ।
अत्यसीमभवभीमदारदः कञ्ज सम्भवमुवाच नारदः ॥१७॥

दृष्टं धाम हरेर्नाम विहरेदेको विवेकोत्तम-
श्चित्रोल्लेखविशेषमैत्र्यघटकास्ते द्वारि दौवारिकाः ।
मूढस्येव मतिः प्रकाशविरतिर्नोद्यानभूर्द्योतते-
कुण्ठश्रीव तनोति कस्य न मनो वैकुण्ठमुत्कण्ठितम् ॥१८॥

रोचते पुरतस्तेन पुनरुक्तमिदं वचः ।
चराचरमदः सर्वं कुर्वतः किमगोचरम् ॥१९॥

में दुःखके पर्वतकी तरह उछलते हुए धेनुके वत्सकी तरह तथा स्वच्छ समुद्रको तरह स्वच्छ मनमें रुचिर शोभावाले आपके हृदयमें सारा भुवन कोई दुःख दे रहा है ॥१६॥

नारद-प्रश्न

अनुवाद—शरीरकी किरणोंसे शरद-ऋतुके चन्द्रमाको तिरस्कृत करनेवाले, चन्द्रमाकी अमृत किरणोंके समान सुख देनेवाले, असीम भवके भयको दूर करनेवाले नारद ब्रह्मासे बोले ॥१७॥

अनुवाद—यह हरिका धाम देखा, इसमें एक उत्तम विवेक ही विहार करता है, आश्चर्यपूर्वक विशेष मैत्री नहीं करते हुए द्वारपर वे द्वारपाल हैं, बुद्धि मूर्खकी तरह होगई है कुण्ठित शोभाकी तरह ये वैकुण्ठ किसीके मनको उत्कण्ठित नहीं कर रहा है ॥१८॥

अनुवाद—यह सब आपके सामने प्रत्यक्ष है इसलिए ये सब वचन पुनरुक्तिके समान है, आप चर अचर सब जगत्को देखते हैं। आपसे क्या छिपा है ॥१९॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्माद्वारावीरसिंहमहिमावर्णनम्

अथ हृदयवरवर्णिनीप्रसूतसुतभणितमाकर्ण्य वर्णयामास सहस्र-पर्णजन्मा संमार्जनाय शङ्कापङ्कानामलंकारितभूयोविस्मयमुपदर्शित-भक्तसौभगाहङ्कारम् । अहो जातोऽस्ति त्रिभुवनचमत्कार कारात्कोऽपि रमणीयातिशयो नाम वस्तु विस्तारोऽवधीयतां भूम्ना । अस्ति किल समस्तप्राशस्त्यैकभूरभूतपूर्वाऽपूर्वगुणपूर्वारांनिधिरिव निखिलरस सारा-तिशयोज्जिहानमूर्तिरनार्त्तभिभूतभूतसार्थोऽपार्थोदयीकृतपार्थो नाम पार्थिवानामग्रणीर्देव सङ्घोपगीयमानगरिमा वीरसिंहोऽवनीपालः ।२०

महिम्ना यो भूम्ना चतुरुदधिनाम्नामरचय--
त्तिरोभावं धाम्ना खरकिरणसाम्नामनुभवः ।
सदासिञ्चत्प्रेम्णा द्विजमयितहेम्ना कथमसौ
वृतः श्रेयः सीम्ना भवतु मम धाम्नामविषयः ॥२१॥

ब्रह्मा द्वारा वीर सिंहकी महिमा-वर्णन

अनुवाद—इसके अनन्तर हृदयकी वर वर्णिनीसे उत्पन्न पुत्रके कथनको सुनकर कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा सब शङ्काओंको दूर करनेके लिये अति विस्मयको प्रकट करनेवाले भक्तके सौन्दर्यको तथा अहङ्कारको प्रकट करनेवाले भक्तके सौभाग्यका वर्णन करने लगे—त्रिभुवनको चमत्कृत करनेवालेसे अत्यन्त रमणीय वस्तु विस्तार कोई विशेष उत्पन्न हुआ है उसे अच्छी तरह ध्यान दो। सम्पूर्ण उत्तमताओंका स्थान अभूतपूर्व अपूर्व गुणोंका समुद्र निखिल रसोंके सारकी अधि-कतासे उन्नत मूर्तिवाला प्रसन्न चित्त व्यक्तियोंके समूहवाला अर्जुनके नामको फीकाकर देनेवाला राजाओंमें श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा भी जिसका यशोगान किया गया ऐसा वीरसिंह नामवाला एक राजा हुआ ॥२०॥

अनुवाद—अपनी विशेष महिमासे जो चारों समुद्रोंको अस्त करता है, तेजसे सूर्यका अनुभव करता है अर्थात् सूर्यके समान है, सदा हेम सदृश प्रेमसे ब्राह्मणोंको दानादिसे सन्तुष्ट करता है अत्यन्त तेजस्वी वह राजा अति कल्याणसे युक्त होजाय ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अतिशयतेजस्विनि यस्मिन्ननुशासति वसुमतीमण्डलमाखण्डल इव दिवमासीदाशीविष एव द्विजिह्वता नाम, दोषाकर एव दोषाकरता कमलावलोके वैधुर्य्यं कलङ्कवत्ता क्रमवैकल्यं च, अपि गुणगणानुबन्धो धीरधुरन्धराणामेव, अनवरतमदान्धता च गन्धसिन्धुराणामेव, सैन्धवानामेव चाञ्चल्यम्, कर्कन्धुप्रभृतिमहीरुहाणामेव कण्टकासङ्गः, अपि च मीनमेषकुलीराशिभोजित्वं ग्रहाणामेव, पञ्जरबन्धः कीराणामेव, नीचानुगामित्वं नीराणामेव, मित्रभेदस्तु तत्वज्ञानत्यक्तकलेवराणामेव, द्विजराज पराङ्मुखत्वं पङ्कजानामेव, पङ्कयोगस्तु वर्षासु वसुधाया एव, पङ्कजन्यत्वं तु पङ्केरुहाणामेव; सर्वभोजित्वं तु हुतभुज एव, वर्णविपर्ययस्तु परिणतौ फलानामेव, अग्निपरीक्षा सुवर्णानामेव, तुलारोहश्च दानसमय एव बदान्यानाम् ।२२॥

अनुवाद—इन्द्र जैसे स्वर्गका शासन करता है उसी प्रकार जिस तेजस्वी के पृथ्वीका शासन करनेपर द्विजिह्वता दोष, दो जिह्वा होना पक्षमें चुगली करना, सर्पमें ही दो जिह्वा होना दोष था। किसी मनुष्यमें चुगली करना दोष नहीं था। कमला लक्ष्मी अथवा कमल पुष्पमें ही वैधुर्य वियोग कमल सूर्यका, कलङ्कवत्ता दिनमें खिलना रात्रिमें बन्द होना क्रमकी हीनता दिन-रातमें खिलना बन्द होना इसी प्रकार लक्ष्मीमें ही ये दोष था, मनुष्योंमें नहीं था, गुण समूहकी स्थिति धीर पुरुषोंमें ही थी, निरन्तर मद बहतेसे अन्धा रहना केवल मद बहानेवाले हाथियोंमें ही था, मद अभिमान पुरुषोंमें नहीं था, चञ्चलता केवल अश्वोंमें थी पुरुषोंमें नहीं थी। कर्कन्धू (बदरी) में ही कण्टक थे, पुरुषोंमें कण्टक दोष नहीं था। मीन मेष, कुलीर नाम राशियोंके थे, मीन (मछली), मेष (मेढ़ा), कुलीर (कर्कट) खानेवाले मांसाशी लोग नहीं थे। पंजरका बन्धन केवल तोतोंका था, मनुष्योंका नहीं था। नीचका अनुगमन करना केवल जलमें था, जल नीचेकी ओर जाता था मनुष्य नहीं। मित्रका भेद तत्वके ज्ञानसे शरीर छोड़नेवाले ज्ञानियोंमें ही था, वे ही मित्र अर्थात् सूर्यका भेदन करके मोक्ष प्राप्त करते थे, मनुष्य किसी मित्रकी मैत्रीका नाश नहीं करते थें। द्विजराज चन्द्रमासे पराङ्मुख होना प्रतिकूल होना कमलोंमें था मनुष्य द्विजराज ब्राह्मणोंसे विरुद्ध नहीं थे। वर्षामें पृथ्वी कीचड़युक्त होती थी, कमल ही कीचड़से उत्पन्न होते थे। सब कुछ खा जाना अग्निमें ही था, मनुष्योंमें नहीं था। वर्णका बदलना पकनेपर फलोंमें था, मनुष्योंमें नहीं था, अग्निमें परीक्षा सोनेकी ही थी, तुलापर चढ़ना दानके समय दानियोंमें था ॥२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यश्च समुद्र इव सकलवाहिनीनामाश्रयः, कमलाभूमकराभिरामश्च, आकाश इव परमवैभवोकवीनपरभागो नक्षत्राणां महोदयप्रणयी च वीतिहोत्र इव कृष्णवर्त्मा मखप्रकाशी च, प्रभात समय इव समुदितमित्रमण्डलः सन्ध्यानुरागी च, मध्याह्न समय इवाभिजित्तया जगत्प्रार्थितः, दिवसावसानसमय इव दृष्टमित्रास्तिमदशो दृष्टद्विजराजोदयश्च, त्रियामासमय इव कुमुदवनप्रसादरुचिराशः, और्वानल इव रत्नाकरोपभोगी, भोगीश्वर इव पातालमधिवसन्नेव निखिलमहीमण्डलोद्धर्त्ता, भर्त्ता भार्याया इव निखिलभुवः करग्राही, ग्राहीव कुम्भीरो[1], गम्भीरीभूतभूयिष्ठभुवन प्रतिष्ठोद्भूतसुखभूतिर्भूतितिरोभूतधनाधीशो, जम्भारातिपुरोहित इव निखिलजनानामपि दुरासदोऽतिदुर्दान्तानाम्, दान्तानां पुनरभिलषितफलैकभूः कल्पभूरुह इव, भूरुह इव पल्लवच्छा-

---

अनुवाद—समुद्र जैसे सब नदियोंका आश्रय है वैसे वह सब सेनाका आश्रय था। लक्ष्मी पृथ्वी तथा मकरका भी आश्रय था। आकाशकी तरह परम वैभवी कवि इन श्रेष्ठ परभाग उन्नत तथा नक्षत्रोंका उदय करनेवाला प्रणयी है, अग्निकी तरह कृष्णमार्गवाला यज्ञ करानेवाला है, प्रभात समयकी तरह मित्र सूर्य तथा सुहृदयको उदित करानेवाला प्रातः सध्यासे अनुरक्त था, मध्याह्न कालकी तरह अभिजितके कारण सबसे प्राथित सायंकालकी तरह सूर्यकी अस्त दशा देखनेवाला चन्द्रमाका तथा द्विजोंका उदय देखनेवाला रात्रि कालकी तरह कुमुद समूहके विकाससे शोभित दिशावाला, बडवानलकी तरह रत्नाकर समुन्द्र तथा रत्न समूहको भोगनेवाला, भोगीश्वर भोगी तथा शेषनागकी तरह पातालमें रहकर पृथ्वीको धारण करनेवाला तथा उद्धार करनेवाला, स्त्रीकी तरह पृथ्वीका पालन करनेवाला तथा पाणिग्राहक व टैक्स भी लेनेवाला, कुम्भीरी नक्रकी तरह गम्भीरताकी प्रतिष्ठासे सुख प्राप्त करनेवाला तथा अपने वैभवसे कुवेरको भी तिरस्कृत करनेवाला, वृहस्पतिकी तरह अ त दुर्दमनीय सम्पूर्ण जनोंसे दुष्प्राप्य तथा अनेक बार जिसके फलकी इच्छाकी जाय ऐसे कल्पवृक्ष या वृक्षकी तरह अपने पत्तोंकी छायासे आश्रित जनोंके तापको दूर करनेवाला शत्रुकी सेना निर्वल दुःखी होनेसे अनन्य साधारण युद्धमें वीर तथा अच्छे हाथीवाला, हाथियोंके सुन्दर उपचारसे शोभित होनेके कारण मेघ समयकी तुलना करनेवाला, भयके कारण

---

(1) कुम्भिनं हस्तिनमीरयतीति कुम्भीरो नक्रोगजप्रेरकश्च।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याच्छिन्न समाश्रितजननिखिलतनुतापः, तनुतापन्नविपन्नरिपुसैन्यतया-नन्य साधारणो रणोपरचितवरवीरवारणो वारणोपचार चारिमचमत्कार घनतया तुलित घनसमयो, मयोपचितविग्रहो पहृतिरसौघ परिपूरितमानसो मानसोपमानमापन्नो राजहंसवंशावतंसतया जयति ॥२३

सुवर्णतुलादानवर्णनम्

सम्भूय +++विहाय रमणीमेको जगाहे वनि-
मित्यालोऽकि नलो न लोकमहितोऽप्येतस्य साम्यास्पदम् ।
आत्मस्त्रीसुतविक्रयादि विकृतिप्रारब्धसिद्धि क्षमा-
दानं विप्रभियाऽचरत्किमु++हरिस्तुलामञ्चति ॥२४॥

कानीनश्चेन्न कर्णः क्वचिदपि स भवेत्पाण्डवाश्चेन्न कुण्डाः-
कुण्डाशीभूतभीमा विपदि च दधतो रूपभेदं भवेयुः ।
भार्यावैधुर्यपर्याकुलतरमतयोऽप्युद्धृता भृत्यभावा-
न्नार्य्या कार्य्यास्तदार्यैः कथमपि तुलिता वीरसिंहैर्नृसिंहैः ॥२५॥

उपचयको प्राप्त विग्रहके विनाशसे आनन्द मग्न मानस होनेके कारण मानसकी उपमा प्राप्त किये हुए राजहंसके वंशका अलङ्कार होनेके कारण सर्वोत्कृष्ट विजयको प्राप्त होरहा है ॥२३॥

सुवर्ण तुला दान वर्णन

अनुवाद—अपनी एक स्त्रीको छोड़कर जो वनमें चलागया वह लोकमें प्रतिष्ठित नल भी इनकी बराबरी नहीं कर सकता। ब्राह्मणके भयसे जिस हरिश्चन्द्रने अपना व स्त्री-पुत्रका विक्रय करके पृथ्वीके दानकी दक्षिणा पूर्णकी वह हरिश्चन्द्र भी इनकी बराबरी नहीं कर सकते ॥२४॥

अनुवाद—कन्या पुत्र होनेके कारण कर्ण कभी समता नहीं कर सकता, कुण्ड होनेके कारण पाण्डव भी समता नहीं करते, कुण्ड होते हुए भीमादि पृथक्-पृथक् राजा विराटके यहाँ कार्य करनेके कारण भार्यासे पृथक् राजा विराटके यहाँ कार्य करनेके कारण भार्यासे पृथक् रहे। इसलिये रूप भेद धारण करके भार्यासे पृथक होनेसे आकुल बुद्धिवाले पाण्डव भी नृसिंह तुल्य वीरसिंहकी समता नहीं कर सकते ॥२५॥

विशेष—कुण्ड-गोलजकी व्यवस्था मनुस्मृतिमें है। अन्यकी स्त्रीमें अन्यके द्वारा गर्भ स्थापन होकर उत्पन्न होनेवाला कुण्ड सन्तान कहलाता है ॥२५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भीमो येन हतः स तेन तुलितः केनास्तु चेदित्यमी-
ते ते भीमहताः सुदूररहिता दुर्योधनाद्या पुनः ।
गाण्डीवी न समोऽस्य येन विपदि क्लीवत्वमङ्गीकृतं
सङ्गीतं भुवि वीरसिंहनृपतेर्नस्तुल्यमङ्गीकृतः ॥२६॥

कीर्तिकोशललिताजुर्नसंघो वीरसिंहवसुधापतिसिंह ।
अस्तु तत्तमुपमातुमुपात्तः केन सोऽर्जुनहतो भगदत्तः ॥२७॥

सर्वस्वं वनिताघहारिरिपुणा यस्य क्षणात्खेलया-
भूभर्त्तुः पुनरस्य को नु रुहिमा++++कि यशः ।
माहात्म्यैकपदं नदृष्टविपदं त्यागस्फुरत्सम्पदं
सत्कीर्त्यास्पदवीरसिंहनृपतिं तेनोपमास्यान्ति के ॥२८॥

कृष्णजन्मस्थानेप्रासादवर्णनम्

दानाम्भोनिचयाभिषेचनचयानिर्भूतशीता[1] यशो-
वासोभिः परितोऽवगुण्ठितवपुर्भूत्वैव लोकत्रयी ।

अनुवाद—भीमको जिसने मारा उसी किसीके साथ तुलना हो जाय तो भीमको किसीने नहीं मारा, वे स्वयं पर्वतपर चले गये भीमके द्वारा मारे गये दुर्योधनादि तो बहुत दूर हैं, अर्जुनने विपत्तिमें क्लीवता स्वीकारकी थी, इसलिए वह कभी समान नहीं हो सकता, पृथ्वीपर राजा वीरसिंहकी तुल्यता कोई नहीं कर सकता ॥२६॥

अनुवाद—अर्जुनकी कीर्ति बहुत थी, वह कीर्ति कोषसे शोभित था। परन्तु वीरसिंह राजाओंमें सिंहके समान हैं। अब अर्जुनके द्वारा मारा हुआ भगदत्त उनकी उपमा कैसे बन सकता है ॥२७॥

अनुवाद—स्त्रीका हरण करनेवाले पापीने जिसका क्षण भरमें खेलमें ही जिस राजाका सब कुछ नष्टकर दिया।

नोट—उपर्युक्त श्लोकके प्रथम द्वितोय चरणोंका अर्थ इसलिए स्पष्ट नहीं है कि इसमें चार अक्षर लुप्त हैं अतः क्रिया प्रतीत नहीं होती। – प्रतिष्ठाके उच्च पदको प्राप्त तथा विपत्तिको कभी न देखनेवाले त्यागसे सम्पत्तिको प्रसिद्ध करनेवाले सत्कीर्तिके स्थान इस राजाकी उपमा किससे दी जाती है ॥२८॥

कृष्णजन्म स्थानपर प्रासाद वर्णन

अनुवाद—दानके जलसे अभिषेकके द्वारा उत्पन्न शीता नामकी आकाश-

---

(1) "शीता नभः सरित्" इति तालव्यादौ धरणिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्यर्थिक्षितिपालजालगहनग्रासोग्रजाग्रद्गुरू-
दग्रोत्तापबलत्प्रतापदहनं यस्यानिशं सेवते ।।२९।।

गोत्वालम्बेन गावो दधति शुभचयं चण्डगोः कृष्णवर्त्मा-
तत्त्वादेवासपन्नो विलयमुपचितो ज्वालया जाज्वलीति ।
विश्वासह्योग्रतापी ज्वलति सति भृशं वीरसिंहप्रतापे
किन्नाप्स्यद्धैमगण्डं द्रवपदमचिरान्नाहितं चेन्मयाप्सु ।।३०।।

सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयोरपि दृशोराशङ्क्य शङ्काभरं-
शङ्के शंकर एव वीक्षितमनास्तस्य प्रतापोच्चयम् ।
भालोद्भासि चकार चक्षुरपरं तं सोढुमर्द्धे दधौ
प्रालेयाचलनन्दिनीसुरधुनीं शीतद्युतिं मूर्धनि ।।३१।।

क्षीरोदक्षुद्रघण्टीकटिघटितपटीप्रान्तदेशस्तु शेषः-
शुभ्राबभ्रांककेतू हिमरजतगिरी कुण्डले स्रग्द्युगङ्गा ।

नदी रूपी वस्त्रके द्वारा शरीरको ढककर लोकत्रयी शत्रु राजाओंके नाश करनेसे उत्पन्न उग्र तापोत्पादक जिस राजाकी प्रतापाग्निका रात-दिन सेवन करते हैं ।।२९।।

अनुवाद—गोत्व धर्मके आश्रय द्वारा गौयें शुभ यश प्राप्त करतीं हैं, अग्नि भी उग्र ताप द्वारा अपना यश प्राप्तकर लेता है । विश्वसे असह्य उग्र ताप-वाला अग्नि भी यशस्वी होजाता है वीरसिंह राजाके उग्रतापके संसारमें फैलनेपर सुवर्णका गोला भी क्या शीघ्र नहीं पिघल जाता यदि हम उसे शीघ्र पानीमें नहीं डाल देते ।।३०।

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमा इन दोनोंको शङ्करजी शङ्कायुक्त समझकर अर्थात् इन दोनोंसे प्रतापको अधिक समझकर उस प्रतापको देखनेको मस्तकपर चमकता हुआ शङ्करजीने तृतीय नेत्र धारण किया और तृतीय नेत्रकी ऊष्माको सहन करनेके लिए आधे भागपर हिमालय कन्या गङ्गा व चन्द्रमाको धारण किया ।।३१ ।

अनुवाद—क्षीर सागरके शब्द रूपी घण्टी उनसे मुक्त कटि तट, उसका जो वस्त्रका स्थान है वही शेषनाग है, शुभ्र आकाशका चिह्न वही ध्वजा है हिम रजत पर्वत यह कुण्डल है, आकाश गङ्गा माला है तारा पंक्ति कण्ठमाला है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तारालो कण्ठमाला विधुरपि तरलो यद्यशः[1] शम्बकेन
क्षिप्त्वैतावन्ति नृत्यस्थलविरहरुषोद्भिद्यते हैममण्डलम् ॥३२॥

भिन्दन कुम्भीन्द्रमैन्द्रं दिशि विदिशि समुत्क्षिप्तमुक्ताकलाप-
श्चञ्चद्वाचालवीचीकरकरटिधियाघ्रातपाथोधिपाथाः ।
रंहोभिर्लङ्घमानः करिण इति गिरीन्नामिताहन्द्रिपुच्छं-
ब्रह्माण्डोपर्युदञ्चन्परिमृशति यशः केशरीदं करीति ॥३३॥

चाञ्चल्यानां प्रपञ्चं मनसि विगणयन्प्राचमञ्चन्विवेकं-
यस्मै कस्मै प्रयच्छन्विदधदिव रुषा तस्य दोषस्य दण्डम् ।
संघानां वीरसिंहस्मृतिशरणवतोऽप्यद्य निद्रादरिद्रां-
लक्ष्मीं प्रक्षीणलौल्यामकृत वसतिषु त्यागदण्डा हि नार्य्यः ॥३४॥

स्वान्तस्थध्वस्तकंसो नरपतितिलकः श्रीबुदेलावतन्सः-
संसारोद्यत्प्रशंसो निरवधि रचयन्दान++करं सः ।

चञ्चल चन्द्रमाकी मालाके समान है, यशरूपी वज्रने इन सबको तिरस्कृत करके अर्थात् यश इन सबसे ऊँचा है यह समझकर इन सबको फैंककर नृत्य स्थलके विरहसे क्रोध करके सुवर्णके अण्ड ब्रह्माण्डको फोड़कर राजाका यश दूसरे अण्डमें चला गया ॥३२॥

अनुवाद—ऐरावत हाथीका भेदन करता हुआ और दिशा-दिशाओंमें उसकी गजमुक्ता बखेरता हुआ चञ्चल तरङ्गोंको हाथी की सूँड़ समझकर समुद्र जलको आलोकित करता हुआ, हाथी समझकर वेगसे पर्वतोंको लाँघता हुआ, शेषनागकी पूँछको झुकाकर ब्रह्माण्डके ऊपर उछलता हुआ राजाका यशरूपी सिंह इसको हाथी समझकर गरज रहा है ॥३३॥

अनुवाद—चञ्चलताका दोष मनमें निश्चित करके अच्छी तरह विचार करके इस दोषका दण्ड क्रोधमें आकर जिस किसीको देनेपर वीरसिंहका स्मरण करके उनकी शरणमें आनेवाले समूहकी लक्ष्मीको निद्रामें दरिद्र तथा चंचलतासे शून्यकर दिया स्थानके विषयमें स्त्रियोंको यही त्यागका दण्ड पर्याप्त होता है ॥३४॥

अनुवाद—हृदयमें स्थित कंस अर्थात् विकारको नष्ट करके, बुन्देल वंशका भूषण राज शिरोमणि संसार भरमें प्रशंसित निरवधि दान करके अपने

---

(1) शम्ब एव शम्बको वज्रः ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोघीचक्रे मयाविष्कृतमपि विदुषां दैन्यलेखप्रपञ्चं
तद्वीचो यत्तमेषां स्फुटमलिकतटे प्रोञ्चछति प्रोच्छलन्ती ।।३५।।

प्राणेभ्योऽपि वरं वसु स्फुटमिति प्रख्यापितं कौरवैः-
प्राणा एव यदुज्झिता न तु कुरुक्षेत्रे वसूनां लवः
इत्थं दत्तमनेन तत्र वसु तद्विश्वं समातन्वता-
प्यायासैर्यदियत्तया न हि परिच्छेत्तुं मया शक्यते ।।३६।।

उग्रोदग्रवहत्प्रतापहुतभुग्ज्वालोज्ज्वलत्प्रोज्ज्वल -
द्गाङ्गेयप्रतिपत्तिरुत्तमधराधीशैर्वतंसीकृतः ।
तेजः पुञ्जमयः प्रदानसदयः श्रीवीरसिंहाह्वयः-
पुण्यात्मा तपनीयकूटतुलनामेवार्हति क्षमापतिः ।।३७।।

नीचस्थेन तुलाङ्कतेन रविणा तं तूपमातुं त्रपे
राज्ञोच्चेन गवि स्थितेन तुलित+नाम कुर्वीत कः ।
मीनग्राहिणि का तुला भृगुसुते का वा सुराणां गुरौ
तुङ्गत्वेऽपि कुलीरभोजिनि ततः को वीरसिंहोपमः ।।३८।।

हाथको पवित्र करके मेरे द्वारा लिखे हुए विद्वानोंके मस्तकमें लेखोंको इसने दान के द्वारा निरर्थककर दिया। दानके जलकी उछलती हुई तरङ्गने मस्तकपर लिखी रेखाको पोंछ दिया है ।।३५।।

अनुवाद—कौरवोंने यह प्रसिद्ध किया है कि धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, उन्होंने कुरुक्षेत्रकी भूमिमें प्राण छोड़ दिये, परन्तु धनका एक अंश भी नहीं दिया। सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करते हुए इसने इतना धन दान किया है कि उद्योगके द्वारा भी उसका मैं परिमाण अर्थात् दान किए हुये धनकी सीमा नहीं बता सकता हूँ ।।३६।।

अनुवाद तुला राशिमें स्थित नीच सूर्यसे मैं इसकी उपमा देनेमें लज्जित होता हूँ, वृष राशिमें स्थित उच्च चन्द्रमासे इसकी भला कौन उपमा करेगा, मीनके शुक्रसे भी इसकी क्या तुलना करेगा, कर्कके उच्च वृहस्पति भी इसकी उपमाके योग्य नहीं, क्योंकि वीरसिंह "सिंह" के समान है ।।३७।।

अनुवाद—उग्र वेगसे उठती हुई प्रतापरूपी अग्निकी ज्वालासे ज्वलित स्वच्छ भीष्म पितामहकी समतासे इन्हें उत्तम राजाओंने भूषित किया है तेजः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दधीचेः प्राचीनात्कपटबटुना द्यूतपटुना
प्रतार्यास्थि प्राप्तं वितरणयशो नेति च महत् ।
विमूढो मायाभिर्व्यतरदवनीं चेद्बलिरसौ
बुदेलाचन्द्रं कस्तुलयतु सहानेन सुकृती ॥३९॥

स प्राचीनो दधीचिः शिबिरपि सुसमीचीनतौ तद्विपक्षा-
वस्यास्तां वीरसिंहक्षितिपतितुलितौ स्तौमि तौ द्वौ तथापि ।
अस्थित्वक्प्राणदानाद् द्विजकुलवदनेऽवाप नो दानकीर्ति
प्रत्यर्थो वीरसिंहक्षितिपकुलमणेः प्रापतुस्तौ तथैव ॥४०॥

तुलयिष्यति यत्कदाचिदेनं स न भूतो न च वा भविष्यतीति ।
वसुधापतिसिंहवीरसिंहः स्वयमेव स्वतुलां व्यधत भूयः ॥४१॥

वीतांहोनृपवीरसिंहसुयशः शुभ्रारविन्दाङ्कुरो-
भित्त्वा पंकमशंकमेव जगतां दानाम्बुसम्भावितः ।

पुञ्जके समान दान करनेमें दयालु श्रीवीरसिंह नामवाले पुण्यात्मा वह राजा स्वर्ण समूहकी तुलनाको प्राप्त करते हैं ॥३८॥

अनुवाद—द्यूतमें चतुर तथा कपटसे ब्रह्मचारीने धोखा देकर प्राचीन दधीचि ऋषिसे जो अस्थि प्राप्तकी वह इतना बड़ा दानका यश इनके यशको प्राप्त नहीं कर सकता । मायासे मूढ़ होकर बलिने जो इनको पृथ्वी दान की इन बलिके साथ भी कौन-सा सुकृती इन बुंदेला चन्द्रकी तुलना करेगा ॥३९॥

अनुवाद—वह प्राचीन दधीचि तथा शिबि भी यदि उसके समान हैं तो ठीक है, शिबि दधीचि उस राजाकी तुलना करते हैं तो मैं उनकी भी स्तुति करता हूं, परन्तु अस्थि त्वचा तथा प्राण दानसे दाता ब्राह्मणोंके मुखमें दानका यश प्राप्त नहीं कर सकते, उन दोनोंने भी राजा शिरोमणि वीरसिंहसे उसी प्रकार यश प्राप्त किया है ॥४०॥

अनुवाद—कदाचित कभी कोई किसीसे इसकी तुलना करले, ऐसा न कोई हुआ और न कभी होगा, पृथ्वीका अधिपति सिंहके समान वीरसिंह फिर स्वयं ही अपनी तुलना रखता है । इस श्लोकमें अनन्वयालङ्कार है ॥४१॥

अनुवाद—निष्कलङ्क राजा वीरसिंहका यशरूपी स्वच्छ कमलका अंकुर दानके जलसे पल्लवित होकर निश्शङ्क ही जगत्के पङ्कका भेदन करके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुर्वन्ब्रह्मकटाहभेदनमथो तन्मूर्धपाथोन्तरे–
सब्राह्मण्डमखण्डपाण्डिमसरोजन्मेव शर्माददे ॥४२॥
अस्यालोहितबिन्दुसुन्दरतया खद्योतविद्योतिता–
मुद्दामद्विपवाहिनीं न कवयः क्वाहुः कुहूयामिनीम् ।
राजानं प्रतिपक्षमक्षयतमः श्यामाखिलापत्क्षयं–
सानैषीद्द्विरदीप्रदीपितनभः प्रोद्दण्डदण्डद्वयी ॥४३॥
आत्मानं हेमकूटैस्तुलयति कुतुकात्कोटिध वीरसिंहे–
रङ्गी सन्हेमभृङ्गी समजनि तरलः स्वेन भूयात्तुलेति ।
भूभृत्वात्तुल्यभारोऽप्ययमवनिभुजा प्रोज्झितो गोत्रभेत्तुः
सङ्गीत्यङ्गीकृतासत्तरमतिकतया व्रीडितोऽभूत्ततोऽसौ ॥४४॥
अहमुच्चैरहमुच्चैरिदमहमिकयैव वीरसिंहेषु ।
ववृधाते विजिगीषू सममले भारतीकमले ॥४५॥

फिर ब्रह्माण्ड रूपी कटाहका भेदन करता हुआ उसके ऊपर जलके मध्यमें ब्रह्माण्ड के सहित अखण्ड स्वच्छ कमलकी तरह शर्म कल्याण अर्थात् कृत् कृत्यताको प्राप्त हुआ ॥४२॥

अनुवाद– इस राजाकी उत्कट लाल-लाल बिन्दुओंसे शोभित गज सेनाको खद्योतोंसे चमकती हुई अमावस्याकी रात्रिकी तरह मानकर कवियोंने कहाँ वर्णित नहीं किया, अक्षय अन्धकार रूपी श्याम आपत्तियोंका क्षय करनेको द्विरदी अथवा दो दातोंसे प्रकाशित आकाशमें उद्दण्ड दोनों भुजाओंसे प्रतिपक्षी राजाको इसने प्रेरित किया ॥४३॥

अनुवाद—कौतुकसे वीरसिंह अनेक बार हेमकूटसे तुलना करनेपर हेम के श्रृंगवाला यह चञ्चल होगया, इसकी तुलना इसीके समान है, यह विचार किया गया। पृथ्वीको धारण करनेके कारण तुल्य भारवाला यह राजाओंने इन्द्र का सङ्गी इसीके समान माना तब उनकी असत् बुद्धि होनेके कारण तब वह बहुत लज्जित होगया ॥४४॥

अनुवाद– यह विद्वान् है या लक्ष्मीवान् है, यह ध्यान करके भारती सरस्वती कमला लक्ष्मी इसके विषयमें मैं बड़ी मैं बड़ी इस स्पर्धासे जीतनेकी इच्छासे दोनों बढ़ने लगीं ॥४५॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सप्ताधोभुवनानि सप्त च समुल्लङ्घ्योर्द्ध्वमुल्लङ्घते–
ब्रह्माण्डं बहु वीरसिंह नृपतेः कीर्तिप्रतापद्वयी ।
पर्यायेण पयोधिमज्जनतपः कृत्वैव कर्तुं मुहु–
स्तत्कर्मैव विभावरीशमिहिरौ प्रातस्तमाप्तौ दिवः ॥४६॥

और्वो वारिधिवारिवारिजकुलाधीशोऽपि साधीभव–
न्व्योम्नि भ्राम्यति शून्य एव हुतभुग्भेजेऽरणेरन्तरम् ।
उग्रे जाग्रति वीरसिंह नृपति प्रोद्यत्प्रतापे भुज–
स्तम्भो जम्भरिपोरसेवि विगलद्दम्भेन दम्भोलिना ॥४७॥

दिक्पालानेककालं कविकुलगुरवः स्तोतु कामं निकामं–
ध्यायन्तोऽनन्तयासं स्मृतिपटुकरणा वीरसिंह स्तुवन्ति ।
भूभृद्भिः कृष्णवर्त्मा स दिनजनियमः कौ न पीनः प्रचेता
वातख्यातिर्यदार्द्धैर्निरवधि धनदो गीयतेऽसौ गिरीशः ॥४८॥

निद्रा नारद शारदीयशशिनि स्तम्भोऽपि दुग्धाम्बुधौ–
प्रस्वेदप्रचयं च मुञ्चति हिमव्याजेन हैमो गिरिः ।

अनुवाद—राजा वीरसिंहकी कीर्ति और प्रताप यह दोनों ही नीचेके सात भुवनों तथा ऊपरके सात भुवनोंका लङ्घन करके फिर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको पारकर गये । सूर्य और चन्द्रमा बारी-बारीसे समुद्र मज्जन रूपी फिर वही तप करनेको सवेरे पुनः आकाशमें क्रमशः प्राप्त होजाते हैं ॥४६॥

अनुवाद—समुद्रके जल कमलोंका स्वामी बडवानल भी अधिक चिन्तासहित होता हुआ शून्य आकाशमें घूमता है, फिर वह अग्नि स्वरूप होकर अरणि में घुस गया । राजा वीरसिंहका उदित हुआ उग्र प्रताप विस्तृत होनेपर वही बडवानल पाखण्ड छोड़कर वज्र बन गया और इन्द्रकी भुजारूपी स्तम्भका सेवन करने लगा ॥४७॥

अनुवाद—कवि कुल गुरु विद्वानोंने एक समयमें स्तुतिकी इच्छावालेको तथा अत्यन्त आयासके साथ दिक्पालोंको भी ध्यान करते हुए फिर वीरसिंहकी ही स्तुतिकी है । राजाओंने दिनमें भी अति प्रकाशित अग्नि तथा पृथ्वीपर प्रसिद्ध वरुण वायु कुबेर गिरीश आदि किसीका तुलयता देकर निरन्तर गान नहीं किया ॥४८॥

अनुवाद—हे नारद ! शरद ऋतुके चन्द्रमाको निद्रा आगई, क्षीरसागरमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नापूर्वं जडिमाचलस्य यदुमाबन्धोरपि स्थाणुता–
बुन्देलाकुलचन्द्रसुन्दरयशोवृन्दे दिशो विन्दति ॥४९॥

कवीनां पन्थानः कति कति नवीनाः प्रचलिता–
न बुन्देलाचन्द्रे दिवमिव महेन्द्रेऽवति भुवम् ।
पुरैतेः पूर्वेषां गुणशरणिसीमानुसरणा–
दसीमाधिग्रस्ता गतगमनदुःस्थाः समभवन् ॥५०॥

इदमवधेहि देहि देवर्षे हर्षेण कर्णौ बहुमतकर्णौ यद्वर्णयन्ति वर्णनामधिपतयो नादृतसुवर्णाद्रयोऽनवधृतसवर्णा सूनवोऽपर्णानुभाववशीभूतवर्णतया सुपर्णासनगुणगणानुर्वर्णिनोऽपि निरवधि निरवद्यगद्यपद्य प्रद्योतमानविद्याविद्रावितगीर्वाणगुरुगर्वा विद्वांसः । किमपरमनुभूय वीरसिंह भूपतिसिंहं नलनहुषययाति–भरतभगीरथ मान्धातृमुचुकुन्द-हरिश्चन्द्रदुःष्यन्तप्रभृत्यनन्तानन्ताधिनाथसंघेषु कमपि नाद्रियन्ते वन्दा-

---

भी स्तम्भ होगया, हिमके बहाने हिमालय पर्वत पसीना छोड़ रहा है, पर्वतकी जड़ता कोई अपूर्व नहीं है, पहलेसे ही वहाँ उमा बन्धु शङ्करजीको भी स्थाणुता प्राप्त होगई है, वहाँ रहकर शङ्करजी स्थाणु कहे जाते हैं, बुन्देल कुलमें उत्पन्न राजाका यश फैलनेपर कोई इनके समान नहीं है ॥४९॥

अनुवाद—बुन्देल चन्द्र वीरसिंहके इन्द्रके स्वर्गकी तरह पृथ्वीका पालन करते हुए कवियोंके नये-नये कितने ही मार्ग प्रचलित हुए । यह सब मार्ग पूर्वकी तरह पूर्व राजाओंके गुण वर्णनकी सीमाका अनुकरण करनेसे असीम आधिसे ग्रस्त होकर फीके पड़ गये और आगे वर्णन करनेमें असमर्थ होगये ॥५०॥

अनुवाद—हे देवर्षि ! यह जानलो, बहुतसे मत सुने हुए अपने कानोंको इधर लगाओ जिसको सुवर्ण पर्वतका भी अनादर करनेवाले उस राजाके समान किसी भी राजपुत्रको नहीं प्राप्त करनेवाले, अपर्णा देवीके प्रभावसे वर्णनाशक्तिको .... में करनेवाले विष्णु भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेवाले निरन्तर शुद्ध गद्य पद्यसे जिन्होंने प्रकाशित विद्याके द्वारा देवताओं के गुरु बृहस्पतिको भी जिन्होंने तिरस्कृत किया है ऐसे विद्वान् जिनका वर्णन करते हैं । अधिक क्या कहें जिन सिंह सदृश वीरसिंह राजाका अनुभव करके नल नहुष ययाति भरत भगीरथ मान्धाता मुचुकुन्द हरिश्चन्द्र दुष्यन्त आदि अनन्त-अनन्त राज समूहमें वन्दना करनेवाले विद्वान्, देव समूहको आनन्द देनेवाले मन्दार वृक्षकी प्राप्तिसे जैसे अन्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रवो वृन्दारकवृन्दानन्दिमन्दारमहीरुहानुविन्दनादितर महीरुहव-
न्देष्विव मैलिन्दाः ॥५१॥

भेरीभाङ्कारभीमध्वनिचयबधिरेणार्व कुम्भीन्द्रझम्पान्-
न्यञ्चत्सम्प्राप्त कम्पावनिभरविधुरेणाहि राजेन राजन् ।
कस्मादीदृग्बभूवेत्यवकलनकृते प्रेरितादभ्रदर्वी-
स्वर्वीथी सीम्नि सोच्चैर्ध्वजपटकपटाद् वीजते वाहिनीं ते ॥५२॥

सर्वानिर्वचनीय दिव्यकृपयागुर्वीयमुर्वी यतो-
विश्वग्रासि बलप्रकाशिनी महीजाने प्रयाणे तव ।
उत्तुङ्गध्वजरिङ्गदम्बरमिषादुद्वेलदोर्वल्लरी-
दूराच्छंसति वंशभूषण दिशो यातेति युष्मद् द्विषः ॥५३॥

किं भेरीभाङ्क्रियाभिस्तुलित पटुहरिद्भूरिभित्त्यां जगत्यां-
रंहोभिर्वीरसिंह त्वदहितनृपतेः संहतिः स्याददृश्या ।
त्वद्वाहव्यूहवीहा विकटखर पुरोद्धूतधारित्र्यधूली-
वीराधीरान्धकाराः कवलित ककुभोनान्तराया यदि स्युः ॥५४॥

वृक्षोंमें भ्रमर प्रेम नहीं करता उसी प्रकार ये विद्वान् अन्य राजाका वर्णन नहीं क '। ५१।'

अनुवाद—भेरीकी भाँय-भाँयकी भयङ्कर ध्वनिसे बहरे होते हुए अश्व हाथीके झम्पसे नीची झुकी हुई तथा कांपती हुई पृथ्वीके बोझसे दुःखी शेषनागके द्वारा प्रेरणा किये हुए, ऊपर ध्वजाके वस्त्रके बहाने यह राजा ऐसा वीर कैसे हो गया यह निश्चय करनेके लिए आकाश वीथीकी सीमामें यह आकाशकी दर्वी तुम्हारी सेनाका उद्वीजनकर रही है, चंवरकी तरह ढाल रही है ॥५२॥

अनुवाद—सबकी अनिर्वचनीय दिव्य कृपासे यह पृथ्वी गुरु और धन्य है क्योंकि विश्वको ग्रसित करनेवाले बलसे युक्त हे राजन् ! तुम्हारे प्रयाणमें ऊँची ध्वजाके हिलनेके बहाने आकाशकी भुज लता दूरसे हे वंशभूषण ! तुम्हारा हाथी इस दिशाको जायगा, यह कहकर बुला रही है ॥५३॥

अनुवाद—भेरीकी भाँय-भाँय क्रियासे सब दिशाओंकी बड़ी-बड़ी दीवारें भरगईं हैं जिनमें ऐसी पृथ्वीपर हे वीरसिंह वेगसे तुम्हारे शत्रु राजाओं का सब समूह अदृश्य होजाता यदि तुम्हारे अश्व समूहके विकट उग्र खुरोंसे उठी हुई पृथ्वीकी धूलिके समूहसे भरी हुई घोर अन्धकार युक्त दिशायें विघ्न न बन जातीं ॥५४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमीनो नृपवन्द्यमन्दरवहारम्भः स भूदारतो-
धत्ते सिंहवपुर्विमोहितबलिस्त्रैलोक्यजिद्विक्रमः ।
नक्षत्रक्षयकृद्यतोऽतनुत वैदेहीश्वरो नाबलः-
शैलोर्वीयवनान्तर्मूर्च्छितरिपुर्बुद्धो न कल्की भवान् ॥५५॥

नीरन्ध्रा निरधोगतिः क्षितिरिभैर्हैक्सैन्धवैः संधृता
रंहोभिर्नृप वीरसिंह समर प्रस्थानलीलाविधौ ।
ऊर्ध्वं गन्तुमतः परं तव रिपोः पन्थानमर्कान्तिरं-
रुन्धन्ति द्रुतमेव भीरुधरणी मूर्द्धोद्धुता धूलयः ॥५६॥

प्रत्येकं लक्ष्यभेदाचरण कुशलिनः पत्रिणस्ते सपक्षाः-
नापूर्वं कुर्बतेऽमी यदिह न रुधिरं ग्रासमुग्राः समग्राः ।
++++++++++++++++++++++-
+++++++++++++++++++++ ॥५७॥

अनुवाद—राजाओंसे वन्दनीय, मन्दराचलके समान आरम्भ करनेवाले, भूमिपर श्रेष्ठ सिंह जैसे शरीरसे, बलिको विमोहित करनेवाले, तीनों लोकोंको जीतनेवाला पराक्रम धारण करते हैं । नक्षत्रों तकका क्षय करनेवाले राम सदृश महा बलशाली पर्वत और पृथ्वीके मध्य वनमें शत्रुको मूर्च्छित करनेवाले क्या आप कल्कीके समान नहीं समझे जाते ॥५५॥

अनुवाद—आपके हाथियोंकी सेनासे प्रयाण कालमें पृथ्वी रन्ध्रशून्या अधोगति रहित हो जाती है, अश्वोंसे दृष्टि घिर जाती है, नृप वीरसिंहके युद्धके प्रस्थान कालमें ऐसा हो जाता है । शरीर छोड़कर तुम्हारे शत्रुओंके सूर्यके मध्य ऊपर जानेके मार्गको भीरु पृथ्वीकी मूर्धासे उठी हुई धूलि उनका मार्ग रोक लेती है ॥५६॥

अनुवाद—तेरे पङ्ख सहित बाण प्रत्येक लक्ष्य भेद करनेमें चतुर हैं । यह सम्पूर्ण उग्र वाण अपूर्व ही रुधिरका ग्रास नहीं करते ।

नोट– इस श्लोकमें तृतीय चतुर्थ चरण अप्राप्य है, इसलिये श्लोकका आशय स्पष्ट नहीं होता ॥५७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

त्वद्वाहव्यूहवेगस्मृतिविधुरतया प्रापदुच्चैः श्रवस्ता–
मर्वाग्गीर्वाणभर्त्तुः स्फुटमनिलगणो रूपहीनो बभूव ।
आस्ये न्यस्येयमग्निं प्रविशति बडवा वारिधेरन्तरालं–
चेतोऽणूभूय भूतान्तरमभजदहो वीरसिंहातिरंहः ।।५८।।

कालेधैर्यंमितोऽपि दुर्जयगुणोपेतोऽपि वातोपरि--
व्याख्यातोऽग्रजवोऽपि काम्यति शरः साम्यं भवद्वाजिना ।
लक्ष्मं धावति तावकीनविशिखस्तुङ्गस्तरङ्गस्तव--
त्वङ्गत्तुङ्गतरङ्गतो नरपते गच्छत्यनन्तं यशः ।।५६।।

गीर्वाणेश गभीर गर्वगरिमाखर्वस्तथापि भ्रमा--
नन्वेते गतिचातुरी चयधुरीणाश्चेतसतां चेतसि ।
पञ्चाशत्पवनाः स नाम तुरगः कोऽप्येक उच्चैःश्रवाः
कत्युच्चैः श्रवसो विषोढयत्रयुक् + गन्धवाहास्तव ।।६०।।

अम्भोजां भायमानक्षितिसततचलच्छ्रोत्रवात्या विघूत्य--
प्रोड्डीनोत्क्षिप्तदेवद्विरदपतिगणो घूर्णमाने गजानाम् ।

अनुवाद--तुम्हारे अश्व समूहके वेगको स्मरण करके दुःखी होकर इन्द्रके अश्वने उच्चैःश्रवस्ता अर्थात् बधिरताको प्राप्तकर लिया, ऊँचा सुनने लगा। पवन रूप हीन होगया, बडवाने मुखमें अग्नि रखकर समुद्रके मध्यमें प्रवेशकर लिया। चित्त अणु होकर सब प्राणियोंके हृदयमें रहने लगा अहो वीरसिंहका तेज बहुत बड़ा है ।।५८।।

अनुवाद—समयपर धैर्य धारण करता हुआ दूर्जय गुणोंसे युक्त भी तथा वायुसे भी अधिक वेगवान् बाण आपके अश्वके वेगमें समानता चाहता है। तुम्हारा ऊँचा तीव्र बाण लक्ष्यपर दौड़ता है, तैरते हुएकी तरह जाता हुआ तुम्हारा बाण तुम्हारे अनन्त यशको प्राप्त करता है । ५६।।

अनुवाद – इन्द्रके महान् गर्वकी गरिमासे भी अधिक तुम्हारे अश्वोंके गमनमें वेग है। तथापि गतिकी चतुरता तथा वेगमें अग्रणो कुछ और भी विद्वानोंके चित्तमें हैं। पचास पवन और उच्चैः श्रवाः नामवाला कोई एक घोड़ा है परन्तु ऐसे तुम्हारे यहाँ उच्चैः श्रवाः जैसे घोड़े हैं और कितने वायु वेगवाले हैं ।।६०।।

अनुवाद—कमलोंके जलके समान चलती हुई पृथ्वीपर सदा चलते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूयोऽमी भूतपक्षा गिरय इति रुषोत्पातदम्भोलिरिन्द्रो--
विव्रीडे वीरसिंहध्वजपटघटितं वीक्ष्य नामाक्षरं ते ॥६१॥

गर्वान्निर्वापयन्ति द्रुतमिभनिवहा द्विट्प्रतापप्रदीपं--
हे वंशोत्तंस ते द्विड्भटधरणिरुहां मूलमुन्मूलयन्तः ।
द्विट्पौरप्रेयसीनां नयनजलमयाम्बोधिगम्भीरभङ्गा-
नुत्तुङ्गानुत्क्षिपन्तः पटुनटिततटश्रोत्रझञ्झानिलेन ॥६२॥

मुक्ताहाटकहारिहीरकघटाघोरच्छटोद्घाटित--
भ्राम्यद्भीमभटाङ्घ्रिनाटितधराप्रोद्धूत धूलीतमः ।
वीक्ष्यन्ते विबुधाः सुधानिधिरधादुद्रेकमम्भोनिधा--
वन्योऽसाविति वाहिनीसमुदये छत्रं धरित्रीपतेः ॥६३॥

सर्वांहः संघसंहारणनिपुणयशः संहतौ वीरसिंहे--
किं हेमोर्वीधरेण स्फुरतु फलमहो किन्तु कल्पद्रुमेण ।

रहते हाथीके कानोंकी हवा और घूमकर उड़कर गिरे हुए जिसमें देवता तथा गजपति समूह ऐसे आपके हाथी हैं, इन हाथियोंके घूमनेपर फिर पर्वतोंके पङ्ख उत्पन्न होगये यह समझकर इन्द्रने अपना वज्र उठा लिया परन्तु वहाँ वीरसिंहकी ध्वजाके पटपर नाम पढ़कर उन्हें वीरसिंहके हाथी समझकर यह पर्वत नहीं हाथी है, ये पङ्ख नहीं कान हैं, यह समझकर इन्द्रको बड़ी लज्जा हुई ॥६१॥

अनुवाद—आपके गज समूह शत्रुओंके प्रतापरूपी दीपकको शीघ्रही गर्वसे बुझा देते हैं। हे वंशभूषण ! तुम्हारे शत्रुरूपी वृक्षोंकी जड़को उखाड़ देते हैं तथा सुन्दर नटित ढङ्गसे हिलाये हुए कानोंकी झंझावतसे शत्रुओंकी स्त्रियोंके अश्रुजलके समुद्रमें गम्भीर ऊँची तरङ्गोंको उठा देते हैं ॥६२॥

अनुवाद—मुक्ता सुवर्णसे शोभित हीरक समूहकी घोर छटासे प्रकटित तथा घूमते हुए भयङ्कर योद्धाओंके चरणोंमें मन्थित पृथ्वीसे उठी हुई धूलिसे धूसरित देवता दीख रहे हैं, चन्द्रमाने समुद्रमें उद्रेक (उफान) उत्पन्नकर दिया है, वह उद्रेक ऐसा प्रतीत होता है जैसे राजाकी सेना समूहमें राजाका छत्र हो ॥६३॥

अनुवाद—सम्पूर्ण पाप समूह नाश करनेमें निपुण यशवाले वीरसिंहके होते हुए सुवर्ण पर्वत मेरुका तथा कल्पद्रुमका क्या फल रहा, अलङ्कारोंकी झंकार-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाचं च प्रेयसीं च व्यधुरधिकमलङ्कारझङ्कारभाजं
राजन्तो नारदार्थद्वयमपि सुलभीकुर्वतेऽमी कवीन्द्राः ॥६४॥
उत्तुङ्गैः सौधसंघैः स्फटिकसुविशदैर्द्योतते द्यौरिवोद्य-
त्तारेन्दुर्भूपतीन्द्रोरभिमतफलभूरौडछा राजधानी ।
पद्मायाः सद्म पद्मान्तिकगतविशदद्वेत्रवत्याः प्रवाहं
तत्प्रान्तप्राप्तनाहं कलयति तपसां यः परीणाहवाही ॥६५॥
प्राहूताः पौरहूताः निखिलदिविषदो हूयते यायजूकैः-
काली चण्डांशुमाली मुरभिदपि हली नाकपाली कपाली ।
तां के जानन्ति नाङ्के विहितवसतयो देवतानां समूहा-
यच्छोभा दृष्टिलोभात्समुदयति रमा चालयं विस्मरन्ति ॥६६॥
ध्यानावेशान्निमेषाचरणविरहिणो निर्ज्जरा योगवत्त्वा--
त्तेजस्वन्तोऽनघत्त्वादमृतरसजुषो लब्धलेखप्रतिष्ठाः ।
यच्छन्तो भक्तिभाजामभिमतमखिलं दृष्टभूदेवसेवा--
देवास्ते भूमिदेवाः क्षितिपकुलमणेरोडछायां बभूवुः ॥६७॥

वाली सुन्दर प्रिय ध्वनि होती थी, हे नारद ! यह कविजन उसके राज्यमें मेरु और कल्पद्रुम दोनोंके फलको सुलभ समझते थे ॥६४॥

अनुवाद—ऊँचे-ऊँचे स्फटिक मणिके सुविशद सौध समूहसे चन्द्र और नक्षत्रोंके उदयसे शोभित आकाशकी तरह अभिमत फलको देनेवाली राजाकी ओरछा राजधानी शोभित थी, लक्ष्मीके स्थान कमलकी समीपतासे विशद सुन्दर नेत्रपतीके सुन्दर बने हुए घाटोंसे प्रवाहको धारणकर रही थी जो तपस्याके फल को प्रकटकर रहा था ॥६५॥

अनुवाद—याज्ञिकोंने इन्द्रके यहाँ के सब देवताओंको बुलाया तथा काली, सूर्य, कृष्ण, बलराम, इन्द्र शङ्करादि भी बुलाये, पासमें रहनेवाले देवताओं में उसको कौन नहीं जानते थे, जो शोभा दृष्टिके लोभसे वहाँ होरही थी और जिससे घरको भूल जाते हैं ॥६६॥

अनुवाद—ध्यानके आवेश से वे देवता पलक मारना ही तभीसे भूल गये, योगी तेजस्वी अनघ अमृत रस सेवी तथा तभीसे लेखा नाम प्राप्त किया । ब्राह्मणोंकी सेवा देखकर भक्तोंको अभिमत फल दिया क्षितिप कुलमणि वीरसिंह की ओरछा नगरीमें वे देवता भूमि देवता कहलाये ॥६७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्यन्तो नृपतिं निमेषरहितास्तद्वाक्सुधाप्यायिताः-
कुर्वन्तोऽविरतं च काञ्चनगिरि श्रेयोगरीयोऽरुचिम् ।
साधीयोगुरुगौरवाः सुमनसः सन्तानकोल्लासिताः-
सेवन्ते परमोडछापुर ममी के वा न देवा इव ॥६८॥

नानाविप्रवर्णनम्

तां दृष्ट्वा पुरमोडछामसदृशी मूढानुरागा न के=
तं तेजांसि महीभुजामिव ययुर्भूयांसि भूमीभुजाम् ।
तैलङ्गाङ्ग कलिङ्गवङ्ग मगधेष्वान्ध्रेषु चोलेष्वहो-
गौडेषु द्रविडेषु गुर्जरमहाराष्ट्रेषु लाटेष्वपि ॥६९॥

चतुर्वेदीविप्रवर्णनम्

चतुर्वेदी वेदी क्रतु विततवेदी तटवरो-
दरोच्छेदीखेदीकृतरिपुरमेदी कृतवपुः ।
शुचाचप्यस्वेदी दुरितभरभेदी शुचिजनुः
कलावप्यक्लेदो कलयति स चेदीक्षणपथम् ॥७०॥

अनुवाद—वे निमेषसे शून्य होते हुए उनकी वाणी रूपी अमृतसे तृप्त होते हुए राजाको देखते हुए और निरन्तर काञ्चन पर्वतकी श्रेष्ठता तथा गुरुतामें अरुचि करते हुए श्रेष्ठ गुरु गौरववाले सन्तानक वृक्षकी तरह प्रसन्न होते हुए वे सब देवताकी तरह ओरछा नगरीमें आनन्द करते थे ॥६८॥

विविध विप्र वर्णन

अनुवाद—उस अनुपमेय ओरछा नगरीको देखकर किसको अनुराग नहीं होता था, राजाओंके तेजकी तरह उस भूमिपर रहनेवालोंको सब आनन्द प्राप्त थे, तैलंग अङ्ग कलिग, बंग, मगध, आंध्र, चोल, गौड़, द्रविड़, गुर्जर, महाराष्ट्र व लाट आदिमें जो आनन्द था, वही आनन्द उस नगरीमें था ॥६९॥

चतुर्वेदी विप्र वर्णन

अनुवाद—वह चारों वेदोंको जाननेवाला, क्रतु वैदिक यागकी वेदीका ज्ञाता भयका दूर करनेवाला शत्रु नाशक भेदसे रहित शरीरवाला शोकमें भी नहीं घबरानेवाला, पापनाशक पवित्र शरीरवाला, युद्धमें भी विकल न होनेवाला, सबको प्रेमसे देखता था ॥७०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओडछानगरसागरजन्मा दृश्यते सुकृतिभिर्द्विजराजः ।
दृष्टविष्णुपदभक्तिविशेषः कौमुदीरितजनो वितमस्कः ॥७१॥

सान्नाढ्यादिवर्णनम्

सान्नाढ्यैः सन्नयाढ्या सुकृतिभिरतुलैरुज्ज्वला कान्यकुब्जैः–
शाकद्वीपीयसारस्वतकृतसुषमा मालवाबद्धमालाः ।
पाश्चात्यै -- र्दाक्षिणात्यैर्मधुमथनपदार्थीभवच्चित्तवित्तै–
रुद्याद्विद्याकवित्वैर्द्विजपतिभिरसावोडछा संबभासे ॥७२॥

भूभृद्वक्षोजविक्षोभितनिखिलमति वेत्रवत्याम्बुधारा–
मुक्तासाराच्छहाराभ्युपचित सुषमा सिन्धुरेन्द्रप्रचारैः ।
संभुक्ता वीरसिंहैर्मनसिजसुखभुरोडछा षोडशब्दा–
पक्ष्माक्षीवैति मोद ध्वजपटकपटा धूतहस्तानिलेन ॥७३॥

भूदेवैः क्वापि देवैरिव निखिलजनारब्धसेवैः सदैव–
क्षत्रैः कुत्रापि चित्रा स्वकृतिषु निपुणैः क्वापि वैश्यैरुपास्या ।

अनुवाद—ओरछा नगर रूपी समुद्रमें जन्म लेकर पुण्योंसे द्विजराजकी तरह प्रतीत होता था, विष्णुके चरणोंमें भक्ति रखनेवाला प्रकाशमें तथा ज्ञानमें सब लोगोंको प्रेरणा देता हुआ स्वयं अज्ञानशून्य था ।।७१।।

सनाढ्यादिका वर्णन

अनुवाद—सनाढ्योंकी अच्छी नीतिसे युक्त अतुल पुण्यवान कान्यकुब्जों से उज्ज्वल शाक द्वीपकी तथा सारस्वतोंकी शोभावाली मालवाके जन समूहसे युक्त पश्चिमके तथा दक्षिण तथा मधुमथन भगवान्‌के चरणोंके याचक चित्रवाले तथा विद्या व कवित्वसे युक्त ब्राह्मणोंसे वह नगरी शोभित थी ।।७२।।

अनुवाद पर्वत रूपी स्तनोंके द्वारा सबकी बुद्धिको विक्षोभित करनेवाली वेत्रवतीकी जलधारा वही मुक्ताबिन्दु जैसा बिन्दुओंका धारावर्षण वही एक हारके समान उससे शोभित गजेन्द्र भ्रमणसे सेवित कामदेवकी तरह सुख देनेवाली षोडश वर्षीया काँपते हुए हाथ रूपी वायुसे ध्वजके बहाने वस्त्रको हटाती हुई कामिनीकी तरह वह नगरी राजा वीरसिंहके द्वारा सेवित होरही थी ।।७३।।

अनुवाद—सब लोगों द्वारा सेवित देवताओंकी तरह कहीं ब्राह्मणोंसे, कहीं क्षत्रियोंसे, कहीं चित्र-विचित्र अपनी कृतिमें निपुण वैश्योंके द्वारा सेवित है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अक्षुद्रैः क्वापि शूद्रैर्विहित समुदयागाधविद्यासमुद्रै-
र्धन्या सावौडछा पूरवति मम चतुर्वर्णसृष्टीरभीष्टाः ॥७४॥

ईतिभ्यो न भयं सुनीतिरवनीभर्त्ता हि हर्त्तापदां-
येयं वेत्रवती पवित्रसलिलं संगश्च सद्भिः समम् ।
इत्थं के न हि दक्षिणोदगुदिताः प्राक्प्रत्यगभ्युत्त्थिताः-
पारावार मिवापगाः परमगाहन्तोडछां पूरुषाः ॥७५॥

विन्ध्यैर्वन्द्योद्यमत्वादुरुकपट हठाद्वीरसूरोडछेति-
ख्याता ++ नि काचिद्वनिरखिलमहाराजरत्नस्य यत्नैः ।
त्रैलोक्याक्रान्ति कामैः स्वगुणधरधराधीश्वराद्वीरसिंहं
कृत्त्वैवोत्तुङ्गमङ्गीकृत सविधमहाचक्रमेको न लोकः ॥७६॥

आवासाय वशी वशीकृतजगच्चक्रे पुरीमोडछा-
मासीत्केशव सन्निवासि नृपतेरेतस्य चेतः परम् ।
दत्ते यच्च जुहोति यच्च कुरुते यद्वेद वेदादिकं
तत्सर्वस्य फलं न वेद सुकृती प्रीतिं विना श्रीपतेः ॥७७॥

कहीं क्षुद्रता रहित शूद्रोंके द्वारा कहीं निहित अगाध विद्याके समुद्र जनोंसे सेवित धन्या वह ओरछा नगरी अपनी अभीष्ट चारों वर्णोंकी रक्षा करती थी ॥७४॥

अनुवाद—यहाँ ईतिका भय नहीं, अच्छी नीतिवाला आपत्तिका नाश करनेवाला राजा है, यह वेत्रवती नदी जिसका पवित्र जल और सज्जनोंका सङ्ग है, इस प्रकार दक्षिण तथा उत्तरसे और पूर्व तथा पश्चिमसे आकर लोग, नदियाँ जैसे समुद्रमें आती हैं, वैसेही सब जगहसे आकर ओरछामें रहते थे ॥७५॥

अनुवाद—उद्यम करनेके कारण कपट रूप हठके विन्ध्यसे वन्दनीय हैं तथा महाराजके यत्नसे वीरोंको उत्पन्न करनेवाली ओरछा नगरी प्रसिद्ध होगई है। तीनों लोकोंको आक्रान्त करनेकी कामनासे अपने गुणोंको धारण करनेवाले धराके अधीश्वरसे श्रीवीरसिंहको उन्नत पद दिलाया है, जिनके साथ सारा राज समुदाय है, नर अकेले नहीं सब लोक साथ है ॥७६॥

अनुवाद—जगत्को वशमें करनेवाले जितेन्द्रिय राजाने ओरछापुरीको आवास बनाया केशवको मनमें रखनेवाले राजाका चित्त परम पवित्र था जो देता था, जो हवन करता था, जो कुछ करता था, तथा वेदादिका अध्ययन करता था, उस सबका फल श्रीपतिकी प्रीतिके अतिरिक्त और कुछ नहीं मानता था। ७७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रह्लादध्रुवपाण्डवोद्धवसखीयासीदसीमोदया-
निर्वाणं गतवत्सु मत्सरकलौ यातेषु याताकृशा ।
अद्य श्रीयुतवीरसिंहनिखिलक्ष्मामण्डलाखण्डला-
द्भक्तिः सैव पुरेव कैटभरियोस्तारुण्यमालम्बते ॥७८॥

प्रह्लादेऽकुंरिता ध्रुवे द्विदलिता वैयासिकौ व्यायता--
लब्धालम्बनमम्बरीषहृदयं तस्मिन्नभूत्पुष्पिता ।
उत्तुंगोदयवीरसिंह - धरणीधौरय - चूड़ामणौ--
सैवेयं हरिभक्ति कल्पलतिका किं किं न सूते फलम् ॥७९॥

स्वान्तेऽचिन्तयदेकदा परिषदामग्रे समग्रेश्वरो--
दृक्चेतः सुलभेऽपि कैटभरिपौ वाग्गोचरेऽपि स्थितम् ।
दीर्घं कञ्चिदुपायमञ्चिततया हर्त्तुं तमः संचितं
सर्वेषामपि दुर्लभं च सुलभं च सुलभीकर्त्तुं तमार्द्रान्तरः ॥८०॥

अनुवाद—प्रह्लाद ध्रुव, पाण्डव, उद्धवादिमें रहनेवाली असीम उदय-वाली जो भक्ति थी इन सबके निर्वाण पदको प्राप्त होनेपर मत्सरी कलियुगमें वह भक्ति कृश होगई, आज वही कृष्णकी भक्ति सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डलके स्वामी श्रीयुत वीरसिंहके राज्यमें पहलेकी तरह फिरसे तारुण्यका अनुभवकर रही है ॥७८॥

अनुवाद—जो भक्ति प्रह्लादमें अंकुरित हुई ध्रुवमें दलवाली हुई, व्यासजीमें विकसित हुई, अम्बरीषके हृदयका आलम्बन पाकर उसमें पुष्पित हुई और वही उन्नत राजचक्र चूड़ामणि श्रीवीरसिंहमें हरिभक्तिकी कल्पलता क्या-क्या फल उत्पन्न नहीं करेगी ॥७९॥

अनुवाद—एक बार सबके ईश्वर वीरसिंहने हृदयमें विचार किया कि कैटभरिपु भगवान्के दृष्टि और चित्तसे सुलभ होनेपर भी तथा वाणीसे भी सुलभ होनेपर संचित अज्ञानको नष्ट करनेके लिए कोई दीर्घ बड़ा उपाय उत्तम होनेके कारण करना चाहिये । सबके दुर्लभ भगवान्को सुलभ बनानेको उनका हृदय आर्द्र होगया ॥८०॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रासादनिर्माणेच्छावर्णनम्

चक्रे श्रीयुतमित्रमिश्रसुकृतिद्वारा दुरारोहणं-
श्री नारायणधाम नाम मथुरालङ्कारमोङ्कारवत् ।
क्षीणक्षीर समुद्रमुद्रविसमालम्बेऽविलम्बे रतो-
वैकुण्ठेऽपि विकुण्ठधीरपि निरालम्बो यदालम्बते ॥८१॥
यच्छ्रेयोऽवर्धत श्रीभुजभजनवशादस्य गोवर्धनाद्रे-
र्यद्दोर्दण्डेन रुद्धः परमसुखमसावन्वभूत्कैटभारेः ।
तेनोच्चीयभूय भूयः सुखपति सुभगो रंहसा वीरसिंह
प्रासादच्छद्मनाद्य त्रिभुवनगरिमा बिभ्रदङ्के तमेषः ॥८२॥

प्रासादवर्णनम्

ऊर्ध्वं मूर्द्धभिरुन्धद्गुरुगरिमभृता रोदसीं मध्यगेन-
क्ष्माधोभागस्य भूम्ना जयति मधुपुरे मंदिरं कैटभारेः ।
पूर्य्याभावात्प्रपूर्य्य त्रिभुवनमधुना स्थैर्यमाचर्यबिभ्र-
द्ब्रह्मैवान्तः समाधौ यश इव विशदं वीरसिंहस्यराज्ञः ॥८३॥

महल निर्माणकी इच्छा का वर्णन

अनुवाद—उस वीरसिंहने श्रीविद्वद्वर श्रीमित्रमिश्रके द्वारा दुरारोहण वेदमें ओंकारकी तरह सर्वोपरि मथुराका अलङ्कारभूत श्रीनारायणका पवित्र धाम बहुत सुन्दर मन्दिर बनाया जिसके द्वारा उसके हृदयमें महान् आनन्द हुआ, कुण्ठित बुद्धिवाला आलम्बशून्य बैकुण्ठमें जिसके द्वारा आनन्द प्राप्त करता है उसी तरह उसने यश और आनन्द प्राप्त किया ॥८१॥

अनुवाद—श्रीकृष्णकी भुजाओंके आश्रयसे श्रीगोवर्धन पर्वतका जो यश बढ़ा तथा जिन कैटभारिके भुजदण्डपर आश्रित होकर उस पर्वतको सुख प्राप्त हुआ उसी यशसे उन्नत होकर वीरसिंह कृत प्रासादके बहाने त्रिभुवनमें श्रेष्ठ वह अपनेमें उनको धारण किये यशका पात्र बनकर सबको दुःखी कर रहा है ॥८२॥

प्रासाद-वर्णन

अनुवाद—अत्यन्त गुरु भारको धारण करनेवाले सिरसे आकाशको गम्भीर मध्य भागसे पृथ्वीके अधोभागको धारण करके वह कैटभारिका मन्दिर मथुरामें यश प्राप्तकर रहा है। इस समय त्रिभुवनको यशसे पूर्ण करके यशसे पूर्ण करने योग्य स्थान नहीं होनेसे स्थिर होकर अन्तः समाधिमें ब्रह्म प्राप्तिकी तरह राजा वीरसिंह विशद यश प्राप्तकर रहा है ॥८३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृत्वाङ्के स्मेरपङ्केरुहनयनमशङ्केन भूमीफणाग्रे-
सप्ताधोलोकभूमा फणिकुलपतिना बोधि कूर्मस्थितेन ।
दोः स्तम्भेवेशमदम्भाद्दनुज कुलरिपो र्वीरसिंहस्य शंके-
न्यस्योर्वीचार मूर्ध्वं पुनरियममुना मीयते सप्तलोकी ।।८४।।

वीरसिंहकृतमिन्दिरापतेः सुन्दराकृति रराज मन्दिरम् ।
केशवं दधदनन्ततुङ्गिमा वीरसिंहनृपतेरिवाशयः ।।८५।।

वीतांहोवीरसिंहोद्भट घटितगुहामन्दिरं कैटभारे-
राभाति स्तम्भकूटं त्रिभुवन भुवनस्येव मेरोर्विरोधि ।
यत्तुङ्गोत्सङ्गरिङ्गत्तरमतुलकुलं मत्त पारावताना-
माराात्तारालिमालिङ्गति वियति मुहुः खण्डपिण्डभ्रमेण ।।८६।।

विषादव्यापादी भृशमनवसादीकृतहरि-
प्रसादप्रासादो हिमगिरिविवादोपघटकः ।
बुदेलाभूलासक्षितिरमणचूडामणितया-
व्यधत्ते व्याधानामपि च परमब्रह्म सुलभम् ।।८७।।

अनुवाद—निश्शङ्क होकर फणि कुलपति शेषनाग फणके अग्रभागपर विकसित कमल नयन भगवान्‌को गोदमें लेकर फिर कूर्मपर बैठे सात अधो लोक के भारको समझ रहे हैं। मैं समझ रहा हूँ कि मन्दिरके बहाने भगवान्‌के भुज-स्तम्भपर वीरसिंहके पृथ्वी भारको धारण करके यह इसके द्वारा सप्तलोकी नापी जा रही है ।।८४।।

अनुवाद—श्रीवीरसिंहका बनाया अत्यन्त ऊँचा केशवको धारण किये सुन्दर आकृतिवाला मन्दिर राजा वीरसिंहके हृदयकी तरह शोभा दे रहा है ।।८५

अनुवाद—निष्कलङ्क उद्भट वीरसिंह रचित गम्भीर श्रीकृष्णका मंदिर मेरुका प्रतिस्पर्धी स्तम्भोंके समूहवाला तीनों लोकोंके रहने योग्य भवनकी तरह शोभा दे रहा है। जिसके ऊँचे भागमें मत्त कबूतरोंके अतुल समूहको खण्ड पिण्ड की भ्रान्तिसे समीपमें नक्षत्र पंक्तिको आकाशमें धारणकर रहा है ।।८६।।

अनुवाद—विषादका नाश करनेवाला अत्यन्त अवसादको दूर करने-वाला हिमालयके विवादको जाननेवाला अर्थात् उसके समीप तक पहुँचा हुआ बुन्देला भूमिके राजाओंका चूड़ामणि होनेके कारण व्याधोंको भी परब्रह्मका आनन्द सुलभकर रहा है ।।८७।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तदायामं कामं त्रिजगदभिरामं सुमनसां-
तदुच्चैर्भावं कः कथयितुमशंकः प्रभवतु ।
यदंके पर्य्यंकेऽजनि शशभृदंकेन तुलितः-
स यो विश्वातंकत्रिपदपदरंक त्रिभुवनः ॥८८॥

विकुण्ठं वैकुण्ठं जलधिमपि कुर्वञ्जलधियं-
प्रसीदन् प्रासादम् भजति भजनीयो दिविषदाम् ।
तदानन्दास्यन्दः स्वयमपि सदानन्दलहरी-
स वन्दे बुन्देलाकुलजलधिवेलार्जिजततपः ॥८९॥

अनीहा नोहारक्षितिभृति खनीहारिमहसा-
मलासः कैलासः कनकगिरिवासः कणगिरिः ।
कथाशेषः शेषोऽजनि गुणविशेषोदयवशा-
दहो प्रासादानामनवरतदानार्द्र - मनसः ॥९०॥

यदायामं कामं निरधिगतवामं दशदिशा-
मनन्तानन्त्यं यद्यदनवधि चान्तर्व्यरचयम् ।

अनुवाद—उसका विस्तार तीनों लोकोंमें अत्यन्त सुन्दर है, बुद्धिमानोंमें कौन उसकी उच्चताको कहनेमें निश्शङ्क होकर समर्थ हो सकता है। जिसके अङ्क-रूपी पर्यङ्कपर चन्द्रमाके अङ्कसे तुलना प्राप्त भगवान् विराज रहे हैं, वह जो विश्वके आतङ्कको त्रिपदके पदसे रङ्क करनेके लिये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं ॥८८

अनुवाद—जो वैकुण्ठको विकुण्ठ करते हुए तथा समुद्रमें भी जल वृद्धि करते हुए, भगवान् प्रासादमें निवासकर रहे हैं। उस आनन्दको वर्षा करनेवाला स्वयं भी आनन्दकी लहरीमें निमग्न मैं बुन्देला कुल रूपी समुद्रके तटपर अजित तपकी तरह उस मन्दिरको नमस्कार करता हूँ ॥८९॥

अनुवाद—रत्नोंकी खानसे सुन्दर बर्फीले हिमालय पर्वतमें इच्छा नहीं होती, कैलाश भी हर्षशून्य मालूम होता है, सुवर्ण पर्वत मेरु कण गिरि तथा गुणोंके विशेष उदयके कारण शेषनागकी भी कथा शेष रह गई है। प्रासादोंमें निरन्तर दान करनेमें आर्द्र मनवाले अर्थात् दानोकी बड़ी प्रशंसा है ॥९०॥

अनुवाद—जो इसके मध्यमें असीम अनन्तता मैंने बनाई है उस मेरी बुद्धिको यह सब धीर समुदाय कह रहा है। जो इसका लम्बा-चौड़ा बुद्धिसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अतो मे वैदग्धीमनुवदति दिग्धीरनिवहो--
न चेदीदृग्भूमा सकलमिहभूमावुदयतु ॥९१॥

कैलासाद्रि यशोविमर्द्दि सुषमा हिमाद्रि प्रति-
स्पर्धां मेरुभियन्नमेरुफलवत्संभावयद् भासते ।
लेखांल्लेखगतानिवाग्र विलसल्लेखाज्जगल्लेखय-
न्नुल्लासीकृतकेशि मर्दनमनाः प्रासादचूडामणिः ॥९२॥

मध्याह्ने मणि दर्पणो दिनमणिः स्यान्मूर्ध्नि रात्रौ पुन--
र्मध्यायां रजनीमणिर्यदुमणि – प्रासादचूडामणेः ।
प्राग्जन्मार्जितनिर्भरार्जिततपः – संभारसंभावना--
द्यालोकि स एव लोकमटतालोकि त्रिलोक्यद्भुतम् ॥९३॥

स्पृशन्ती ब्रह्माण्डोपरितटमखण्डोदित रुचा--
शु चार्वी चागर्वीकृतमहितदर्वीकरपतिः ।
उदेति प्रासादादुपरि सविनादा ध्वजघटी--
पटीयः स्वधुर्न्यास्तुहिनगिरिमूर्द्धन्युदितया ॥९४॥

अगम्य दशों-दिशाओंमें विस्तार है उसको सब विद्वान् कह रहे हैं, ऐसी यह उत्तमता सुन्दरता इस संसारमें और कहीं नहीं है ॥९१॥

अनुवाद—कैलाश पर्वतके यशको मर्दन करनेवाली शोभा उसकी है जो हिमालयसे स्पर्धा कर रही है, यह मन्दिर मेरुको नमेरुके फलकी तरह समझता हुआ शोभा देरहा है । देवताओंको चित्रलिखेकी तरह आगे शोभा देते हुए चित्रोंसे संसारको चित्रित करता हुआ केशिमर्दन कृष्णके मनको प्रसन्न करता हुआ प्रासादोंमें चूड़ामणिके समान यह मन्दिर शोभित होरहा है ॥९२॥

अनुवाद—मध्याह्न कालमें सिरपर जिसका सूर्यही मणि रचित दर्पण है और मध्य रात्रिमें चन्द्रमा यदुमणि कृष्णके प्रासाद चूड़ामणिका दर्पण है पूर्व-जन्ममें उपार्जित तपस्याके भारसे पवित्र होनेके कारण लोकका भ्रमण करते हुए जिन्होंने इसको देखा है उन्होंने तीनों लोकोंकी अद्भुत वस्तुको देख लिया है ॥९३॥

अनुवाद—अखण्ड उदित होती हुई कान्तिसे ब्रह्माण्डके उपरितटको स्पर्श करती हुई तथा प्रतिष्ठित दर्वीकरपतिको गर्वशून्य करती हुई सुन्दर स्वधुंनी गङ्गाके हिमालयके सिरपर उदित होनेके कारण सुन्दर घटी शब्द करती हुई प्रासादसे ऊपर शोभित होरही है ॥९४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिशामीशाः प्राहुर्नरपतियशोबीजमधिका-
वदातप्रासादं प्रकटितनिनादं दिशि दिशि ।
तदग्रोदग्रोद्यद्ध्वजचलनिसर्गोज्ज्वलघटी-
तटीं दृष्ट्वा तज्जांकुरकलननिर्यातकलहाः ॥९५॥

प्रासादशुभ्रतावर्णनम्

आब्रह्माण्डमखण्डपाण्डुर पयोधाराद्य नारायणी-
शङ्के शङ्करशङ्कया सुरधुनीपंकौघसंकोचनी ।
आनन्दावहगन्धवाहनिवहैः प्रासादमूर्ध्निध्वजा-
दुद्धूता धवला घटीचलतटीकोटीरलोकत्रयी ॥९६॥

चुम्बत्यम्बरमेतदम्बरमणेर्बिम्बं यदा मण्डली-
मिन्दोर्नन्दकुमारमन्दिरशिरः संघोत्यमन्दं यदा ।
मन्यन्ते मनुजाः प्रजातकुतुकाः संवीक्ष्य साक्षात्तदा-
पद्मं नद्धमृणालमिद्धमुदयत्क्षीरोदनीरोदरात् ॥९७॥

अनुवाद—दिशाओंमें जिसकी झङ्कार गूँज रही है, ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर प्रासादको दिशाओंके स्वामी राजाके यशका बीज बता रहे हैं। उसके अग्रभागमें उदग्र उठती हुई चञ्चल ध्वजाकी स्वाभाविक उज्ज्वल घटीकी तटीको देखकर उससे निकलते हुए अंकुरके विचारमें विवाद करते हुए सोच रहे हैं ॥९५

प्रासाद-शुभ्रता-वर्णन

अनुवाद—प्रासादके शिखरपर ध्वजसे निकलती हुई, आनन्दसे धीरे-धीरे चलती हुई हवाके समूहसे हिलती हुई धवल घटीकी चञ्चल तटीसे लोकत्रय तक गई धाराको मैं समझ रहा हूं कि शङ्करजीकी शङ्कासे पाप समूहका सङ्कोच करनेवाली श्रीनारायणके चरणसे निकली गङ्गाजी ब्रह्माण्ड पर्यन्त अखण्ड श्वेत जल धारासे वहन कर रही है ॥९६॥

अनुवाद—श्रीनन्द कुमारके मन्दिरका शिरः समूह जिस समय आकाश सूर्यके बिम्बका तथा चन्द्रमाकी मण्डलीका चुम्बन करता है तब कौतुकसे भरकर लोग उसे साक्षात् देखकर ऐसा मानते हैं जैसे मृणाल युक्त विकसित कमल क्षीरसागरसे उठकर ऊपर दीख रहा हो ॥९७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुल्याशेषहरिन्निवेशनिविडस्फारस्फुरद्दीधितौ-
मध्येऽह्नि द्युमणौ जनौघमनसि स्फूर्तिः स्फुटाऽऽसीदसौ ।
एतद्भूपतिवीरसिंहसुकृती प्रासादमूर्ध्नि न्यधा-
दुद्दण्डध्वजदण्डमण्डितमणिच्छत्रं मुरद्वेषिणः ॥९८॥

ध्वजवर्णनम्

शुद्धंप्रासादमूर्ध्वं ध्वजधवलघटीकोटकोटीरभावं-
बिभ्राणे शुभ्रमानौ निशि दिशि विदिशि भ्राजितादभ्रभानौ ।
बुन्देलाभूपतीन्दोरधिगतजगतीजैत्र लेखांकमंके-
तंकेनातापशंका जगदुपरि यशश्छत्रमत्रोन्नयन्ति ॥९९॥

इन्दिरेन्द्रमधिगत्य सुन्दरे वीरसिंहकृततुङ्गमन्दिरे ।
छत्रयन्नुदयते फणीश्वरः स्वां फणां ध्वजघटी न सारुणा ॥१००॥

प्रासादभव्यतानिरूपणम्

प्रासादोद्यत्तुषाराचलमतिरचलन्मण्डलं चण्डभानो-
स्तं दृष्ट्वा द्रष्टुकामः फणिपतिरुदगान्नाम वैकुण्ठधाम ।

अनुवाद - समान रूपसे सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त घन रूपसे प्रदीप्त किरणवाले सूर्यके मध्याह्न कालमें ऊपर आनेपर सब लोगोंके मनमें उस समय स्पष्ट रूपसे यह प्रतीति होती थी कि पुण्यवान् राजा वीरसिंहने मुर शत्रु भगवान् कृष्णके ऊपर ऊँचे ध्वज दण्डसे शोभित मणि जटित छत्र लगाया हो ॥९८॥

ध्वज-वर्णन

अनुवाद—ध्वजसे धवल घटीयुक्त शुद्ध प्रासादके द्वारा रात्रिमें दिशाओं विदिशाओंमें प्रकाशित अत्यन्त किरणवाले चन्द्रमाको ऊपर धारणकर लेनेपर ऐसा मालुम होता है कि बुन्देलाके राजा वीरसिंह रूपी चन्द्रमाके पृथ्वीको जीतने के लेखा रूप अङ्कवाले यशरूपी छत्रको दुःखके आशङ्कावाले लोग संसारके ऊपर उठाये हुए हैं ॥९९॥

अनुवाद—यह लाल ध्वजा घटी नहीं है किन्तु इन्दिरा लक्ष्मीके पति भगवान्को सुन्दर वीरसिंहके बनाये ऊँचे मन्दिरमें स्थित जानकर फणीश्वर शेषनागजी अपनी फणाका छत्र लगाये हुये शोभा दे रहे हैं ॥१००॥

प्रासाद-भव्यता-निरूपण

अनुवाद - सूर्यका मण्डल चला, उसको देखकर हिमालय समझकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैकुण्ठं संदधानो रजनिमणिरसौ तन्मणिर्मध्यरात्रौ--
वातव्याधूतपूतध्वजपटममरा वर्णयन्त्येवमेव ॥१०१॥

यः सौन्दर्यमये मुकुन्दनिलये दत्ते क्षणं वीक्षणं--
स्थाणुर्वा पुरुषोऽथवेति वलते तस्मिन्सतां संशयः।
नाश्चर्यं तदपि प्रतीहि यदसावाश्चर्यभूमा मुने--
पाषाण प्रतिमामिषोढजडिमा तस्मिन् रमावल्लभः ॥१०२॥

चतुर्मुखविरामः

भूयिष्ठानि पदानि कैटभभिदः प्रेष्ठानि भूमण्डले--
तत्रासौ मथुरा नितान्तमधुरा तत्रापि तन्मन्दिरम्।
यत्किं नारद वेदयामि विदितं ते भावि सर्वं पुरो--
बुन्देलापतिचेतसीव मुरजितत्रैव चित्रायते ॥१०३॥

उसको देखनेकी इच्छासे फणिपति शेषनागजी वैकुण्ठ धामकी ओर ऊपरको उठे रजनिमणि चन्द्रमाने उनको वैकुण्ठ तक जोड़ दिया, वही जोड़नेकी उठी हुई धाराको मध्यरात्रिमें वायुसे हिलते हुए पवित्र ध्वज वस्त्रको देवता इस प्रकार वर्णन करते हैं ॥१०१॥

अनुवाद—जो सौन्दर्यशाली भगवान्‌के मन्दिरमें थोड़ी देर दृष्टि डालता है तो उसमें बुद्धिमान्‌को भी ये पुरुष है या स्थाणु है यह संशय हो जाता है। हे मुने ! तुम इसको आश्चर्य मत समझो क्योंकि वह आश्चर्यका ही स्थान है, उसमें पाषाणको प्रतिमाका बहाना है, रमावल्लभ भगवान्‌ने भी स्वयं जड़ता धारणकी है ॥१०२॥

चतुर्मुख-विराम

अनुवाद—इस भूमण्डलपर भगवान्‌के बहुतसे स्थान बड़े सुन्दर-सुन्दर हैं उन स्थानोंमें मथुरा अत्यन्त ही मधुर है और मथुरामें भी वह मन्दिर बड़ाही सुन्दर है। हे नारद ! मैं तुमको क्या बताऊँ तुम्हें आगेकी बात भी पहले ही मालुम हो जाती है, बुन्देला पतिके चित्तमें जैसे भगवान् चित्र रूप है वैसेही वहाँ भी चित्ररूप हैं ॥१०३॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इत्याख्याय मुनेः साक्षात्परमाख्यातुमक्षमः ।
विस्मयोऽविस्मयोद्रेकाद्विरराम चतुर्मुखः ॥१०४॥

कवेरात्मकथा

हंसवित्तमतयाभिमण्डितः प्रादुरास भुवि हंसपण्डितः ।
भूरिभूतिपरिभूतभूपतिर्दूरवारकुलभूः स्वभूरिव ॥१०५॥

ख्यातो यस्य पितामहस्तनुमहः प्रांशुत्वहंसोत्तमो--
हंसज्ञातृतयानहंस जगदुत्तंसोऽलमंशोज्ज्वलः ।
कंसध्वंसनकीर्ति शंसनयशोहंसालसंसारक--
स्तं शौरेः स्फुरदंशमंसलप्रमी शंसन्ति शं संतताः ॥१०६॥

द्वितीयरहितः श्रियासु निरवद्यया विद्यया--
दयानिधिरयावधिस्त्रिदशलोभिशोभाम्बुधिः ।
भवाभरणमुद्भवाद्भवनिभः स तस्याभव--
त्पिताखिलहिताकृतिः परशुराममिश्रः कृती ॥१०७॥

अनुवाद—मुनिके सामने यह साक्षात् कहकर आगे कहनेमें असमर्थ होकर विस्मय और अविस्मयके बढ़नेसे ब्रह्मा मौन होगये ॥१०४॥

कविकी आत्म कथा

अनुवाद—अध्यात्म विद्यासे शोभित पृथ्वीपर हंस पण्डित हुये, अपने अधिक वैभवसे जो राजाओंसे भी ऊँचे थे, ब्रह्माकी तरह थे, और दुरवार कुलमें उत्पन्न हुये थे ॥१०५॥

अनुवाद—शरीरके तेज व श्रेष्ठतासे हंसके समान उत्तम प्रसिद्ध इन कविके बाबा थे । आत्म-ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, संसारके भूषण, अत्यन्त उज्ज्वल, कंसके विनाशक, श्रीकृष्णके यशोगानसे हंसके समान जिनकी कीर्ति संसारमें फैली थी, जिनको कृष्णके अंशयुक्त प्रसिद्ध बुद्धिमान् लोग बताते हैं ॥१०६॥

अनुवाद—जो श्रीसे तथा उत्तम विद्याके ज्ञाता होनेके कारण उस समय अद्वितीय थे । दयाके समुद्र-देवताओंको लोभयुक्त करनेवाले यशसे युक्त थे । अपनी उत्पत्तिसे शङ्करके समान संसारके आभरण सबका कल्याण करनेवाले कृती परशुराम नामवाले इनके पिता थे ॥१०७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीमहेशमहिषीवतारकः श्रीकृतः प्रमुमुदे महेशया ।
सैव यस्य जननीसुनीतिसूर्जानकीव कुशलासभासभूः ॥१०८॥

द्वौ ज्यायांसौ प्रशस्तानुगुण गुणगणैर्धीरधाराव्रतंसौ–
कंसारातेरिवांशौ धृतिसुमतिदयामांसलावुन्नतांसौ ।
एको मानीय+न्गुणिमुकुटमणिः स्पर्द्धमानास्त्रिसूर्यान्–
सोदर्याः साधुचर्या हुतभुज इव ते यस्य चासंस्त्रयोऽपि ॥१०९॥

ज्येष्ठाज्ज्येष्ठो गरिष्ठो बहुलगुणभरैः श्रेष्ठकारैकनिष्ठः ।
प्रेष्ठः क्ष्मापृष्ठभाजामपि चरित शमीभूतभूयो दिविष्ठः ।
मुख्यो वीरेश्वराख्यो महिमबहलिमक्षोभित क्षीरसिन्धुः–
श्रीबन्धुध्यानबन्धीभवदनलमनाः सिन्धुरो यस्य बन्धुः ॥११०॥

यस्य ज्येष्ठानुजन्मा जगदुदितयशः फुल्लमल्लीमतल्ली–
स्रक्श्रेणिश्चक्रपाणिर्गुणमणिविपणिः प्रीतिमच्चक्रपाणिः ।

अनुवाद—श्रीमहेशकी महिषी=उमाके अवतार स्वरूप श्रीपरशुरामने 'श्रीमहेशा' के साथ कर ग्रहण किया और उनसे सुनीति नामकी पुत्री उत्पन्न हुई वह जानकीकी भाँति कुशला थी और प्रतिभाकी जन्मदात्री थी ॥१०८॥

अनुवाद—इनसे बड़े भाई सुन्दर अनुकूल गुणगणोसे धीर भूषण के समान थे, वे दोनों कृष्णके अंशके समान थे, धैर्य सुमति दयासे युक्त उन्नत स्कन्धवाले थे, उनमें एक बड़े प्रतिष्ठित गुणी पुरुषोंके मुकुटमणि तथा दो बड़े भाई एक छोटा भाई ये तीनों तेजमें सूर्यकी स्पर्धा करनेवाले थे ॥१०९॥

नोट—इस श्लोकमें एक शब्द अप्राप्य है ॥१०९॥

अनुवाद—मेरे दो बड़े भाइयोंमें सबसे बड़े अनेक गुणोंसे गरिमाशाली श्रेष्ठ, पृथ्वीपर रहनेवालोंमें सर्वप्रिय, महिमाकी अधिकतासे क्षीरसागरको भी क्षुब्ध करनेवाले, भाईका ध्यान सदा करनेके कारण चिन्तित मनवाले, हृदयसे अत्यन्त पवित्र, देव सदृश थे जिनका नाम वीरेश्वर था ॥११०॥

अनुवाद—इन वीरेश्वरजीसे छोटे तथा मुझसे अथवा मित्र मिश्रजीसे बड़े संसारमें उत्पन्न यशरूपी फूली श्रेष्ठ मल्लिकाकी मालाके समान श्रेष्ठ गुण रूप मणियोंको वितीर्ण करनेवाले, अत्यन्त प्रसन्न मर्यादा, उदारता, धैर्यकी परा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मर्यादौदार्यधैर्याद्यवधिरनवधिश्रेष्ठनिःशेष - विद्या-
रम्भैर्जम्भारिसंभावितगुरुरिव सोऽदम्भधीरुज्जजृम्भे ॥१११॥

वाचा वाचामधीशो मुनिरपि तपसा तेजसा वीतिहोत्रो-
द्रोणस्पर्द्धी समृद्धोत्सवनिवहतया युद्धमध्ये च यस्य ।
निःकृच्छ्रः श्रीसहस्रद्युतिरिव दमयन्द्राक्तमिस्रं तनूत्रंः-
श्री योगादित्यमिश्रः समुदयमयते भक्तिनिष्ठः कनिष्ठः ॥११२॥

श्रीगोविन्दकृपानुविन्दफलकां श्रीवीरसिंहोज्ज्वलां-
प्रालेयाद्रिसुतानुभावकवचाऽकम्पां च चम्पूचमूम् ।
जेतुं कालकलौ बलौकसि कलौ काले करालेऽधुना-
सान्नाढ्यः स गुणाढ्य एष विदधे श्री मित्रमिश्रःकृतीः ॥११३॥

कृतिसमयनिरूपणम्-१६८८ वैक्रमे चम्पु निर्माण वर्णनम्

प्राप्य श्रीमित्रमिश्रोऽयमतमिस्त्रत्रयोदशीम् ।
अतुलां स तुलां सूरे गते चम्पूमपूरयत् ॥११४॥

काष्ठा तथा असीम श्रेष्ठ, सम्पूर्ण विद्याओंसे इन्द्रके प्रशंसनीय गुरु वृहस्पतिकी तरह थे पाखण्ड शून्य थे. जिनका नाम चक्रपाणि था ॥१११॥

अनुवाद—वाणीसे वृहस्पतिके समान, तपस्यासे मुनिकी तरह. तेजसे अग्निके समान जो बड़े समृद्ध उत्सवोंमें तथा युद्धमें आचार्य द्रोणकी बराबरी करने-वाले, कभी कठिनताका अनुभव न करनेवाले, सूर्यके समान तत्काल अपने तेज रूपी किरणोंसे अन्धकारको दूर करनेवाले, बड़ी भक्तिवाले श्रीयोगादित्य मिश्र छोटे भाई हैं ।११२॥

अनुवाद—श्रीगोविन्दकी कृपा रूपी फलवाली तथा श्रीवीरसिंहजीके चरित्रसे उज्ज्वल हिमालय सुता श्रीपार्वतीकी अनुकम्पा रूपी कवचसे कम्पित न होनेवाली चम्पूरूपी सेनाको इस समय भयङ्कर वलवान् इस कराल कलिकालमें काल सदृश भयङ्कर दुराचार अनाचारको जीतनेके लिए गुणोंसे आढ्य सनाढ्य-कुल भूषण कृती मित्रमिश्रने बनाया ॥११३॥

चम्पू-कृति-समय-निरूपण : विक्रम १६८८ में चम्पू निर्माण-वर्णन

अनुवाद—मित्रमिश्रने अतुलनीय तुला- राशिमें सूर्यके प्राप्त होनेपर कार्तिक शुक्ल त्रयोदशीके दिन इस चम्पू काव्यको पूर्ण किया । प्राप्तकर इस चम्पू काव्यको पूर्ण किया ॥११४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मीनारोहिणी रोहिणी सहचरे कृत्वान्तिके रेवतीं-
याते चण्डमरीचिमालिनि तुलां वारे च वाचस्पतेः ।
शाके[1] शांकगजर्तुभूपरिमिते ह्यानन्दकन्दाभिधां-
चम्पूं पूरितवान्सितस्मरतिथौ श्रीमित्रमिश्रःकृती ॥११५॥

इति श्रीमन्मित्रमिश्रकृतावानन्द चम्पूकाव्येऽष्ट-
मोऽयमुल्लासः ॥ ८ ॥

※ सम्पूर्णा चेयं चम्पूः ※

अनुवाद—रोहिणी सहचरचन्द्रमाके मीन राशिपर रेवती नक्षत्रके समय आ जानेपर, और सूर्यके तुला राशिपर आ जानेपर, वृहस्पति वारके दिन १६८८ एक हजार छै सौ अठासी विक्रम संवत् कार्तिक शुक्ल त्रयोदशीके दिन श्रीमित्रमिश्र कविने इस आनन्दकन्दचम्पू काव्यको पूर्ण किया ॥११५॥

विशेष—तुला राशिके सूर्य कार्त्तिक मासमें होते हैं अतः कार्त्तिक शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार संवत् १६८८ के दिन यह चम्पू पूर्ण हुआ था ॥११५॥

इति सप्ताचार्य डॉ० वासुदेवकृष्णचतुर्वेदशास्त्रिविरचिते श्री श्रीवरानन्दिनी
भाषाटीकासहिते आनन्दकन्दचम्पू काव्ये मथुरास्थ
कृष्ण जन्मस्थान मन्दिर वर्णनं नाम
अष्टम उल्लासः ॥ ८ ॥

★ सम्पूर्णा चेयम् चम्पूः ★

---

(1) "शाके साष्टगजर्तुभूपरिमिते" इति पठनीयम् । अर्थानुसन्धानानुरोधात् । १६८८ विक्रमसंवत् ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा टीकाकारस्य परिचयः

प्राच्यदर्शन संस्थाने प्रवाचक पदेस्थितः ।
अध्यक्षः संस्कृतस्यैव वासुदेवोऽत्रराजते ।।
वासुदेवं च तं कृष्णं चतुर्वेद मुपास्महे ।
यस्यटीलां समाश्रित्य जायते ना गतश्रमः ।।

शुचि निगमन शीलां, पाप जम्बालकीलाम् ।
कलित कुल करीलां, रम्यरोलम्बनीलाम् ।।
श्रम विरहित टोलां, सूर्य पुत्री कटीलाम् ।
ललित लपन लीलामाश्रयन्तं श्रयामि ।।
विमल सुर गिरयाः रक्षणे सावधानम् ।
कविकुल कलकीर्तेर्गौरवं सेवमानम् ।।
अगणित गण भूषा भासमानं समानम् ।
बुधवरमनुकृष्णं वासुदेवं नमामि ।।

श्रीकृष्णो वासुदेवः सजयति नितरां डाक्टरोपाधि युक्तः ।
सप्ताचार्याख्यया च प्रथित शुभयशाभारते भारतेऽस्मिन् ।।
सौजन्यं यस्य दृष्ट्वा प्रमदमुपययौ भूरिचेतो मदीयं ।
काव्यं येन प्रणीतं तदपि विजयते द्वारकाधीश संज्ञम् ।।

श्रीबन्ना शर्मणः पुत्राश्चत्वारो लोक विश्रुताः ।
चतुर्भुजश्चक्रपाणिः(र्हरि) श्रीहरश्चैव श्रीवरः ।।
श्रीवराचार्य पुत्रोऽयं वासुदेवइति श्रुतः ।
टोलागतश्रमेयस्य वासो लोकेऽपि विश्रुतः ।।
कल्याणो धर्मपत्नी च माता खौनीति विश्रुता ।
हरदेवः सुतो ज्येष्ठो मध्यमः सहदेवकः ।।
नरदेवः कनिष्ठश्च सामवेदीति विश्रुतः ।
प्रतिभा चैव लक्ष्मी च कनिष्ठा च सरस्वती ।।
पुत्रवध्वः क्रमेणात्र वर्णिताः शील भूषिताः ।
व्रजवाला मधुश्चैव द्वेकन्ये चापि भूषिते ।।
राजेते मथुरायां वै धर्म गार्हस्थ्ये श्वसुर गृहे ।
व्रजवाला सुताज्येष्ठा जामाता च मुकुन्दकः ।।
वसन्तानन्द नामानौ तत्सुतौ तनयार्चना ।
पौत्रो गणेश कृष्णश्च बालक्रीडा परायणः ।।
इत्येवं वर्णितो वंशो वासुदेवस्य धीतः ।
मधुबाला कनिष्ठा च अवधश्चैव तत्पतिः ।
सोनियां तत्सुता चैव प्रिया चोभय वंशयोः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh